धनुष्मान्सह लक्ष्मणेन जगाम रम्याणि तपोवनानि ॥१६॥

टीका--दण्डकारण्य में कामरूपी बहुत से राक्षसों से हम पीड़ित होरहे हैं, इस में तुम हे राम हमारे रक्षक हो ॥ ९ ॥ और मैंने यह वचन सुन कर हे सीते दण्डकारण्य में ऋषियों को पूरी तरह पालन की प्रतिज्ञा की ॥१०॥ प्रतिज्ञा करके मैं जीते जी मुनियों से की प्रतिज्ञा को अन्यथा नहीं कर सक्ता हूं मुझे सत्य सदा प्यारा है ॥ ११ ॥ मैं जीवन को त्याग दूं तुझ को भी हे सीते लक्ष्मण समेत त्याग दूं, पर प्रतिज्ञा कर के कभी नहीं त्यागूं, विशेषतः ब्राह्मणों के लिये ॥ १२ ॥ हे वैदेहि मुझे ऋषियों का पालन बिन कहे भी अवश्य करना चाहिये, क्या फिर प्रतिज्ञा करके ॥ १३ ॥ मेरे स्नेह से और सौहार्द से तू ने यह वचन कहा है, मैं प्रसन्न हूं हे सीते प्यारे को ही शिक्षा दी जाती है ॥ १४ ॥ हे शोभने यह तेरे कुल के सदृश है और अनुरूप है तू मेरी सहधर्मचारिणी मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है ॥ १५ ॥ मैथिलराजा की पुत्री और अपनी प्यारी को यह वचन कह कर धनुर्धारी महात्मा राम लक्ष्मण सहित रमणीय तपोवनो को गया ॥ १६ ॥

सर्ग७(व० ११) रामकी अगस्त्यमुनि के दर्शनको जानेकी आज्ञा मांगना॥

मूल—अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना । पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ॥ १ ॥ जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् । येषामुषितवान्पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित् ॥ २ ॥ क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरं क्वचित् । क्वचिच्च चतुरो मासान्पञ्च षट् च परान्क्वचित् ॥ ३ ॥ तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषुवै रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश ॥ ४ ॥ परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया । सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह ॥ ५ ॥

स तमाश्रममागम्य मुनिभिः परिपूजितः । तत्रापि न्यवसद्रामः किंचित्कालमरिंदमः ॥६॥ अथाश्रमस्थो विनयात्कदाचित्तं महामुनिम् । उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥ अस्मिन्नरण्ये भगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः । वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम् ॥ ८ ॥ न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया । कुत्राश्रमपदं रम्यं महर्षेस्तस्य धीमतः ॥ ९ ॥ अगस्त्यमभिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम् । मनोरथो महानेष हृदि संपरिवर्तते ॥ १० ॥ इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः । सुतीक्ष्णः प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम् ॥ ११ ॥ अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम् । अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव ॥ १२ ॥ दिष्ट्या त्विदानीमर्थेऽस्मिन्स्वयमेव ब्रवीषि माम् । अयमाख्यामि ते राम यत्रागस्त्यो महामुनिः ॥ १३ ॥ योजनान्याश्रमात्तात याहि चत्वारि वै ततः । दक्षिणेन महाञ्श्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥ १४ ॥ स्थलीप्रायवनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते । बहुपुष्पफले रम्ये नानाविहगनादिते ॥ १५ ॥ पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः । हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।१६। तत्रैकां रजनीं व्युष्य प्रभाते राम गम्यताम् । दक्षिणां दिशमास्थाय वनखण्डस्य पार्श्वतः ॥१७ ॥ तत्रागस्त्याश्रमपदं गत्वा योजनमन्तरम् । रमणीये वनोद्देशे बहुपादपशोभिते ॥ १८ ॥ रंस्यते तत्र वैदेही लक्ष्मणश्च त्वया सह । स हि रम्यो वनोद्देशो बहुपादपसंयुतः ॥ १९ ॥

टीका आगे २ राम चले, मध्य में सुशोभना सीता, और लक्ष्मण धनुष हाथ में लेकर पीछे २ चला॥ १ ॥बारी २ से उन तपस्वियों के आश्रमों में गया, जिन के पास वह महास्त्रवेत्ता पहले (शरभंग के आश्रम में वा अन्यत्र) रहा था ॥ २ ॥ कहीं दस महीने कहीं एक बरस, कहीं चार महीने, कहीं पांच, छः सात महीने ॥३॥

वहां मुनियों के आश्रम में वास करते हुए और सब प्रकार की अनुकूलता से रमण करते हुए उस को दस बरस बीत गए ॥ ४ ॥ तब वह धर्मज्ञ राम फिर लौट कर सीता समेत सुतीक्ष्ण के आश्रम में फिर आया ॥ ५ ॥ उस आश्रम में आकर मुनियों से पूजित हुए शत्रुओं के सिधाने वाले राम ने वहां भी कुछ काल निवास किया ॥ ६ ॥ अब एक दिन आश्रम में महामुनि के पास बैठा हुआ राम विनय से बोला ॥ ७ ॥ इस वन में हे भगवन् मुनिवर अगस्त्य रहता है, यह मैं सदा उन की कथाएं कहते हुओं से सुनता हूं ॥ ८ ॥ किन्तु जहां उस बुद्धिमान् महर्षि का सुहावना आश्रम-पद है, उस जगह को नहीं जानता हूं, क्योंकि यह वन बहुत बड़ा है ॥ ९ ॥ अगस्त्य मुनि को अभिवादन के लिये उनके पास जाऊं यह मेरे हृदय में बहुत बड़ा मनोरथ है ॥ १० ॥ धर्मात्मा राम के इस वचन को सुनकर वह सुतीक्ष्णमुनि प्रसन्न हुआ राम से यह बोला ॥११॥ मैं भी तुझे कहना चाहता था, कि हे राघव लक्ष्मण और सीता समेत अगस्त्य के भी पास जाओ ॥ १२ ॥ भाग्य से इस विषय में तूने आप ही मुझे कहा है, सो यह तुझे बतलाता हूं हे राम जहां अगस्त्य मुनि है ॥ १३ ॥ हे तात इस आश्रम से चार योजन दक्षिण की ओर जाओ, वहां अगस्त्य के भाई का शोभा वाला बड़ा आश्रम है ॥ १३ ॥ बन की ऐसी जगह पर जो पिप्पली वनों से शोभायमान, बहुत पुष्पफलोंवाला, नाना पक्षियों से गूंजता हुआ, रमणीय बहुत से स्वाभाविक स्थलों वाला है ॥ १५ ॥ वहां अनेक प्रकार के कमल हैं और हंस मुरगाबियों से व्याप्त चकवों से शोभायमान जल के निर्मल स्थान हैं ॥१६॥ वहां एक रात रहकर हे राम दक्षिण दिशा का सहारा लिये बनसमूह के किनारे २ जाना ॥१७॥ वहां एक योजन दूर जाकर बहुत वृक्षों

से शोभित, वन के रमणीय स्थान में अगस्त्य का आश्रमपद है ॥ १८ ॥ वहां तेरे साथ सीता और लक्ष्मण आनन्द मनाएंगे, वह वन का हिस्सा बहुत वृक्षों से युक्त बड़ा सुहावना है ॥ १९ ॥

सर्ग ८ (व० ११) अगस्त्य के भाई के दर्शन करके अगस्त्य के आश्रम में जाना ॥

इति रामो मुनेः श्रुत्वा सह भ्रात्राभिवाद्य च । प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुजः सह सीतया ॥ १ ॥ पश्यन्वनानि चित्राणि पर्वतांश्चाभ्रसंनिभान् । सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान् ॥२॥ सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम् । इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ३ ॥ एतदेवाश्रमपदं नूनं तस्य महात्मनः । अगस्त्यस्य मुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः ॥४॥ यथा हीमे वनस्यास्य ज्ञाताः पथि सहस्रशः । संनताः फलभारेण पुष्पभारेण च द्रुमाः ॥ ५ ॥ पिप्पलीनां च पक्वानां वनादस्मादुपागतः । गन्धोऽयं पवनोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः ॥ ६ ॥ तत्र तत्र च दृश्यन्ते संक्षिप्ताः काष्ठसञ्चयाः । लूनाश्च परिदृश्यन्ते दर्भा वैदूर्यवर्चसः ॥७॥ एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम् । पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं संप्रदृश्यते ॥८॥ ततः सुतीक्ष्णस्यवचो यथा सौम्य मया श्रुतम् । अगस्त्यस्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ॥ ९ ॥ एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह । रामस्यास्तं गतः सूर्यः सन्ध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥ १० ॥ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि । प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत् ॥ ११ ॥ सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः । न्यवसत्तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च ॥ १२ ॥ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते रविमण्डले । भ्रातरं तमगस्त्यस्य आमन्त्रयत राघवः ॥ १३ ॥ अभिवादये त्वां भगवन् सुखमस्म्युषितो निशाम् । आमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्र-

जम् ॥ १४ ॥ गम्यतामिति तेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः। यथादिष्टेन मार्गेण वनं तत्रावलोकयन् ॥ १५ ॥ पुष्पितान् पुष्पिताग्राभिर्लता-भिरुपशोभितान्। ददर्श रामः शतशस्तत्र कान्तारपादपान् ॥१६॥ हस्तिहस्तौघमृदितान्वानरैरुपशोभितान्। मत्तैः शकुनिसंघैश्च शतशः प्रतिनादितान् ॥ १७ ॥ ततोऽब्रवीत्समीपस्थं रामो राजीवलोचनः। पृष्ठतोऽनुगतं वीरं लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥ १८ ॥ स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा शान्ता मृगद्विजाः। आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावि-तात्मनः ॥ १९ ॥ निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया। दक्षिणा दिक्कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा ॥ २० ॥ तस्येदमाश्र-मपदं प्रभावाद्यस्य राक्षसैः। दिगियं दक्षिणात्रासाद्दृश्यते नोप-भुज्यते ॥ २१ ॥ यदा प्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा। तदा प्रभृति निर्वैराः प्रशान्ता रजनीचराः ॥ २२ ॥ अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः। अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥ २३ ॥ एष लोकार्चितः साधुर्हिते नित्यं रतः सताम्। अस्मान-धिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति ॥ २४ ॥ +नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः। नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः ॥ २५ ॥ अत्र देवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतगैः सह। वसन्ति नियता-हारा धर्ममाराधयिष्णवः ॥ २६ ॥ आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः। निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया ॥ २७ ॥

टीका--मुनि से यह सुनकर राम भाई के साथ मुनि को अभिवादन करके छोटे भाई और सीता के साथ अगस्त्य के दर्शन को रवाना हुआ ॥ १ ॥ रस्ते में मार्ग के क्रम से आए विचित्र वनों को, मेघ तुल्य पर्वतों को, सरोवरों को और नदियों को देखता हुआ ॥ २ ॥ सुतीक्ष्ण से बतलाए मार्ग से आनन्द पूर्वक जाता हुआ राम प्रसन्न हो लक्ष्मण से यह वाक्य बोला ॥ ३ ॥ अगस्त्य मुनि के

पुण्यकर्मा महात्मा भाई का आश्रमपद यह दीखता है ॥ ४ ॥ जैसे कि इस वन के मार्ग में सहस्रोंप्रसिद्ध वृक्ष फल भार से और पुष्प भार से झुके हुए हैं ॥ ५ ॥ पकी हुई पिप्पलियों का तीक्ष्ण गन्ध पवन से उड़ाया हुआ इस वन से आरहा है ॥ ६ ॥ जहां तहां इकट्ठे किये हुए लकड़ियों के भार दीखते हैं, और लजमणि के तुल्य शोभावाली कटी हुई कुशाएं दीखती हैं ॥ ७ ॥ और यह वन के मध्य में आश्रमस्थ अग्नि की धुएं की चोटी, काले मेघ की चोटी के तुल्य दीखती है ॥ ८ ॥ सो हे सौम्य जैसा मैंने सुतीक्ष्ण का वचन सुना है उस के अनुसार निःसन्देह यह अगस्त्य के भाई का आश्रम होगा ॥ ९ ॥ लक्ष्मण के साथ इत्यादि बातें कहते हुए राम को सूर्य अस्त होगया और सन्ध्याकाल प्रवृत्त हुआ ॥ १० ॥ भाई के साथ यथाविधि पश्चिम सन्ध्या को उपासकर आश्रमपद में प्रविष्ट हुआ और उस ऋषि को अभिवादन किया ॥ ११ ॥ उस मुनि से प्रेम से स्वीकार किया हुआ राम फल मूल खाकर वह रात वहां रहा ॥ १२ ॥ रात के व्यतीत होने और सूर्यमण्डल के उदय होने पर राम ने अगस्त्य के भाई से आज्ञा मांगी ॥ १३ ॥ हे भगवन् आपको अभिवादन करता हूं, सुख से रात रहा हूं, अब आपसे आज्ञा मांगता हूं, आपके बड़े भाई के दर्शन को जाता हूं १४ ॥ जाइये उसके ऐसा कहने पर राम बतलाए मार्ग से उस वन को देखता हुआ गया ॥ १५ ॥ वहां (मार्ग में) चोटियों पर फूलों से लदी हुई बेलों से सजे हुए स्वयं भी फूले हुए सैंकड़ों जंगली वृक्ष देखे ॥ १६ ॥ सैंकड़ों हाथियों के सूंडों से तोड़े हुए, सैंकड़ों वानरों से शोभायमान और सैंकड़ों मस्त पक्षी समूहों से गूंजते वृक्ष देखे ॥ १७ ॥ तदनन्तर कमलनेत्र राम ने अपने समीप २ पीछे चलते हुए लक्ष्मी के बढ़ानेवाले वीर लक्ष्मण से कहा ॥ १८ ॥

जैसा कि अब वृक्ष स्निग्ध पत्तों वाले हैं और मृग और पक्षी शान्त दीखते हैं (इससे प्रतीत होता है) उस शुद्धात्मा महर्षि का आश्रम अब बहुत दूर नहीं है॥ १९॥ जिसने कि लोगों के हित की कामना से बल से मौत (आर्यों के मृत्यु रूप राक्षसों) को दबाकर दक्षिण दिशा शरण लेने योग्य बनादी है॥२० ॥ उसका यह आश्रमपद है, जिसके प्रभाव से राक्षस मारे डर के दक्षिण दिशा को देखते हैं, भोगाते नहीं हैं॥ २१॥ जिस समय से लेकर इस पुण्यकर्मा ने यह दिशा अपने बस में की है, उस समय से लेकर राक्षस वैर त्यागकर शान्त हुए हैं॥ २२॥ यह इस लोक में विख्यात कर्मोंवाले दीर्घायु अगस्त्य का श्रीमान् आश्रम है, जहां के सब वन्य पशु विनीत हैं॥ २३॥ यह महात्मा लोक में पूजित है, सदा सत्पुरुषों के हित में रत है, हमें भी अपने पास आयों को कल्याण से युक्त करेगा॥ २४॥ यह मुनि इस प्रकार का है, कि यहां झूठ बोलनेवाला, निर्दय, धूर्त, घातुक, पापाचरण वाला पुरुष जीता नहीं रह सकता २५॥ यहां देवता यक्ष नाग और पतग नियत आहार वाले धर्म सेवन की इच्छा से बसते हैं॥ २६॥ आगये हैं हम आश्रमपद में, हे लक्ष्मण आगे प्रवेशकर और सीता के साथ मेरा आना ऋषि को निवेदन कर॥ २७॥

सर्ग ९ (व० १२) अगस्त्य के दर्शन और शस्त्रों का ग्रहण॥

मूल—सं प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः। अगस्त्य शिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाचह॥ १॥ राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली। रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया॥ २॥ लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः। द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम्॥३॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः। तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम्॥४॥ स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं

तपसा दुष्प्रधर्षणम् । कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा ॥५॥ पुत्रौ दशरथस्येमौ रामो लक्ष्मण एव च । प्रविष्टावाश्रमपदं सीतया सह भार्यया ॥६॥ द्रष्टुं भवन्तमायातौ शुश्रूषार्थमरिंदमौ॥७॥ ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम् । वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत्।

टीका—राम का छोटा भाई लक्ष्मण आश्रमपद में प्रवेश कर अगस्त्य के शिष्य के पास आ यह वाक्य बोला ॥ १ ॥ राजा दशरथ का बड़ा पुत्र बलवान् राम भार्या सहित मुनि के दर्शन को आया है॥ २ ॥ मैं उसका छोटा भाई उस का हितैषी लक्ष्मण हूं, हम सब भगवान् के दर्शन करना चाहते हैं, यह भगवान् को निवेदन कीजिये ॥ ३॥ लक्ष्मण के इस वचन को सुनकर वह तपोधन तथास्तु कह कर निवेदन करने के लिये अग्निगृह में प्रविष्ट हुआ ॥ ४ ॥वह तप से उस दुष्प्रधर्ष मुनि के पास जा हाथ जोड़कर राम का आगमन बतलाता भया ॥५॥ दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण आश्रम में प्रविष्ट हुए हैं, और साथ राम पत्नी सीता है ॥६॥ शत्रुओं के दमन करने वाले वह दोनों भगवान् के दर्शन और सेवन के लिये आए हैं ॥७॥ तब शिष्य से लक्ष्मण सहित राम को और महाभागा वैदेही को आए सुनकर मुनि यह वचन बोला ॥ ८ ॥

मूल—दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः । मनसा कांक्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति ॥९॥ गम्यतां सत्कृती रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः । प्रवेश्यतां समीपं मे किमसौ न प्रवेशितः ॥ १० ॥ तदा निष्क्रम्य संभ्रान्तः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् । कोऽसौ रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम् ॥ ११ ॥ प्रविवेश ततो रामः सीतया सहलक्ष्मणः । प्रशान्तहरिणाकीर्णमाश्रमं ह्यवलोकयन् ॥ १२ ॥ ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत् । तं ददर्शाग्रतो रामो मुनीनां दीप्ततेजसम् ॥१३॥ अब्रवीद्वचनं वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ।

बहिर्लक्ष्मण निष्क्रामत्यगस्त्यो भगवानृषिः ॥१४॥ औदार्येणाव-गच्छामि निधानं तपसामिदम् ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम् । जग्राहपततस्तस्य पादौ च रघुनन्दनः ॥ १६ ॥

टीका—भाग्य से बड़ी प्रतीक्षा के पीछे राम आज मेरे मिलने को आया है, मुझे भी उसके आने की मन में चाह है ॥ ९ ॥ जाओ बड़े आदर मान से लक्ष्मण के और पत्नी के सहित राम को मेरे पास लेआओ, क्यों न उसे पहिले ही प्रवेश करा दिया ॥१०॥ तब निकलकर बड़े आदर के साथ शिष्य लक्ष्मण से बोला कौन वह राम है, मुनि के दर्शन को आए प्रवेश करे ॥ ११॥ तब राम सीता और लक्ष्मण के साथ शान्त हरिणों से भरे आश्रम को देखता हुआ प्रविष्ट हुआ ॥ १२ ॥ उधर शिष्यों से घिरा हुआ मुनि भी बाहिर निकला, राम ने सामने आते हुए मुनियों में उस चमकते तेजवाले को देखा ॥१३॥ और उस वीर ने लक्ष्मी के बढ़ाने वाले लक्ष्मण को यह वचन कहा । हे लक्ष्मण भगवान् अगस्त्य ऋषि बाहिर निकले हैं ॥१४॥(चेहरे पर चमकते हुए) उदार भाव से इसको तेज का निधि जानता हूं ॥१५॥ यह कहकर महाबाहु रघु-नन्दन ने सूर्य के तुल्य तेजवाले आते हुए मुनि के पाद ग्रहण किये

मूल—अभिवाद्य तु धर्मात्मातस्थौ रामः कृताञ्जलिः । सीतया सह वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः ॥१७॥ प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयि-त्वासनोदकैः । कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत् ॥१८ अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्य च । वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ॥१९॥उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम्॥२०॥ राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः । पूजनीयश्च मान्यश्च भवान्प्राप्तः प्रियातिथिः ॥२१॥ एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्च राघवम् । पूजयित्वा यथाकामं ततोऽगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥२२॥ इदं

दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम् । वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा॥२३॥ अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः । दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्यसायकौ ॥२४॥ सम्पूर्णौ निशितैर्बाणै-र्ज्वलद्भिरिव पावकैः । महाराजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥२५॥ तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद । जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ॥२६॥ एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम् । दत्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥ २७ ॥

टीका—अभिवादन करके धर्मात्मा राम सीता और लक्ष्मण के साथ हाथ जोड़कर खड़ा होगया ॥ १७ ॥ राम को स्वीकार कर और आसन जल से पूजकर और कुशल प्रश्न पूछकर बैठिये यह मुनि ने उसे कहा ॥ १८ ॥ और वैश्वदेव होम करके अर्घ्य देकर तीनों अतिथियों को पूजकर वानप्रस्थ धर्म से उनको भोजन दिया॥१९॥ और हाथ जोड़कर बैठे हुए धर्ममें निपुण राम से बोला॥२०॥ आप सारे लोक के राजा धर्मचारी महारथी ऐसे पूजनीय माननीय प्यारे अतिथि प्राप्त हुए हैं॥२१॥यह कहकर और फलमूल पुष्पों से यथा रुचि पूजकर फिर अगस्त्य बोला ॥२२॥ यह दिव्य वैष्णव महाधनुष जो सुवर्ण और वज्र से भूषित है,हे पुरुषश्रेष्ठ जिसे विश्वकर्मा ने बनाया है ।२३। और ब्रह्मा से दिया हुआ यह सूर्यतुल्य अमोघ तीर, और यह महेन्द्र से दिये हुए बहुत तीरों वाले दोनों भत्थे ॥२४॥ जोकि अग्नि की तरह जलते हुए तीक्ष्ण वाणों से भरे हैं, और यह सुवर्ण से भूषित चान्दी के कोशवाली तलवार ॥२५॥ यह धनुष दोनों भत्थे तीर और खड्ग हे मान देनेवाले वज्र को वज्र धर (इन्द्र) की तरह विजय के लिये स्वीकार कर ॥२६॥यह कहकर महातेजस्वी अगस्त्यने उत्तम शस्त्र रामको देकर फिर कहा॥२७॥

सर्ग १० (व० १३) अगस्त्य से पंचवटी में आश्रम की आज्ञा

मूल—राम प्रीतोऽस्मि भद्रं ते परितुष्टोऽस्मि लक्ष्मण । अभिवाद-

यितुं यन्मां प्राप्तौ स्थः सह सीतया ॥ १ ॥ अध्वश्रमेण वां खेदो बाधते प्रचुरश्रमः । व्यक्तमुत्कण्ठते वापि मैथिली जनकात्मजा॥२॥ एषा च सुकुमारी च खेदैश्च न विमानिता । प्राज्यदोषं वनं प्राप्ता भर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥३॥ यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु । दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामभिगच्छती ॥ ४ ॥ अलंकृतोऽयं देशश्च यत्र सौमित्रिणा सह । वैदेह्या चानया राम वत्स्यसि त्वमरिंदम॥५॥

टीका हे राम तेरा भला हो, तेरे लिये प्रेम से भर गया हूं और हे लक्ष्मण तेरे ऊपर सन्तुष्ट हूं, जो अभिवादन के लिये मेरे पास आए हो ॥१॥ मार्ग में बहुत थक जाने से थकावट आप दोनों को पीडा दे रही हैं, सीता भी स्पष्ट (कहीं विश्राम की) उत्कण्ठावाली है ॥ २॥ यह बडी सुकुमारी इस से पूर्व खेदों से कभी पीडित न हुई भर्तृस्नेह से प्रेरी हुई इस दोषों वाले वन में आई है ॥ ३ ॥ जैसे यह वन में आनन्दित रहे हे राम ऐसा कीजिये, वन में आपके साथ आती हुई इसने बडा कठिन काम किया है,॥४॥यह देश आप से अलंकृत हुआ है, जहां हे शत्रुओं के दबाने वाले आप लक्ष्मण के और सीता के साथ वास करेंगे ॥ ५ ॥

मूल-एवमुक्तस्तु मुनिना राघवः संयताञ्जलिः । उवाच प्रश्रितं वाक्यमृषिं दीप्तमिवानलम् ॥६॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगवः । गुणैः सभ्रातृभार्यस्यगुरुर्नःपरितुष्यति ॥७॥ किं तु व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम् । यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम् ॥८॥ ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्य भाषितम् । ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा तदोवाच वचः शुभम् ॥९॥ इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः । देशो बहुमृगः श्रीमान्पञ्चवट्यभिविश्रुतः॥

टीका-मुनि के ऐसा कहने पर राम हाथ जोड़कर अग्नि की तरह दीप्यमान उस ऋषि से यह वाक्य बोला॥६॥मैं धन्य हूं,अनुगृहीत

भ्राता और भार्या के समेत जिस पर अपने ही गुणों से आप हमारे गुरु प्रसन्न हुए हैं ॥७॥ किन्तु मुझे ऐसा स्थान बतलाइये जो बहुत वनों वाला और सजल हो, जहां आश्रम बनाकर प्रीतिवाला हुआ सुख से रहूं॥८॥ तब वह धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ राम के इस वचन को सुनकर थोड़ी देर सोचकर यह शुभ वचन बोला ।९। यहां से दो योजन पर हे तात बहुत मूल फल और जलवाला बहुत मृगोंवाला शोभावाला स्थान है, जो पञ्चवटी नाम से विख्यात है ॥१०॥

मूल—तत्र गत्वाश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह । रमस्त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन् ॥११॥ हृदयस्थं च ते छन्दो विज्ञातं तपसा मया । अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पञ्चवटीमिति ॥१२॥ स देशः श्लाघनीयश्च नातिदूरे च राघव । गोदावर्याः समीपं च मैथिली तत्र रंस्यते ॥१३॥ प्राज्यमूलफलैश्चैव नानाद्विजगणैर्युतः । विविक्तश्च महाबाहो पुण्यो रम्यस्तथैव च ॥१४॥ एतदालक्ष्यते वीर मधूकानांमहावनम् । उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमपि गच्छता ॥१५॥ ततः स्थलमुपारुह्य पर्वतस्याविदूरतः । ख्यातः पञ्चवटीत्येव नित्यपुष्पितकाननः॥१६॥ अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह । सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम्॥१७॥ तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ । तमाश्रमं पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया ॥१८॥

टीका—वहां जाकर आश्रम बनाकर पिता के वाक्य का यथोक्त पालन करता हुआ, लक्ष्मण के साथ रमणकर ॥११॥ तेरे हृदय का अभिप्राय मैंने तप से मालूम किया है, इस लिये तुझे कहता हूं, कि पञ्चवटी को जा ।१२। वह स्थान बहुत सुहावना है, बहुत दूर भी नहीं है, और गोदावरी के समीप है, हे राम वहां सीता रमण करेगी ।१३। वह स्थान बहुत मूल फलों से और नाना पक्षिगणों से युक्त है, हे वीर महाबाहो एकान्त है, पवित्र है, और

रमणीय है ।१४। हे वीर यह जो महुओं का महावन दीखता है, इसके उत्तर से जाना, जो मार्ग न्यग्रोध आश्रम को भी जाता है ।१५। उन मे आगे स्थल पर चढ़कर पर्वत के निकटही पञ्चवटी प्रसिद्ध है, जिसके बन सदा फूले रहते हैं ।१६। अगस्त्य से ऐसे कहे हुए राम ने लक्ष्मण के साथ उस सत्यवादी ऋषि का सत्कार करके उस से आज्ञा मांगी ।१७। उससे आज्ञा दिये हुए वह दोनों उसके पादवन्दन करके सीता सहित पञ्चवटी आश्रम को गये ॥

सर्ग ११ [व० १४, १५,] पञ्च वटी में आश्रम का बनाना

मूल-अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः । आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम्॥१॥तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ। मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति ॥२॥ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव । उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः ॥३॥ स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः । स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च ॥ ४ ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च । आचचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूतसमुद्भवम् ॥५॥ जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्र मरिंदम । सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि ॥६॥ ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम् । उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥ ७ ॥ अयंदेशः समः श्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः । इहाश्रमपदं रम्यं यथावत्कर्तुमर्हसि ॥८॥

टीका-अब पञ्चवटी को जाते हुए राम ने मार्ग में भयंकर पराक्रम वाला महाकाय गृध्र देखा ।१। उस बनचारी को देखकर महाभाग राम और लक्ष्मण ने उसे राक्षस समझा, और उसे पूछा आप कौन हैं ।२। तब वह मीठी प्यारी बाणी से तृप्त करता हुआ बोला, वत्स मुझे अपने पिता का सखा जान ।३। राम ने उसे पितृसखा मानकर उसका पूजन किया, और उसका कुल और नाम पूछा ।४। राम का वचन सुनकर उस द्विज ने राम को अपना कुल, और सब भूतों

की उत्पत्ति बतलाई ।५। हे शत्रुओं के दबाने वाले मुझे श्येनी का पुत्र जटायु जान। यदि आप पसन्द करें, तो मैं आपका वास का साथी हूंगा ।६। तब अनेक व्याल और मृगों से युक्त पञ्चवटी में जाकर राम ने दीप्त तेजवाले भाई लक्ष्मण को कहा ।७। यह देश सम शोभा वाला और फूले हुए वृक्षों से घिरा हुआ है, यहां तू रमणीय आश्रम ठीक २ बनाने योग्य है ॥ ८ ॥

मूल—इयमादित्यसंकाशैःपद्मैः सुरभिगन्धिभिः । अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनीपद्मशोभिता ।९। यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना । इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥१०॥ हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता । नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीड़िता ।११। मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकंदराः। दृश्यन्ते गिरयः सौम्याः फुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥१२॥ इदं पुण्यमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम् । इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा ॥१३॥

टीका—यह सूर्यतुल्य, सुरिभि गन्धवाले पद्मों से शोभित सुन्दर पद्मिनी दीखती है ॥ ९ ॥ शुद्धात्मा अगस्त्य मुनि ने जैसे कहा था, फूले हुए वृक्षों से घिरी हुई यह रमणीय गोदावरी है ॥ १० ॥ हंसों और मुरगाबियों से युक्त, चकवों से शोभायमान, न अति दूर न निकट मृग यूथों, से पीडित ॥ ११ ॥ और यह सुहावने पर्वत मोरों से गूंजते हुए ऊंच बहुत कन्दरोंवाले फूले हुए वृक्षों से घिरे हुए दीखते हैं ॥१२॥ यह पवित्र स्थान है, यह रमणीय है, यहां बहुत से मृग पक्षी है यहां हे लक्ष्मण इस पक्षी (जटायु) के साथ वास करें

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा । अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥१४॥ पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम् । सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम् ॥१५॥ शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशिताम् । कुशकाशशरैः पर्णैः सुप-

रिच्छादितां तथा ॥१६॥ तस्मिन्देशे बहुफले न्यवसत्स सुखं सुखी कञ्चित्कालं स धर्मात्मा सीतया लक्ष्मणेन च ॥ १७ ॥

टीका राम के ऐसे कहने पर शत्रुवीरों के मारने वाले महाबली लक्ष्मण ने झटपट भाई के लिये आश्रम बनाया ॥१४॥ बडी विशाल पर्णशाला जिसमें प्रशस्त मिट्टी की भरती डाली गई, उत्तम खम्भे लगाए गए, और लम्बे २ बांस डालकर बडी शोभावाली बनाई गई, ॥ १५॥ जण्डी की शाखाएं ऊपर बिछाई गई, दृढ बन्धनों से बांधी गई, और कुशा काही सर और पत्तों से अच्छी तरह ढक दी गई ॥१६॥ उस बहुत फलोंवाले देश में वह सुखी धर्मात्मा राम सीता और लक्ष्मण के साथ कुछ काल सुख से रहा ॥१७॥

सर्ग १२ (व० १६) पञ्चवटी वास

मूल–वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः। शरद्व्यपाये हेमन्त ऋतुरिष्टः प्रवर्तते ॥१॥ स कदाचित्प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः। प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम् ॥२॥ प्रह्वः कलशहस्तस्तु सीतया सह वीर्यवान्। पृष्ठतोऽनुव्रजन्भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत् ३॥ अयं स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद। अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥४॥नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी। जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥५॥ प्राज्यकामा जनपदा संपन्नतरगोरसाः। विचरन्ति महीपालाः यात्रार्थंविजिगीषवः ॥६॥ सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम्। विहीन तिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक्प्रकाशते ॥७॥ अत्यन्तसुखसंचारा मध्यान्हे स्पर्शतः सुखा। दिवसाः सुभगादित्याश्छाया सलिलदुर्भगाः॥८। निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः। शीतवृद्धतरा यामास्त्रियामा यन्ति सांप्रतम्॥

टीका–महात्मा राम को सुख से बसते हुए वहां शरद ऋतु बीती, और प्यारा हेमन्त प्रवृत्त हुआ।१। एक दिन वह रघुनन्दन रात के

प्रभात होने पर रमणीय गोदावरी नदी पर स्नान के लिये गया।२। पीछे सीता और वीर भ्राता लक्ष्मण हाथ में कलश लिये पीछे चलता हुआ नम्र हो यह वाक्य बोला ।३। यह वह समय आया है, जो आपको प्यारा है, हे प्रियंवद, जिसमें शुभ संवत्सर अलंकृत हुआ प्रतीत होता है ।४। दुनिया कुहरसे कठोर सी होरही है । पृथिवी खेती की मालावाली है, जल (शीतता) से उपभोग (देर तक न्हाने आदि) के योग्य नहीं, अग्नि सुहावनी है ।५। देश अन्नों से भरपूर और गोरस से सम्पन्न हुए हैं । विजय की इच्छावाले महीपाल यात्रा के लिये फिर रहे हैं ।६। सूर्य दक्षिण दिशा का सेवन कर रहा है, और अब उत्तर दिशा तिलक हीना स्त्री की तरह शोभा नहीं देती है ।७। दिन अब चलने में अत्यन्त सुखदायी हैं, सूर्य सुहावना, और छाया और जल असेवनीय होगये है ।८। अब रात को आकाश के नीचे (=खुले मैदान) सोना बन्द होगया है, रातें हिम से धुन्धली हैं, और पुष्य नक्षत्र से रात्रिकाल का परिमाण जाना जाता है, शीत से अब त्रियामा(रात)के पहर बहुत लम्बे होगये हैं

मूल—रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः । निःश्वासान्ध इवादर्श-श्चन्द्रमा न प्रकाशते १०।ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते। सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते ॥११॥ प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च सांप्रतम् । प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः ॥१२॥ मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः । दूरमप्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते॥१३॥ अवश्यायनिपातेन किंचित् प्रक्लिन्नशाद्वला । वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥१४॥ स्पृशन्सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम् । अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥१५॥ बाष्प-संछन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः । हिमार्द्रवालुकास्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम् ॥१६॥ तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद्भास्करस्य च । शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम् ॥१७॥ जराजर्झरितैः पत्रैः

शीर्णकेसरकर्णिकैः । नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः ॥

टीका—अब चन्द्रमा का सौभाग्य सूर्य में चला गया, उनका मण्डल कुहर मे धुन्धला पड़ गया, और वह सांस से धुन्धले दर्पण की तरह शोभा नहीं देता है ॥१०॥ पौर्णमासी में चान्दनी कुहर से धुन्धली हुई धूप से विवर्ण हुई सीता की तरह प्रतीत होती है, मोहती नहीं ।११। स्वभाव से ही ठण्डे स्पर्शवाला और अब हिम से बींधा हुआ पश्चिमी वायु दुगुना शीतल होकर समय पर बहता है ॥१२॥ कुहर से ढकी हुई फैलती हुई किरणों से दूर उदय हुआ भी सूर्य चन्द्र की तरह प्रतीत होता है ।१३। ओस के गिरने से कुछ भीगी हुई खेतीवाली वनभूमि घनी तरुण धूप से शोभा पाती है ।१४। जंगली हाथी अत्यन्त प्यासा हुआ सुखसे बहुत बड़े ठण्डे जल को स्पर्श करके, सूंड को मोड़लेता है।१५। नदियोंके जल तो कुहर से ढके हुए हैं, उनका पता सारसों की आवाज़ से, किनारों से, और ओस से भीगी रेत मे लगता है ।१६। बर्फ के गिरने से, सूर्य के मृदु होने से, और शीत के हेतु मे पर्वतों के अग्र पर स्थित भी जल प्रायः रसवाला है ।१७। सरोवरों के कमलों के पत्ते जरा से झर्झर कर रहे हैं, फूलों के केसर और कर्णिक झड़ गये हैं, नाल ही उनकी शेष रहगई है,इस तरह हिममे ध्वस्त हुए वह शोभा नहींपातेहैं

मूल—अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः । तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्याभरतः पुरे ॥१९॥ त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान्बहून् । तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले ॥२०॥ सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः ।वृतःप्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम् ॥२१॥ पद्मपत्रेक्षणः श्यामः श्रीमान्निरुदरो महान् । धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः ॥२२॥ प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुररिंदमः । संत्यज्य विविधान् सौख्यानार्यं सर्वात्मना श्रितः ॥२३॥+जितःस्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना । वनस्थमपि

तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ॥२४॥ न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति । ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः ॥२५॥+भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः । कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥२६॥ इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद्वदति धार्मिके । परिवादं जनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ॥२७॥+न तेऽम्बा मध्यमातात गर्हितव्या कदाचन । तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥२८

टीका—इस काल में हे पुरुषश्रेष्ठ दुःख से युक्त धर्मात्मा भरत तेरी भक्ति से पुर में तपश्चर्या का जीवन बिता रहा है ।१९ राज्य,मान और अनेक प्रकार के भोगों को त्यागकर नियत आहार हो तपस्वी बन ठण्डे महीतल पर सोता है ।२०। वह भी इस समय निःसन्देह स्नान के लिये तय्यार हो प्रकृतियों से युक्त हुया नित्य सरयू नदी पर जाता है ।२१। कमलपत्र जैसे नेत्रोंवाला, नवयुवा श्रीमान् पतले पेटवाला, महान् धर्मज्ञ, सत्यवादी, लज्जा से रुका हुआ, जितेन्द्रिय । २२। प्रिय बोलनेवाला, मीठा, लम्बी भुजावाला, शत्रुओं को दबाने वाला, भरत अनेक प्रकार के सुखों को त्यागकर सर्वात्मा से आर्य के आश्रित है ।२३। तेरे भाई महात्मा भरत ने स्वर्ग को जीत लिया है, जो तपस्विपन में आप वनवासी के पीछे चल रहा है ।२४। मनुष्य पिता का नहीं, किन्तु माता का अनुसरण करते हैं । यह प्रसिद्ध लोकोक्ति भरत ने अन्यथा कर दिखलाई है ।२५। भर्ता जिसका दशरथ, पुत्र साधु (नेक) भरत, कैसे वह माता कैकेयी ऐसी क्रूर दृष्टिवाली है । २६। धार्मिक लक्ष्मणने जब स्नेहसे यह बात कही, तो माता की निन्दा न सहते हुए राम बोले ।२७। हे तात तुझे मध्यमा माता की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये, वही इक्ष्वाकु-नाथ भरत की कथा कहो ।२८।

मूल—संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च । हृद्यान्यमृत-

कल्पानि मनःप्रह्लादनानि च ॥२९॥ कदा ह्यहं समेष्यामि भरतेन महात्मना। शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन ॥३०॥ इत्येवं विलपत स्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम्। चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजःसहसीतया ॥३१

टीका—मैं भरत के प्यारे मधुर हृदय के प्यारे मन को प्रसन्न करनेवाले और अमृत तुल्य वाक्यों को स्मरण करता हूं ।२९। कब महात्मा भरत, वीर शत्रुघ्न, मैं और आप हे रघुनन्दन इकठे मिलेंगे ।३०। इस प्रकार विलाप करते हुए वहां गोदावरी नदी पर पहुंच कर राम ने लक्ष्मण और सीता के साथ स्नान किया ॥३१॥

सर्ग १३ (व० १७) शूर्पणखा का आना

मूल—कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च। तस्माद्गोदावरीतीरात्ततो जग्मुः स्वमाश्रमम् ॥ १ ॥ आश्रमं तदुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः। कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म पर्णशालामुपागमत् ॥२॥ तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः। तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ॥ ३ ॥ सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः। भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम् ॥ ४ ॥ दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायतेक्षणम्। गजविक्रान्तगमनं जटामण्डलधारिणम् ॥ ५ ॥

टीका—स्नान करके राम सीता और लक्ष्मण उस गोदावरी तीर से अपने आश्रम को गये ॥ १ ॥ आश्रम में जाकर लक्ष्मण सहित राम प्रातः करणीय कर्म करके बाहर शाला में आया ॥ २ ॥ वहां बैठकर जब राम बात चीत कररहे थे, तो एक राक्षसी अचानक आई ॥ ३ ॥ वह शूर्पणखा नाम रावण राक्षस की बहिन निकट आ देवतुल्य राम को देखती भई ॥ ४ ॥ जिस (राम) का चेहरा चमकता है, भुजा विशाल हैं, पद्मपत्र की तरह विशाल नेत्र हैं, जो गजेन्द्र की गतिवाला है, जटा मण्डल को धारण किये है ॥ ५ ॥

मूल—सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम्। राममिन्दीवरश्यामं

कंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ६ ॥ शक्रेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता ।
सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥ ७ ॥ विशालाक्षं विरूपाक्षी
सुकेशं ताम्रमूर्धजा । प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना ॥ ८ ॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी । न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता
प्रियमप्रियदर्शना ॥ ९ ॥ शरीरजसमाविष्टा राक्षसी राममब्रवीत् ।
जटातापसवेषेण सभार्यः शरचापधृक् ॥ १० ॥ आगतस्त्वमिमं देशं
कथं राक्षससेवितम् । किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥११॥

टीका—सुकुमार है, बडे दिलवाला है, राजा के चिन्हों से युक्त है,
नील कमल की तरह श्याम है, काम के तुल्य कान्तिवाला है,
॥ ६ ॥ उस इन्द्रतुल्य सुन्दर मुखवाले राम को दुर्मुखवाली, पतले
पेटवाले को बडे पेटवाली, विशाल नेत्रोंवाले को विरूप नेत्रोंवाली,
सुन्दर केशोंवाले को लाल केशोंवाली, प्रियरूप को कुरूपा,
सुन्दर स्वरवाले को भयङ्कर स्वरवाली, तरुण को दारुण वृद्धा,
सरल को कुटिल बोलने वाली, धर्माचार वाले को अधर्माचारवाली,
प्रिय को अप्रिय दर्शनवाली, देखकर राक्षसी काम से मोहित हो
गई ॥ ७, ८, ९, ॥ काम से आविष्ट हुई राक्षसी राम से बोली,
तपस्वी वेष से जटा धारण किये, और साथ ही धनुष बाण
धारण किये सहित स्त्री के ॥ १० ॥ कैसे आप राक्षसों से
सेवित इस देश में आए हैं, आपके आने का क्या अभिप्राय है,
मुझे आप ठीक २ कहने योग्य हो ॥ ११ ॥

मूल—एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पणख्या परन्तपः । ऋजुबुद्धितया
सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १२ ॥ आसीद्दशरथो नाम राजा त्रिदश-
विक्रमः । तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥ १३ ॥ भ्रातायं
लक्ष्मणो नाम यवीयान्मामनुव्रतः । इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति
विश्रुता ॥ १४ ॥ नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः ।

धर्मार्थं धर्मकांक्षी च वनं वस्तुमिहागतः ॥ १५ ॥ त्वां तु वेदितु-मिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा । साब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता ॥ १६ ॥ अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी । अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयङ्करा ॥ १७ ॥ रावणो नाम मे भ्राता यदि ते श्रोत्रमागतः । प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १८ ॥ विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः । प्रख्यातवीर्यौ च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ ॥ १९ ॥ तानहं समतिक्रान्ता राम त्वापूर्वदर्शनात् । समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥ २० ॥ अहं प्रभावसंपन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी । चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि ॥ २१ ॥

टीका—राक्षसी शूर्पणखा से ऐसे कहा हुआ परन्तप राम सरल बुद्धि होने के हेतु सब कुछ कहने लगे ॥ १२ ॥ देवतुल्यपराक्रमी राजा दशरथ हुआ है, उसका मैं बडा पुत्र राम नाम से लोगों में प्रसिद्ध हूं ॥ १३ ॥ यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण मेरा साथी है, और यह विदेहराज की कन्या सीता नाम से विख्यात मेरी पत्नी है॥१४॥ मनुष्यों के स्वामी अपने पिता और अपनी माता की आज्ञा से नियम धारण किये धर्माभिलाषी हो धर्म के अर्थ वन में रहने को आया हूं ॥१५॥ अब तुझे जानना चाहता हूं तू किसकी कन्या है, कौन है, किसकी है । काम से पीडित वह राक्षसी सुनकर यह बचन बोली ॥१६॥ मैं शूर्पणखा नाम कामतुल्य रूपवाली राक्षसी अकेली सब के लिये भयङ्कर हुई बन में विचरती हूं ॥१७॥ रावण मेरा भाई है, जो आपने सुना होगा, और बढ़ी हुई नींदवाला महाबली कुम्भकर्ण (मेरा भाई है) ॥ १८ ॥ और धर्मात्मा विभीषण मेरा भाई है, किन्तु उसकी चेष्टा राक्षसों की सी नहीं और दो भाई मेरे और हैं, खर और दूषण, जिनकी रण में बहादुरी विख्यात है

॥१९॥ मैं (बल में) उन से भी बढकर हूं, हे राम तुझे अपूर्व देख कर हृदय के भाव से तुझे भर्ता बना तेरे पास आई हूं ॥ २० ॥ मैं बडी प्रभुतावाली हूं, मेरे बल की सब जगह पहुंच है, सो आप चिरकाल के लिये मेरे भर्ताबनें, सीता से आप क्या करेंगे ॥२१॥

सर्ग १४ (व० १८) शूर्पणखा का नाक कान काटना

मूल—तां तु शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम् । स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम । त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता ॥२॥ अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान्प्रियदर्शनः । श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ ३ ॥ एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम । असंपन्ना वरारोहे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥ ४ ॥ इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता । विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ५ ॥ अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी । मया सह सुखं सर्वान्दण्डकान्विचरिष्यसि ॥६॥ एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या वाक्यकोविदः । ततः शूर्पनखीं स्मित्वा लक्ष्मणो युक्तमब्रवीत् ॥७॥ कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि । आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी ॥ ८ ॥ इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी । मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासाविचक्षणा ॥९॥

टीका—काम की फांस से बंधी हुई उस स्वेच्छाचारिणी शूर्पनखा को राम मुस्कराकर स्पष्ट वाणी से बोला ॥१॥ हे भली मेरा विवाह हुआ हुआ है, यह मेरी प्यारी पत्नी है, और सपत्नी का होना तेरे जैसी स्त्रियों को बड़ा दुःख है॥२॥यह मेरा छोटा भाई शीलवान् प्रिय दर्शनवाला बिना स्त्री के है, यह तेरे इस रूप के योग्य भर्त्ता होगा ॥३॥ हे विशालाक्षि ! इस मेरेभाई को भर्त्ता बनाकर एकली सेवन कर जैसे सूर्य की प्रभा मेरु को ॥ ४ ॥ राम के ऐसा कहने पर काम से मोहित वह राक्षसी राम को छोडकर जल्दी लक्ष्मण से

बोली ॥५॥ तेरे इस रूप के सुन्दर शोभावाली मैं पत्नी होने योग्य हूं, मेरे साथ आप सुख से सारे दण्डक में विचरेंगे ॥ ६ ॥ राक्षसी ने जब ऐसे कहा, तो वाक्य के जाननेवाला लक्ष्मण मुस्कराकर शूर्पनखा से यह युक्त वचन बोला ॥ ७ ॥ कैसे मुझ दासकी भार्या होकर तू दासी बनना चाहती है, आर्य की ही तू हे विशालाक्षि छोटी भार्या बन ॥८॥ लक्ष्मण के ऐसा कहने पर वह भयंकर मूर्ति बडे पेटवाली परिहास को न समझकर सत्य मानती भई ॥ ९ ॥

मूल—सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परंतपम्।सीतया सह दुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता ॥१०॥ इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।वृद्धां भार्यामवष्टभ्य न त्वं मां बहु मन्यसे ॥ ११ ॥ अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम्। त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम् ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा । अभ्यगच्छत्सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव ॥ १३॥ तां मृत्युपाशप्रतिमा मापतन्तीं महाबलः । निगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १४ ॥

टीका—सीता के साथ पर्णशाला में बैठे हुए न दबने वाले शत्रुओंके तपानेवाले राम को काम से मोहित हुई बोली ॥ १० ॥ इस विरूपा असती, करालमूर्त्ति, बडे पेटवाली वृद्धा भार्या का आश्रय लेकर तू मेरा आदर नहीं करता है ॥ ११ ॥ आज इस मानुषी को तेरे देखते हुए खाजाऊंगी, और सपत्नी से रहित हुई तेरे साथ सुख से विचरूंगी ॥ १२ ॥ यह कहकर अङ्गारे के सदृश नेत्रोंवाली हिरण के बच्चे के तुल्य नेत्रोंवाली(सीता)की ओर क्रोध से दौडी जैसे बडी उल्का रोहिणी की ओर ॥ १३ ॥ मृत्यु की फांस के तुल्य आती हुई उसको कुपित हुआ महाबली राम रोककर लक्ष्मण से बोला

मूल—क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंचन । न कार्यः पश्य वैदेहीं

तपस्वी, ब्रह्मचारी, दशरथ के पुत्र दोनों भाई राम और लक्ष्मण हैं॥६॥ वहां उन दोनों के मध्य में युवती, रूपवती, सारे भूषणों से भूषित अच्छी कमर वाली नारी मैंने देखी है ॥ १७ ॥ उस स्त्री की खातिर दोनों ने मिलकर मुझे अनाथा की तरह इस अवस्था को प्राप्त किया है ॥ ८ ॥ अब मैं उस कुटिल वृत्तवाली के और उन दोनों दुष्टों के फेनसहित रुधिर को रण में पीना चाहती हूं॥ ९ ॥ यह मेरी पहली इच्छा तुझसे पूरी कीजाए, उसके और उन दोनों के रुधिर को मैं युद्ध में पिऊं ॥ १० ॥ उसके ऐसा कहने पर क्रुद्ध हुए खर ने यमतुल्य चौदह महाबली राक्षसों को आज्ञा दी॥११॥ कि उन दोनों को और उस दुर्वृत्त वाली नारी को मारकर वापिस आओ, यह मेरी बहिन उनका रुधिर पियेगी ॥१२॥ हे राक्षसो ! मेरी बहिन का यह अभीष्ट मनोरथ है, जाओ और अपने तेज से उन दोनों को मारकर इसके इस मनोरथ को शीघ्र सम्पादन करो ॥ १३ ॥ उस से आज्ञा दिये हुए वह चौदह राक्षस वायु से प्रेरे हुए मेघों की तरह उसके साथ वहां गये ॥

सर्ग १६ (व० २०) उन चौदह राक्षसों का मारा जाना

मूल—ततः शूर्पणखा घोरा राघवाश्रममागता।राक्षसानाचचक्षे तौ भ्रातरौ सह सीतया ॥१॥ तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतांस्तांश्च राक्षसान् । अब्रवीद् भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥२॥ मुहूर्तं भव सौमित्रे सीतायाः प्रत्यनन्तरः । इमानस्या वधिष्यामि पदवी-मागतानिह॥३॥वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः । तथेति लक्ष्मणो वाक्यं राघवस्य प्रपूजयन् ॥ ४ ॥ राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम् । चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्र-वीत् ॥५॥+फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ । वसन्तौ दण्डकारण्ये किमर्थमुपहिंसथ ॥ ६ ॥+तिष्ठतैवात्र संतुष्टा नोपावर्तित

तुमर्हथ। यदि प्राणैरिहार्थो वो निवर्तध्वं निशाचराः ॥ ७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश । ऊचुर्वाचं सुसंक्रुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः ॥ ८ ॥ क्रोधमुत्पाद्य नो भर्त्तुः खरस्य सुमहात्मनः । त्वमेव हास्यसे प्राणान्सद्योऽस्माभिर्हतो युधि ॥ ९ ॥ का हि ते शक्तिरेकस्य बहूनां रणमूर्धनि । अस्माकमग्रतः स्थातुं किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥ १० ॥ इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश । उद्यतायुधानिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः॥ ११ ॥ चिक्षिपुस्तानि शूलानि राघवं प्रति दुर्जयम । तानि शूलानि काकुत्स्थः समस्तानि चतुर्दश॥ १२ ॥ तावद्भिरेव चिच्छेद शरैः काञ्चनभूषितैः । गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुद्दिश्य राक्षसान् ॥ १३ ॥ मुमोच राघवो बाणान्वज्रानिव शतक्रतुः । ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिरप्लुताः ॥ १४ ॥ विनिष्पेतुस्तदा भूमौ वल्मीकादिव पन्नगाः । तैर्भग्नहृदया भूमौ भिन्नमूला इव द्रुमाः ॥ १५ ॥ निपेतुः शोणितस्नाता विकृता विगतासवः । तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा राक्षसी क्रोधमूर्छिता ॥ १६ ॥ उपगम्य खरं सा तु किंचित्संशुष्कशोणिता । पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव वल्लरी ॥ १७ ॥

टीका—तब उस घोर शूर्पणखा ने राम के आश्रम में आकर सीता समेत वह दोनों भाई दिखलाये॥१॥श्रीमान् राम उस (शूर्पणखा)को और उन राक्षसों को आया देखकर चमकते हुए तेजवाले भाई लक्ष्मण से बोला ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण थोड़ी देर सीता की रखवाली कर, मैं इनको यहां मारूंगा, जो इसके मार्ग पर आये हैं ॥ ३ ॥ अपने आपको जानने वाले राम के वाक्य को सुनकर लक्ष्मण ने तथास्तु कहकर राम के वचन का आदर किया ॥ ४ ॥ और उधर धर्मात्मा राम सुवर्ण से भूषित बड़े धनुष में चिल्ला चढ़ाकर उन राक्षसों से बोला ॥ ५ ॥ हम दोनों फल मूल के खाने वाले

तपस्वी ब्रह्मचारी दण्डक वन में रहते हैं, किसलिये हमें तंग करते हो ॥ ६ ॥ यहीं संतोष करके ठहर जाओ, मेरे निकट मत आओ। यदि प्राणों से आपको प्रयोजन है, तो हे राक्षसो वापिस लौट जाओ ॥ ७ ॥ उसके वचन को सुनकर ब्राह्मणों के विरोधी शूल हाथों में लिये वह चौदह राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध हुए यह वचन बोले ॥ ८ ॥ हमारे स्वामी महात्मा खर का क्रोध उत्पन्न करके तूही हमसे युद्ध में मारा हुआ जल्दी प्राणों को छोड़ेगा ॥ ॥ ९ ॥तुझ अकेले की हम बहुतों के सामने खड़ा होने की भी क्या शक्ति है, क्या फिर रण में युद्ध करने की ॥ १० ॥ यह कहकर क्रुद्ध हुए वह चौदह राक्षस शूल और तलवार उठाकर राम की ओर दौड़े ॥ ११ ॥ दुर्जय राघव की ओर उन्होंने अपने शूल फैंके, राम ने उन चौदह शूलों को ॥ १२ ॥ सुवर्ण से भूषित उतने ही तीरों से काट दिया, और धनुष को पकड़कर खींचकर राक्षसों को लक्ष्य रखकर ॥ १३ ॥ चौदह बाण छोड़े, जैसे इन्द्र वज्र छोड़ता है, वह बांबी से निकले काले नागों की तरह वेग से राक्षसों की छातियों को फोड़कर रुधिर से लिबड़े हुए भूमि पर गिरे, जब उनके हृदय विंध गये, तो वह कटे हुए वृक्षों की तरह भूमि पर गिर पड़े॥ १४, १५ ॥ लहू से न्हाए गये, विकृत होगए, और उनके प्राण निकल गये। उनको पृथिवी पर गिरा हुआ देखकर क्रोध से मूर्च्छित हुई राक्षसी ॥१६॥ खर के पास आई, उसका लहू सूख गया था वह पीड़ित हुई बेल की तरह पृथिवी पर गिर पड़ी ॥१७॥

सर्ग १७ [व० २१] शूर्पणखा का खर को उत्तेजना देना

मूल—स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां पुनः। उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम् ॥ १ ॥ मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसाः पिशिताशनाः। त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः ॥ २ ॥

भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः । हन्यमाना न हन्यन्ते न न कुर्युर्वचो मम ॥ ३ ॥ किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः । हा नाथेति विनदन्ती सर्पवच्चेष्टसे क्षितौ ॥ ४ ॥ इत्येवमुक्त्वा दुर्धर्षा खरेण परिसान्त्विता । विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥ ५ ॥ प्रेषिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश । निहन्तुं राघवं घोरं मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम् ॥ ६ ॥ तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा क्षणेनैव महाजवान् । रामस्य च महत्कर्म महांस्त्रासोऽभवन्मम ॥७॥ सास्मि भीता समुद्विग्ना विषण्णा च निशाचर । शरणं त्वां पुनः प्राप्ता सर्वतो भयदर्शिनी॥ ८ ॥ एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः । ये च मे पनवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः ॥ ९ ॥ मयि ते यद्यनुक्रोशो यदि रक्षःसु तेषु च । रामेण यदि शक्तिस्ते तेजो वास्ति निशाचर ॥ १० ॥ दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम् । यदि राममामित्रघ्नं न त्वमद्य बधिष्यसि ॥ ११ ॥ तव चैवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा । मानुषौ तौ न शक्नोषि हन्तुं वै रामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्य वासस्ते कीदृशास्त्विह । रामतेजोभिभूतो हि त्वं क्षिप्रं विनशिष्यसि ॥ १३ ॥

टीका—शूर्पणखा को क्रोध से फिर गिरा हुआ देखकर (अपने कुल के) अनर्थ के लिये आई उसको स्पष्ट वाणी से खर बोला ॥ १ ॥ मैंने तो अब वह रुधिर पीने वाले शूरवीर राक्षस तेरे प्रिय के लिये भेजे थे, जो कि भक्तिवाले, अनुराग वाले, मेरे सदा हिती थे, जो शत्रुओं से मारे जाते हुए भी न मरें, और यह भी नहीं, कि मेरा बचन न करें, फिर तू किसलिये रोती है ॥ २, ३ ॥ यह क्या ? मैं सुनना चाहता हूं वह कारण, जिसके लिये तू फिर हा नाथ इस प्रकार रोती हुई सांप की तरह पृथिवी पर लोट रही है ॥ ४ ॥ खर ने जब ऐसे कहा और तसल्ली दी, तो वह दुर्धर्षा नेत्रों से आंसुओं

को पोंछकर भाई खर से बोली ॥ ५ ॥ तूनें मेरे प्रिय के अर्थ लक्ष्मण समेत भयानक राम को मारने के लिये चौदह शूरवीर राक्षस भेजे थे॥६॥पर उन बड़े वेगवालों को थोड़ी ही देर में भूमि पर गिरा हुआ देखकर और राम का महत्कर्म देखकर मुझे बड़ा भय हुआ है ॥७॥सो मैं डरी हुई कांपती हुई निराश हुई हे निशाचर ! सब ओर से भय देखती हुई फिर तेरी शरण में आई हूं॥८॥ रुधिर पीने वाले राक्षस जो मेरे साथ गये थे, उनको तीक्ष्ण बाणों से राम ने पृथिवी पर मार गिराया है ॥ ९ ॥ सो यदि मेरे ऊपर दया है, यदि उन राक्षसों के ऊपर दया है,और हे निशाचर!यदि राम के साथ तेरी शक्ति है, और तुझमें तेज है॥ १० ॥ तो दण्डक वन में स्थान पाए इस राक्षसों के कांटे को हटा,यदि शत्रुओं के मारने वाले राम को तू अब नहीं मारेगा ॥ ११ ॥ तो मैं जिसकी लज्जा जाचुकी है, तेरे सामने प्राणों को त्याग दूंगी।यदि उन मानुष राम लक्ष्मण को मार नहीं सकेगा ॥ १२ ॥ तो तपहीन थोड़ी शक्ति वाले तुझ का यहां वास कैसा, राम के तेज से दबा हुआ तू जल्दी नष्ट होजायगा ॥ १३ ॥

सर्ग १८ [व० २२] सेनापति खर की चढ़ाई

मूल—एवमाधर्षितः शूरः शूर्पनख्या खरस्ततः । उवाच रक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः ॥ १ ॥ तवापमानप्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम । न शक्यते धारयितुं लवणाम्भ इवोल्वणम् ॥ २ ॥ न रामं गणये वीर्यवान्मानुषं क्षीणजीवितम् । आत्मदुश्चरितैः प्राणान्हतो योऽद्य विमोक्ष्यते ॥ ३ ॥बाष्पः संधार्यतामेष संभ्रमश्च विमुच्यताम्। अहं रामं सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥ संप्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्च्युतम् । प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरं रक्षसां वरम् ॥ ५ ॥ तथा परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः । अब्रवीद्दूषणं

नाम खरं सेनापतिं तदा॥६॥उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च। शरांश्च चित्रान्खड्गांश्च शक्तीश्च विविधाः शिताः ॥७॥ अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम्। वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविद ॥८॥ इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम्। सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः ॥९॥ ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नं किंकिणवरभूषितम् सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह खरस्तदा ॥१०॥ ततस्तद्राक्षसं सैन्यंघोरचर्मायुधध्वजम् निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम् ॥११॥

टीका——इस प्रकार शूर्पणखा से दबाया हुआ तीक्ष्ण खर राक्षसों के मध्य में तीक्ष्ण तर वचन बोला ॥१४॥ तेरे अपमानसे उत्पन्न हुआ मुझे अतुल क्रोध है, जिसको मैं व्रण पर डाले हुए लवणयुक्त जल की तरह धार नहीं सक्ता ॥२॥ मैं बल के हेतु से राम को कोई चीज़ नहीं गिनता, उसका जीवन क्षीण होचुका, अपने दुश्चरितों से मारा हुआ वह आज प्राणों को छोड़ेगा ॥३॥ आंसुओं को रोक और घबराहट छोड़, मैं राम को उसके भाई समेत यम के घर पहुंचाता हूं ॥ ४ ॥खर के मुख से निकले वचन को सुनकर प्रसन्न हुई वह मूर्खता से राक्षसवर भाई की फिर प्रशंसा करती भई ॥५॥ पहले उस से कठोर कहा हुआ और फिर प्रशंसा किया हुआ खर सेनापति दूषण से बोला ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! जल्दी लाओ मेरा रथ, धनुष, बाण, विचित्र तलवारें और अनेक प्रकार की तीक्ष्ण बरछियें ॥७॥ हे रण में निपुण ! मैं उस दुर्विनीत राम के बध के लिये पुलस्त्यवंशी (राक्षस) महात्माओं के आगे चलना चाहता हूं ॥ ८ ॥ उसके ऐसा कहने पर दूषण ने विचित्र घोड़ों से युक्त सूर्य तुल्य (चमकता हुआ) महारथ उपस्थित हुआ बतलाया ॥९ ॥ ध्वजा और तलवार से युक्त सुन्दर घंटियों से भूषित, अच्छे

घोड़ों से युक्त रथ पर खर क्रोध के साथ आरूढ़ हुआ ॥ १० ॥ तब राक्षसों की बड़ी सेना भयंकर ढाल तलवार और ध्वजा से युक्त हुई, बड़ी गर्जती हुई बड़े वेग के साथ जनस्थानसे निकली ११

सर्ग १९[व० २४] राम की युद्ध के लिये तय्यारी

मूल—तानुत्पातन्महाघोरान्रमोदृष्ट्वात्यर्षणः । प्रजानामहितान्दृष्ट्वा वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥ अग्रता नो भयं प्राप्तं संशयो जीवितस्य च । संप्रहारस्तु सुमहान्भविष्यति न संशयः ॥ २ ॥ अयमाख्याति मे बाहुः स्फुरमाणो मुहुर्मुहुः । सन्निकर्षे तु नःशूर जयं शत्रोः पराजयम् ॥ ३ ॥ सुप्रभं च प्रसन्नं च तव वक्त्रं हि लक्ष्यते ॥ ४॥+ उद्यमानां हि युद्धार्थं येषां भवति लक्ष्मण । निष्प्रभं वदनं तेषां भवत्यायुः परिक्षयः ॥ ५ ॥ रक्षसां नर्दतां घोषः श्रूयतेऽयं महाध्वनिः । आहतानां च भेरीणां राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥ ६ ॥ अनागतविधानं तु कर्त्तव्यं शुभमिच्छता ।आपदा शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता॥७॥ तस्माद् गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः । गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम् ॥ ८ ॥ प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया। शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम्॥ ९ ॥ त्वं हि शूरश्च बलवान्हन्या एतान्न संशयः। स्वयं निहन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान् ॥ १० ॥ एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया । शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयात् ॥ ११ ॥ तस्मिन्प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सह सीतया । हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत् ॥ १२ ॥ स तेनाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः । बभूव रामस्तिमिरे महानाग्निरिवोत्थितः ॥ १३ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः । समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकांक्षया ॥ १४ ॥ ऋषयश्च महात्मानो लोके ब्रह्मर्षिसत्तमाः । समेत्य चोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः ॥ १५ ॥ स्वस्ति गोब्राह्मणानां च लोकानां

चैव संस्थिताः । जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान्रजनीचरान्॥१६॥ इति संभाष्यमाणे तु देवगन्धर्वचारणैः । अनीकं यातुधानानां समन्तात्प्रत्यपद्यत ॥१७॥ रामोऽपि चारयंश्चक्षुः सर्वतो रणपण्डितः। ददर्श खरसैन्यं तद्युद्धायाभिमुखो गतः ॥ १८॥ वितत्य च धनुर्भीमं तूण्याश्चोद्धृत्य सायकान् क्रोधमाहारयत्तीव्रं वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥१९॥ दुष्प्रेक्ष्यश्च क्रुद्धो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् । तं दृष्ट्वा तेजसाऽऽव्यथन्वनदेवताः ॥२०॥

उन महाघोर उत्पातों को देखकर अत्यन्त न सहारनेवाला राम प्रजा का अहित देखकर लक्ष्मण से यह वाक्य बोला ॥ १ ॥ आगे हमारे भय आया है, जीवित का भी संशय प्राप्त हुआ है, बहुत भारी संप्रहार (मरन मारन) होगा, कोई सन्देह नहीं ॥२॥ किन्तु यह (दाईं) मेरी भुजा बार २ फड़कती हुई हे वीर ! निकट ही हमारा जय और शत्रु का पराजय बतलाती है ॥३॥ तेरा मुख भी कान्तिवाला और प्रसन्न प्रतीत होता है ॥४॥ युद्ध के लिये तय्यार हुए जिनका हे लक्ष्मण ! मुख कान्ति-हीन होजाता है, उनकी आयु क्षीण होजाती है ॥५॥ गर्जते हुए राक्षसों की ध्वनि और क्रूर कर्मा राक्षसों से ताड़न की हुई भेरियों की यह महाध्वनि सुनाई देती है ॥६॥ आपदा की शंका होने पर अपना सुख चाहते हुए बुद्धिमान् को आने वाली बात का इलाज करना चाहिये ॥७॥ इसलिये तू धनुषबाण हाथ में ले सीता को साथ लेकर वृक्षों से ढकी हुई पर्वत की दुर्गम कन्दरा में चलाजा ॥ ८ ॥ मैं नहीं चाहता कि तू मेरे इस वचन का प्रत्युत्तर देवे मेरे पाओं की शपथ है जा वत्स देर न कर ॥९॥ तू शूरवीर है, बलवान् है, इनको मार सकता है, इसमें सन्देह नहीं, पर मैं स्वयं ही इन सारे राक्षसों को मारना चाहता हूं ॥ १ ॥ राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण धनुषाण लेकर सीता सहित दुर्गम गुफा में चला गया ॥११॥

सीता समेत लक्ष्मण जब गुफा में प्रविष्ट होगया, तब अहो ठीक हुआ यह कहकर रामने कवच पहना ॥ १२ ॥ उस अग्नितुल्य कवच से सजा हुआ राम अन्धेरे में उठे महान् अग्नि की तरह चमका ॥ १३ ॥ तब गन्धर्वों सहित देवता, और चारणों सहित सिद्ध महात्मा युद्ध दर्शन की आकांक्षा से इकट्ठ हुए ॥ १४ ॥ महात्मा ऋषि और लोक में पुण्यकर्मा ब्रह्मर्षिवर इकट्ठ होकर परस्पर कहने लगे ॥ १५ ॥ स्वस्ति हो गौ ब्राह्मणों को और सब लोकों को, युद्ध में राघव पौलस्त्यवंशी राक्षसों पर विजय लाभ करे ॥१६॥ देव गन्धर्व और चारणों के ऐसा कहते हुए राक्षसों की सेना इर्द गिर्द आपहुंची ॥ १७ ॥ रणपण्डित राम ने भी सब ओर आंख को घुमाया, खर की सेना देखी और युद्ध के लिये सन्मुख गया ॥ १८ ॥ भयङ्कर धनुष को खींचकर और भत्थे से तीर निकालकर सारे राक्षसों के वध के लिये तीव्र क्रोध को प्राप्त हुआ ॥१९॥ क्रुद्ध हुआ जलती हुई प्रलयाग्नि की तरह दुष्प्रेक्ष्य (जिस की ओर आंख उठाई न जासके) होगया, ऐसे तेज से आविष्ट उसे देखकर बनदेवता कांप उठे ॥ २० ॥

सर्ग २० (ब० २१) राम और राक्षसों का युद्ध

मूल—अवष्टब्धधनु रामं क्रुद्धं तं रिपुघातिनम् । ददर्शाश्रममागम्य खरः सह पुरःसरैः ॥ १ ॥ ते रामं शरवर्षाणि व्यसृजन्रक्षसां गणाः। शैलेन्द्रमिव धाराभिर्वर्षमाणा महाघनाः ॥ २ ॥ तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः । प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योघानिव सागरः ॥ ३ ॥ स तैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे । रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः ॥ ४ ॥ स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः । बभूव रामः सन्ध्याभ्रैर्दिवाकर इवावृतः ॥ ५ ॥ ततो रामस्तु संक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः । ससर्ज निशितान्बाणाञ्छतशोऽथ

सहस्रशः ॥ ६ ॥ दुर्वारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे । आददु रक्षसां प्राणान्पाशाः कालकृता इव ॥ ७ ॥ चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैव रामबाणा गुणच्युताः । पदातीन्समरे हत्वा अनयद्यमसादनम् ॥८॥ तत्सैन्यं विविधैर्बाणैरर्दितं मर्मभेदिभिः । न रामेण सुखं लेभे शुष्कं वनमिवाग्निना ॥ ९ ॥+नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं शरोत्तमान् विकर्षमाणं पश्यन्ति राक्षसास्ते शरार्दिताः ॥ १० ॥ युगपत्पतनैश्च युगपच्च हतैर्भृशम् । युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाभवत् ॥११ निहताः पतिताः क्षीणाश्छिन्ना भिन्ना विदारिताः । तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते राक्षसास्ते सहस्रशः ॥१२॥ तान्दृष्ट्वा निहतान्सर्वे राक्षसाः परमातुराः । न तत्र चलितुं शक्ता रामं परपुरंजयम् ॥१३॥

टीका—उधर आगे चलने वाले योद्धों के साथ खर आश्रम में आके पहुंचा, और शत्रुओं के मारने वाले उस राम को धनुष थामे हुए क्रुद्ध हुए देखा ॥१॥ वह राक्षसों के समूह राम पर तीरों की वर्षा करते भए, जैसे महामेघ पर्वत पर वर्षा की धारें बरसाते हैं ॥ २ ॥ राक्षसों से छोड़े हुए उन शस्त्रों को राम ने तीरों से स्वीकार किया, जैसे सागर नादियों के प्रवाहों को स्वीकार करता है ॥ २ ॥राम उन घोर प्रहारों से क्षत होकर भी चमकते हुए बहुत वज्रों से पर्वत की तरह जरा न हिला ॥ ५ ॥ विंधकर सारे अंगों पर रुधिर की बून्दें पड़ने से राम सन्ध्या के बादलों से घिरे सूर्य की तरह होगया ॥६॥ तब क्रुद्ध हुए रामने धनुष को गोल करके (ज़ोर से खींचकर) अनेकानेक तीव्र बाण छोड़े ॥ ७॥ जिनको रणमें न कोई रोक सकता है, न कोई सह सक्ता है जो काल की फांसों के तुल्य है, और काल की फांसी के तुल्य ही उन्होंने राक्षसों के प्राण लेलिये॥८॥ गुण (गोशे) से निकले हुए बाणों से राम ने राक्षसों को छिन्नभिन्न कर दिया, और प्यादों को युद्ध में मार मारकर यम के द्वार पहुं-

चाया ॥ ९ ॥मर्मों के फोड़ने वाले विविध बाणों द्वारा रामसे पीड़ित हुई वह सेना अग्नि से सूखे वन की तरह सुख न लेती भई ॥१०॥ वाणों से तंग आए हुए वह राक्षस राम को न भयंकर बाण लेता हुआ न छोड़ता हुआ देखते हैं, किन्तु धनुष को ही खींचता हुआ देखते हैं ॥११॥ एक साथ गिरते हुए, एक साथ मरे हुए, एक साथ गिरे हुए बहुत से राक्षसों से मैदान भर गया ॥१२॥ मरे हुए गिरे हुए, अन्त के सांस लेते हुए, कटे हुए फटे हुए, विदीर्ण हुए, अनेक राक्षस वहां वहां दीखने लगे ॥१३॥ उनको मरा हुआ देखकर परम पीड़ित हुए शेष सारे राक्षस वहां शत्रुओं के किलों को तोड़ने वाले राम के सम्मुख होने के अशक्त होगए ॥१४॥

सर्ग २१ (व० २६) राक्षसों की सेना का मारा जाना

मूल—दूषणस्तु स्वकं सैन्य हन्यमानं विलोक्य च । शरैरशनिकल्पैस्तं राघवं समवारयत् ॥१॥ ततो राम स्तुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महाद्धनुः । चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरा हयान् ॥२॥ हत्वा चाश्वान्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः । शिरो जहार तद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि ॥३॥ स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । जग्राह गिरिशृङ्गाभं परिघं लोमहर्षणम् ॥४॥ तं महोरगसंकाशं प्रगृह्य परिघं रणे । दूषणोऽभ्यपतद्रामं क्रूरकर्मा निशाचरः ॥५॥ तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य च राघवः । द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ ॥६॥ भ्रष्टस्तस्य महाकायः पपात रणमूर्धनि । परिघाश्छिन्नहस्तस्य शक्रध्वज इवागतः ॥७॥ दृष्ट्वा तं पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे । साधु साध्विति काकुत्स्थं सर्वभूतान्यपूजयन् ॥८॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धास्त्रयः सेनाग्रयायिनः । संहत्याभ्यद्रवन्रामं मृत्युपाशावपाशिताः ॥९॥ महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी च महाबलः । महाकपालो विपुलं शूलमुद्यम्य राक्षसः ॥१०॥ स्थूलाक्षः पट्टिशं गृह्य प्रमाथी च पर-

श्वघम् । दृष्ट्वैवापततस्तांस्तु राघवः सायकैः शितैः ॥११॥ तीक्ष्णाग्रैः प्रतिजग्राह संप्राप्तानतिथीनिव । महाकपालस्य शिरश्चिच्छेद रघुनन्दनः ॥ १२ ॥ असंख्येयस्तु बाणौघैः प्रममाथ प्रमाथिनम् । स्थूलाक्षस्याक्षिणी स्थूले पूरयामास सायकैः ॥१३॥ तत पावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितः। जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः ॥१४॥ तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोणितोक्षितैः । विस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशैरिव ॥१५॥ तत्क्षणे तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम् । बभूव निरयप्रख्यं मांसशोणितकर्दमम् ॥ १६॥ चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना ॥१७॥ तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः । राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः ॥१८॥ शेषा हता महावीर्या राक्षसा रणमूर्धनि घोरा दुर्विषहाः सर्वे लक्ष्मणस्याग्रजेन ते ॥

टीका—दूषण अपनी सेना को मरता हुआ देखकर बिजली तुल्य बाणों से राम को घेरता भया ॥ १॥ इससे अधिक क्रोध में आए वीर राम ने रण में क्षुर से इसके बड़े धनुष को काट डाला, और चार तीक्ष्ण बाणों से इसके चारों घोड़ों को मारकर अर्धचन्द्र से सारथिका सिर उड़ा दिया और तीन बाण उसकी छाती में घोंप दिये ॥ २, ३ ॥ धनुष के कट जाने से घोड़ों के और सारथि के मरने से रथहीन हुए, दूषण ने रोंगटे खड़े करने वाले पर्वत के शिखर तुल्य परिघ को पकड़ा ॥ ४॥ बड़े नाग के तुल्य उस परिघ को उठाकर क्रूरकर्मा राक्षस दूषण राम की ओर झपटा ॥५॥ झपटते हुए उस दूषण की हाथों के भूषण युक्त दोनों भुजाओं को दो बाणों से राम ने काट डाला ॥ ६ ॥ फिसला हुआ उसका बड़ा देह रणभूमि में गिर पड़ा, और कटा हुआ परिघ इन्द्रध्वज की तरह आगे जापड़ा ॥ ७ ॥ रण में भूमि पर

गिरे हुए दूषणको देखकर सब लोगों ने राम को शाबाश २ से आदर किया ॥ ८ ॥ इस अवसर में क्रुद्ध हुए सेना के अग्रगामी तीन राक्षस मृत्यु के फांस से फांसे हुए मिलकर राम की ओर दौड़े ॥ ९ ॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष, और महाबली प्रमाथी । महाकपाल राक्षस तो बड़े शूल को उठाकर ॥ १० ॥ स्थूलाक्ष पट्टिश को लेकर और प्रमाथी परश्वध को लेकर । उनको आता हुआ देख कर राम ने तीक्ष्ण नोकों वाले तीक्ष्ण वाणों से प्राप्त हुए अतिथियों की तरह स्वीकार किया, और झटाझट छूटते हुए असंख्य वाणसमूहों से महाकपाल का सिर काट डाला, प्रमाथी को चूर चूर कर दिया, और स्थूलाक्ष के स्थूल नेत्रों को तीरों से भर दिया ॥ ११, १२, १३ ॥ तदनन्तर तेजस्वी राम ने सुवर्ण और वज्र से भूषित अग्नि तुल्य तीरों से उस सेना से बचे हुओं को मार डाला ॥ १४ ॥ संग्राम में गिरे हुए, खुले बालों वाले, रुधिर लिपड़े हुए वह राक्षस इस तरह भूमि पर साथ २ बिछ गए जैसे महावेदी में कुशा बिछाई जाती है ॥ १५॥ उस समय वह घोर बन जिस में राक्षस मरे पड़े हैं मांस और रुधिर के कीचड़ से नरक तुल्य होगया ॥ १६ ॥ चौदह सहस्त्र * भीमकर्मा राक्षस अकेले प्यादे मानुष राम ने मार डाले ॥ १७ ॥ उस सारी सेना में से महारथी खर और त्रिशिरा राक्षस शेष रहे और शत्रुओं के मारने वाला राम ॥ १८ ॥ बाकी के सारे बड़ी शक्तिवाले, भयंकर, न सहारे जाने वाले राक्षस सारे के सारे लक्ष्मण के बड़े भाई ने रणभूमि में मारडाले ॥ १९ ॥

---

* यह अत्युक्ति हो, वा सहस्त्र से कुछ और अभिप्राय होसक्ता है, पर इस का इस तरह जगह २ वर्णन है, कि प्रक्षिप्त नहीं ठहर सक्ता. सर्ग ३२ के पहले श्लोक में इस संख्या को इस तरह दुहराया है, कि उस को छोड़ने से सम्बन्ध ही टूट जाता है

सर्ग २२ (व० २७) त्रिशिरा राक्षस का मारा जाना

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः । राक्षसस्त्रिशिरा नाम संनिपत्येदमब्रवीत् ॥१॥ मां नियोजय विक्रान्त त्वं निवर्तस्व साहसात् । पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम् ॥ २ ॥ अहं वास्य रणे मृत्युरेष वा समरे मम । विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तं प्राश्निको भव ॥ ३ ॥ प्रहृष्टो वा हते रामे जनस्थानं प्रयास्यसि । मयि वा निहते रामं संयुगाय प्रयास्यसि ॥ ४ ॥ खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः । गच्छ युद्धेत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ ॥ ५ ॥ आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः । धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन्सायकाञ्शितान् ॥ ६ ॥ स संप्रहारस्तुमुलो रामत्रिशिरसोस्तदा । संबभूवातिबलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव ॥ ७॥ चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः संनतपर्वभिः । न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः ॥ ८ ॥ अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थे न्यपातयत् ।रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम् ॥ ९ ॥ ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम् । चिच्छेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः ॥ १० ॥

टीका—तब राम के अभिमुख जाते हुए खर को सेनापति त्रिशिरा राक्षस कूदकर यह वचन बोला॥ १॥ मुझे विक्रमशाली को नियुक्त करें, आप इस साहस से हटे रहें, आप देखें महाबाहु राम को युद्ध में गिराया हुआ ॥ २ ॥ संग्राम में मैं इसकी मृत्यु हूंगा, वा यह मेरी मृत्यु होगा, आप अपने रण के उत्साह को रोककर थोड़ी देर मध्यस्थ रहिये ॥ ३ ॥ या तो रामके मरने पर प्रसन्न हुए आप जनस्थान को जाएंगे, वा मेरे मरने पर युद्ध के लिये राम की ओर जायेंगे ४ मृत्यु के लालच से जब त्रिशिरा ने खर को प्रसन्न किया,तो उसने "जा, युद्ध कर" ऐसी अनुज्ञा देदी, और वह राम के अभिमुख गया ॥ ५ ॥ आते हुए त्रिशिरा राक्षस को देखकर राम ने तीक्ष्ण बाणों को उठाकर धनुष से उसको स्वीकार किया ॥ ६ ॥ शेर

और हाथी की तरह आते बढ़े। राम और त्रिशिरा का वह प्रबल युद्ध हुआ। तेजस्वी रामने झुके हुए पर्वोंवाले चार बाणों से उसके चारों घोड़े गिरा दिए॥ ८॥ आठ बाणों से सारथि को रथ की पीठ पर गिरा दिया, और एक बाण से उसकी ऊंची ध्वजा को काट डाला॥ ९॥ तब निकम्मे हुए रथ से उछलते हुए उस राक्षस को राम ने बाणों से हृदय में बींध दिया और वह प्राणहीन होगया॥

सर्ग० २३ (व० २८) खर और राम का युद्ध।

मूल—निहतं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह। आससाद खरो रामं नमुचिर्वासवं यथा॥ १॥ विकृष्य बलवच्चापं नाराचान्रक्तभोजनान्। खराश्चिक्षेप रामाय क्रुद्धानाशीविषानिव॥ २॥ स सर्वांश्च दिशो बाणैः प्रदिशश्च महारथः। पूरयामास तं दृष्ट्वा रामोऽपि सुमहद्धनुः॥३ तद्बभूव शितैर्बाणैः खररामविसर्जितैः। पर्याकाशमनाकाशं सर्वतः शरसंकुलम्॥ ४॥ ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महता खरः। आससादाथ तं रामं पतङ्ग इव पावकम्॥ ५॥ ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः। खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन्हस्तलाघवम्॥६॥ ततो गम्भीरनिर्ह्रादं रामः शत्रुनिबर्हणः। चकारान्ताय स रिपोः सज्यमन्यन्महद्धनुः॥ ७॥ सुमहद्वैष्णवं यत्तदतिसृष्टं महर्षिणा। वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावत॥ ८॥ ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः। चिच्छेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम्॥ ९॥ रथस्य युगमेकेन चतुर्भिः शबलान्हयान्। षष्ठेन च शिरः संख्ये चिच्छेद खरसारथेः॥ १०॥ प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः। गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा॥ ११॥

टीका—रण में दूषण को मरा देखकर और त्रिशिरा को भी मरा देखकर, खर राम की ओर बढ़ा जैसे नमुचि इन्द्र की ओर॥ १॥ जोर के साथ धनुष को खींचकर क्रुद्ध हुए खर ने नागों की तरह

रुधिर पीने वाले बाण राम की ओर फेंके ॥ २ ॥ उस महारथी ने बाणों से सारी दिशा और कोणें भरदीं, उसको देखकर राम ने भी धनुष को पूर्ण किया ॥ ३ ॥ खर और राम से छोड़े हुए उन तीक्ष्ण बाणों से आकाश बिना अवकाश के होगया, क्योंकि सारा बाणों से भर गया ॥ ४ ॥ तब सूर्य तुल्य बड़े रथ से खर राम के और निकट आया, जैसे पतंग अग्नि के ॥ ५ ॥ और हाथ की तेजी दिखलाते हुए उसने महात्मा राम के बाण सहित धनुष को मुट्ठी की जगह से काट डाला॥६॥तब शत्रुओं के मारनेवाले राम ने शत्रु के नाश के लिये सिंहनाद किया और दूसरा तय्यार धनुष उठा लिया ॥ ७ ॥ वह बहुत बड़ा धनुष जो महर्षि(अगस्त्य)ने दिया था, उस श्रेष्ठ धनुष को उठाकर खर की ओर दौड़ा॥ ८॥ और क्रुद्ध हुए ने सोने के नोक वाले तीक्ष्ण पर्वों वाले बाणों से युद्ध में खर की ध्वजा काट डाली ॥ ९ ॥ एक से रथ की जुआ, चार से चितकबरे घोड़े और छठे बाण से युद्ध में खर के सारथि का शिर काट डाला ॥ १० ॥ तब खर जिसका धनुष और रथ टूट गए हैं, घोड़े और सारथि मारा गया है, वह हाथ में गदा उठाकर उछलकर भूमि पर जा खड़ा हुआ ॥ ११ ॥

सर्ग० २४(व० २९)राम और खर के उत्तेजक वचन।

मूल—खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम्। मृदुपूर्वं महातेजाः पुरुषं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥+उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत् । त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति ॥ २ ॥ कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर । तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम् ॥ ३ ॥ वसतो दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः । किं तु हत्वा महाभागान्फलं प्राप्स्यसि राक्षस ॥ ४ ॥ + न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः । ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्ण-

मूला इव द्रुमाः॥५॥+ अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः। घोरं पर्यागते काले द्रुमाः पुष्पमिवार्तवम् ॥ ६ ॥ न चिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम्। सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ॥ ७ ॥ पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम्। अहमासादितो राजा प्राणान्हन्तुं निशाचर ॥ ८ ॥ ये त्वया दण्डकारण्ये भक्षिता धर्मचारिणः। तानद्य निहतः संख्ये ससैन्योऽनुगमिष्यसि९ एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः। प्रत्युवाच ततो रामं प्रहसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १० ॥ प्राकृतान्राक्षसान्हत्वा युद्धे दशरथात्मज। आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि ॥ ११ ॥ विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः। कथयन्ति न ते किंचित्तेजसा चातिगर्विताः ॥ १२ ॥ सर्वथा तु लघुत्वं ते कत्थतेन विदर्शितम्। सुवर्णप्रतिरूपेण तप्तेनेव कुशाग्निना ॥ १३ ॥ न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम्। पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान्रणे तव१४ कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि न त्वहम्। अस्तं प्राप्नोति सविता युद्धविघ्नस्ततो भवेत् ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा परमक्रुद्धः स गदां परमाङ्गदाम्। खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा ॥ १६ ॥ तामापतन्तीं महतीं मृत्युपाशोपमां गदाम्। अन्तरिक्षगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः ॥ १७ ॥

टीका—रथ से हीन हुए और हाथ में गदा लेकर खड़े हुए खर को महातेजस्वी राम नर्मी से यह कठोर वाक्य बोला ॥ १ ॥ जीवों का तंग करनेवाला, दुर्जन, पाप कर्म कारी, पुरुष चाहे तीनों लोकों का मालिक भी हो, तब भी वह नहीं ठहर सक्ता है ॥ २ ॥ हे निशाचर वह जो लोक विरुद्ध कर्म करता है, ऐसे क्रूर को सामने आए दुष्ट सर्प की तरह सभी लोग मारते हैं ॥ ३ ॥ दण्डक बन में रहते हुए महाभाग धर्मचारी तपस्वियों को मारकर हे राक्षस तू

किस फल को प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ पाप कर्मोंवाले, लोक में निन्द-नीय क्रूर पुरुष (पिछले पुण्यके प्रभाव से) ऐश्वर्य को पाकर भी कटी हुई जड़वाले वृक्ष की तरह देर तक नहीं ठहरते हैं ॥ ५ ॥ करनेवाला समय आने पर पाप कर्म के भयंकर फल को अवश्य पाता है, जैसे वृक्ष आर्त्तव (मौसमी) फूल को ॥ ६ ॥ हे निशा-चर विष से मिले हुए अन्नों के खाने की तरह पाप कर्मों का फल लोक में जल्दी मिल जाता है॥ ७ ॥ भयंकर पाप करने वालों और लोक का अप्रिय चाहने वालोंके प्राणों को हनन करने के लिये मैं राजा बनकर आया हूं ॥ ८ ॥ दण्डकारण्य में तूने जो धर्मचारी भक्षण किये हैं, आज युद्ध में मरा हुआ तू सेना समेत उनके पीछे जाएगा ॥ ९ ॥ राम के ऐसा कहने पर क्रोध से उसके नेत्र लाल होगए, और क्रोध से मूर्च्छित हुआ हंसकर राम से यह वचन बोला ॥ १० ॥ हे दशरथ के पुत्र प्राकृत राक्षसों को युद्ध में मारकर कैसे आपही अपनी प्रशंसा करता है, जो तू प्रशंसा के योग्य नहीं है ॥ ११ जो मनुजवर प्राक्रमवाले वा बलवाले हुआ करते हैं, वह तेज से अभिमानी पुरुष अपनी श्लाघा कुछ नहीं किया करते ॥ १२ ॥ सर्वथा अपनी श्लाघा से तूने अपना हलकापन दिखलाया है, जैसे नकली सोना आग से तपकर (अपना हलकापन दिखलाता है) ॥ १३ ॥ किन्तु तू मुझे हाथ में गदा लेकर खड़ा हुआ नहीं देखता है, हाथ में गदा लेकर मैं अकेला तेरे प्राण हरने को समर्थ हूं १४ हां मुझे बहुत कुछ कहना है, पर मैं तुझे कहता नहीं हूं, क्योंकि सूर्य अस्त होता है, इससे युद्ध में विघ्न होगा ॥ १५ ॥ यह कह-कर अतीव क्रोध के साथ खर ने उत्तम कड़ेवाली गदा जलती हुई बिजली की तरह राम की ओर फैंकी ॥ १६ ॥ मृत्यु की फांस के तुल्य आती हुई उस बड़ी गदा को राम ने अन्तरिक्ष में ही अनेक तीरों से टुकड़े २ कर दिया ॥ १७ ॥

सर्ग० २५ (व० ३०) खर का वध ।

मूल—जातस्वेदस्ततो रामो रोषरक्तान्तलोचनः । निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम् ॥ १ ॥ विकलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे । मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥ २ ॥ तमापतन्तं संक्रुद्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम्। अपासर्पद्द्वित्रिपदं किंचित्त्वरितविक्रमः ॥ ३ ॥ ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम् । खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् ॥ ४ ॥ स तद्दत्तं मघवता सुरराजेन धीमता । संदधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति ॥ ५ ॥ स विमुक्तो महाबाणो निर्घातसमनिःस्वनः । रामेण धनुरायम्य खरस्योरसि चापतत् ॥ ६ ॥ स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना । रुद्रेणेव विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यथान्धकः॥ ७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः । दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः ॥ ८ ॥ रामस्योपरि संहृष्टा ववर्षुर्विस्मितास्तदा ॥ ९ ॥ ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः । सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन् ॥ १० ॥ तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज। स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया । गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमे सुखी ॥ १२ ॥ ततो रामस्तु विजयी पूज्यमानो महर्षिभिः । प्रविवेशाश्रमं वीरो लक्ष्मणेनाभिपूजितः ॥ १३ ॥ तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम् । बभूव हृष्टा वैदेही भर्त्तारं परिषस्वजे ॥ १४ ॥ मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणाहतान् । रामं चैवाव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा ॥ १५ ॥

टीका—तब राम पसीनोपसीना होगया, क्रोध से नेत्र लाल होगए, और रण में अनेक बाणों से खर को बींध दिया ॥ १ ॥ युद्ध में रामके बाणों ने खर को बेकल कर दिया वह रुधिर के गन्ध से मत्त हुआ बेग से राम की ओर ही दौड़ा ॥ २ ॥ क्रोध से भरे हुए

रुधिर से लिबड़े हुए खर को अपने ऊपर पड़ता हुआ देखकर अस्त्रों में निपुण राम जल्दी पाओं उठाकर दो तीन पाद पीछे हट गया ॥ ३ ॥ तब युद्ध में खर के बध के लिये राम ने ब्रह्मदण्ड के सदृश अग्नि तुल्य एक और बाण लिया ॥ ४ ॥ वह बाण जो कि देवराज बुद्धिमान् इन्द्र ने (अगस्त्य द्वारा) दिया था, धर्मात्मा राम ने उस बाण को जोड़ा और खर के प्रति छोड़ा ॥ ५ ॥ धनुष को खींचकर राम से छोड़ा हुआ वह महाबाण पर्वत फटने के तुल्य ध्वनि करता हुआ खर की छाती में जाधसा ॥ ६ ॥ बाण की अग्निसे दग्ध होता हुआ खर भूमि पर गिर पड़ा, जैसे श्वेतारण्य में रुद्र से दग्ध किया हुआ अन्धकासुर गिरा था. ॥ ७ ॥ इस अवसर में चारणों के सहित देवताओं ने दुन्दुभियों पर चोट दी, और प्रसन्न हुए, और आश्चर्य हुए चारों ओर से राम के ऊपर पुष्पों की वर्षा की ॥८,९ ॥ तब राज ऋषि और परमऋषि अगस्त्य समेत सभी बड़े प्रसन्न हो, राम का सन्मान करके यह वचन बोले ॥ १० ॥ हे दशरथसुत यह आपने हमारा कार्य किया है, अब महर्षि जन दण्डक में अपना धर्म आचरण करेंगे ॥ ११ ॥ इस अवसर में बीर लक्ष्मण सीता सहित पर्वत के किले से निकलकर आनन्द से आश्रम में प्रविष्ट हुआ १२ तब महर्षियों से पूज्यमान विजयी वीर राम लक्ष्मण से पूजित हुआ आश्रम में प्रविष्ट हुआ ॥ १३ ॥ उस अपने भर्ता शत्रुओं के मारने वाले, और महर्षियों के सुख लाने वाले को देखकर वैदेही बड़ी प्रसन्न हो, उसे आलिंगन करती भई ॥ १४ ॥ परम मोद से युक्त हुई जनकात्मजा राक्षसगणों को मरा हुआ और राम को अक्षत देखकर सन्तुष्ट हुई ॥ १५ ॥

सर्ग० २६ (व० ३२) शूर्पणखा का रावण के पास जाना।

मूल—ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश ॥ हतान्येकेन रामेण

रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ १॥ दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसं रणे। जगाम परमोद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम् ॥ २ ॥ सा ददर्श विमानाग्रे रावणं दीप्ततेजसम् ।उपोपविष्टं सचिवैर्मरुद्भिरिव वासवम्॥३॥ आसीनं सूर्यसंकाशे काञ्चने परमासने । रुक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४ ॥ विशालवक्षसं वीरं राजलक्षण लक्षितम् । सुभुजं शुक्लदशनं महास्यं पर्वतोपमम्॥ ५ ॥ अक्षोभ्याणां समुद्राणां क्षोभणं क्षिप्रकारिणम् । क्षेप्तारं पर्वताग्राणां सुराणां च प्रमर्दनम्॥६ पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् । तक्षकस्य प्रियां भार्यां पराजित्य जहार यः ॥ ७ ॥ कैलासपर्वतं गत्वा विजित्य नरवाहनम् । विमानं पुष्पकं तस्य कामगं वै जहार यः ॥ ८ ॥ राक्षसी भ्रातरं क्रूरं सा ददर्श महाबलम् । तं दिव्यवस्त्राभरणं दिव्यमाल्योपशोभितम् ॥ ९ ॥ उपगम्याब्रवीद्वाक्यं राक्षसी भयविह्वला ।रावणं शत्रुहन्तारं मन्त्रिभिः परिवारितम् ॥ १० ॥

टीका—तब शूर्पणखा भयंकर कर्मों वाले चौदह सहस्र राक्षसों को अकेले राम से मारा गया देखकर, तथा दूषण, खर और त्रिशिरा को रण में मरा हुआ देखकर अत्यन्त भयभीत हुई रावण से पालित लंकाको गई ॥ १, २ ॥ उसने ऊंचे महल के ऊपर चमकते हुए तेजवाले रावण को देखा, जिसके आस पास मन्त्री बैठे हुए हैं जैसे देवता इन्द्र के ॥ ३ ॥ सूर्य की तरह चमकते हुए सोने के परम आसन के ऊपर बैठा हुआ, जैसे सोनेकी वादि में प्रचुर घी से जलता हुआ अग्नि हो ॥ ४ ॥ विशाल छाती वाला,वीर, राजलक्षणोंसे युक्त, सुन्दर भुजावाला, श्वेत दांतोंवाला, बड़े मुख वाला, पर्वत के तुल्य ॥ ५ ॥ अत्यन्त गम्भीर समुद्रों को जिसने हिलचल में डाला हुआ है, जो बड़ी तेजी से काम करनेवाला है, जो पर्वत की चोटियों को फैंक सकता है, और देवताओं को जिसने मल

डाला हुआ है ॥ ६ ॥ जिसने भोगवतीपुरी में जाकर वासुकि को जीतकर तक्षक की प्यारी पत्नी को हर लिया हुआ है ॥ ७ ॥ और कैलास पर्वत पर जाकर कुबेर को जीतकर जिसने अपनी इच्छानुसार चलने वाला पुष्पक विमान छीना हुआ है ॥ ८ ॥ ऐसे उस अपने महाबली भयंकर भाई को दिव्य अस्त्र पहने हुए और दिव्य माला से शोभायमान हुआ उस राक्षसी ने देखा ॥९॥ भय से घबराई हुई राक्षसी मन्त्रियों के मध्य में बैठे हुए, शत्रुओं के मारने वाले रावण के पास जाकर यह वचन बोली ॥ १० ॥

सर्ग २७(व० ३३) शूर्पणखा की रावण को उत्तेजना।

मूल—प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरंकुशः। समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे॥ १ ॥+स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः। स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यैर्विनश्यति ॥ २ ॥+ येन रक्षन्ति विषयमस्वाधीनं नराधिपाः। ते न वृद्ध्या प्रकाशन्ते गिरयः सागरे यथा ॥ ३ ॥येषां चाराश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर। अस्वाधीना नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः ॥ ४ ॥+यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः। चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः ॥ ५ ॥ अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्राकृतैः सचिवैर्युतम्। स्वजनं च यतः स्थानं निहतं नावबुध्यसे ॥ ६ ॥ चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्। हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः ॥ ७ ॥ ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः। धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकारिणा ॥ ८ ॥ त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च राक्षस। विषये स्वे समुत्पन्नं यद्भयं नावबुध्यसे ॥ ९ ॥ नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च। क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भवेदिह ॥१०॥ शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यं लोष्ठैरपि च पांसुभिः। न तु स्थानात्परिभ्रष्टैःकार्यं स्याद्वसुधाधिपैः ॥ ११ ॥ उपभुक्तं यथा वासः स्रजो वा मृदिता

यथा। एवं राज्यात्परिभ्रष्टः समर्थोऽपि निरर्थकः ॥ १२ ॥+अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः। कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ॥ १३ ॥ + नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा। व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः॥ १४ ॥ त्वं तु रावण दुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः। यस्य तेऽविदितश्चारै रक्षसां सुमहान्वधः॥१५॥

टीका—विषय भोगों में प्रमत्त हुआ, स्वच्छाचारी निरंकुश हुआ, तू उत्पन्न हुए घोर भय को नहीं जानता है जो जानना चाहिये था, ॥१॥ जो राजा ठीक समय पर स्वयं अपने कार्यों का अनुष्ठान नहीं करता है, वह राज्य समेत और उन कार्यों समेत विनष्ट होजाता है ॥२॥ जो राजा अपने अधीन न रखकर देश की रक्षा नहीं करते हैं, वह अपनी वृद्धि से प्रकाशते नहीं हैं, जैसे समुद्र के पर्वत ॥ ३ ॥ हे जीतने वालों में श्रेष्ठ! जिन राजों के गुप्तचर, कोश और नीति अपने अधीन नहीं हैं, वह साधारण मनुष्यों के तुल्य हैं ॥४॥ जिस लिये गुप्तचरों द्वारा राजा दूर की सारी बातों को जाना करते हैं, इसलिये राजा दीर्घचक्षुः (लम्बी आंख वाले) कहलाते हैं ॥५॥ पर मैं जानती हूं, कि आप के इर्द गिर्द सब साधारण से मन्त्री हैं और आपने गुप्तचर (काम पर) नहीं लगाए हुए, जिसलिये आपको मालूम नहीं कि आपके जन मारे गये हैं ॥६॥ भयंकर कर्मोंवाले चौदह सहस्र राक्षस और दूषण समेत खर को अकेले राम ने मार डाला है ॥७॥ शांति से काम करने वाले राम ने ऋषियों को अभय दे दिया है और दण्डक में अपन चन कर दिया है,और जनस्थान को दबा लिया है ॥८॥ पर आप हे राक्षस लालच में पड़े हुए प्रमोद में आए हुए पराधीन हो रहे हैं, जो अपने देश में उत्पन्न हुए भय को नहीं जानते हैं।९।जो राजा अपने कर्तव्यों को पूरा नहीं करता,और भयों में डरता नहीं, वह जल्दी राज्य से गिरा हुआ दीन हुआ तृणों

के तुल्य होजाता है ॥ १० ॥लोगों को सूखे काठ से भी काम होता है, मट्टीके ढेलों और धूल से भी काम होता है, पर स्थान से भ्रष्ट हुए राजाओं से कोई काम नहीं होता है ॥ ११ ॥ जैसे भोगा हुआ वस्त्र वा मली हुई माला, इस तरह राज्य से भ्रष्ट हुआ राजा समर्थ भी निरर्थक होता है ॥ १२ ॥ जो राजा प्रमाद से रहित, सबका जानने वाला (सब तर्फ से बाखबर) जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और धर्मशील होता है, वह राजा देर तक स्थित रहता है ॥ १३ ॥नेत्रों से सोया हुआ भी जो नीति की आंख से जागता है, जिसका क्रोध और प्रसाद फलवाला है,वह राजा लोगों से पूजा जाता है ॥१४ ॥ पर तू हे रावण इन गुणों से शून्य बुद्धिहीन है,जिसको राक्षसों का बहुत बड़ा वध गुप्तचरों द्वारा विदित नहीं हुआ ॥ १५ ॥

सर्ग २८ (व० ३४) शूर्पणखा से सारा वृतान्त सुनना।

मूल—ततः शूर्पणखां दृष्ट्वा ब्रुवतीं परुषं वचः। अमात्यमध्ये संक्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः ॥ १ ॥ कश्च रामः कथंवीर्यः किंरूपः किंपराक्रमः। किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टश्च सुदुस्तरम् ॥ २ ॥ आयुधं किं च रामस्य येन ते राक्षसा हताः। खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥ तत्त्वं ब्रूहि मनोज्ञाङ्गि केन त्वं च विरूपिता। इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्छिता ॥ ४ ॥ ततो रामं यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे। दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ॥५॥ कंदर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः। नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं महाबलम् ॥ ६ ॥ न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे। हन्यमानं तु तत्सैन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः ॥ ७ ॥ भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः। अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ ८ ॥ रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना। धर्मपत्नी प्रिया नित्यं भर्तुः प्रियहिते रता ॥ ९ ॥ तप्तकाञ्चनवर्णाभा रक्ततु-

ङ्गनखी शुभा । सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा ॥१०॥ नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी। तथारूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥११॥सा सुशीला वपुःश्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि।तवानुरूपा भार्या सा त्वं च तस्याः पतिर्वरः ॥१२ ॥ भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम् । विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज ॥१३॥

टीका—तब कठोर वचन बोलती हुई शूर्पणखा को देखकर मन्त्रियों के मध्य में स्थित क्रुद्ध हुआ रावण पूछने लगा॥१॥ कौन वह राम है उसकी क्या शक्ति क्या रूप क्या पराक्रम है, और किस प्रयोजन से बड़े दुस्तर दण्डकवन में प्रविष्ट हुआ है ॥ २ ॥ राम का वह क्या अस्त्र है, जिससे उसने युद्ध में इतने राक्षसों को खर त्रिशिरा और दूषण को मार डाला है ॥ ३ ॥ और किसने तुझे ऐसा विरूप किया है, हे सुन्दरांगि सारा ठीक बतला, राक्षसेन्द्र से यह सुनकर क्रोध से मूर्च्छित हुई राक्षसी ॥ ४ ॥ राम को यथायोग्य बतलाने लगी—लम्बी भुजोंवाला, विशाल नेत्रोंवाला,चीर और काले हिरण की छाल पहने हुए ॥ ५ ॥ काम तुल्य रूपवाला, राम-दशरथ का पुत्र है, महाबली राम को संग्राम में मैं भयंकर बाण पकड़ता वा छोड़ता, वा धनुष को खींचता हुआ नहीं देखती हूं, किन्तु बाणों की वर्षा से सेना को मरता हुआ देखती हूं॥ ६, ७ ॥ और लक्ष्मण नाम इसका भाई महातेजस्वी गुणों से तुल्य पराक्रमवाला,अनुरक्त, भक्त, और बड़ा शक्तिमान् है ॥ ८ ॥और राम की प्यारी धर्मपत्नी, विशाल नेत्रोंवाली, पूर्ण चन्द्र के सदृश मुखवाली, सदा भर्ता के प्रियहित में रत है ॥ ९ ॥ तपे हुए सोने के रंग के तुल्य चमकती हुई, लाल ऊंचे नखों वाली, शुभ पतली कमरवाली, सीता नाम विदेह की कन्या है ॥ १० ॥ ऐसे रूपवाली नारी मैंने पृथिवीतल पर न कभी कोई देवी व गन्धर्वी न यक्षी न किन्नरी देखी है ॥ ११॥

वह सुशीला शरीर से सराहनीय, रूप से पृथिवी में अप्रतिम (बेमिसल) तेरी योग्य पत्नी होने योग्य है और तू उसका चुना हुआ पति होने योग्य है ॥१२॥ उस सुन्दरमुखी को तेरी पत्नी के अर्थ जब मैं लाने को उद्यत हुई, तब हे महाभुज क्रूर लक्ष्मण ने मुझे बेरूपकिया है।१३।

सर्ग २९ (व० ३५, ३६) रावण का मारीच से सहायता मांगना।

मूल—ततः शूर्पणखावाक्यं तच्छ्रुत्वारोमहर्षणम् । सचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम ह ॥ १ ॥ यानशालां ततो गत्वा प्रच्छन्नं राक्षसाधिपः । सूतं संचोदयामास रथः संयुज्यतामिति॥२॥एवमुक्तः क्षणेनैव सारथिर्लघुविक्रमः । रथं संयोजयामास तस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ३ ॥ कामगं रथमास्थाय काञ्चनं रत्नभूषितम् । राक्षसाधिपतिः श्रीमान्ययौ नदनदीपतिम् ॥ ४ ॥ तं तु गत्वा परं पारं समुद्रस्य नदीपतेः । ददर्शाश्रममेकान्ते पुण्ये रम्ये वनान्तरे ॥ ५ ॥ तत्र कृष्णाजिनधरं जटामण्डलधारिणम् । ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम् ॥ ६ ॥ स रावणः समागम्य विधिवत्तेन रक्षसा । ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥ ७ ॥ मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः । आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान्हि परमा गतिः८ चतुर्दशसहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम् । निहतानि शरैर्दीप्तैर्मानुषेण पदातिना ॥ ९ ॥ खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः । हत्वा त्रिशिरसं चापि निर्भया दण्डकाः कृताः ॥ १० ॥ पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः।स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः ॥ ११ ॥ अशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः। त्यक्तधर्मा त्वधर्मात्मा भूतानामहिते रतः ॥ १२ ॥ येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमास्थाय केवलम् । कर्णनासापहारेण भगिनी मे विरूपिता ॥ १३ ॥ अस्य भार्यां जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम्। आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव ॥ १४ ॥ वीर्ये युद्धे च दर्पे च

नह्यस्ति सदृशस्तव । उपायतो महान्शूरो महामायाविशारदः॥१५॥ एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर । शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम ॥ १६ ॥ सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः । आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर ॥ १७ ॥ त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम् । गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति ॥ १८ ॥ ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम्।निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव ॥ १९ ॥ ततः पश्चात्सुखं रामे भार्याहरणकर्शिते । विश्रब्धं प्रहरिष्यामि कृतार्थेनान्तरात्मना॥२०॥

टीका—तब शूर्पणखा के उस रोंगटे खड़े करनेवाले वाक्य को सुनकर क्या करना है इस बात को समझकर मन्त्रियों को आज्ञा देकर वहां से चला ॥ १ ॥ वहां से राक्षसाधिपति चुपचाप यानशाला में गया, और सारथि को कहा, कि रथ जोड़ो॥ २ ॥ आज्ञा पाते ही शीघ्रकारी सारथि ने झटपट उसका अभिमत उत्तम रथ जोड़ दिया ॥ ३ ॥ उस अपनी इच्छा से चलनेवाले रत्नों से भूषित,सुनहरी रथ पर चढ़कर श्रीमान् राक्षसाधिपति नदनदियों के पति (समुद्र) की ओर गया ॥ ४ ॥ नदियों के पति समुद्र के परले पार जाकर उसने बन के मध्य एकान्त पवित्र रम्यदेश में एक आश्रम देखा ॥ ५ ॥ उसमें इसने काला मृगान पहने हुए जटासमूहधारी नियताहारी मारीच राक्षस को देखा ॥ ६ ॥ वह रावण यथाविधि उस राक्षस से मिल करके इसके पीछे वाक्यनिपुण रावण यह वाक्य बोला ॥ ७ ॥ तात मारीच मेरे वचन को सुनिये मैं इस समय आर्त हूं, और मुझ आर्त का आप परम सहारा हैं ॥८॥ हे तात उग्र तेजवाले चौदह सहस्र राक्षस एक पैदल मनुष्य ने अपने जलते हुए तीरों से मार डाले हैं ॥ ९ ॥ युद्ध में उसने खर को मार डाला है, दूषण को भी गिरा दिया है, और त्रि-

शिरा को भी मारकर दण्डक वन में हमारा भय हटा दिया है ॥ १० ॥ जो क्रुद्ध हुए पिता द्वारा पत्नी समेत घर से निकाला हुआ है, वह क्षीण हुए जीवनवाला वह क्षत्रियों को बट्टा लगानेवाला राम इस सेना का मारनेवाला है ॥ ११ ॥ वह मर्यादा का त्यागी, क्रूर, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी, अजितेन्द्रिय, धर्म को त्यागे हुए अधर्मात्मा भूतों के अहित में रत ॥ १२ ॥ जिसने बिना वैर के केवल बल के सहारे (न कि धर्म के सहारे) कान और नाक के काटने से मेरी बहिन को विरूपित किया है ॥ १३ ॥ इसकी पत्नी सीता जो देवकन्या के तुल्य है—उसको बलके साथ जनस्थान से लाऊंगा, इसमें आप मेरे सहायक हों ॥ १४ ॥ वीर्य में, युद्ध में दर्प में आप के कोई बराबर नहीं है, उपायों में आप बड़े शूर हैं, महामाया में चतुर हैं ॥ १५ ॥ इसलिये हे निशाचर मैं आप के पास आया हूं, सुनिये वह काम, मेरी सहायता में जो मेरे कहने से आप को करना है ॥ १६ ॥ आप चान्दी की बिन्दुओं से चितकबरे सुनहरी हरिण बनकर राम के आश्रम में सीता के सन्मुख विचरें ॥ १७ ॥ मृगरूपी आपको देखकर सीता निःसन्देह भर्त्ता को और लक्ष्मण को कहेगी, कि इसे पकड़िये ॥ १८ ॥ तब उन दोनों के अलग होने पर शून्य में सीता को बिना रोक आराम से हर लूंगा, जैसे राहु चन्द्र की प्रभा को हर लेता है ॥ १९ ॥ इसके पीछे भार्या के हरे जाने से दुर्बल हुए राम पर अपने कृतार्थ मन के साथ सुख से निःशंक प्रहार करूंगा ॥ २० ॥

सर्ग ३० [व० ३१] मारीच का सीताहरण से रोकना ।

मूल—तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः।प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम्॥ १ ॥+सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ २ ॥

न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यगुणोन्नतम् । अयुक्तचारश्चपलो महेन्द्र-वरुणोपमम् ॥ ३ ॥ अपि स्वस्ति भवेत्तात सर्वेषामपि रक्षसाम् । अपि रामो न संक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान् ॥ ४ ॥ अपि ते जीवितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा । अपि सीतानिमित्तं च न भवेद्व्यसनं महत् ॥५॥+अपि त्वामीश्वरं प्राप्य कामवृत्तं निरंकुशम्। न विनश्येत्पुरी लंका त्वया सह सराक्षसा ॥ ६ ॥ + न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथंचन । न लुब्धो न च दुःशीलो न चक्षत्रि-पांसनः ॥७॥+ न च धर्मगुणैर्हीनः कौसल्यानन्दवर्धनः । न च तीक्ष्णो हि भूतानां सर्वभूतहिते रतः ॥ ८ ॥ वञ्चितं पितरं दृष्ट्वा कैकेय्या सत्यवादिनम् । करिष्यामीति धर्मात्मा ततः प्रव्रजितो वनम् ॥ ९ ॥ + कैकेय्याः प्रियकामार्थं पितुर्दशरथस्य च । हित्वा राज्यं च भोगांश्च प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ १० ॥+न रामःकर्कशस्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः । अनृतं न श्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ११ ॥+ रामो विग्रहवान्धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः ॥ १२॥कथं नु तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा । इच्छसे प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः ॥ १३ ॥+न सा धर्षयितुं शक्या मैथिल्योजस्विनःप्रिया। दीप्तस्येव हुताशस्य शिखा सीता सुमध्यमा ॥ १४ ॥ परदाराभि-मर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत् । भव स्वदारानिरतः स्वकुलं रक्ष राक्षसान् ॥ १५ ॥ अहं तस्य प्रभावज्ञो न युद्धं तेन ते क्षमम् । बलिं वा नमुचिं वापि हन्याद्धि रघुनन्दनः ॥ १६ ॥

टीका—राक्षसेन्द्र के इस वाक्य को सुनकर वाक्यविशारद महा तेजस्वी मारीच राक्षसेश्वर से बोला ॥१॥ हे राजन् सदा प्रिय बोलनेवाले पुरुष सुलभ हैं, पर अप्रिय पथ्य का कहने सुननेवाला, दुर्लभ होता है ॥२॥ निःसन्देह आप राम को बड़े बल और गुणों से उन्नत, महेन्द्र और वरुण के तुल्य नहीं जानते हैं, आपने गुप्तचर

नहीं लगाए हुए केवल चञ्चल हैं ॥३॥ हे तात सारे राक्षसों को स्वस्ति हो, न हो कि राम क्रुद्ध हुआ लोक को बिना राक्षसों के करदे ॥४॥ न हो, जनकात्मजा आपके जीवन के अन्त के लिये उत्पन्न हुई हो, न हो, कि सीता के निमित्त भारी विपत्ति आपड़े ॥५॥ न हो, कि आप कामी निरंकुश राजा को पाकर लंकापुरी आपके समेत और राक्षसों के समेत नष्ट होजाए ॥६॥ राम न पिता से त्यागा हुआ है न किसी तरह बेमर्याद है, न लोभी है न दुःशील है न क्षत्रियों पर बट्टा लगानेवाला है ॥७॥ वह कौसल्य का आनन्द बढ़ानेवाले, न धर्म के गुणों से हीन है, न तीक्ष्ण है, अपितु सब भूतों के हित में रत है ॥८॥ कैकेयी से ठगे हुए पिता को देखकर उस धर्मात्मा ने कहा, कि मैं पिता को सत्यवादी बनाऊंगा, इससे वह वन को निकला ॥९॥ कैकेयी की और पिता दशरथ की प्रिय कामना के लिये वह राज्य और भोगों को छोड़कर दण्डकवन में प्रविष्ट हुआ है ॥१०॥ हे तात राम न क्रूर है, न अविद्वान् है, न अजितेन्द्रिय है, कभी झूठ का नाम भी नहीं जानता, आप उसे ऐसा कहने योग्य नहीं है ॥११॥ राम मूर्त्तिमान् धर्म है, भला पुरुष है सच्चे पराक्रम वाला हैं ॥१२॥ तब कैसे सूर्य की प्रभा की तरह उसके अपने तेज से रक्षा की हुई जनकात्मजा को आप धक्के से हरना चाहते हैं ॥१३॥ वह उस ओजस्वी की प्यारी सुमध्यमा मैथिली सीता जलती हुई अग्नि की लाट की तरह छुई नहीं जा-सकती है ॥१४॥ परस्त्री पर बल दिखलाने से बढ़कर जगत् में पाप नहीं है, सो तू अपनी स्त्रियों में रत हो, अपने कुल और राक्षसों की रक्षा कर ॥१५॥ मैं उसके प्रभाव को जानता हूं, उससे आपको युद्ध उचित नहीं है, रघुनन्दन बालि को और नमुचि को मार सकता है ॥१६॥

सर्ग ३१ (व० ४०, ४१) रावण का उत्तर

मूल—मारीचस्य तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं च रावणः। उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम् ॥१॥ तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः। अब्रवीत्परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः ॥ २ ॥ दुष्कुलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते। वाक्यं निष्फलमत्यर्थं बीजमुप्तमिवोषरे ॥३॥ त्वद्वाक्यैर्नतु मां शक्यं भेत्तु रामस्य संयुगे। मूर्खस्य पापशीलस्य मानुषस्य विशेषतः ॥४॥ अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः। प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव संनिधौ ॥५॥ एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच विद्यते। न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥६॥ संपृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता। उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥७॥ एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि। राज्ञो विप्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥८॥ आज्ञप्तो रावणेनेत्थं प्रतिकूलं च राजवत्। अब्रवीत्परुषं वाक्यं निःशङ्को राक्षसाधिपम् ॥९॥ कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत्। केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः ॥१०॥ वध्याः खलु न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण। ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ॥११॥ राजमूलो हि धर्मश्च यशश्च जयतां वर। तस्मात् सर्वास्ववस्थासु रक्षितव्या नराधिपाः ॥१२॥ आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया। नैव त्वमपि नाहं वै नैव लङ्का न राक्षसाः ॥१३॥

टीका—मारीच के उस उचित युक्त वाक्य को सुनकर रावण ने स्वीकार नहीं किया, जैसे मरने की इच्छावाला औषध को (स्वीकार नहीं करता) ॥१॥ उस पथ्य हित के कहने वाले मारीच को काल से प्रेरा हुआ राक्षसाधिपति अयुक्त कठोर वाक्य बोला ॥२॥ हे दुष्कुल मारीच काकरी भूमि में बोए हुए बीज की तरह अयुक्त अर्थवाला अत्यन्त निष्फल वचन तुमने मुझे कहा है ॥३॥

तेरे वाक्य मुझे उस मूर्ख पापशील विशेषतः मानुष राम के साथ संग्राम से रोक नहीं सक्ते ॥४॥ अवश्य मैंने युद्ध में उस खर के घाती की प्राणों से प्यारी सीता तेरे सामने हरनी है ॥५॥ हे मारीच यह मेरे हृदय में निश्चित बुद्धि विद्यमान है, जिसको इन्द्र समेत देव दैत्य पलट नहीं सक्ते हैं ॥६॥ बुद्धिमान् मन्त्री जो अपनी वृद्धि चाहता है, उसको पूछने पर राजा के सामने हाथ जोड़ कर कहना चाहिये ॥७॥ यह मेरा कार्य अवश्य तुझे बल से भी करना होगा, राजा के प्रतिकूल स्थित हुआ कभी चैन नहीं पाता ॥८॥ रावण से इस प्रकार राजा की तरह प्रतिकूल आज्ञा दिया हुआ वह निःशंक राक्षसों के स्वामी से कठोर वक्य बोला ॥९॥ कौन पापी हे राजन् ! तेरे सुख को नहीं सहार सक्ता, किस ने तुझे यह उपाय से मृत्यु का द्वार उपदेश किया है ॥१०॥ हे रावण वध के योग्य तेरे मन्त्री क्यों नहीं मार दिये जाते, जो कुमार्ग पर चढ़े हुए तुझको सब प्रकार से रोक नहीं देते ॥११॥ राजमूलक ही हे जीतने वालों में श्रेष्ठ ! धर्म और यश होता है, इसलिये सारी अवस्थाओं में राजाओं की रक्षा करनी चाहिए ॥१२॥ यदि आप मेरे सहित सीता को आश्रम से लावेंगे, तो न आप, न मैं, लंका, न राक्षस रहेंगें ॥१३

सर्ग ३२ (व० ४२) मारीच का मृग बन कर विचरना

मूल—एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः । गच्छावेमित्यब्रवी-दीनो भयाद्रात्रिंचरप्रभोः ॥१॥ प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन स राक्षसः । परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत् ॥२॥ एतच्छौटीर्ययुक्तं ते मच्छन्दवशवर्तिनः । इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो हि राक्षसः ॥३॥ ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम् । आरुह्य ययतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममण्डलात् । ॥४॥ समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं

ततः। ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः ॥५॥ अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः काञ्चनभूषणात्। हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥६॥ एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम्। क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः ॥७॥ स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा। मृगो भूत्वाश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह ॥८॥ मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः। किंचिदत्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः ॥९॥ मधूकनिभपार्श्वश्च कंजकिंजल्कसंनिभः। वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः ॥१० इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः। क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ॥११॥ रौप्यैर्बिन्दुशतैश्चित्रं भूत्वा च प्रियनन्दनः। विटपीनां किसलयान्भक्षयन्विचचार ह ॥१२॥ रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम्। पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः ॥१३॥ विक्रीडंश्च पुनर्भूमौ पुनरेव निषीदति। आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ॥१४॥ समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः। उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश ॥१५॥ राक्षसः सोऽपि तान्वन्यान्मृगन्मृगवधे रतः। प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् ॥१६॥ तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना। कुसुमापचये व्यग्रा पादपानत्यवर्तत ॥१७॥ त वै रुचिरदन्तोष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम्। विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत ॥१८॥

टीका—रावण को ऐसा कठोर वाक्य कह करके फिर मारीच राक्षसराज के भय से दीन हुआ बोला अच्छा चलिये ॥१॥ इस वचन से वह राक्षस प्रसन्न होगया, और उसको जोर से कण्ठ लगा कर यह वचन बोला ॥२॥ यह तेरा मेरे आज्ञाकारी का अभिमान युक्त वचन है, अब तू मारीच है पहले कोई और राक्षस था ॥३॥ तब रावण और मारीच बिमान के तुल्य उस रथ पर चढ़ कर उस

आश्रम मे शीघ्र गए ॥ दण्डकवन में आकर मारीच के साथ राक्षसाधिपति रावण ने राम के आश्रम को देखा ॥५॥ तब सोने के भूषणों वाले उस रथ से उतरकर रावण, मारीच को हाथ से पकड़कर, यह वाक्य बोला ॥६॥ यह केलों से घिरा हुआ राम का आश्रम दीखता है, हे सखे जल्दी वह काम करो, जिसके लिये हम आए हैं ॥७॥ तब रावण के वचन को सुनकर वह मारीच राक्षस मृग बनकर राम के आश्रम के द्वार के निकट विचरने लगा ॥८॥ उत्तम नीलम जैसे सींगों के अग्र वाला, कहीं श्वेत और कहीं काली मुख की शोभावाला, कुछ ऊंची ग्रीवावाला, इन्द्रनील के सदृश पेटवाला ॥९॥ महुए के पुष्प के सदृश पसलियों वाला, पद्म के केसर तुल्य वर्णवाला, सब्ज मणि के तुल्य खुरों वाला, पतली जंघावाला, सुन्दर गठा हुआ ॥१०॥ इन्द्र धनुष के तुल्य वर्णवाली पूंछ से ऊंचा शोभायमान, एक क्षण में वह राक्षस परम शोभन मृग बन गया ॥११॥ चांदी के अनेक बिन्दुओं से विचित्र बना हुआ वह प्यारा और आनन्द देनेवाला वृक्षों की कोंपलों को भक्षण करता हुआ विचरने लगा ॥१२॥ राम के आश्रम के समीप यथासुख विचरने लगा, थोड़ी दूर त्वरा से जाकर फिर लौट आता है ॥१३॥ बार २ विविध क्रीड़ा करता हुआ फिर भूमि पर बैठ जाता है, आश्रम के द्वार पर आकर फिर मृगयूथों के पीछे चला जाता है ॥१४॥ दूसरे सारे वनचर मृग उसको देखकर पास आकर सूंघ कर दसों दिशाओं को भाग जाते हैं ॥१५॥ पर वह राक्षस मृगों के बध में प्रेम रखने वाला भी अपने भाव के ढका रखने के लिये उन जंगली मृगों को स्पर्श करता हुआ भी भक्षण नहीं करता है ॥१६॥ उसी समय शुभ नेत्रोंवाली वैदेही फूलों के तोड़ने में व्यग्र हुई कुछ

वृक्षों से आगे बढ़ी ॥१७॥ तो वहां उसने सुन्दर दांत और होठों वाला चांदी और अन्य धातुओं के तुल्य रोमों से युक्त उस (मृग) को बड़े स्नेह से देखा, और विस्मय से उसके नेत्र खिल गए ॥

सर्ग ४३ [व० ४३] सीता का मृग लानेके लिये राम को प्रेरणा

मूल—प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी । भर्तारमभि चक्रन्द लक्ष्मणं चैव सायुधम् ॥ १ ॥ आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते । आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज ॥ २ ॥ तावाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ । वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशतुर्मृगम् ॥३॥ शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव ॥४॥ एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता । उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना ॥५॥ आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः । आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥६॥ अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसंपच्च शोभना । मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे ॥७॥ यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव । आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति ॥८॥ समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः । अन्तःपुरे विभूषार्थो मृग एष भविष्यति ॥९॥ भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो । मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति ॥१०॥ जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः । अजिनं नरशार्दूल रुचिरं तु भविष्यति ॥ ॥११॥ निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि । शष्पवृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥१२॥ कोभितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः । उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः ॥१३॥ पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहामुल्लसितामिमाम् । रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ॥१४॥ कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् । नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥१५

एतस्य मृगरत्नस्य परार्ध्ये काञ्चनत्वचि। उपवेक्ष्यति वैदेही मया सह सुमध्यमा ॥१६॥ न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी। भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शेऽनेनेति मे मतिः ॥१७॥ यदि वाऽयं तथा यन्मां भवेद्वदसि लक्ष्मण। मायैषा राक्षसस्याति कर्तव्योऽस्य वधोमया म ॥१८॥ इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम्, । अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यथवा मृगम् ॥१९॥ त्वचा प्रधानया ह्येष मृगोऽद्य नभविष्यति। अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया ॥२०॥

टीका—और प्रसन्न हुई परम सुन्दर अङ्गोंवाली खरे सोने के तुल्य वर्णवाली वह सीता अपने भर्त्ता और लक्ष्मण को शस्त्र सहित (आने के लिये) पुकारती भई ॥१॥ बुला बुला कर फिर उस मृग को भली भान्ति देखती है, आओ आओ हे आर्यपुत्र ! छोटे भाई के साथ जल्दी आओ ॥२॥ वैदेही से बुलाए हुए वह दोनों राम लक्ष्मण उस देश को देखते हुए वहां मृग को देखते भए ॥३॥ उसे देखकर लक्ष्मण शंका करता हुआ यह वाक्य बोला, हे राघव इस प्रकार का रत्नों से विचित्र मृग नहीं होता है ॥ ४ ॥ लक्ष्मण के ऐसा कहते हुए बात काट कर सीता जिसकी बुद्धि हरी गई है, शुद्ध मुसकाराती हुई बड़ी प्रसन्न हो बोली ॥ ५ ॥ हे आर्यपुत्र ! यह सुहावना मृग मेरे मन को हरता है, हे महाबाहो इसे लाइये, यह हमारी क्रीड़ा के लिये होगा ॥६॥ अहो रूप अहो शोभा, और शोभन स्वरसम्पत्ति यह विचित्र अङ्गोंवाला अद्भुत मृग मेरे हृदय को हरता सा है ॥७॥ यदि यह मृग जीता ही आपके हाथ आजाए, तो यह बड़े आनन्द की बात होगी, और विस्मय उत्पन्न करेगी ॥८॥ जब हम वनवास समाप्त करके राज्य पर स्थित होंगे, तो यह मृग हमारे अन्तःपुर में शोभा के लिये होगा ॥९॥ हे प्रभो यह दिव्य मृगरूप भरत को, आर्यपुत्र

को और मेरी सासों को विस्मय उत्पन्न करेगा ॥१॥ और हे नर-शार्दूल ! यदि यह मृग जीता आपके हाथ न आए तो इसका मृगान बड़ा सुन्दर होगा ॥११॥ हां यदि यह जन्तु मारना पड़ा तो इस के सुनहरी मृगान को घास के आसन पर बिछाकर (भगवान् की) उपासना करनी चाहती हूं ॥१२॥ सीता के इस वचन को सुन कर और अद्भुत मृग को देखकर, उस रूप से लुभाया हुआ और सीता से प्रेरा हुआ राघव प्रसन्न होकर भाई लक्ष्मण से यह वाक्य बोला ॥१३॥ देख हे लक्ष्मण ! वैदेही की इस उल्लास भरी इच्छा को यह मृग आज अपने रूप की श्रेष्ठता के हेतु जीता नहीं रहेगा ॥१४॥ इस सुवर्णमय और नाना रत्नमय दिव्यरूप को देखकर किसका मन विस्मय को नहीं प्राप्त होगा ॥१५॥ इस मृगरत्न के परमोत्तम मृगान पर सुमध्यमा वैदेही मेरे साथ बैठेगी ॥१६॥ न कदली हरिण (नर्म ऊंचे चितकबरे और नीले अग्रवाले रोमों वाले मृग) की त्वचा (मृगान), न प्रियक (नर्म ऊंचे दाने दार रोमों से युक्त मृग) की त्वचा, न प्रवेण (बकरा विशेष) की त्वचा, न भेड़ की त्वचा स्पर्श में इसके सदृश होगी यह मेरी मति है ॥१७॥ यदि वा हे लक्ष्मण जैसा तू मुझे कहता है, वैसे यह राक्षसी माया ही हो, तो भी इसका बध करना ही चाहिये ॥१८॥ यहां तू सावधान, यत्नवान् होकर सीता की रक्षाकर, मैं इस मृग को मारूंगा, वा पकड़ लाऊंगा ॥१९॥ आप सीता के साथ आश्रम में अप्रमत्त होकर रहें ॥२०॥

सर्ग ३४ (व० ४४) सुवर्ण मृग को मारना

मूल—ततस्त्रिविनतं चापमादायात्मविभूषणम् । आबध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः ॥१॥ बद्धासिधनुरादाय प्रदुद्राव यतो मृगः । तं स्म पश्यति रूपेण द्योतयन्तमिवाग्रतः ॥२॥ शङ्कितं तु समुद्भ्रा-

न्तमुत्पतन्तमिवाम्बरम् । दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित्॥३॥ छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् । मुहूर्तादेव ददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते ॥ ४ ॥ दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम् । सुदूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः ॥ ५ ॥ स तमुन्मादयामास मृगरूपो निशाचरः । मृगैः परिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥ ६ ॥ ग्रहीतुकामं दृष्ट्वा तं पुनरेवाभ्यधावत । तत्क्षणादेव संत्रासात्पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ ७ ॥ पुनरेव ततो दूराद्वृक्षखण्डाद्विनिःसृतः। दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः॥८॥ भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः । संधाय सुदृढे चापे विकृष्य बलवद्बली ॥ ९ ॥ तमेव मृगमुद्दिश्य ज्वलन्तमिव पन्नगम् । मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ १० ॥ स भृशं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः । मारीचस्यैव हृदयं बिभेदाशनिसंनिभः ॥ ११ ॥ तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत् स भृशातुरः । म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम् ॥ १२ ॥ + स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम् । सदृशं राघवस्यैव हा सीते लक्ष्मणेति च ॥ १३ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं भीमदर्शनम् । रामो रुधिरसिक्ताङ्गं चेष्टमानं महीतले ॥ १४ ॥ जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचःस्मरन्। मारीचस्य तु मायैषा पूर्वोक्ता लक्ष्मणेन तु ॥ १५ ॥ हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वनम् । ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् ॥ १६ ॥ लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति । इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः ॥ १७ ॥ त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखं तदा ॥ १८ ॥

टीका—ऊंचे पराक्रम वाला राम तब तीन स्थानों में झुके हुए अपने भूषण रूप धनुष को लेकर और दोनों भत्थे बांध कर गए ॥ १ ॥ तलवार बांधकर और धनुष लेकर उधर को दौड़े, जिधर

वह मृग था, उस को अपने सामने रूप से बन को शोभा देता हुआ देखते हैं ॥ २ ॥ जो कि डरा हुआ है और घबराया हुआ है, और (छलांगों से) मानों आकाश में उड़ता जाता है, बन के किन्हीं प्रदेशों में दृश्यमान रहता है, और किन्हीं में अदृश्य हो जाता है ॥ ३ ॥ बादल के टुकड़ों से ढके हुए शरद् ऋतु के चन्द्र-मण्डल की तरह थोड़ी देर दीखता है और फिर दूर जा चमकता है ॥ ४ ॥ इस प्रकार दर्शन और अदर्शन से राम को अपने आश्रम से बहुत दूर लेगया वह मारीच जो कि हिरण बना हुआ है ॥ ५ ॥ उस मृगरूप राक्षस ने राम को घबरा दिया, तब और बहुत से मृगों के सहित निकट ही दीख पड़ा ॥ ६ ॥ पर यह देखकर कि राम उसे पकड़ने लगे हैं, फिर दौड़ गया, और उसी समय डर से फिर छिप गया ॥ ७ ॥ और फिर दूर जाकर वृक्षसमूह से बाहर निकला, अब महातेजस्वी राम ने देखकर उसे मारने का निश्चय कर लिया ॥ ८ ॥ उस पर कुपित हुए राम ने फिर बाण निकाला, बड़े दृढ़ धनुष में उसे जोड़ा, और उस बली ने बल से खींचा ॥ ९ ॥ और उसी मृग को लक्ष्य करके फुंकारते हुए सांप की तरह जलता हुआ ब्रह्मबाण छोड़ा ॥ १० ॥ वह बिजली के सदृश उत्तम बाण मृग के बनावटी रूप को फोड़कर मारीच के हृदय को फोड़ गया ॥११॥ वह अत्यन्त पीड़ित हुआ तालमात्र उछलकर गिर पड़ा, और मरते समय मारीच ने उस कृत्रिम शरीर को त्याग दिया ॥ १२ ॥ और अवसर जानकर राम के सदृश ऊंची ध्वनि से उसने कहा, " हा सीता, हा, लक्ष्मण " ॥ १३ ॥ उस भयङ्कर दर्शन वाले राक्षस को भूमि पर गिरा हुआ, रुधिर से लिबड़े अंगोंवाला, मही-तल पर लोटता हुआ देखकर राम ॥ १४ ॥ मन से सीता की ओर गया, क्योंकि उनको लक्ष्मण का वचन स्मरण आया, कि यह

मारीच का ही छल निकला, जैसा कि लक्ष्मण ने कहा था ॥ १५॥ "हा सीता, हा लक्ष्मण" ऐसी ऊंची ध्वनि से पुकारकर यह राक्षस मरा है, इसको सुनकर अब सीता की क्या दशा होगी ॥ १६ ॥ और महाबाहू लक्ष्मण की क्या अवस्था होगी, यह सोचकर धर्मात्मा राम के रोंगटे खड़े होगये, ॥ १७॥ और वह जल्दी के साथ जनस्थान की ओर गये ॥ १८ ॥

सर्ग ३५ (व० ४५) सीता की लक्ष्मण को प्रेरणा ।

मूल—आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वनेऽउवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम् ॥ १ ॥ नहि मे जीवितं स्थाने हृदयं वाव-तिष्ठते । क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम् ॥ २ ॥ आ-क्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि । तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम् ॥ ३ ॥ न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम् । तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा ॥ ४ ॥+ सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत् । यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे ॥५॥+ व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते । तेन तिष्ठसि विस्रब्धं तमपश्यन्महाद्युतिम् ॥६॥+ किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत् । कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः ॥ ७ ॥ एवं ब्रुवाणां वैदेहीं बाष्पशोकसमन्विताम् । अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव ॥ ८ ॥ पन्नगासुरगन्धर्वदेवदानवराक्षसैः । अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः ॥ ९ ॥ अनिवार्यं बलं तस्य बलैर्बलव-तामपि । हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु सन्तापस्त्यज्यतां तव ॥ १० ॥ न्यास-भूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना । रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ ११ ॥ कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः । खरस्य निधने देवि जनस्थानवधं प्रति ॥ १२ ॥ राक्षसा विविधा वाचो व्याहरन्ति महावने । हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि

॥ १३ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु क्रुद्धा संरक्तलोचना । अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम् ॥१४॥+अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत् । रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे ॥ १५ ॥ +नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद् भवेत्।त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु ॥ १६ ॥+सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि । मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥ १७ ॥ समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् । रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले ॥ १८ ॥ इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम् । अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः ॥ १९ ॥ उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम ॥ २० ॥ वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि । स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ॥ २१ ॥ न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे । श्रोत्रयोरुभयोर्मध्ये तप्तनाराचसन्निभम् ॥ २२ ॥ उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिणो हि वनेचराः । न्यायवादी यथा वाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया ॥ २३ ॥ धिक्त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे । स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम् ॥ २४ ॥ गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने । अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः ॥ २५ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु रुदती जनकात्मजा । प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥ २६ ॥ गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ॥ २७ ॥ + पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ॥ २८ ॥

टीका—वन में भर्त्ता के स्वर के तुल्य आर्त स्वर को सुनकर सीता लक्ष्मण से बोली, जाओ राघव का पता लो ॥ ५ ॥ मेरा जीवन वा हृदय स्थान पर नहीं ठहरता है, पुकारते हुए परम पीड़ित का

शब्द मैंने अच्छी तरह सुना है ॥ २ ॥ बन में पुकारते हुए भाई की रक्षा करने योग्य हो, शरण चाहते हुए अपने भाई की ओर दौड़ो ॥ ३ ॥ ऐसा कहने पर भी भाई की आज्ञा (सीता को अकेला न छोड़ने की) जानकर वह न गया, तब जनकसुता क्षोभ में आकर बोली ॥ ४ ॥ हे सुमित्रा के पुत्र तू मित्ररूप से भाई का शत्रु है, जो तू ऐसी अवस्था में भाई का सहारा नहीं बनता है ॥ ५ ॥ मैं जानती हूं कि तुझे भाई की विपद् प्यारी है, भाई में तुझे स्नेह नहीं है, इसलिये तू उस महातेजस्वी को न देखता हुआ चुप बैठा है ॥ ६ ॥ तू जिसको प्रधान करके आया है, जब वही संशय में पड़ा है, तो मेरी यहां रक्षा से क्या फल होगा ॥ ७ ॥ ऐसे कहती हुई आंसुओं से युक्त और शोक से भरी हुई और मृग बधू की तरह डरी हुई सीता से लक्ष्मण बोला ॥ ८ ॥ हे वैदेहि तेरा भर्त्ता नाग, दैत्य, गन्धर्व, देव, दानव और राक्षसों से जीता नहीं जासक्ता, इसमें संशय नहीं ॥ ९ ॥ बलवानों के बल भी उसके बल को नहीं रोक सक्ते हैं, तेरे हृदय को शान्ति हो, और सन्ताप को त्याग ॥ १० ॥ हे वैदेहि! महात्मा राम से तू मेरे पास अमानत छोड़ी गई है, हे वरारोहे ! मैं तुझे त्यागने का उत्साह नहीं करता हूं ॥ ११ ॥ हे कल्याणि हे देवि खर के मारने और जनस्थान के बध में हमने इन राक्षसों से वैर उत्पन्न कर लिया है॥ १२॥ सो हिंसाशील राक्षस इस महावन में भांति २ की बोलियां बोलते हैं, हे वैदेहि तुझे चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ १३ ॥ लक्ष्मण के ऐसा कहने पर क्रोध से उसके नेत्र लाल होगये और उस सत्यवादी लक्ष्मण से वह कठोर वाक्य बोली ॥ १४ ॥ मैं जानती हूं कि राम की भारी विपद् तुझे प्यारी है, इस लिये राम की विपद् देखकर तू इस तरह की बातें कहता है ॥ १५ ॥ तेरे जैसे दुर्जन सदा गुप्त-

चारी शरीकों में ऐसे पाप का होना हे लक्ष्मण आश्चर्य नहीं ॥१६॥ अतीव दुष्ट तू बन में अकेला अकेले रामके पीछे मेरे लिये गुप्तरूप से आया है अथवा भरत का प्रेरा हुआ है ॥ १७ ॥ तेरे सामने हे लक्ष्मण निःसन्देह प्राणों को त्यागूंगी, मैं राम के बिना भूतल पर एक क्षण नहीं जीसक्ती हूं ॥ १८ ॥ इसप्रकार रोंगटे खड़ा करनेवाला कठोर वचन जब सीता ने कहा, तो जितेन्द्रिय लक्ष्मण हाथ जोड़कर सीता से बोला ॥ १९ ॥ मैं कुछ उत्तर नहीं कह सक्ता हूं, आप मेरी देवता हैं ॥ २० ॥ हे मैथिलि अयोग्य बात कह देना स्त्रियों में आश्चर्य नहीं, स्त्रियों का इन लोकों में यह स्वभाव ही दीखता है ॥ २१ ॥ हे जनकात्मजे हे वैदेहि मैं ऐसे वाक्य को नहीं सह सक्ता हूं, जो दोनों कानों में तपे हुए बाण के सदृश है ॥२२॥ बनचारी सब मेरे साक्षी होकर सुनें, जैसा कि ठीक कहने वाले को तूने मुझे कठोर वाक्य कहा है ॥ २३ ॥ धिक्कार है आज तुझे नष्ट होती हुई को, जो तू स्त्रीपन के दुष्ट स्वभाव से मेरे ऊपर ऐसी आशंका करती है, जो मैं गुरु (बड़े भाई) की आज्ञा से स्थित हूं ॥ २४ ॥ जाता हूं, जहां राम है, तुझे कल्याण हो हे वरानने, परमात्मा करे राम के साथ फिर आकर तुझे देखूं ॥ २५ ॥ लक्ष्मण से ऐसे कही हुई रोती हुई जनकात्मजा तीव्र आंसुओं से युक्त हुई यह वाक्य बोली ॥ २६ ॥ हे लक्ष्मण राम के बिना मैं गोदावरी में डूब जाउंगी वा अपने आप को फांसी लगा लूंगी, वा विषम स्थल से अपने देह को त्याग दूंगी ॥ २७ ॥ अथवा तीव्र विष खालूंगी वा अग्नि में कूदजाउंगी, पर राघव के बिना कभी किसी पुरुष को नहीं छुऊंगी ॥ २८ ॥

सर्ग ३६(व० ४६) लक्ष्मण का जाना और रावण का आना

मूल—तया परुषमुक्तस्तु कुपितो राघवानुजः । स विकांक्षन्भृशं रामं प्रतस्थे नाचिरादिव ॥ १ ॥ तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तर मा-

मास्थितः। अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥ २ ॥ श्लक्ष्ण-काषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही। वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू ॥ ३ ॥ अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्चरः। सहसा भव्यरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ॥ ४ ॥ अतिष्ठत्प्रेक्ष्य वैदेहीं रामपत्नीं यशस्विनीम्। शुभां रुचिरदन्तोष्ठीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥५॥ आसीनां पर्णशालायां बाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा कामशराविद्धो ब्रह्मघोषमुदीरयन्। अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः ॥ ७ ॥ रौप्यकाञ्चनवर्णाभे पीतकौशेयवासिनि । कमलानां शुभां मालां पद्मिनीव च बिभ्रती ॥ ८ ॥ ह्रीः श्रीः कीर्तिः शुभाः लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने। भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी ॥ ९ ॥ समाः शिखरिणः स्निग्धाः पाण्डुरा दशनास्तव । विशाले विमले नेत्रे रक्तान्ते कृष्णतारके ॥ १० ॥ चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि। मनो हरसि मे रामे नदीकूलमिवाम्भसा ॥ ११ ॥ नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किन्नरी। नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥ १२ ॥ रूपमग्र्यं च लोकेषु सौकुमार्यं वयश्च ते। इह वासश्च कान्तारे चित्तमुन्माथयन्ति मे ॥ १३ ॥ नेह गच्छन्ति गन्धर्वा न देवा न च किन्नराः। राक्षसानामयं वासः कथं तु त्वमिहागता १४ कासि कस्य कुतश्च त्वं किंनिमित्तं च दण्डकान्। एका चरसि कल्याणि घोरान्राक्षससेवितान् ॥ १५ ॥ द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम्। सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिलि ॥ १६ ॥ इयं बृसी ब्राह्मण काममास्यतामिदं च पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति।इदं च सिद्धं वनजातमुत्तमं त्वदर्थं मव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥ १७ ॥

टीका—उससे कठोर कहा हुआ कुपित हुआ राम का छोटा भाई जल्दी राम को चाहता हुआ प्रस्थित हुआ ॥ १ ॥ उसी समय जल्दी अवसर पाकर संन्यासी का रूप धारे रावण जानकी के पास गया॥२॥

साफ गेरवे वस्त्र पहने हुए शिखाधारी, छाता और पादुक धारण किये, और बांए कन्धे पर शुभ लाठी और कमण्डलु लटकाएहुए ॥ ३ ॥ एक शान्त रूप से तिनकों से ढपे हुए कुंए की तरह (धोखे में डालने वाला) वह जानकी के सम्मुख हुआ, जैसे शनैश्चर चित्रा नक्षत्र के ॥ ४ ॥ यशस्विनी रामपत्नी जानकी–जिसके दान्त और होंठ सुन्दर हैं,और मुख पूर्णचन्द्र के सदृश है,उस को देखकर ठहर गया ॥५॥जो कि पर्णशाला में बैठी हुई आंसुओं से और शोकसे पीड़ित है ॥६॥ उसे देखकर काम के बाणों से वींधा हुआ राक्षसोंका अधिपति वेदध्वनि का उच्चारण करके उस अकेली जगह में उस से नम्र वाक्य बोला ॥ ७ ॥ हे चान्दी और सोने के रंगवाली, पीले रेशमी वस्त्र पहने हुई और पद्मिनी की तरह कमलों की शुभ माला धारण कीहुई ॥ ८ ॥ हे सुन्दरमुखि ! तू सुन्दर लज्जा शोभा वा कीर्त्ति (रूप) है, वा लक्ष्मी है, वा अप्सरा है, अथवा हे वरारोहे तू विभूति (अणिमादिसिद्धि) है वा स्वेच्छा से विचरनेवाली रति (कामदेव की पत्नी) है ॥ ९ ॥ एक बराबर नोकदार, स्निग्ध श्वेत तेरे दान्त हैं, विशाल निर्मल नेत्र हैं, जिनके किनारे लाल हैं, और तारे काले हैं ॥ १० ॥ हे सुन्दर मुसकराहटवाली, हे सुन्दर दांतोंवाली, हे सुन्दर नेत्रोंवाली, हे विलासिनि सुन्दरि तू मेरे मन को हर लेगई है, जैसे नदी पानी द्वारा किनारे को (हर लेती है) ॥ ११ ॥ ऐसे सुन्दर रूपवाली नारी पृथिवी पर मैंने न देवी न गन्धर्वी न यक्षी न किन्नरी पहले कभी देखी है ॥ १२ ॥ यह सारे लोकों में श्रेष्ठ रूप, यह सुकुमारता, यह तेरी अवस्था, और यहां जंगल में वास यह मेरे चित्त को खेद देते हैं ॥ १३ ॥ न यहां गन्धर्व न देवता न किन्नर आते हैं, यह राक्षसों का वास है,तू यहां किस तरह आई है ॥ १४ ॥ तू कौन है, किसकी है, कहां से है,

और किस निमित्त अकेली इस भयंकर राक्षससेवित दण्डक वन में विचरती है ॥ १५ ॥ ब्राह्मण के वेष से रावण को आया देखकर जानकी सारे अतिथि सत्कारों से उसकी पूजा करती भई ॥ १६ ॥ यह कुशा का आसन है, हे ब्राह्मण बैठिये, यह पांओं के लिये जल है, स्वीकार कीजिये, और यह उत्तम जंगली पदार्थ आपके लिये तैयार हैं खाइये ॥ १७ ॥

सर्ग ३७ (व० ४७) सीता का रावण को उत्तर

मूल—रावणेन तु वैदेहि तदा पृष्टा जिहीर्षुणा । परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥ दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः। सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया ॥ २ ॥ मम भर्त्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः । अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मानि गण्यते ॥ ३ ॥ अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम् । कैकयी मम भर्त्तारमित्युवाच द्रुतं वचः ॥ ४ ॥ तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं श्रृणु राघव । भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम् ॥ ५ ॥ त्वया तु खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च । चकार तद्वचः श्रुत्वा भर्त्ता मम दृढव्रतः ॥ ६ ॥+दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् । एतद् ब्राह्मण रामस्य व्रतं धृतमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् । रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा ॥ ८ ॥ स भ्राता लक्ष्मणो नाम ब्रह्मचारी दृढव्रतः । अन्वगच्छद्धनुष्पाणिः प्रव्रजन्तं मया सह ॥ ९ ॥ समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया । आगमिष्यति मे भर्त्ता वन्यमादाय पुष्कलम् ॥ १० ॥ स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः । एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज ॥ ११ ॥ एवं ब्रुवत्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः । प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः ॥ १२ ॥ येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः ।

अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः ॥ १३ ॥ त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम् । रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते ॥ १४ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः । सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव ॥ १५ ॥ लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी । सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि ॥ १६ ॥ तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विचरिष्यसि । न चास्य वनवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि ॥ १७ ॥ रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा । प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥ १८ ॥ +महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् । महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥ १९ ॥+सर्वलक्षणसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । सत्यसंधं महाभागमहं राममनुव्रता ॥ २० ॥ महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम् । नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ॥ २१ ॥ त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् । नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥ २२ ॥ क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः । आशीविषस्य वदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥ २३ ॥ मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि । कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि ॥ २४ ॥अक्षिसूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेढि च क्षुरम् । राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥ २५ ॥ अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि । सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ॥ २६ ॥ अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि। कल्याणवृत्तां यो भार्यां रामस्याहर्तुमिच्छसि ॥ २७ ॥ तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावे रामे स्थिते कार्मुकबाणपाणौ । हृतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये आज्यं यथा मक्षिकयावगीर्णम् ॥ २८ ॥ इतीव तद्वाक्यमदुष्टभावा सुदुष्टमुक्त्वा रजनीचरं तम् । गात्रप्रकम्पाद्व्यथिता बभूव वातोद्धता सा कदलीव तन्वी ॥ २९ ॥

टीका—संन्यासी रूप से (सीता को) हरना चाहते हुए रावण ने जब ऐसे पूछा, तो वह स्वयं अपना आप बतलाने लगी ॥ १ ॥ मैं मिथिलाधिपति महात्मा जनक की कन्या हूं, सीता नाम है, राम की प्यारी पटरानी हूं ॥ २ ॥ मेरा भर्त्ता बड़ा तेजस्वी अवस्था से पच्चीस बरस का हुआ, और मेरे जन्म को अठारह बरस बीते॥३॥ उस समय अभिषेक के लिये पिता के पास आए मेरे भर्त्ता राम को कैकेयी जल्दी से यह वचन बोली॥४॥तेरे पिता ने मुझे यह आज्ञा दी है, हे राघव सुन ! यह निष्कण्टक राज्य भरत को दो ॥५ ॥ और तुम चौदह बरस वन में रहो, यह सुन कर मेरा भर्त्ता जो कि दृढ़व्रती है इस वचन को पूरा करता भया ॥ ६ ॥ देगा लेगा नहीं, सत्य बोलेगा झूठ नहीं, यह उत्तम व्रत हे ब्राह्मण राम ने धारण किया हुआ है॥७॥उसका वैमात्र भाई शत्रुओं के मारनेवाला पुरुष-श्रेष्ठ बलवान् लक्ष्मण जो कि युद्ध में राम का साथी है॥८॥दृढ़व्रत वाला भाई लक्ष्मण,वह हाथ में धनुष लेकर मेरे साथ राम के साथ आया है ॥ ९ ॥ थोड़ी देर तसल्ली कीजिये, आप यहां ठहरने योग्य हैं, अभी मेरा भर्त्ता पुष्कल जंगली आहार लेकर आएगा ॥ १० ॥ अब आप भी अपना कुल और गोत्र बतलाएं,किसलिये हे ब्राह्मण ! आप अकेले इस दण्डक में घूमते हैं ॥ ११ ॥ रामपत्नी सीता के ऐसा कहने पर राक्षसों का अधिपति महाबली तीव्र (सीता के लिये असह्य) उत्तर देता भया ॥ १२ ॥ जिससे देव दैत्य और मनुष्यों समेत सब लोक कांपते हैं, मैं वह रावण हे सीता ! राक्षसगण का राजा हूं ॥ १३ ॥ किन्तु सोने के रंगवाली, रेशमी वस्त्र पहने हुए तुझे देखकर हे अनिन्दिते अपनी स्त्रियों में रति नहीं पाता हूं ॥ १४ ॥ बहुत उत्तम स्त्रियें जो मैं इधर उधर से लाया हूं, उन सब की तू तेरा भला हो मुख्य पटरानी बन॥१५॥

लंका नाम समुद्र के मध्य में मेरी बड़ी पुरी है, समुद्र से घिरी हुई पर्वत के शिखर पर स्थित है ॥ १६ ॥ वहां तू हे सीता मेरे साथ विचरेगी, और हे सुन्दरि इस बनवास की चाह नहीं करेगी ॥ १७ ॥ रावण से ऐसे कही हुई सुन्दरांगी जनकात्मजा उस राक्षस का अनादर करके उत्तर देती भई ॥ १८ ॥ महापर्वत की तरह अकम्प्य, महासागर की तरह अक्षोभ्य, महेन्द्र के तुल्य राम पति के मैं पीछे चली हूं ॥ १९ ॥ सारे लक्षणों से सम्पन्न बड़ की तरह सब को छाया देनेवाले, सच्ची प्रतिज्ञा वाले महाभाग राम के मैं पीछे चली हूं ॥ २० ॥ बडी भुजावाले, विशाल छाती वाले, शेर की चाल वाले, शेर के तुल्य, पुरुषों में शेर राम के मैं पीछे चली हूं ॥ २१ ॥ और तू गीदड़ मुझ दुर्लभा शेरनी को चाहता है तू मुझे छू नहीं सक्ता, जैसे सूर्य की प्रभा को ॥ २२ ॥ मृगों के मारनेवाले महाबली भूखे शेर के मुख से तू जबड़ा निकालना चाहता है ॥ १३ ॥ मन्दर पर्वत को हाथ से लेजाना चाहता है, कालकूट विष को पीकर कल्याण से जाना चाहता है ॥ २४ ॥ आंख की सुई से सीता है, और जिह्वा से छुर को चाटता है, जो तू राघव की प्यारी भार्या को पाना चाहता है ॥ २५ ॥ गले में पत्थर लटका कर समुद्र तैरना चाहता है, सूर्य और चन्द्रमा को हाथ से पकड़ना चाहता है ॥ २६ ॥ जलती हुई अग्नि को वस्त्र से लाना चाहता है, जो तू कल्याण स्वभाववाली राघव की भार्या को हरना चाहता है ॥ २७ ॥ जब तक इन्द्र तुल्य प्रभाववाला राम हाथ में धनुषबाण लिये स्थित है, तब तक यह निश्चय रख, कि तुझ से हरी हुई भी मैं जीर्ण नहीं हूंगी, जैसे मक्खी के साथ निगला हुआ घी ॥ ८ ॥ इसप्रकार वह शुद्ध भावना वाली तन्वी उस दुष्ट राक्षस को यह वाक्य कहकर वायु से कम्पाए केले की तरह थर २ कांपने लगी २९

सर्ग ३८ (व० ४९) रावण का सीता को हरलेना

मूल—सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् । हस्ते हस्तं समाहन्य चकार सुमहद्वपुः ॥ १ ॥ स मैथिलीं पुनर्वाक्यं बभाषे वाक्यकोविदः । नोन्मत्तया श्रुतौ मन्ये मम वीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥ उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः । आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः ॥ ३ ॥ एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे । क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ ४ ॥ सद्यः सौम्यं परित्यज्य तीक्ष्णरूपं स रावणः । स्वं रूपं कालरूपाभं भेजे वैश्रवणानुजः ॥ ५ ॥ संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकाञ्चनभूषणः । क्रोधेन महताविष्टो नीलजीमूतसंनिभः ॥ ६ ॥ अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसःकाममोहितः । जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव ॥ ७ ॥ वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः । उर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥ ८ ॥ स च मायामयो दिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः । प्रत्यदृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महारथः ॥ ९ ॥ ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्वनः । अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोहयत्तदा ॥ १० ॥ सा गृहीतातिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी । रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरं गतं वने ॥ ११ ॥ तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव । विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः ॥ १२ ॥ ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा । भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता तथातुरा ॥ १३ ॥ + हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक । ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा कामरूपिणा ॥ १४ ॥+जीवितं सुखमर्थं च धर्महेतोः परित्यजन् । ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि ॥ १५ ॥ ननु नामाविनीतानां विनेतासि परन्तप । कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधि हि रावणम् ॥ १६ ॥ हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैःसह । ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः ॥ १७ ॥ सा तदा करुणा वाचो

विलपन्ती सुदुःखिता । वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना ॥ १८ ॥ सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशंगता । समाक्रन्दद्भयपरा दुःखोपहितया गिरा ॥ १९ ॥ जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् । अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा ॥ २० ॥

टीका–सीता के वचन को सुनकर प्रतापवाला रावण दोनों हाथों को मरोड़कर शरीर को भयङ्कर बनाता भया ॥१॥वह वाक्यपण्डित जानकी से फिर वाक्य बोला, मैं जानता हूं, कि उन्मत्त हुई तूने मेरे वीर्य और पराक्रम नहीं सुने॥२॥मैं आकाश में खड़ा होकर दोनों भुजाओं से पृथिवी को उठालूं, समुद्र को पीजाऊं, और रण में स्थित हुआ मैं मृत्यु को मार डालूं ॥ ३ ॥ ऐसा कहते हुए क्रुद्ध हुए उस रावण के नेत्र लाल होगए, उनके प्रान्त काले होगए, और उनसे अग्नि बरसने लगी ॥ ४ ॥ तत्क्षण सौम्यरूप को त्यागकर वह कुबेर का छोटा भाई रावण कालरूप के तुल्य अपने तीक्ष्णरूप को धारण करता भया ॥ ५ ॥ लाल नेत्रोंवाला, श्रीमान् तपे हुए सोने के भूषणोंवाला, बड़े क्रोध से युक्त, नीलमेघ के तुल्य ॥ ६ ॥ वह दुष्टात्मा राक्षस काम से मोहा हुआ पास जाकर सीता को पकड़ लेता भया, जैसे आकाश में बुध रोहिणी को ॥ ७ ॥ बांएं हाथ से उसने पद्माक्षी सीता को बालों से पकड़ लिया और दांएं हाथ से दोनों रानों से उठा लिया ॥ ८ ॥ इतने में रावण का वह सुनहरी मायामय दिव्य रथ आगया, जो खर से युक्त, खर की ध्वनिवाला है (यह विमान विशेष था) ॥९॥तब (उसने) कठोर वाक्यों से सीता को झिड़क कर और अङ्क से उठाकर रथ पर रख लिया ॥ १० ॥ रावण से पकड़ी हुई यशस्विनी सीता ने बन में दूर गए राम को "हा राम" ऐसा दुःख से पीड़ित हुई ने पुकारा ॥ ११ ॥ उस अकामा को काम से पीड़ित हुआ नागिनी

की तरह लोटती हुई को लेकर तब रावण उड़ा ॥ १२ ॥ तब राक्षसपति से आकाश मार्ग द्वारा हरी जाती हुई सीता पागल की तरह और पीड़ित की तरह भ्रान्त चित्त हुई अत्यन्त पुकारने लगी ॥ १३ ॥ हे गुरु (राम) के चित्त को प्रसन्न रखनेवाले लक्ष्मण तू मुझे कामरूपी राक्षस से हरी जाती हुई को नहीं जानता है ॥ १४ ॥ जीवन सुख और धन को धर्म के अर्थ त्यागने वाले हे राघव! अधर्म से हरी जाती हुई मुझको तू नहीं देखता है ॥ १५ ॥ हे परन्तप आप टेढ़ों को सीधा करनेवाले हैं, तो कैसे ऐसे पापी रावण को दण्ड नहीं देते हो ॥ १६ ॥ हन्त अब कैकेयी बान्धवों समेत पूर्ण कामनावाली हुई, जब कि यशस्वी, धर्म की कामना वाले की धर्मपत्नी मैं हरी जाऊंगी ॥ १७ ॥ तब करुण विलाप करती हुई अत्यन्त दुःखी हुई उस विशालनेत्रा ने वनस्पतिगत गृध्र (जटायु) को देखा ॥ १८ ॥ वह सुमध्यमा उसे देखकर रावण के वश पड़ी हुई भयपरायण हुई दुःखयुक्त बाणी से पुकारती भई ॥ १९ ॥ हे जटायो हे आर्य देख मुझे अनाथ की तरह यह पापी राक्षसेन्द्र हर ले जारहा है ॥ २० ॥

सर्ग ३९ (व० ५०) जटायु का रावण को रोकना

मूल—तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे । निरैक्षद्रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः ॥ १ ॥ वनस्पतिगतः श्रीमान्व्याजहार शुभां गिरम् ॥ २ ॥+दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रवः । भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि सांप्रतम् ॥ ३ ॥ + लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः । तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ॥ ४ ॥ कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान्परामृशेत् । रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल॥ ५ ॥ न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत्। यथात्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ॥६॥वृद्धोऽहं त्वं युवा

धन्वी सरथः कवची शरी । न चाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि ॥ ७ ॥ न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदहीं मम पश्यतः । हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥ ८ ॥+ नहि मे जीवमानस्य नयिष्यासि शुभामिमाम् । सीतां कमलपत्राक्षीं रामस्य महिषीं प्रियाम् । ९ ॥ + अवश्यं तु मया कार्यं प्रियं तस्य महात्मनः । जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च ॥ १० ॥ युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर ॥ ११ ॥

टीका—इस शब्द को सोए हुए जटायु ने सुना, और रावण को और सीता को देखा॥ १ ॥और वनस्पति गत उस श्रीमान् ने यह बात कही ॥ २ ॥ हे दशग्रीव अपने पुराने धर्म में स्थित सच्ची प्रतिज्ञा वाला हो, हे भ्राता ऐसा निन्दित कर्म तुझे नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥ लोकों के हित में तत्पर दशरथ का पुत्र राम है, यह यशस्विनी उस लोकनाथ की धर्मपत्नी है ॥ ४ ॥ कैसे धर्म में स्थित राजा परस्त्री को छू सक्ता है, हे महाबली राजपत्नियें विशेषतः रक्षा के योग्य होती हैं ॥ ५ ॥धीर पुरुष को वह काम नहीं करना चाहिये, जिसकी कोई निन्दा करे, जैसे अपने स्त्रियों की वैसे परस्त्रियों की भी दबाव से रक्षा करनी चाहिये ॥ ६ ॥ मैं बूढ़ा हूं तू युवा है, धनुर्धारी है, रथ सहित है, कवच पहने हुए बाण लिये हुए है, तथापि जानकी को मेरे सामने से लेकर कुशल से नहीं जाएगा ॥ ७ ॥ मेरे देखते हुए तू बल से सीता को नहीं लेजा सकता है, जैसे अटल वेद की श्रुति को कुतर्कों से ॥ ८ ॥ मेरे जीते हुए तू इस कमलनेत्रा राम की प्यारी रानी शुभ सीता को नहीं लेजाएगा ॥ ९ ॥ अवश्य मैंने उस महात्मा का और दशरथ का अपना प्राण देकर भी प्रिय करना है ॥ १० ॥ सो मैं हे निशाचर यथाशक्ति युद्ध से तेरा आतिथ्य करूंगा ॥ ११ ॥

सर्ग ४० (व० ५१) रावण और जटायु का युद्ध

मूल—इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः। राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः॥ १ ॥स संप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे। बभूव वातोद्धुतयोर्मेघयोर्गगने यथा॥२॥स तदा गृध्रराजेन क्लिश्यमानो मुहुर्मुहुः। अमर्षस्फुरितोष्ठः सन्प्राकम्पत च राक्षसः ॥ ३ ॥ ततः क्रोधाद्दशग्रीवः सीतामुत्सृज्य वीर्यवान् । मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च गृध्रराजमपोथयत् ॥ ४ ॥ सच्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा। निपपात महागृध्रो धरण्यामल्पजीवितः ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्। अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता॥ ६ ॥ सा तु ताराधिपमुखी रावणेन निरीक्ष्य तम् । गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता॥ ७ ॥अयं हि कृपया राम मां त्रातुमिह संगतः। शेते विनिहतो भूमौ ममाभाग्याद्विहंगमः ॥ ८ ॥ तां क्लिष्टमाल्याभरणां विलपन्तीमनाथवत्। अभ्यधावत् वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ९ ॥ तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान् । मुञ्च मुञ्चेति बहुशः प्राप तां राक्षसाधिपः ॥ १० ॥ क्रोशन्तीं राम रामेति रामेण रहितां वने।जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तिकसंनिभः ॥ ११ ॥ प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम् । जगत्सर्वममर्यादं तमसान्धेन संवृतम् ॥ १२ ॥ स तु तां रामरामेति रुदतीं लक्ष्मणेति च। जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः॥ १३ ॥

टीका--ऐसे कहने पर तपे हुए सोने के कुण्डलों वाला राक्षसेन्द्र न सहारता हुआ क्रोध से लाल नेत्रोंवाला हुआ उस पक्षीराज की ओर दौड़ा ॥ १ ॥ उस बड़े युद्ध में वह उन दोनों की, आकाश में वायु से चलाए हुए मेघों की तरह बड़ी टक्कर हुई ॥ २ ॥ उस समय गृध्रराज से बार २ तंग किया हुआ वह राक्षस कांप उठा, और क्रोध से उसके होंट फड़कने लगे ॥ ३ ॥ तब श्रीमान् रावण

क्रोध से सीता को छोड़कर दोनों मुक्कियों से और दोनों पाओं से गृध्रराज को छड़ देता भया ॥४॥ उस भयङ्कर कर्मोंवाले राक्षस द्वारा दोनों भुजाओं के कट जाने से वह महागृध्र भूमि पर गिर पड़ा, जिसका जीवन अब थोड़ा शेष है ॥ ५ ॥ उस जटायु को लहू से लिबड़ा हुआ भूमि पर गिरा हुआ देखकर दुःखित हुई सीता अपने बन्धु की तरह उसकी ओर दौड़ी॥ ६ ॥वह चन्द्रमुखी रावण से गृध्रराज को हत हुआ देखकर अतीव दुःखित हो विलाप करने लगी ॥७॥हेराम यह विहङ्गम * जो कृपा से मेरी रक्षा के लिये उद्यत हुआ था,वह हत हो भूमि पर सोगया है॥८॥तब राक्षस रावण, माला और भूषण मल डालती हुई अनाथ की तरह विलाप करती हुई उस सीता की ओर दौड़ा ॥ ९ ॥ बेल के लपेट की तरह बड़े २ वृक्षों को आलिङ्गन करती हुई,और 'मुझे छोड़ छोड़' ऐसे बार२पुकारती हुई उसको,राक्षसाधिपति प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ बन में राम से रहित हुई और राम २ पुकारती हुई को यमतुल्य रावण ने अपने जीवन के अन्त के लिये बालों से पकड़ा ॥ ११ ॥ वैदेही के अपमान पर चराचर सहित सारे जगत की मर्यादा टूटगई और जगत घोर अन्धकार से ढप गया ॥ १२ ॥ वह राक्षसपति रावण राम राम और लक्ष्मण कहकर रोती हुई को लेकर आकाश में उड़ गया ॥ १३ ॥

सर्ग ४१ (व० ५३) सीता का रावण को धिक्कारना

मूल—खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा। रुदती करुणं सीता ह्रियमाणा तमब्रवीत ॥ १ ॥ न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेनरावण। ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे ॥ २ ॥ त्वयैव नूनं दु-

*जटायु को पक्षिरूप में वर्णन करना रूपक है। पक्षियों की तरह परमेश्वर पर भरोसा रखने वाला सम्प्रदाय विहङ्गम कहा जाना चाहिये। आज कल भी भारत में एक विहङ्गम सम्प्रदाय है।

ष्टात्मन्भीरुणा हर्तुमिच्छता । ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ॥ ३ ॥ यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽप्ययं विनिपातितः । गृध्रराजः पुराणोऽसौ श्वशुरस्य सखा मम ॥ ४ ॥ परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम । विश्राव्य नामधेयं हि युद्धेनास्मि जिता त्वया ॥ ५ ॥ +ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे । स्त्रियाश्चाहरणं नीच रहिते च परस्य च ॥ ६ ॥ कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम् । सुनृशंसमधर्मिष्ठं तव शौटीर्यमानिनः ॥ ७ ॥ धिक्ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा ॥ कुलाक्रोशकरं लोके धिक्ते चारित्रमीदृशम् ॥ ८ ॥ किं शक्यं कर्तुमेवं हि यज्जवेनैव धावसि । मुहूर्तमपि तिष्ठ त्वं न जीवन्प्रतियास्यसि ॥ ९ ॥ नहि चक्षुःपथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः । ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥ १० ॥ साधु कृत्वात्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण । मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धो भ्रात्रा सह पतिर्मम ॥ ११॥ विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि ॥१२॥+येन त्वं व्यवसायेन बलान्मां हर्तुमिच्छसि । व्यवसायस्तु ते नीच भविष्यति निरर्थकः ॥ १३ ॥ + नह्यहं तमपश्यन्ती भर्तारं विबुधोपमम् । उत्सहे शत्रुवशगा प्राणान्धारयितुं चिरम् ॥ १४ ॥ न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे । मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ॥ १५ ॥ पश्यामीह हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम् ।यथा चास्मिन्भयस्थाने न बिभेषि निशाचर ॥१६॥ एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा । भयशोक समाविष्टा करुणं विललाप ह ॥१७॥

टीका—उसको आकाश की ओर उड़ता हुआ देखकर जनकात्मजा मैथिली दुःखित हुई अत्यन्त उद्विग्न हुई हरी जाती हुई उसे बोली ॥ १ ॥ हे नीच रावण इस कर्म से तुझे लज्जा नहीं आती है, जो मुझे अकेली जानकर चुराकर भागा जारहा है ॥ २ ॥ तुझ ही कायर ने हे दुष्टात्मन् मुझे हरना चाहते हुएने मृगरूप छल से मेरे पति को दूर

पहुंचाया है ॥ ३ ॥ जो मेरे श्वसुर का सखा मुझे बचाने के लिये उद्यत हुआ उस वृद्ध गृध्रराज को भी तूने मार गिराया है ॥ ४ ॥ हे राक्षसाधम तेरा बल बहुत बड़ा दीखता है, युद्ध में अपना नाम सुनाकर जो मुझे जीतकर लाया है ॥ ५ ॥ ऐसा निन्दित कर्म करके क्या तुझे लज्जा नहीं आती, पराई स्त्री का हरना और अकेले में ॥ ६ ॥ जगत् में लोग तुझ शूरमानी के इस निन्दित निर्दय, अधर्मिष्ठ कर्म को कहा करेंगे ॥ ७ ॥ धिक्कार है तेरे शौर्य और दिलेरी को जो उस समय तूने कहा, हे कुल की निन्दा उत्पन्न करने वाले, लोक में तेरे ऐसे चरित्र को धिक्कार है ॥ ८ ॥ क्या किया जासकता है, जब तू इस तरह वेग से दौड़ा जारहा है, थोड़ी देर भी ठहर, फिर तू जीता नहीं जाएगा ॥ ९ ॥ उन दोनों राजपुत्रों के नेत्रपथ को प्राप्त होकर तू सेना के सहित भी मुहूर्त भी नहीं जीसक्ता है ॥ १० ॥ अपना पथ्य जानकर भले ही मुझे छोड़ हे रावण, यदि तू मुझे नहीं छोड़ेगा, तो मेरे अपमान से क्रुद्ध हुआ अपने भाई के साथ मेरा पति तेरे नाश के लिये यत्न करेगा ॥ ११, १२ ॥ जिस विचार से तू मुझे बल से हरना चाहता है, वह तेरा विचार हे नीच निरर्थक होगा, मैं देवतुल्य उस अपने भर्त्ता को न देखती हुई शत्रुओं के वश पड़ी देर तक प्राणों को नहीं धार सकूंगी ॥ १३, १४ ॥ निःसन्देह! तू अपनी भलाई वा पथ्य नहीं देखता है, मरना निकट आने पर सभी को जो पथ्य है, वह पसन्द नहीं आता है ॥ १५ ॥ हे रावण तू न रुकनेवाली कालफांस से बांधा गया है, जैसा कि तू इस भयस्थान में हे निशाचर! भय नहीं करता है ॥ १६ ॥ रावण के पास स्थित सीता भय शोक से युक्त हुई इत्यादि कठोर और करुण विलाप करती भई ॥ १७ ॥

सर्ग ४२ [व० ५४] सीता को लंका में लेजाना

मूल—ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाथमपश्यती । ददर्श गिरिशृङ्गस्थान्पञ्च वानरपुंगवान् । १ ॥ तषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् । उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ॥ २ ॥मुमोच यादि रामाय शंसेयुरिति भामिनी । संभ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान् ॥ ३ ॥ विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददर्शुर्वानरोत्तमाः । स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥ ४ ॥ जगाम मैथिलीं गृह्य रुदतीं राक्षसेश्वरः ॥ ५ ॥ वनानि सरितः शैलान्सरांसि च विहायसा । स क्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिव च्युतः ॥ ६ ॥ तिमिनक्रनिकेतं तु वरुणालयमक्षयम् । सरितां शरणं गत्वा समतीताय सागरम् ॥ ७ ॥ प्रविवेश पुरीं लङ्कां रूपिणीं मृत्युमात्मनः ॥ ८ ॥ सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्तमहापथाम् । संरूढकक्ष्यां बहुलां स्वमन्तः पुरमाविशत् ॥ ९ ॥ तत्र तामसितापाङ्गीं शोकमोहसमन्विताम् । निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम् ॥ १० ॥ अब्रवीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः । यथा नैनां पुमान्स्त्री वा सीतां पश्यत्यसम्मतः ॥ ११ ॥ मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च । यद्यदिच्छेत्तदेवास्या देयं मच्छन्दतो यथा ॥ १२ ॥ या च वक्ष्यति वैदेहीं वचनं किंचिदप्रियम् । अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानान्न तस्या जीवितं प्रियम् ॥ १३ ॥तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् । निष्क्रम्यान्तः पुरात्तस्मात्किं कृत्यमिति चिन्तयन् ॥१४॥ ददर्शाष्टौ महावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् । उवाच तानिदं वाक्यं प्रशस्य बलवीर्यतः ॥ १५ ॥ जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिता । प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तत्त्वतः ॥ १६॥ अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरेव निशाचरैः।कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधंप्रति॥१७॥युष्माकं तु बलं ज्ञातं बहुशो रणमूर्धनि।अतश्चास्मिञ्जनस्थानेमया यूयं निवासिताः

टीका-हरी चली जाती हुई सीता कोई अपना नाथ(रक्षक)न देखती हुई पर्वत के शिखर पर पांच वानर श्रेष्ठों को देखती भई ॥१॥ उनके मध्य में उस विशालनेत्रा वरारोहा ने सोने की प्रभावाला रेश्मी दुपट्टा और शुभ भूषण छोड़े, यदि यह राम को कहें, किन्तु रावण ने घबराहट में उसके इस कर्म को नहीं समझा ॥ २, ३ ॥ पुकारती हुई सीता को उस समय वानरों ने देखा ॥ ४ ॥ वह राक्षस-पति पम्पा को लंघकर रोती हुई मैथिली को लेकर लङ्कापुरी की ओर गया ॥५॥ बन नदी पर्वत और सरोवरों को आकाशमार्ग से बाण से छूटे तीर की तरह वह जल्दी लंघ गया ॥ ६ ॥ तब मच्छ और मगरों से भरे हुए अनखुट्ट वरुण के घर नदियों के शरण (समुद्र) पर पहुंचकर सागर से पार होगया ॥७ ॥ और लङ्कापुरी में प्रविष्ट हुआ, जो कि उसकी रूपधारी मृत्यु है ॥ ८ ॥ बड़ी चौड़ी सड़कों वाली लङ्कापुरी में प्रविष्ट होकर (नौकरों से) भरी हुई डेउढ़ियों वाले अपने विशाल अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ ॥ ९ ॥ वहां काले नेत्रोंवाली शोक मोह से युक्त उस सीता को छिपाकर रखा, जैसे मय ने आसुरी माया को ॥ १० ॥ और रावण ने भयं-कर दर्शन वाली राक्षसियों को कहा, कि इस सीता को विना हमारी अनुमति के कोई पुरुष वा स्त्री देखने न पावे ॥ ११॥ मोती, मणियें, सुवर्ण, वस्त्र, भूषण, जो २ यह चाहे मेरी इच्छा से इसे दो ॥ १२ ॥ और जो कोई सीता को अज्ञान से वा ज्ञान से कुछ अप्रिय वचन कहेगी, उसको जीना प्यारा नहीं होगा ॥ १३ ॥ इसप्रकार उन राक्षसियों को कहकर प्रतापवान् वह राक्षसेन्द्र उस अन्तःपुर से निकलकर सोचता भया कि अब क्या करना चाहिये ॥ १४ ॥ उसने रुधिर पीनेवाले, (जंगली) बड़े बलवाले आठ राक्षस देख, बल वीर्य से उनकी प्रशंसा करके उनसे यह

वाक्य बोला ॥ १५ ॥ जनस्थान में जाकर वास करते हुए आप लोग राम का समाचार ठीक देते रहें, कि वह क्या करता है ॥ १६ ॥ और सावधान होकर सब राक्षसों ने वहां जाना, और राम के बध के प्रति सदा यत्न करना ॥ १७॥ तुम्हारा बल मैंने रण के मस्तक पर बहुत बार देखा है, इसलिये इस जनस्थान में मैंने तुम्हें लगाया है १८

सर्ग ४३ [व० ५५] रावण की सीता को अयोग्य प्रेरणा

मूल—संदिश्य राक्षसान्घोरान्रावणोऽष्टौ महाबलान् । आत्मानं बुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥ स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणैः प्रपीडितः । प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥ स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः । अपश्यद्राक्षसीमध्ये सीतां दुःखपरायणाम् ॥ ३ ॥ अधोगतमुखीं सीतां नामभ्येत्य निशाचरः। उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया ॥ ४ ॥ यदिदं राज्य तन्त्रं मे त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । जीवितं च विशालाक्षि त्वं मे प्राणैर्गरीयसी ॥ ५ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां मम योऽसौ परिग्रहः । तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये ॥ ६ ॥ भजस्व सीते मामेव भर्ताहं सदृशस्तव । लङ्कायाः सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय ॥ ७ ॥ त्वत्प्रेष्या मद्विधाश्चैव देवाश्चापि चराचरम् । अभिषेकजलक्लिन्ना तुष्टा च रमयस्व च ॥ ८ ॥ दुष्कृतं यत्पुरा कर्म वनवासेन तद्गतम् । यच्च ते सुकृतं कर्म तस्येदं फलमाप्नुहि ॥ ९ ॥ इह सर्वाणि माल्यानि दिव्यगन्धानि मैथिलि । भूषणानि च मुख्यानि तानि सेव मया सह ॥ १० ॥ पुष्पकं नाम सुश्रोणि तरसा निर्जितं रणे । तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथासुखम् ॥ ११ ॥ वदनं पद्मसंकाशं विमलं चारुदर्शनम् । शोकार्तं तु वरारोहे न भ्राजति वरानने ॥ १२ ॥ एवं वदति तस्मिन्सा वस्त्रान्तेन वराङ्गना । पिधायेन्दुनिभं सीता मन्दमश्रूण्यवर्तयत ॥ १३ ॥ ध्यायन्तीं तामिवास्वस्थां सीतां चिन्ता-

हतप्रभाम् । उवाच वचनं वीरो रावणो रजनीचरः ॥ १४ ॥ + अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन ते । आर्षोऽयं दैव निष्पन्दो यस्त्वाम-भिभविष्यति॥१५॥+प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मिते ॥

टीका–आठ महाबली राक्षसों को आज्ञा देकर रावण बुद्धि के विपरीत होने से अपने आपको कृतकृत्य समझता भया ॥ १ ॥ वह काम के बाणों से पीड़ित हुआ सीता को चिन्तन करता हुआ उसे देखने के लिये जल्दी रमणीय गृह में प्रविष्ट हुआ ॥२॥ उसने राक्षसियों के मध्य में दुःखपरायण आंसुओं से पूर्ण मुखवाली दीन, शोक भार से पीड़ित सीता को देखा ॥३॥ नीचे किये मुख वाली, सीता के पास जाकर वह पापात्मा राक्षस उसे लुभाने की इच्छा से बोला॥ ४ ॥ हे विशालनेत्रे ! मेरा यह जितना राज्यतन्त्र है यह सारा और मेरा जीवन भी तेरे आश्रय है, तू मुझे प्राणों से बढ़कर है ॥ ५ ॥ मेरी बहुत भी जो उत्तम स्त्रियें हैं हे सीते तू उन सब की मालिक हुई हे प्रिये मेरी भार्या बन ॥ ६ ॥ हे सीते मुझे ही स्वीकारकर, मैं तेरे सदृश पति हूं, यह जो लङ्का का बहुत बड़ा राज्य है, इसका पालनकर ॥ ७ ॥ मेरे जैसे तेरे नौकर होंगे, और देवते भी और चर अचर सभी नौकर होंगे, अभिषेक के जल से स्नानकर, और रमण कर, ॥ ८ ॥ जो तेरा दुष्कर्म था, वह बनवास से दूर होगया, और जो तेरा सुकृत कर्म है, उसके फल को अब यहां प्राप्त हो ॥ ९ ॥ हे मैथिलि यहां सब मालाएं हैं, दिव्य गन्ध हैं, और मुख्य भूषण हैं, उनको मेरे साथ सेवन कर ॥ १० ॥ हे सुश्रोणि पुष्पक विमान जोकि मैंने रण में अपने बल से जीता है, उसपर हे सीते मेरे साथ यथासुख विहरणकर ॥ ११ ॥ पद्मतुल्य निर्मल सुन्दर दर्शन वाला तेरा मुख हे वरारोहे हे सुन्दरमुखि शोक से पीड़ित हुआ शोभा नहीं पाता है॥ १२ ॥

उसके ऐसा कहते हुए वह उत्तम स्त्री सीता कपड़े के अञ्चल से मुखचन्द्र को ढांप कर मन्द मन्द आंसु गिराने लगी ॥ १३ ॥ चिन्ता में लगी हुई चिन्ता से नष्ट हुई कान्तिवाली अस्वस्थ सीता को रजनीचर वीर रावण फिर यह वचन बोला ॥ १४ ॥ हे वैदेहि धर्मलोप के ख्याल से तू लज्जा मत कर, यह प्रेमप्रार्थना जिससे मैं तुझे जीतना चाहता हूं, हे देवि ! वैदिक है (अर्थात् मार काट करके छीन लाना यह राक्षस विवाह क्षत्रियों के लिये अनुचित नहीं है—पर रावण का यह कथन सीता को यथा कथञ्चित् फुसलाने के लिये है। राक्षस विवाह कन्या के साथ होता है, न कि विवाहिता के साथ, और बहादुरी से जीती हुई के साथ होता है, नाकि चुराई हुई के) ॥ १५ ॥ मेरे ऊपर जल्दी प्रसाद कर, मैं तेरा वशवर्ती दास हूं ॥ १६ ॥

सर्ग ४९ (व० ५६) सीता का निर्भय उत्तर और रावण का क्रोध

मूल—सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्शिता । तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥ राजा दशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः । सत्यसंधः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः ॥ २ ॥ +रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम ॥ ३ ॥+प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया वै धर्षिता बलात् । शायिता त्वं हतः संख्ये जनस्थाने यथाखरः ॥४॥+गतासुस्त्वं गतश्रीकोगतसत्त्वो गतेन्द्रियः । लङ्का वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृतेन भविष्यति ॥ ५ ॥ + न ते पापमिदं कर्म सुखोदर्कं भविष्यति । याहं नीता विनाभावं पतिपार्श्वात्त्वया बलात् ॥ ६ ॥ यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः । तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नराः कालवशं गताः ॥ ७ ॥ मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं राक्षसाधम। आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तः पुरस्य च ॥ ८ ॥ + इदं शरीरं निःसंज्ञं

बन्ध वा घातयस्व वा । नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापिराक्षस॥९॥ न तु शक्यमपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः । एवमुक्त्वा तु वैदेही क्रोधात्सुपरुषं वचः ॥ १० ॥ रावणं जानकी तत्र पुनर्नोवाच किंचन ॥११॥ सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम् । प्रत्युवाच ततःसीतां भयसन्दर्शनं वचः ॥ १२ ॥ शृणु वैदेहि मद्वाक्यं मासान्द्वादश भामिनि । कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि ॥ १३ ॥ ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः । इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः ॥ १४ ॥ राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत। शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विरूपा घोरदर्शनाः ॥ १५ ॥ दर्पमस्यापनेष्यन्तु मांसशोणितभोजनाः । वचनादेव तास्तस्य मैथिलीं पर्यवारयन् ॥ १६ ॥ स ताः प्रोवाच राजासौ रावणो घोरदर्शनाः। प्रचल्य चरणोत्कर्षैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥ १७ ॥ अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामिति । तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता ॥ १८ ॥ तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम् । आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव ॥ १९ ॥ इति प्रतिसमादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः । अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं परिगृह्य तु ॥ २० ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् । सर्वकालमदैश्चापि द्विजैः समुपसेविताम्॥२१॥न विन्दते तत्र तु शर्म मैथिली विरूपनेत्राभिरतीवर्तजिता।पतिं स्मरन्ती दयितं च देवरं विचेतनाभूद्भयशोकपीडिता २२

टीका—ऐसे कही हुई वैदेही निर्भय हुई शोक से दुर्बल हुई मध्य में तृण रखकर रावण को उत्तर देती भई, (तृण रखने का तात्पर्य दुष्टाशय परपुरुष से साक्षात् बात न करने का है)॥१॥विख्यात राजा दशरथ नाम जो मानों अचल धर्म का सेतु सच्ची प्रतिज्ञा वाला हुआ है, जिसका पुत्र वह राघव है ॥ २ ॥ राम नाम वह धर्मात्मा तीनों लोकों में विख्यात है, लम्बी भुजावाला, विशाल

नेत्रोंवाला, वह मेरा पति मेरा देवता है ॥ ३ ॥ यदि तू उसके सामने मुझे बल से दबाता, तो तू युद्ध में जनस्थान में खर की तरह मरा हुआ लोटता ॥ ४ ॥ तू अब मर चुका है, तेरी शोभा दूर होचुकी, तेरा अन्तःकरण नष्ट होगया, तेरे इन्द्रिय नष्ट होगए, तेरे अपराध से सारी लङ्का विधवा होगी ॥ ५ ॥ तेरा यह पापकर्म सुख फल वाला नहीं होगा, जब कि तूने धक्के से मुझे पति के पास से अलग कर दिया है॥६॥मनुष्यों का काल से प्रेरा हुआ विनाश, जब सामने आता है तब काल के वश प्राप्त हुए नर अपने कर्तव्य में प्रमाद करते हैं॥७॥हे राक्षस मुझे दबाने से तेरे, राक्षसों के और तेरे अन्तःपुर के बध के लिये तेरा काल आया है ॥ ८ ॥ इस अचेतन शरीर को चाहे बांध चाहे मार डाल, इस शरीर की रक्षा मुझे आवश्यक नहीं, न जीवन की हे राक्षस ॥ ९ ॥ किन्तु मैं पृथिवी में अपनी निन्दा को स्थान नहीं दूंगी । क्रोध से ऐसा वचन कहकर ॥ १० ॥ जानकी फिर रावण से कुछ नहीं बोली ॥ ११ ॥ रोंगटे खड़ा करनेवाला सीताका कठोर वचन सुनकर तब रावण भय दिखलाने वाला वचन सीता को बोला॥१२॥ हे मैथिलि मेरी बात सुन, "बारह महीने" इतने काल में हे सुन्दरहंसने वाली सुन्दरि यदि मुझे स्वीकार नहीं करेगी ॥ १३ ॥ तब रसोइये मेरे प्रातराश के लिये तुझे टुकड़े २ काट देंगे, शत्रुओं के रुलाने वाला रावण ऐसा कठोर वाक्य कहकर ॥ १४ ॥ फिर क्रुद्ध हुआ राक्षसियों से यह वचन बोला, बेरूप भयङ्कर दर्शनवाली मांस और रुधिर के खानेवाली राक्षसियें इसके दर्प को शीघ्र दूर करें, उसका वचन सुनते ही वह जानकी को घेर लेती भई ॥ १५, १६ ॥ तब रावण चरणों के प्रहार से पृथिवी को मानों फोड़ता हुआ उन भयङ्कर दर्शनवाली राक्षसियों को बोला ॥१७॥ अशोक

वाटिका में मैथिली को लेजाओ, तुम वहां चारों ओर से घेरकर इसकी गुप्त रक्षा करो ॥ १८ ॥ वहां इसे घोर झिडकों से और तसल्लियों से जंगली हथिनी की तरह वश में लाओ ॥१९॥रावण से आज्ञा दी हुई वह राक्षसियें मैथिली को लेकर अशोकवनिका को गईं ॥ २० ॥ जो सर्व रसों के फलोंवाले वृक्षों से और नाना पुष्प फलों से भरी हुई है, और सर्व काल में मस्त पक्षियों से सेवित है ॥ २१ ॥ पर मैथिली वहां उन विरूप नेत्रोंवाली राक्षसियों से झिड़की जाती हुई सुख नहीं पाती, प्यारे पति को और देवर को स्मरण करती हुई बेहोश होगई ॥ २२ ॥

सर्ग ४७ (व० ५७, ५८) राम का आश्रम में लौटना

मूल–राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम् । निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि न्यवर्तत ॥१॥"काञ्चनश्च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्रमात्तु माम् । दूरं नीत्वाऽथ मारीचो राक्षसोऽभूच्छराहतः ॥ २ ॥ हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्याजहार ह । अपि स्वस्ति भवेद्द्वाभ्यां रहिताभ्यां मया वने ॥ ३ ॥ जनस्थाननिमित्तं हि कृतवैरोऽस्मि राक्षसैः " । इत्येवं चिन्तयन्रामः जगामाश्रममात्मवान् ॥ ४ ॥ ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम् । ततो विदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः ॥५॥ स दृष्ट्वा लक्ष्मणं दीनं शून्यं दशरथात्मजः । पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना ॥ ६॥ प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह । क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः ॥ ७ ॥ राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान्परिधावतः । क्व सा दुःखसहाया मे वैदेही तनुमध्यमा ॥ ८ ॥ यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमपि जीवितुम् । क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा॥ ९ ॥ कच्चिज्जीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरा मम । कच्चित्प्रव्राजनं वीर न मे मिथ्या भविष्यति॥१०॥+यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं

पुनः । संवृत्ता यदि वृत्ता मा प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण ॥ ११ ॥ सर्वथा रक्षसा तेन जिह्मेन सुदुरात्मना । वदता लक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापि जनितं भयम् ॥ १२ ॥ श्रुतश्च मन्ये वैदेह्या स स्वरः सदृशो मम । त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः ॥ १३ ॥ सर्वथा तु कृतं कष्टं सीतामुत्सृजता वने । प्रतिकर्तुं नृशंसानां रक्षसां दत्तमन्तरम् ॥ १४ ॥ दुःखिताः खरघातेन राक्षसाः पिशिताशनाः । तैः सीता निहता घोरैर्भविष्यति न संशयः ॥ १५ ॥ अहोऽस्मि व्यसने मग्नः सर्वथा रिपुनाशन । किं त्विदानीं करिष्यामि शङ्के प्राप्तव्यमीदृशम् ॥ १६ ॥ इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः । आजगाम जनस्थानं त्वरया सहलक्ष्मणः ॥ १७ ॥ विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपं क्षुधाश्रमेणैव पिपासया च । विनिःश्वसञ्छुष्कमुखो विषण्णःप्रतिश्रयं प्राप्य समीक्ष्य शून्यम् ॥ १८ ॥ स्वमाश्रमं स प्रविगाह्य वीरो विहारदेशाननुसृत्य कांश्चित् । एतत्तदित्येव निवासभूमौ प्रहृष्टरोमा व्यथितो बभूव ॥

(अब कवि राम का वृत्तान्त कहता है):—

टीका—मृगरूप से विचरते हुए कामरूपी मारीच राक्षस को मारकर राम जल्दी मार्ग में लौटा ॥ १ ॥ और यह सोचता हुआ वह जितेन्द्रिय आश्रम की ओर आया, कि "यह सोनेका हिरण बन कर मुझे आश्रम से निकाल कर दूर ले जाकर तीरों से मारा हुआ मारीच राक्षस बन गया, और उसने हा लक्ष्मण मैं मरा गया" यह ऊंचे कहा, सो परमात्मा करे कि मुझ से रहित हुए दोनों को बन में कल्याण हो, जनस्थान के निमित्त मैंने राक्षसों से वैर किया है ॥ २, ३, ४ ॥ तब उसने मुरझाए हुए चेहरेवाले लक्ष्मण को आते हुए देखा, और उसके अनन्तर वह लक्ष्मण पास आकर राम से मिला ॥ ५ ॥ वह धर्मात्मा दशरथसुत लक्ष्मण को सीता के बिना देखकर

पूछता भया ॥ ६ ॥ जो दण्डक बन को प्रस्थित हुए मेरे पीछे आई, हे लक्ष्मण वह वैदेही कहां है, कि उसे छोड़कर तू यहां आया है ॥ ७ ॥ राज्य से भ्रष्ट हुए दीन हुए दण्डकों की ओर दौड़ते हुए की मेरी वह दुःख की साथन सूक्ष्म मध्यवाली वैदेही कहां है ॥ ८ ॥ जिसके बिना हे वीर मैं एक मुहूर्त भी नहीं जी सक्ता हूं, कहां वह मेरी प्राणों की साथन देवकन्या के तुल्य सीता है ॥ ९ ॥ क्या मेरे प्राणों से बढ़कर प्यारी वैदेही जीती है, क्या हे वीर मेरा निकाला जाना मिथ्या तो नहीं होगा॥१०॥ यदि जीती है वैदेही तो मैं फिर आश्रम को जाऊंगा, और यदि वह सती मर गई है, तो हे लक्ष्मण प्राणों को त्याग दूंगा ॥ ११ ॥ सर्वथा उस कुटिल दुर्जन राक्षस ने " हा लक्ष्मण " ऐसा ऊंचे कहकर तुझे भी भय उत्पन्न कर दिया ॥ १२ ॥ और मैं समझता हूं, कि वह मेरे सदृश स्वर वैदेही ने भी सुना है, और डरकर तुझे भेजा है और तू मुझे देखने के लिये शीघ्र आया है ॥ १३॥ सीता को बन में छोड़ते हुए तूने सर्वथा कष्ट किया है, बदला लेना चाहते हुए दुष्ट राक्षसों को अवकाश दे दिया है ॥ १४ ॥ खर के बध से दुःखित राक्षस जोकि रुधिर पीने वाले भयङ्कर हैं, उन्होंने निःसन्देह सीता को मार डाला होगा ॥ १५ ॥ अहो हे शत्रुनाशन सर्वथा बड़ी विपत्ति में डूबा हूं, पर अब क्या करूं, स्यात् हमें ऐसा ही भुक्तना होगा ॥ १६ ॥ इसप्रकार उस वरारोहा सीता को चिन्तन करता हुआ ही राम जल्दी लक्ष्मण के साथ जनस्थान को आया ॥ १७ ॥ क्षुधा से श्रम से और प्यास से आर्त रूप छोटे भाई को निन्दता हुआ, आहें भरता हुआ, सूखे हुए मुखवाला, डिगे हुए मनवाला, राम निवासस्थान पर पहुंच और उसे शून्य देखकर ॥ १८ ॥ अपने आश्रम को सारा अवगाहन करके वह

वीर कई विहार (घूमने फिरने के) स्थानों को ढूंढकर उस निवास भूमि में "यह,वह" (यह उसकी क्रीड़ा का स्थान है, स्यात् यहां हो, वह उसके फूल चुनने का स्थान है, कदाचित् वहां हो, इत्यादि) यही कहता हुआ बड़ा दुःखित हुआ और उसके रोंगटे खड़े होगए॥१९

सर्ग ४८ (व० ६१) सीता का न पाना और राम का विलाप

मूल—दृष्ट्वाश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः । रहितां पर्णशालां च प्रविद्धान्यासनानि च ॥ १ ॥ अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं सन्निरीक्ष्य च सर्वशः । उवाच रामः प्राक्रुश्य प्रगृह्य रुचिरौ भुजौ ॥ २ ॥ क्व नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता । केनाहृता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया ॥ ३ ॥ वृक्षेणावार्य यदि मां सीते हसितुमिच्छसि । अलं ते हसितेनाद्य मां भजस्व सुदुःखितम् ॥ ४ ॥ यैः परिक्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः । एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्राविलेक्षणाः ॥ ५ ॥ सीतया रहितोऽहं वै नहि जीवामि लक्ष्मण ॥ ६ ॥ वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् । परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता ॥ ७ ॥ कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः । अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः ॥ ८ ॥ कामवृत्तमनार्यं वा मृषावादिनमेव च । धिक्त्वामिति परे लोके व्यक्तं वक्ष्यति मे पिता ॥ ९ ॥ मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्तिर्नरमिवानृजुम् । क्व गच्छसि वरारोहे मामोत्सृज सुमध्यमे ॥ १० ॥ त्वया विरहितश्चाहं त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः । इतीव विलपन्रामः सीतादर्शनलालसः ॥ ११ ॥ न ददर्श सुदुःखार्तो राघवो जनकात्मजाम् । अनासादयमानं तं सीताशोकपरायणम् ॥ १२ ॥ पङ्कमासाद्य विपुलं सीदन्तमिव कुञ्जरम् । लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया ॥ १३ ॥ मा विषादं महाबुद्धे कुरु यत्नं मया सह । इदं गिरिवरं वीर बहुकन्दरशोभितम् ॥ १४ ॥ प्रियकाननसंचारा वनोन्मत्ता च मैथिली ।

सा वनं वा प्रविष्टा स्यान्नलिनीं वा सुपुष्पिताम् ॥ १५ ॥ सरितं वापि संप्राप्ता मीनवञ्जुलसेविताम् । वित्रासयितुकामा वा लीना स्यात्कानने क्वचित् ॥ १६ ॥ जिज्ञासमाना वैदेही त्वां मां च पुरुषर्षभ । तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन्क्षिप्रमेव यतावहे ॥ १७ ॥ वनं सर्वं विचिनुवो यत्र सा जनकात्मजा । मन्यसे यदि काकुत्स्थ मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ १८ ॥ एवमुक्तः स सौहार्दाल्लक्ष्मणेन समाहितः । सह सौमित्रिणा रामो विचेतुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥ ततो वनानि गिरींश्चैव सरितश्च सरांसि च । निखिलेन विचिन्वन्तौ सीतां दशरथात्मजौ ॥ २० ॥ तस्य शैलस्य सानूनि शिलाश्च शिखराणि च । निखिलेन विचिन्वन्तौ नैव तामभिजग्मतुः ॥ २१ ॥ विचित्य सर्वतः शैलं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । वनं सुविचितं सर्वं पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः ॥ २२ ॥ गिरिश्चायं महाप्राज्ञ बहुकन्दरनिर्झरः । नहि पश्यामि वैदेहीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥ २३ ॥ एवं स विलपन्रामः सीताहरणकर्शितः । दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत् ॥ २४ ॥ बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः । हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः ॥ २५ ॥ सान्त्वयामास ततो लक्ष्मणः प्रियबान्धवम् । बहुप्रकारं शोकार्तः प्रश्रितः प्रश्रिताञ्जलिः ॥ २६ ॥ अनादृत्य तु तद्वाक्यं लक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् । अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत्स पुनः पुनः २७

टीका--दशरथसुत राम आश्रम को शून्य, पर्णशाला को खाली और आसनों को इधर उधर फैंका हुआ देखकर ॥ १ ॥ और वहां वैदेही को न देखकर सारे ढूंढकर राम दोनों सुन्दर भुजाओं को ऊंचे उठाकर पुकारकर बोला ॥ २ ॥ कहां है लक्ष्मण वैदेही यहां से किस स्थान को गई वा किसने हरी है, वा हे सौमित्रे किसने प्यारी भक्षण करली है ॥ ३ ॥ हे सीते यदि वृक्ष से अपने आप को ढांपकर मुझ से हंसना चाहती है, तो आज तुझे हंसी से बस है,

मेरे पास आ, मैं अत्यन्त दुःखित हूं॥ ४॥ हे सीते! जिन विश्वस्त मृग बच्चों के साथ क्रीड़ा किया करती है, यह वह तुझसे हीन हुए हे सौम्ये! आंसुओं से भरी हुई आंखों से तुझे चिन्तन कर रहे हैं॥५॥ हे लक्ष्मण! सीता से रहित हुआ मैं जीता नहीं रहूंगा॥ ६॥ सीता-हरण से उत्पन्न हुए बड़े शोक से युक्त मुझको महाराज मेरा पिता निःसन्देह परलोक में देखेगा॥७॥(कहेगा कि) कैसे प्रतिज्ञा करके मुझ से आज्ञा दिया हुआ उतने काल को पूरा न करके मेरे पास यहां आया है॥ ८॥ अपनी मर्जी पर चलने वाले असत्यवादी मुझ अनार्य को परलोक में मेरा पिता "तुझे धिक्कार हो" ऐसे स्पष्ट कहेगा ॥ ९॥ कुटिल पुरुष को कीर्त्ति की तरह मुझ दीन को छोड़कर हे वरारोहे! तू कहां जाती है, हे सुमध्यमे! मुझे मत त्याग॥ १०॥ तुझसे रहित हुआ मैं अपना जीवन त्याग दूंगा, इसप्रकार विलपते हुए सीता के दर्शन की लालसा वाले॥ ११॥ बड़े दुःखित हुए जनकसुता को न पाते हुए शोकपरायण हुए॥ १२॥ बड़े कीचड़ में फंसकर हाथी की तरह दुःखित हुए राम को लक्ष्मण हितकामना से उत्तम अर्थवाला वाक्य बोला॥ १३॥ हे महाबुद्धे! विषाद मतकर, मेरे सहित यत्नकर, यह पर्वतवर हे वीर बहुत कन्दराओं से शोभित है॥१४॥ और सीता को वनों में घूमना प्यारा है, फूले हुए वनों में प्रसन्न होती है, सो वन में गई होगी वा फूली हुई पद्मिनी में गई होगी॥ १५॥ अथवा मछलियों और बैतों से सेवित नदी पर गई होगी, अथवा डरकर कहीं वनमें घुसी होगी॥१६॥ तुझे और मुझे हे पुरुषश्रेष्ठ! ढूंढती होगी सो हे श्रीमान् उसके ढूंढने में हम जल्दी यत्न करें॥ १७॥ सारे वन को ढूंढते हैं जहां वह जनकात्मजा है शोक में मन को मत डाल॥१८॥लक्ष्मण से इस प्रकार सौहार्द से कहा हुआ राम चित्त को थामकर लक्ष्मण सहित

ढूंढने लगा ॥ १९ ॥ वह दोनों दशरथसुत बन पर्वत नदी और सरोवरों में सीता को पूरा २ ढूंढते भए ॥ २० ॥ उस पर्वत की चोटियां, शिलाएं, और शिखरों को उन्होंने पूरा २ ढूंढा, पर उसे नहीं पाया ॥ २१ ॥ पर्वत को सारा ढूंढकर राम लक्ष्मण से बोला, सारा बन ढूंढ मारा है, और यह फूले कमलोंवाली पद्मिनियें ॥२२॥ तथा बहुत कन्दरा और झरणों वाला यह पर्वत भी (ढूंढा है) पर कहीं भी प्राणप्यारी सीता को नहीं देखता हूं॥२३॥ इसप्रकार विलाप करता हुआ सीता के हरे जाने के शोक से दुर्बल हुआ दीन हुआ शोक से भरा हुआ थोड़ी देर बहुत घबरा गया॥२४॥ वह कमल-नेत्र राम बार २ आहें भरकर आंसुओं से गद्गद हो, "हा प्यारी" ऐसे बहुत बार पुकारता भया ॥ २५ ॥ लक्ष्मण शोक से पीड़ित हो हाथ जोड़कर भाइयों से प्यार करनेवाले भाई को बहुत प्रकार से तसल्ली देता भया ॥ २६ ॥ पर लक्ष्मण के होठों से निकले उस वाक्य का आदर न करके प्यारी सीता को न देखता हुआ बार बार पुकारता भया ॥ २७॥

सर्ग ४९ (व० ६२) राम का विलाप

मूल—पश्यन्निव च तां सीतामपश्यन्मन्मथार्दितः। उवाच राघवो वाक्यं विलापाश्रयदुर्वचः ॥ १ ॥ त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रियतरा प्रिये । आवृणोषि शरीरं ते मम शोकविवर्धनी ॥ २ ॥ कदलीकाण्डसदृशौ कदल्या संवृत्तावुभौ । ऊरू पश्यामि ते देवि नासि शक्ता निगूहितुम् ॥ ३ ॥ कर्णिकारवनं भद्रे हसन्ती देवि सेवसे । अलं ते परिहासेन मम बाधावहेन वै ॥ ४ ॥ विशेषेणाश्रमस्थाने हासोऽयं प्रशस्यते । अवगच्छामि ते शीलं परिहासप्रियं प्रिये ॥ ५ ॥ आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव । सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हृतापि वा ॥६॥ नहि सा विलपन्तं मामुपसंप्रेति

लक्ष्मण । एतानि मृगयूथानि साश्रुनेत्राणि लक्ष्मण ॥७॥ शंसन्तीव हि मे देवीं भक्षितां रजनीचरैः । हा ममार्ये क्व यातासि हा साध्वि वरवर्णिनि ॥ ८ ॥ कथं नाम प्रवेक्ष्यामि शून्यमन्तःपुरं मम । निर्वीय इति लोको मां निर्दयश्चेति वक्ष्यति ॥ ९ ॥ कातरत्वं प्रकाशं हि सीतापनयनेन मे ॥ १० ॥ निवृत्तवनवासश्च जनकं मिथिलाधिपम् । कुशलं परिपृच्छन्तं कथं शक्ये निरीक्षितुम् ॥ ११ ॥ विदेहराजो नूनं मां दृष्ट्वा विरहितं तया । सुताविनाश-संतप्तो मोहस्य वशमेष्यति ॥ १२ ॥ अथवा न गमिष्यामि पुरीं भरतपालिताम् । स्वर्गोऽपि हि तया हीनः शून्य एव मतो मम ॥ १३ ॥ तान्मामुत्सृज्य हि वनं गच्छायोध्यापुरीं शुभाम् । न त्वहं तां विना सीतां जीवेयं हि कथंचन ॥ १४ ॥ गाढमाश्लिष्य भरतो वाच्यो मद्वचनात्त्वया । अनुज्ञातोऽसि रामेण पालयेति वसुन्धराम् ॥ १५ ॥ अम्बा च मम कैकेयी सुमित्रा च त्वया विभो । कौशल्या वा यथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया ॥ १६ ॥ रक्षणीया प्रयत्नेन भवता सूक्तचारिणा ॥ १७ ॥ सीतायाश्च विनाशोऽयं मम चामित्र सूदन । विस्तरेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वया भवेत् ॥ १८ ॥ इति विलपति राघवे तु दीने वनमुपगम्य तया विना सुकेश्या । भयवि-कलमुखस्तु लक्ष्मणोऽपि व्यथितमना भृशमातुरो बभूव ॥ १९ ॥

टीका—(अब कवि वृत्ति के सीता में लग जाने से उसके दीखने की भ्रान्तियां जो राम को होती हैं, उनका वर्णन करता है) उस सीता को न देखता हुआ भी मानों देखता हुआ कामपीड़ित राम विलाप के साथ गद्गद वचन बोलता भया ॥ १ ॥ फूलों की प्यारी तू हे मेरी प्यारी अशोक की शाखाओं से अपने शरीर को ढांपती है और मेरे शोक को बढ़ाती है ॥२॥ केले से ढके हुए केले के स्तम्भ सदृश तेरे दोनों ऊरुओं को देखता हूं, हे देवि ! तू मुझसे

अपने आपको छिपा नहीं सकती है ॥ ३ ॥ हे भद्रे ! तू हंसती हुई कर्णिकार बन में फिर रही है, हे देवि ! मुझे पीड़ा देनेवाली हंसी से बसकर ॥ ४ ॥ विशेष करके आश्रम स्थान में यह हंसी अच्छी नहीं है, हे प्यारी ! हंसी के प्यारे तेरे स्वभाव को मैं जानता हूं ॥ ५ ॥ आ हे विशालनेत्रे ! तेरे बिना यह झोंपड़ी शून्य है। हा! यह स्पष्ट जान पड़ता है, कि राक्षसों ने सीता खाली है वा हरली है ॥ ६ ॥ मेरे विलाप करते हुए के वह पास नहीं आती है, लक्ष्मण यह मृगयूथ आंसुओं से नेत्रों को भरकर ॥ ७ ॥ मानों मुझे कह रहे हैं, कि देवीको राक्षसों ने खालीया है हा मेरी आर्ये! तू कहां चली गई है, हा पतिव्रते सुन्दरि ॥ ८ ॥ कैसे मैं अपने शून्य अन्तःपुर में प्रवेश करूंगा, मुझे लोग निर्वीर्य और निर्दय कहेंगे ॥ ९ ॥ सीता के चुराया जाने से मेरी कायरता स्पष्ट है ॥ १० ॥ बनवास से लौटे हुए मुझको कुशल पूछते हुए मिथिलाऽधिपति जनक को मैं कैसे देख सकूंगा ॥ ११ ॥ विदेहराज निःसन्देह मुझे उससे रहित देखकर पुत्री के विनाश से संतप्त हुआ मूर्छा को प्राप्त होगा॥१२॥ अथवा मैंभरत से पालित पुरी को नहीं जाऊंगा, स्वर्ग भी सीता से हीन मुझे शून्य ही है ॥ १३ ॥ सो तू हे (लक्ष्मण) मुझे बन में छोड़कर शुभ अयोध्यापुरी को जा, मैं सीता के बिना किसी तरह जीता नहीं रहूंगा ॥१४ ॥ भरत को गाढ आलिंगन करके मेरे वचन से कहना, कि राम ने तुझे अनुज्ञा दी है " तू पृथिवी को पालन कर " ॥१५॥और हे समर्थ ! मेरी माता कैकयी और सुमित्रा और कौसल्या को यथायोग्य अभिवादन किया करना ॥ १६ ॥ और मेरी आज्ञा से उनका कहा मानते हुए अपने यत्न से उनकी रक्षा करना ॥ १७ ॥ सीता का विनाश और मेरा विनाश हे शत्रुओं के मारनेवाले, विस्तार के साथ तूने मेरी जननी को बतलाना॥१८॥

इसप्रकार उस सुन्दर व कोंबाली के विना वन में राम के दीन विलाप करते हुए लक्ष्मण भी भय से पीत मुखवाला हुआ दुःखितमन और अतीव पीड़ित हुआ ॥ १९ ॥

सर्ग ५० (व० ६३) अधिक विलाप

मूल–स राजपुत्रः प्रियया विहीनः शोकेन मोहेन च पीड्यमानः विषादयन्भ्रातरमार्त्तरूपो भूयो विषादं प्रविवेश तीव्रम् ॥ १ ॥ स लक्ष्मणं शोकवशाभिपन्नं शोके निमग्नो विपुले तु रामः । उवाच वाक्यं व्यसनानुरूपमुष्णं विनिःश्वस्य रुदन्सशोकम्॥२॥+न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम् । शोकानुशोको हि परम्पराया मामेति भिन्दन्हृदयं मनश्च ॥३॥ +पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि । तत्रायमद्यापतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि ॥४॥+ राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो जननीवियोगः । सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगमापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि ॥ ५ ॥+सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं शान्तं शरीरे वनमेत्य क्लेशम् । सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णं काष्ठैरिवाग्निः सहसोपदीप्तः ॥ ६ ॥ मया विहीना विजने वने सा रक्षोभिराहृत्य विकृष्यमाणा । नूनं विनादं कुररीव दीना सा मुक्तवत्यायतकान्तनेत्रा ॥ ७ ॥ अस्मिन्मया सार्धमुदारशीला शिलातले पूर्वमुपोपविष्टा । कान्तस्मिता लक्ष्मण जातहासा त्वामाह सीता बहुवाक्यजातम् ॥ ८ ॥ गोदावरीयं सरितां वरिष्ठा प्रिया प्रियाया मम नित्यकालम् । अप्यत्र गच्छेदिति चिन्तयामि नैकाकिनी याति हि सा कदाचित् ॥ ९ ॥ पद्मानना पद्मपलाशनेत्रा पद्मानिवानेतुमभिप्रयाता । तदप्ययुक्तं नहि सा कदाचिन्मया विना गच्छति पङ्कजानि ॥ १० ॥ कामं त्विदं पुष्पितवृक्षषण्डं नानाविधैः पक्षिगणैरुपेतम् । वनं प्रयाता नु तदप्ययुक्तमेकाकिनी सातिबिभेति भीरुः ॥ ११ ॥ आदित्य भो लोककृताकृतज्ञ लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन्।

मम प्रिया सा क्व गता हृता वा शंस स्व मे शोकहतस्य सर्वम्॥१२॥
लोकेषु सर्वेषु न नास्ति किंचिद्यत्ते न नित्यं विदितं भवेत्तत। शंसस्व
वायो कुलपालिनीं तां मृता हृता वा पथि वर्तते वा ॥ १३ ॥

टीका–वह राजपुत्र प्रिया से हीन हुआ, शोक और मोह से पीड़ित हुआ फिर तीव्र विषाद में प्रविष्ट हुआ और पीड़ित भाई को अधिक विषाद में डाल देता भया॥१॥वह बड़े शोक में डूबा हुआ राम रोता हुआ शोक से गर्म आह भरकर शोक से पीड़ित लक्ष्मण को अपनी विपद के अनुरूप वचन बोला ॥ २ ॥ मैं जानता हूं कि मेरे जैसा पृथिवी पर कोई दूसरा पापी नहीं है, क्योंकि लगातार शोक के पीछे शोक मेरे हृदय और मेरे मन को फोड़ता हुआ आरहा है ॥ ३ ॥ पूर्व मैंने निःसन्देह मनमाने पापकर्म बार बार किये हैं, उनका यह आज फल मिल रहा है, जो मैं दुःख से दुःख में प्रवेश करता हूं ॥ ४ ॥ राज्य का नाश, अपने जनों से वियोग, पिता का विनाश, और माता का वियोग, यह सब चिन्तन किये हुए हे लक्ष्मण मेरे शोक के वेग को भरदेते हैं ॥ ५ ॥ यह मेरा सारा दुःख है पर हे लक्ष्मण वन में आकर यह सारा क्लेश शरीर में ठंडा होगया, सीता के वियोग से वह लकड़ियों से सहसा चमके हुए अग्नि की तरह फिर बढ़गया है ॥६ ॥ वह विशाल सुन्दर नेत्रोंवाली मुझसे हीन हुई निर्जन वन में राक्षसों से इधर उधर खींची जाती हुई निःसन्देह दीन हो कुररी की तरह शब्द करती भई होगी ॥ ७ ॥ इस शिलातल पर वह उदारशीला मेरे साथ पहले बैठी, और वह सुन्दर हंसीवाली हंसती हुई हे लक्ष्मण तुझे बहुत सी बातें कहती भई ॥ ८ ॥ नदियों में यह श्रेष्ठ गोदावरी मेरी प्यारी को सदा प्यारी है, सम्भव है, कि वह यहां गई हो, पर नहीं, क्योंकि वह अकेली कभी नहीं जाया करती है ॥ ९ ॥ पद्म-

मुखी पद्मपत्र तुल्य नेत्रोंवाली पद्म लेने के लिये वनको गई होगी, पर यह भी युक्त नहीं, क्योंकि मेरे बिना वह कभी पद्मों को नहीं जाती है ॥ १० ॥ हां यह जो फूले हुए वृक्षों का समूह नानाविध पक्षी गणों से युक्त है, इस वन में (फूल तोड़ने) गई होगी, पर यह भी युक्त नहीं, क्योंकि वह भीरु अकेली बहुत डरा करती है ॥ ११ ॥ हे सूर्य लोगों के कृताकृत के जाननेवाले लोगों के सच्चे झूठे कर्म के साक्षिन्! वह मेरी प्यारी कहां गई है, वा हरी गई है, मुझे सारा वृत्तान्त कहो, मैं शोक से हत हूं ॥ १२ ॥ हे वायो सारे लोकों में कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो सदा तुझे विदित न हो, मुझे उस कुलपालिनी का पता दे. क्या वह मर गई, वा हरी गई, वा कहीं रस्ते में भटकती फिरती है ॥ १३ ॥

सर्ग ५१ (व० ६६) लक्ष्मण का राम को तसल्ली देना

मूल–तं तथा शोकसंतप्तं विलपन्तमनाथवत् । मोहेन महता युक्तं परिद्यूनमचेतसम् ॥ १ ॥ ततः सौमित्रिराश्वास्य मुहूर्तादिव लक्ष्मणः । रामं सम्बोधयामास चरणौ चाभिपीडयन् ॥ २ ॥ महता तपसा चापि महता चापि कर्मणा । राज्ञा दशरथेनासील्लब्धोऽमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥ तव चैव गुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः । राजा देवत्वमापन्नो भरतस्य यथाश्रुतम् ॥ ४ ॥ यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे । प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यते ॥ ५ ॥ +आश्वसिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः । संस्पृशन्त्यग्निवद्राजन्क्षणेन व्यपयान्ति च ॥ ६ ॥ सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ । न दैवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः ॥ ७ ॥ तत्त्वतो हि नरश्रेष्ठ बुद्ध्या समनुचिन्तय । बुद्ध्या युक्ता महाप्राज्ञा विजानन्ति शुभाशुभे ॥ ८ ॥ मामेव हि पुरा वीर त्वमेव बहुशोक्तवान् । अनुशिष्याद्धि को नु त्वामपि साक्षाद्बृहस्पतिः ॥ ९ ॥ बुद्धिश्च ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्वया । शोकेनाभिप्रसुप्तं ते ज्ञानं सम्बोधयाम्यहम् ॥ १० ॥

टीका--शोक से तपे हुए अनाथ की तरह विलाप करते हुए बड़े मोह से युक्त हुए दुर्बल हुए, शून्य चित्त राम को ॥ १ ॥ जल्दी ही सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण तसल्ली देकर उसके चरणों को पकड़ कर सावधान करता भया ॥ २ ॥ बड़े तप से बड़े कर्म (यज्ञ) से राजा दशरथ ने देवताओं से अमृत की तरह आपको पाया है ॥ ३ ॥ आपके गुणों से बन्धा हुआ महीपति राजा आपके वियोग से देवभाव को प्राप्त हुआ है (स्वर्ग को गया है) जैसा कि भरत से सुन चुके हैं ॥ ४ ॥ सो हे काकुत्स्थ ! यदि इस आए दुःख को आप न सहारेंगे, तब दूसरा थोड़े धैर्यवाला प्राकृत पुरुष कौन सहारेगा ॥ ५ ॥ तसल्ली कीजिये हे नरश्रेष्ठ ! किस जीवधारी को आपत्तियें नहीं आती हैं, हे राजन् अग्नि की तरह छूती हैं और क्षण में चली जाती हैं ॥ ६ ॥ बड़े २ प्राणधारी और देवता भी हे पुरुषश्रेष्ठ ! देहधारी सभी प्राणी दैव से नहीं छूटते हैं ॥ ७ ॥ हे नरश्रेष्ठ! बुद्धि से ठीक २ चिन्तन करके बुद्धि से युक्त महाप्राज्ञ पुरुष शुभ अशुभ को जान लेते हैं ॥ ८ ॥ मुझे इसप्रकार हे वीर ! आपही अनेक बार कह चुके हैं, आपको कौन शिक्षादे, चाहे साक्षात् बृहस्पति भी हो ॥ ९ ॥ हे महाप्राज्ञ ! आपकी बुद्धि को देवता भी नहीं पहुंच सक्ते हैं, शोक से सोई हुई आपकी समझ को मैं जगाता हूं ॥ १० ॥

सर्ग ५२ (व० ६७) जटायु से सीता का वृत्तान्त सुनना

मूल–पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम् । सारग्राही महासारं प्रतिजग्राह राघवः ॥ १ ॥ किं करिष्यावहे वत्स क्व वा गच्छाव लक्ष्मण । केनोपायेन पश्यावः सीतामिह विचिन्तय ॥ २ ॥ तं तया परितापार्तं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ३ ॥ इत्युक्तस्तद्वनं सर्वं विचचार सलक्ष्मणः ।

ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् ॥ ४ ॥ तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः ॥ ५ ॥ एनं वधिष्ये दीप्ताग्रैः शरैर्घोरैरजिह्मगैः । इत्युक्त्वाभ्यपतद्द्रष्टुं संधाय धनुषि क्षुरम् ॥ ६ ॥ तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् । अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम् ॥ ७ ॥ + यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने । सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥ ८ ॥ त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव । ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥ ९ ॥ एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरास्तथा । अयमस्य रणे राम भग्नः सांग्रामिको रथः ॥ १०॥ परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः । सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम् ॥ ११ ॥ रक्षसा निहतं पूर्वं मां न हन्तुं त्वमर्हसि ॥१२॥+ रामस्तस्य तु विज्ञाय सीतासक्तां प्रियां कथाम् । गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः ॥ १३ ॥+ निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः । द्विगुणीकृततापार्तो रामो धीरतरोऽपि सन् ॥ १४ ॥ एकमेकायनं कृच्छ्रे निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः । समीक्ष्य दुःखितो रामः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥१५॥+राज्यं भ्रष्टं वने वासः सीता नष्टा मृतो द्विजः । ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्दहेदपि हि पावकम् ॥१६॥+सम्पूर्णमपि चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम् । सोऽपि नूनं ममालक्ष्म्या विशुष्येत्सरितां पतिः ॥१७॥+ नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन्सचराचरे । येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा ॥१८॥ अयं पितुर्वयस्यो मे गृध्रराजो महाबलः । शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात् ॥ १९ ॥ इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः । जटायुषं च पस्पर्श पितृस्नेहं निदर्शयन् ॥ २० ॥

टीका—लक्ष्मण से सुन्दर रीति से कहे इस वाक्य को सुनकर सारग्राही बड़ा भाई राम भी उसके महासार को ग्रहण करता भया ॥

१ ॥ हे वत्स लक्ष्मण हम क्या करें, कहां जाएं, किस उपाय से सीता का पता लगाएं, यह सोच ॥ २ ॥ इसतरह दुःख से पीडित राम को लक्ष्मण यह वाक्य बोला, इसी जनस्थान को आप ढूंढने योग्य हैं ॥ ३ ॥ ऐसे कहा हुआ राम लक्ष्मण के साथ सारे वन में विचरता भया । और लहू से लिबड़े हुए जटायु को भूमि पर गिरा हुआ देखा ॥ ४ ॥ पर्वत के किंगरे के तुल्य उस (बड़े डील वाले) को देखकर राम लक्ष्मण से बोला, इसने वैदेही सीता खाली है, इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥ इसको जलते हुए अग्र वाले सीधा जाने वाले भयंकर तीरों से मारूंगा, यह कहकर धनुष में तीक्ष्ण बाण जोड़कर देखने के लिये उसकी ओर दौड़ा ॥ ६ ॥ वह पक्षी अति-दीन वाणी से फेन सहित रुधिर छोड़ता हुआ दशरथपुत्र राम से बोला॥ ७ ॥ हे आयुष्मन्! जिसको आप (संजीवनी) ओषधि की तरह इस महावन में ढूंढते हैं, वह देवी और मेरे प्राण दोनों रावण ने हरे हैं ॥ ८ ॥ तुझसे और लक्ष्मण से रहित हुई वह देवी हे राघव ! मैंने महाबली रावण से हरी जाती हुई देखी ॥ ९ ॥ यह उसका धनुष टूटा पड़ा है, यह उसके तीर हैं, और यह उसका हे राम रण में सांग्रामिक रथ टूटा हुआ है ॥ १० ॥ पर जब मैं थक गया, तब मेरी भुजाओं को रावण खड्ग से काटकर वैदेही सीता को लेकर आकाश में उड़गया है ॥ ११ ॥ राक्षस से पूर्व ही मारे हुए मुझको आप मारने योग्य नहीं हैं ॥ १२ ॥ राम उससे सीता सम्बन्धी प्यारी कथा को सुनकर गृध्रराज को कण्ठ लगाकर और बड़े धनुष को त्यागकर ॥ १३ ॥ बेबस हुआ भूमि पर गिर पड़ा और लक्ष्मण समेत बहुत रोया, और दुगने सन्ताप से पीड़ित हुआ, यद्यपि बड़ा धैर्यवाला था ॥ १४ ॥ अकेले, अकले के जाने वाले कष्ट मार्ग (परलोक के मार्ग) में बार २ सांस लेते हुए को

देखकर दुःखित राम सौमित्रि से बोला ॥ १५ ॥ राज्य भ्रष्ट हुआ वन में वास हुआ, सीता खोई गई, द्विज (जटायु) मरा, ऐसी मेरी (दुष्कर्मों की) अलक्ष्मी अग्नि को भी जलादे (क्या फिर मेरी श्री का) ॥ १६ ॥, आज, यदि मैं सारे महासागर को भी तैर जाऊं, तो वह भी नदियों का पति निःसन्देह मेरी अलक्ष्मी से सूख जाए ॥ १७ ॥ इस चर अचर वाले जगत् में मुझसे बढ़कर कोई अभागा नहीं है, जिस मैंने यह बड़ी विपत्तियों की फांसी पाई है ॥ १८ ॥ यह मेरे पिता का मित्र महाबली गृध्रराज मेरे भाग्य के फेर से मरा हुआ पृथिवी पर लेट रहा है ॥ १९ ॥ इस प्रकार लक्ष्मण सहित राम बहुत कुछ कहकर पितृस्नेह दिखलाता हुआ जटायु का स्पर्श करता भया ॥ २० ॥

सर्ग ५३ (व० ६८) जटायु की मृत्यु और दाह

मूल—स निक्षिप्य शिरो भूमौ प्रसार्य चरणौ तथा । विक्षिप्य च शरीरं स्वं पपात धरणीतले ॥ १ ॥ तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमम् । रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ २ ॥ बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम् । अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा ॥ ३ ॥ अनेकवार्षिको यस्तु चिरकालसमुत्थितः । सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ४ ॥ पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे । मम हेतोरयं प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः ॥५॥ +सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम् । यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परंतप ॥ ६ ॥ राजा दशरथः श्रीमान्यथा मम महायशाः । पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः ॥ ७ ॥ सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् । गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम् ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् ।

ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥ ९ ॥ ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ । उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ १०

टीका—वह (जटायु) सिर को डालकर पाओं फैलाकर अपने शरीर को इधर उधर फैंककर धरणीतल पर गिर पड़ा ॥ १ ॥ उस लाल नेत्रोंवाले (तपस्वी होने से) गृध्र को मरा हुआ देखकर राम बड़े दुःखोंमे दीन हुआ लक्ष्मण से बोला॥ २॥ राक्षसों के वासभूत दण्डकारण्य में बहुत वरस सुख से रहकर इस पक्षी ने अब शरीर छोड़ा है ॥ ३ ॥ अनेक वरसों का हुआ चिरकाल से जन्मा हुआ वह यह आज मरकर लेटा हुआ है, काल सचमुच दुरतिक्रम है ॥ ४ ॥ देख लक्ष्मण यह मेरा उपकारी गृध्र मरा हुआ है, मेरे कारण इस पक्षीराज ने प्राण छोड़े हैं ॥ ५ ॥ सीता के हरण का दुःख हे सौम्य मुझे ऐसा नहीं हुआ, जैसे हे परन्तप ! मेरे लिए इस गृध्र का विनाश ॥ ६ ॥ जैसे महायशस्वी राजा दशरथ मेरा माननीय और पूजनीय था, वैसे मेरे लिये यह पक्षीराज है॥७॥ हे लक्ष्मण लकड़ियें ला. मैं अग्नि मथकर निकालूंगा, और इस गृध्रराज को जो मेरे अर्थ मृत्यु को प्राप्त हुआ है दाह करूंगा॥८ ॥ यह कह कर पक्षिराज को जलती चिता पर चढ़ाकर दुःखित हुआ धर्मात्मा राम अपने बन्धु की तरह जलाता भया ॥ ९ ॥ तब वह दोनों राजपुत्र गोदावरी नदी पर जाकर उस गृध्रराज के लिए उदककर्म करते भए ॥ १० ॥

सर्ग ५४ (व० ६९) कबन्ध राक्षस का बध

मूल—कृत्वैवमुदकं तस्मै प्रस्थितौ राघवौ तदा। अवेक्षन्तौ वने सीतां जग्मतुः पश्चिमां दिशम्॥ १ ॥ तां दिशं दक्षिणां गत्वा शरचापासिधारिणौ । अविप्रहतमैक्ष्वाकौ पन्थानं प्रतिपेदतुः ॥ २ ॥ गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम्। आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोर-

दर्शनम् ॥ ३ ॥ व्यतिक्रम्य तु वेगेन गृहीत्वा दक्षिणां दिशम् । सुभीमं तन्महारण्यं व्यतियातौ महाबलौ ॥ ४ ॥ ततः परं जनस्थानात्त्रिक्रोशं गम्य राघवौ । क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ ॥ ५ ॥ नानामेघघनप्रख्यं प्रहृष्टमिव सर्वतः । नानावर्णैः शुभैः पुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥ दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिन्वतुः । तत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणदुःखितौ ॥ ७ ॥ ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिक्रोशं भ्रातरौ तदा । क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे ॥८॥ दृष्ट्वा तु तद्वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम् । नानावृक्षसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम् ॥ ९ ददृशाते गिरौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ । पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम् ॥ १० ॥ तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा । संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जन्निव तद्वनम् ॥ ११ ॥ तं शब्दं कांक्षमाणस्तु रामः खड्गी सहानुजः । ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम् ॥ १२ ॥ महान्तं दारुणं भीमं कबन्धं भुजसंवृतम् । कबन्धमिव संस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥ १३ ॥ स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य विपुलौ भुजौ । जग्राह सहितावेव राघवौ पीडयन् बलात् ॥ १४ ॥ ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ । अच्छिन्दतां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशयोः ॥ १५ ॥ दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः । चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः ॥ १६ ॥ स पपात महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः । खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा ॥ १७ ॥

टीका—इसप्रकार उसके लिये उदक करके प्रस्थित हुए दोनों राघव वन में सीता को ढूंढते हुए दक्षिण पश्चिम दिशा को गए ॥ १ ॥ उस दक्षिण पश्चिम दिशा में जाकर धनुषबाण और खड्गधारी वह दोनों इक्ष्वाकुवंशी (मनुष्यों से) न चले हुए मार्ग को प्राप्त हुए ॥ २ ॥ जो बहुत से झाड़ वृक्ष और बेलों से ढका हुआ सब

ओर से घिरा हुआ दुर्गम घना भयंकर दर्शनवाला था ॥ ३ ॥ बड़े वेग से उसे लंघकर दक्षिण दिशा को पकड़कर वह महाबली बड़े भयंकर उस महावन को लंघ गये ॥ ४ ॥ उससे आगे जनस्थान से तीन कोस जाकर वह महाबली क्रौञ्चारण्य में प्रविष्ट हुए ॥ ५ ॥ जो अनेक मेघ समूह की तरह (श्याम), अनेक रंगों के सुन्दर फूलों से और मृग पक्षिगणों से युक्त मानों सब ओर से प्रसन्न था ॥ ६ ॥ सीता को देखना चाहते हुए सीता के हरण से दुःखित हुए २ वहां ठहरकर उस वन को ढूंढते भए ॥ ७ ॥ तब वह दोनों भाई पूर्व की ओर तीन कोस जाकर क्रौञ्च वन को लंघकर मार्ग के मध्य में मतङ्ग के आश्रम को देखते भए ॥ ८ ॥ बहुत भयङ्कर मृग पक्षियों से युक्त नाना वृक्षों से घिरे हुए घने वृक्षों वाले उस भयङ्कर (मतङ्ग) वन को देखकर ॥ ९ ॥ उस पर्वत में दोनों दशरथात्मज पाताल तुल्य गहरा अन्धेरे से सदा ढका हुआ एक दर देखते भए ॥ १० ॥ इसप्रकार पराक्रम से उस सारे वन को ढूंढते हुए उनके, एक बहुत बड़ा शब्द उस वन को मानों फोड़ता हुआ उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ उस शब्द का पता लगाता हुआ सहित छोटे भाई के तलवार लिए राम एक बहुत बड़े शरीरवाले विशाल छाती वाले राक्षस को देखते भए ॥ १२ ॥ बड़े ऊंचे दारुण, भयंकर, भुजाओं में जन्तुओं को लपेटे हुए, अति भयङ्कर दर्शन वाले, बनावट में कबन्ध की तरह स्थित कबन्ध नामी को देखते भए ॥ १३ ॥ वह बड़ी भुजाओं वाला अपनी विशाल भुजाओं को पूरी फैलाकर उन दोनों राघवों का बल से पीड़न करता हुआ एक साथ ही पकड़ लेता भया ॥ १४ ॥ तब वह देश काल के जानने वाले दोनों राघव अतीव प्रसन्न हुए, तलवारों से कन्धों पर से उस की भुजाओं को काटते भए ॥ १५ ॥ दाईं भुजा को चतुर राम ने

वेग से तलवार से काट दिया, और बाईं को वीर लक्ष्मण ने ॥ १६ ॥ वह बड़ी भुजाओं वाला कटी हुई भुजाओं वाला होकर बड़ी ध्वनि करता हुआ मेघ की तरह आकाश पृथिवी और दिशाओं को गुंजाता हुआ गिर पड़ा ॥ १७ ॥

सर्ग ५५ [व० ७४] भीलनी के दर्शन

मूल—तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पाया दर्शितं वने । आतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ ॥ १ ॥ तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम् । अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम् ॥ २ ॥ तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम् । सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः ॥ ३ ॥ तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ ४ ॥ पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि । तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम् ॥ ५ ॥ कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः । कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणी ॥ ६ ॥ रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता । शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता ॥ ७ ॥ अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया । अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः ॥ ८ ॥ चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः । इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम् ॥ ९ ॥ तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः । आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥ १० ॥ स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः ॥ ११ ॥ मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ । तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम् ॥ १२ ॥ शबरी दर्शयामास तावुभौ तद्वनं महत् । पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् ॥ १३ ॥ मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन । इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महाद्युते ॥ १४ ॥ जुहवांचक्रिरे नीडं मन्त्रवन्मन्त्रपूजितम् ॥ १५ ॥ कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं

त्वया । तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥ १६॥ तेषा-मिच्छाम्यहं गन्तुं समीप भावितात्मनाम् । मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी ॥ १७ ॥ तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम् । अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छ कामं यथासुखम् ॥ १८ ॥ इत्येवमुक्त्वा जटिला चीरकृष्णाजिनाम्बरा । ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम ह ॥ १९ ॥ यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः। तत्पुण्यं शबरी स्थानं जगामात्मसमाधिना ॥ २० ॥

टीका—अब वह दोनों राजपुत्र कबन्ध से बतलाए पम्पा के मार्ग में पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े, वह दोनों पम्पा सरोवर के पश्चिमी तीर पर पहुंचकर वहां भीलनी के रमणीय आश्रम को देखते भए ॥ २ ॥ बहुत वृक्षों से ढपे हुए उस सुरम्य आश्रम को पाकर शोभा निहारते हुए भीलनी के पास आए ॥ ३ ॥ वह सिद्धनी उन को देखकर उठकर हाथ जोड़कर बुद्धिमान् राम और लक्ष्मण के पाओं पकड़ती भई ॥ ४ ॥ पाद्य और आचमनीय सब यथाविधि देती भई, तब धर्म में स्थित उस भीलनी से राम बोले ॥ ५ ॥ क्या तेरे विघ्न जीते हुए हैं, क्या तेरा तप बढ़ रहा है, और क्या हे सुन्दर बोलने वाली तेरी गुरुसेवा सफल हुई है ॥ ६ ॥ वह सिद्धों से मान पाई हुई सिद्ध तपस्विनी वृद्धा भीलनी राम से एसे पूछी हुई सन्मुख स्थित हुई कहने लगी ॥ ७ ॥ आज आपके दर्शन से मेरा तप सफल हुआ है, मेरा जन्म सफल हुआ है, और गुरुओं की पूजा सफल हुई है ॥ ८ ॥ जब आप चित्रकूट में पहुंचे थे, उसी समय वह अतुल्य प्रभावाले विमानों से यहां से स्वर्ग को प्राप्त हुए जिन (के पाओं) की मैं सेवा करती रही हूं ॥ ९ ॥ (शरीर छोड़ते समय) उन धर्मज्ञ महाभाग महर्षियों ने मुझ कहा, राम तेरे इस पुण्य आश्रम में आएगा ॥ १० ॥ लक्ष्मण समेत उस

का अतिथिसत्कार करना ॥ ११ ॥ मैंने तो आपके लिये हे पुरुष-श्रेष्ठ पम्पा के किनारे पर होनेवाले भान्ति२ के जंगली फल इकट्ठे किये हैं ॥ १२ ॥ उसके पीछे भीलनी उनको वह बड़ा बन दिखलाती भई। देखिये यह जो मेघघटा के तुल्य (काला) मृग पक्षियों से भरा हुआ है ॥ १३ ॥ हे रघुनन्दन यही मतंगवन विख्यात है। हे महातेजस्वी यहां मेरे शुद्धात्मा गुरुओं ने ॥ १४ ॥ मन्त्रानुसार मन्त्रों से पूजित यज्ञ किया था ॥ १५ ॥ आपने यह सारा बन देख लिया और सुनने योग्य बात सुनली, सो आप से अनुज्ञा दी हुई इस शरीर को छोड़ना चाहती हूं ॥ १६ ॥ उन शुद्धात्मा मुनियों के पास जाना चाहती हूं, जिनका यह आश्रम है, जिनकी मैं सेवक रही हूं ॥ १७ ॥ तब उस तीक्ष्ण व्रतोंवाली भीलनी से राम बोले, हे सुभद्रे तुझसे मेरी पूजा (अतिथि पूजा) होचुकी इच्छानुसार सुख से जा ॥ १८ ॥ ऐसा कहने पर वह जटावाली चीर और काला मृगान पहने हुई जलती हुई अग्नि के तुल्य(तेजवाली) स्वर्गको प्राप्त हुई ॥ १९ ॥ जहां वह पुण्यात्मा महर्षि (उसके गुरु) विचरते हैं, भीलनी आत्मसमाधि से उस पुण्यस्थान को चली गई ॥ २० ॥

सर्ग ५६ (व० ७५) राम लक्ष्मण का पम्पा पर वापिस आना

मूल—चिन्तयित्वा तु धर्मात्मा प्रभावं तं महात्मनाम्। हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ प्रनष्टमशुभं यन्नः कल्याणं समुपस्थितम्। तेन त्वेतत्प्रहृष्टं मे मनो लक्ष्मण संप्रति ॥ २ ॥ हृदये मे नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति। तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम् ॥ ३ ॥ ऋष्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते। यस्मिन्वसति धर्मात्मा सुग्रीवोऽशुमतः सुतः ॥ ४ ॥ अहं त्वरे च तं द्रष्टुं सुग्रीवं वानरर्षभम्। तदधीनं हि मे कार्यं सीतायाः परिमा-

र्गणम् ॥ ५ ॥ इति ब्रुवाणं तं वीरं सौमित्रिरिदमब्रवीत् । गच्छावस्त्वरितं तत्र ममापि त्वरते मनः ॥ ६ ॥ आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्य स विशांपतिः । आजगाम ततः पम्पां लक्ष्मणेन सह प्रभुः ॥७॥ रम्योपवनसंबाधां रम्यसंपीडितोदकाम् । स्फटिकोपमतोयां तां श्लक्ष्णवालुकसन्तताम् ॥८॥पद्मसौगन्धिकैस्ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलैः । नीलां कुवलयोद्घाटैर्बहुवर्णां कुथामिव ॥ ९ ॥

टीका—धर्मात्मा राम महात्माओं के उस प्रभाव को चिन्तन करके अपने हितकारी एकाग्र चित्त लक्ष्मण से बोला ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण हमारा जो अशुभ (कर्म) था, वह अब नष्ट हुआ और कल्याण उपस्थित हुआ है, क्योंकि अब यह मेरा मन प्रहर्षित होगया है ॥ २ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब मेरे हृदय में शुभ प्रकट होगा, सो आ उस प्रिय दर्शनवाली पम्पा पर चलें ॥ ३ ॥ जहां निकट ही ऋष्यमूक पर्वत शोभा देता है, जिस में सूर्यपुत्र धर्मात्मा सुग्रीव रहता है ॥ ४ ॥ मैं उस वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को जल्दी मिलना चाहता हूं, उसके अधीन मेरा काम है वह सीता की ढूंढ करेगा ॥ ५ ॥ ऐसा कहते हुए उस वीर से लक्ष्मण बोला, जल्दी वहां चलें, मेरा भी मन वहां जाने में जल्दी कर रहा है ॥ ६ ॥ तब वह प्रजाओं का मालिक प्रभु उस आश्रम से निकलकर लक्ष्मण के साथ पम्पा पर आया ॥ ७ ॥ रमणीय बगीचों से भरी हुई रमणीय गहरे जलवाली बिल्लोर के तुल्य जल वाली, नीचे फैली हुई साफ रेतवाली ॥ ८ ॥ पद्म और सौगंधिक फूलों से लाल, कुमुदों के समूहों के समूहों से श्वेत, नीले कमलों के फूलों सी नीली इसतरह अनेक रङ्गोंवाले गलीचे की तरह स्थित है ॥ ९ ॥

* अरण्यकाण्ड समाप्त हुआ *

किष्किन्धा काण्ड ।

सर्ग १ (व० १) पम्पा की शोभा और राम का विलाप

मूल—स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम् । रामः सौमित्रिसहितो विललाप कुलेन्द्रियः ॥ १ ॥ तत्र दृष्ट्वैव तां हर्षादिन्द्रियाणि चकम्पिरे । स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका । फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः ॥ ३ ॥ शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना । व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा ॥ ४ ॥ अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम् । द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम् ॥ ५ ॥ पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः । लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः ॥ ६ ॥ सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः । गन्धवान्सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमैः ॥ ७ ॥ पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम् । सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव ॥ ८ ॥ प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः । वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम् ॥ ९ ॥ पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः । कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः ॥ १० ॥ मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तयन्निव पादपान् । शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः ॥ ११ ॥ तेन विक्षिपतात्यर्थं पवनेन समन्ततः । अमी संसक्तशाखाग्रा ग्रथिता इव पादपाः ॥ १२ ॥ सुपुष्पितांस्तु पश्यैतान्कर्णिकारान्समन्ततः । हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान्पीताम्बरानिव ॥ १३ ॥ अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः । सीतया विप्रहीणस्य शोकसन्दीपनो मम ॥ १४ ॥ अशोकस्तवकाङ्गारः षट्पदस्वननिःस्वनः । मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः

प्रधक्ष्याति ॥ १५ ॥ अयं हि रुचिरस्तस्याः कालो रुचिरकाननः ।
कोकिलाकुलसीमान्तो दयिताया ममानघ ॥ १६ ॥ अमी मयूराः
शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः।स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव॥

टीका—लक्ष्मण सहित राम लाल नीले कमलों और मछलियों से भरी हुई पम्पा पर जाकर व्याकुलेन्द्रिय हो विलाप करने लगा ॥ १ ॥ वहां उस पम्पा को देखते ही हर्ष से उसके इन्द्रिय कांप उठे, वह कामवश में पड़ा हुआ लक्ष्मण से बोला ॥ २ ॥ हे सौमित्रे ! गुलियों की तरह विमल जलवाली, फूले हुए लाल पीले कमलों वाली, पम्पा विविध वृक्षों से कैसे शोभावाली है ॥ ३ ॥ मुझे शोक से पीड़ित हुए को भी विचित्र बनोंवाली अनेक प्रकार के फूलों से भरी हुई ठण्डे जलवाली सुखकारिणी पम्पा शोभा देती है ॥ ४ ॥ यह नील पीत हरा प्रदेश गुलदस्तों की तरह भेंट किए हुए वृक्षों के अनेक प्रकार के फूलों से अधिक शोभा पाता है ॥ ५ ॥ चारों ओर फूलों के समूहों से पूर्ण वृक्षों की चोटियां फूली हुई चोटियों वाली बेलों से सब ओर से आलिंगन की हुई हैं ॥ ६ ॥ हे सौमित्रे ! उत्पन्न हुए फूल फलों से युक्त वृक्षोंवाला, गन्धवाला, यह सुरभि मास काम का उद्दीपक है ॥ ७ ॥ हे सौमित्रे ! पुष्पशाली बनों के रूप देख, जोकि मेघों की तरह फूलों की वर्षा बरसा रहे हैं ॥ ८ ॥ भान्ति २ के जंगली वृक्ष वायु के वेग से हिले हुए फूलों से पृथिवी में सुहावनी शिलाओं पर बिखेर कर रहे हैं ॥ ९ ॥ देख हे सौमित्रे ! गिरे हुए गिरते हुए और वृक्षों पर स्थित फूलों से वायु कैसा सब ओर मानों खेल रहा है ॥ १० ॥ पर्वतों की कन्दरा से निकला हुआ वायु वृक्षों को मानों नचाता हुआ स्वयं मस्त कोइलों की ध्वनियों से मानों गीत गारहा है ॥ ११ ॥ वह पवन चारों ओर से वृक्षों को हिलाकर उनकी शाखाओं के अग्र

मिला देने से मानों वृक्षों को गुथ रहा है ॥ १२ ॥ चारों ओर इन फूले हुए कर्णिकारों को देख, जो सोने से ढके हुए पीले वस्त्रों वाले मनुष्यों की तरह हैं ॥ १३ ॥ अनेक पक्षियों की गूंज से भरा यह वसन्त हे सौमित्रे सीता से हीन हुए के मेरे शोक का चमकाने वाला है ॥ १४ ॥ यह वसन्त रूपी अग्नि जिसके कि अशोक के गुच्छे अंगारे हैं, भौरों की गूंजें ध्वनि हैं, कोयलें लाल लाल लाटें हैं मुझे दग्ध करेगा ॥ १५ ॥ यह काल जिसमें कि मोर वन सुहावने बने हैं, और उनकी सीमा के किनारे कोइलों से गूंज रहे हैं मेरी प्यारी को प्यारा है ॥ १६ ॥ यह यहां वहां नाचते हुए मोर पवन से हिलाए हुए अपने पंखों से बिल्लौरी झरोंकों की नाईं शोभा दे रहे हैं ॥ १७ ॥

मूल—पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्यति । शिखिनी मन्मथार्तैषा भर्तारं गिरिसानुनि॥१८॥तामेव मनसा रामां मयूरोऽप्यनुधावति । वितत्य रुचिरौ पक्षौ रुतैरुपहसन्निव॥१९॥मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिया । तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कान्तया ॥ २० ॥ ममाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसंभ्रमा । मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत् ॥ २१ ॥ वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया । नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा ॥ २२ ॥ श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया । नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २३ ॥ दृढं हि हृदये बुद्धिर्मम संपरिवर्तते । नालं वर्तयितुं सीता साध्वी मद्विरहं गता ॥ २४ ॥ मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः । ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः ॥ २५ ॥ एष पुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः । तां विचिन्तयतः कान्तां पावकप्रतिमो मम ॥ २६ ॥ सदा सुखमहं मन्ये यं पुरा सह सीतया । मारुतः स विना सीतां शोकसंजननो मम ॥

२७ ॥ पश्य लक्ष्मण संनादं वने मदविवर्धनम् । पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु द्विजानामवकूजताम् ॥ २८ ॥ विक्षिप्तां पवनेनैतामसौ तिलकमञ्जरीम् । षट्पदः सहसाभ्येति मदोद्धूतामिव प्रियाम् ॥ २९ ॥ अमी लक्ष्मण दृश्यन्ते चूताः कुसुमशालिनः । विभ्रमोत्सिक्तमनसः साङ्गरागा नरा इव ॥ ३० ॥

टीका—देख हे लक्ष्मण यह पर्वत की चोटी पर, नाचते हुए मोर के साथ, काम से पीड़ित हुई मोरनी नाच रही है ॥ १८ ॥ उस का भर्त्ता मोर भी पंख फैलाकर उसी रमणी के पीछे मन से धावन कर रहा है, और (के, के, की) ध्वनियों से मानों मुझ पर हंसी करता है ॥ १९ ॥ हे मोर तेरी प्यारी बन में राक्षस ने हर नहीं ली है, इसलिये तू सुहावने बनों में कान्ता के साथ नाच रहा है॥ २०॥मेरी ओर भी इसी तरह विशाल नेत्रोंवाली जानकी काम से संभ्रम के साथ झुकती, यदि हर न ली गई होती ॥ २१ ॥ बसन्त यदि वहां भी है, जहां मेरी प्यारी बसती है, तो निःसन्देह परवश हुई सीता भी मेरी तरह शोककर रही होगी ॥२२॥नवयुवति पद्मपत्र की तरह नेत्रोंवाली, नर्म बोलने वाली मेरी प्यारी निःसन्देह जीवन त्याग देगी ॥२३॥मेरे हृदय में यह दृढ़ बुद्धि होरही है कि साध्वी सीता मेरे विरह में (बसन्त हो वा न हो पर) जीती नहीं रहेगी ॥ २४ ॥ सीता का भाव पूरा २ मुझमें लगा हुआ है, और मेरा सर्वथा सीता में लगा हुआ है ॥ २५ ॥ यह सुगन्ध और ठण्डक के लाने वाला सुखस्पर्श वायु उस कान्ता को चिन्तन करते हुए मुझे अग्नि के तुल्य होरहा है ॥ २६ ॥ सीता के साथ जिसको मैं पहले सदा सुखजनक माना करता था, सीता के बिना अब वह वायु मेरे लिये शोकजनक है ॥ २७ ॥ देख हे लक्ष्मण बन में फूले हुए अगोंवाले वृक्षों के ऊपर बोलते

हुए पक्षियों की ध्वनि मस्त करनेवाली है ॥ २८ ॥ वह भौंरा मद से फिसलती हुई प्यारी की तरह पवन से फेंकी हुई तिलकमञ्जरी की ओर वेग से जारहा है ॥ २९ ॥ हे लक्ष्मण फलों की शोभा वाले यह आम विलास से भरे हुए चित्तवाले अङ्गराग किये हुए मनुष्यों की तरह प्रतीत होते हैं ॥ ३० ॥

मूल—जले तरुणसूर्याभैः षट्पदाहतकेसरैः । पङ्कजैःशोभते पम्पा समन्तादभिसंवृता ॥ ३१ ॥ पवनाहतवेगाभिरूर्मिभिर्विमलेऽम्भसि । पङ्कजानि विराजन्ते ताड्यमानानि लक्ष्मण ॥ ३२ ॥ पद्मपत्रविशालाक्षीं सततं प्रियपङ्कजाम् । अपश्यतो मे वैदेहीं जीवितं नाभि रोचते ॥ ३३ ॥ यानि स्म रमणीयानि तया सह भवन्ति मे । तान्येवारमणीयानि जायन्ते मे तया विना ॥ ३४ ॥ पद्मकोश पलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते । सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण ॥ ३५ ॥ पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः । निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ॥ ३६ ॥ गिरिप्रस्थास्तु सौमित्रे सर्वतः संप्रपुष्पितैः । निष्पत्रैः सर्वतो रम्यैः प्रदीप्ता इव किंशुकैः ॥ ३७ ॥ पादपात्पादपं गच्छञ्शैलाच्छैलं वनाद्वनम् । वाति नैकरसास्वादसंमोदित इवानिलः ॥ ३८ ॥ इदं मृष्टमिदं स्वादु प्रफुल्लमिदमित्यपि । रागरक्तो मधुकरः कुसुमेष्वेव लीयते ॥ ३९ ॥ इयं कुसुमसंघातैरुपस्तीर्णा सुखाकृता । स्वयं निपतितैर्भूमिः शयन प्रस्तरैरिव ॥ ४० ॥ हिमान्ते पश्य सौमित्रे वृक्षाणां पुष्पसम्भवम् । पुष्पमासे हि तरवः संघर्षादिव पुष्पिताः ॥ ४१ ॥ आह्वयन्त इवान्योन्यं नगाः षट्पदनादिताः । कुसुमोत्तंसविटपाः शोभन्ते बहु लक्ष्मण ॥ ४२ ॥ यदि दृश्येत सा साध्वी यदि चेह वसेमहि । स्पृहयेयं न शक्राय नायोध्यायै रघूत्तम ॥ ४३ ॥ न ह्येवं रमणीयेषु शाद्वलेषु तया सह । रमतो मे भवेच्चिन्ता न स्पृहान्येषु वा भवेत् ॥

४४ ॥ पश्य मानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान्मृगान् । मां पुनर्मृगाशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृतम् ॥४५॥ या मामनुगता मन्दं पित्रा प्रस्थापितं वनम् । सीता धर्मं समास्थाय क नु सा वर्तते प्रिया ॥ ४६ ॥ तया विहीनः कृपणः कथं लक्ष्मण धारये । या मामनुगता राज्याद् भ्रष्टं विहतचेतसम् ॥ ४७ ॥ तच्चार्वञ्चितपद्माक्षं सुगन्धि शुभमव्रणम् । अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मतिर्मम ॥ ४८ ॥ स्मितहास्यान्तरयुतं गुणवन्मधुरं हितम् । वैदेह्या वाक्यमतुलं कदा श्रोष्यामि लक्ष्मण ॥ ४९ ॥ किं नु वक्ष्याम्ययोध्यायां कौसल्यां हि नृपात्मज । क्व सा स्नुषेति पृच्छन्तीं कथं चापि मनस्विनीम् ॥ ५० ॥ गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम् । नह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम् ॥ ५१ ॥ इति रामं महात्मानं विलपन्त मनाथवत् । उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम् ॥ ५२ ॥ संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम । नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम् ॥ ५३ ॥ यदि गच्छति पातालं ततोऽभ्यधिकमेव वा । सर्वथा रावणस्तात न भविष्यति राघव ॥५४॥+ उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् । सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम् ॥ ५५ ॥ + उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु । उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्याम जानकीम् ॥ ५६ ॥ एवं संबोधितस्तेन शोकोपहतचेतनः । त्यज्य शोकं च मोहं च रामो धैर्यमुपागमत् ॥ ५७ ॥ सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रमः । रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम ॥ ५८ ॥ तावृष्यमूकस्य समीपचारी चरन्ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ । शाखामृगाणामधिपस्तरस्वी वितत्रसे नैव विचेष्ट चेष्टम् ॥ ५९ ॥

टीका—जल में नये सूर्य के तुल्य, भौंरों से ताड़ना किये हुए केसरों वाले कमलों से पम्पा चारों तर्फ ढकी हुई है ॥ ३१ ॥ पवन की

ताडना से वेगवाली लहरों से ताडना किये जाते हुए कमल निर्मल जल में हे लक्ष्मण ! अद्भुत शोभा पाते हैं ॥ ३२ ॥ कमलपत्र के तुल्य विशाल नेत्रोंवाली कमलों को सदा प्यार करनेवाली वैदेही को न देखते हुए मुझे जीना नहीं रुचता है ॥ ३३ ॥ जो वस्तुएं उस के साथ मेरे लिये रमणीय थीं, वही अब उसके विना अरमणीय हैं ॥ ३४॥हां पद्म कोश के पत्तों को हे लक्ष्मण ! दृष्टि देखने के लिये पसन्द करती है क्योंकि वह सीता के नेत्र के तुल्य हैं ॥ ३५ ॥ पद्मों के केसर से मिला हुआ वृक्षों के अन्दर से निकला हुआ मनोहर वायु सीता के सांस की भान्ति चलता है ॥ ३६ ॥ पर्वतों की चोटियें हे लक्ष्मण ! चारों ओर फूले हुए, पत्र हीन, सुहावने केसुओं से मानों सब ओर से जल रही हैं ॥ ३७ ॥ वृक्ष से वृक्ष को, पर्वत से पर्वत को, बन से बन को जाता हुआ वायु अनक रसों के आस्वाद से आनन्दित हुए की तरह बह रहा है ॥ ३८ ॥ यह मधुर है, स्वादु है, फूला हुआ है, इसप्रकार प्रेम में रत हुआ भौंरा फूलों में ही लीन होजाता है ॥ ३९ ॥ यह अपने आप गिरे हुए फूलों के समूहों से विछी हुई भूमि शय्या के विछौनों की तरह सुखदायी बन गई है ॥ ४० ॥ हिम के अन्त में देख हे सौमित्रे! वृक्षों के फूलों की उत्पत्ति, मानों इस पुष्पमास में वृक्ष स्पर्धा से एक दूसरे से बढ़ चढ़कर फूले हैं ॥ ४१ ॥ वृक्ष भौंरों की ध्वनियों से मानों एक दूसरे को आह्वान (चैलंज) करते हैं, और हे लक्ष्मण! डालों के ऊपर फूलों के सेहरों से शोभा पाते हैं ॥ ४२ ॥ यदि यहां उस साध्वी का दर्शन हो, और यदि यहां हम वास करें, तो हे रघूत्तम! न मैं इन्द्रपद के लिये न अयोध्या के लिए इच्छा करूं ॥ ४३ ॥ इसप्रकार के रमणीय शाद्वल (सब्जःज़ार) पर उसके साथ रमण करते हुए मुझे न चिन्ता हो, न ही कोई और इच्छा हो ॥ ४४ ॥ इन विचित्र चोटियों के ऊपर

मृगों को मृगियों के सहित देख, और मुझे उस मृगनयनी सीता से विरहित देख ॥ ४५ ॥ पिता से बन को भेजे हुए मेरे पीछे जो धर्म का सहारा लेकर मन्द २ चली वह प्यारी सीता कहां है ॥ ४६ ॥ उससे विहीन हुआ कैसे मैं प्राणों को धारण करूं, जो राज्य से भ्रष्ट हुए, चोट दिए हुए चित्त वाले के पीछे चली ॥ ४७ ॥ उस सुन्दर पूजित पद्म तुल्य नेत्रों वाले, सुगन्धवाले व्रण रहित शुभ मुख को न देखते हुए मेरी मति नष्ट होरही है ॥ ४८ ॥ कब हे लक्ष्मण ! अन्दर मन्द मन्द मुसकराहट से संयुक्त.गुणों से भरा हुआ, मीठा और हितकारी सीता का वचन सुनूंगा ॥ ४९ ॥ हे नृपसुत ! मैं अयोध्या में जाकर "कहां मेरी स्नुषा है, और कैसी है," ऐसा पूछती हुई मनस्विनी कौसल्या को क्या कहूंगा ॥ ५० ॥ जा हे लक्ष्मण तू भाइयों से प्यार करने वाले भरत को देख,अब मैं उस जनकात्मजा के बिना जीता नहीं रह सक्ता हूं ॥ ५१ ॥ इसप्रकार अनाथ की तरह विलाप करते हुए महात्मा राम को भाई लक्ष्मण युक्तियुक्त सदा स्थिर रहनेवाला वचन बोला ॥ ५२ ॥ हे राम अपने आपको थाम, हे पुरुषोत्तम शोक मत कर । आप जैसे शुद्ध मनवालों की मति जड़ नहीं हुआ करती है ॥ ५३ ॥ यदि पाताल को चला जायगा, वा उस से भी आगे जायगा, सर्वथा हे तात राघव ! अब रावण नहीं रहेगा॥ ५४ ॥ उत्साह बलवान् है हे आर्य ! उत्साह से बढ़कर कोई बल नहीं, उत्साहवाले को लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ ५५ ॥ उत्साह वाले पुरुष कर्मों में दुःखी नहीं होते, उत्साहमात्र का आश्रय करके हम जानकी को पाएंगे ॥ ५६ ॥ इसप्रकार उस से जनाया हुआ शोक से नष्ट हुई चेतनावाला राम शोक मोह को त्यागकर धैर्य को प्राप्त हुआ ॥ ५७ ॥ और वह अचिन्त्य परा-

क्रमवाला राम अव्यग्र हो सुहावनी रमणीय चञ्चल वृक्षोंवाली पम्पा को देख गया ॥ ५८ ॥ उन दोनों अद्भुत दर्शनीयोंको ऋष्यमूक के आसपास घूमनेवाला बलवान् वानरोंका अधिपति (सुग्रीव) देखता भया, वह डर गया, और कोई चेष्टा न करता भया ॥ ५९ ॥

सर्ग २(व०२—३) सुग्रीव का हनुमान को राम के पास भेजना ।

मूल—तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत् ॥ १ ॥ ततस्तु भयसन्त्रस्तं वालिकिल्बिषशङ्कितम् । उवाच हनुमान्वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥ २ ॥ सम्भ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्वालिकृते महान् । मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति वालिनः ॥ ३ ॥ सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः । ततः शुभतरं वाक्यं हनुमन्तमुवाच ह ॥ ४ ॥ वालिप्रणिहितावेव शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ । राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः ॥ ५ ॥ अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छन्नचारिणः । विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि ॥ ६ ॥ शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवङ्गम । व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेया दुष्टतानयोः ॥ ७ ॥ वचो विज्ञाय हनुमान्सुग्रीवस्य महात्मनः । पर्वतादृष्यमूकात्तु पुप्लुवे यत्र राघवः ॥ ८ ॥ कपिरूपं परित्यज्य हनुमान्मारुतात्मजः । भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः ॥ ९ ॥ ततश्च हनुमान्वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया । विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च ॥ १० ॥ आबभाषे च तौ वीरौ यथावत्प्रशशंस च । उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्यपराक्रमौ ॥ ११ ॥ राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ । देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ ॥ १२ ॥ पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ । अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिहागतौ ॥ १३ ॥ सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरपुङ्गवः । वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद् भ्रमति दुःखितः ॥ १४ ॥ प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवो महा-

त्मना । राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान्नाम वानरः ॥ १५ ॥ युवाभ्यां स हि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति । तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम् ॥ १६ ॥

टीका—उन दोनों महात्मा वीर राम लक्ष्मण को श्रेष्ठ शस्त्रधारे हुए देखकर सुग्रीव शङ्कित होगया ॥ १ ॥ तब भय से डरे हुए वालि के पाप से शङ्कित सुग्रीव को वाक्यपण्डित हनुमान् यह वाक्य बोला ॥ २ ॥ वालि के निमित्त यह बड़ी घबराहट सब को छोड़ देनी चाहिये, यह मलय पर्वत है यहां वालि का भय नहीं है ॥ ३ ॥ सुग्रीव हनुमान् के शुभ वाक्य को सारा सुनकर फिर शुभतर वाक्य हनुमान् से बोला ॥ ४ ॥ इन दोनों उत्तम पुरुषों को मैं वालि के गुप्तचर ही शङ्का करता हूं. राजाओं के बहुत से मित्र होते हैं, इनमें विश्वास योग्य नहीं है॥५॥मनुष्य को छद्मचारी शत्रु भी पूरी तरह जानने चाहिये,जो स्वयं विश्वास न करते हुए दूसरे को विश्वस्त बना कर छिद्रों में प्रहार करते हैं॥ ६ ॥ हे वनर! यदि यह दोनों शुद्धात्मा हैं, तो भी इनको जान (कि यह कौन हैं) और (यदि दुष्ट हैं तो) इनकी दुष्टता को इनके वचनों से और रूपों से जान ॥७॥ हनुमान् महात्मा सुग्रीव के वचन का तात्पर्य समझकर ऋष्यमूक पर्वत से वहां गया जहां दोनों राघव थे ॥८॥ पवनपुत्र वानर हनुमान् वानर-रूप को त्यागकर शठ बुद्धि से भिक्षुरूप को धारता भया॥ ९ ॥ तब हनुमान् विनीतवत् उन दोनों राघवों के पास आ और प्रणाम करके स्पष्ट सुन्दर वाणी से ॥ १० ॥ उन दोनों वीरों के साथ भाषण और उनकी यथावत् प्रशंसा करता भया, और उन सच्चे पराक्रमवालों को इच्छा से नर्म वाक्य बोला ॥ ११ ॥ राजर्षि और देवताओं के तुल्य आप दोनों तीक्ष्ण व्रतोंवाले तपस्वी ब्रह्मचारी कैसे इस देश में आए हैं॥ १२ ॥ पद्मपत्र के तुल्य नेत्रोंवाले

वीर जटामण्डल धारी एक दूसरे के सदृश वीर मानों देवलोक से यहां आए हैं ॥ १३ ॥ सुग्रीव नाम धर्मात्मा वानरश्रेष्ठ वीर भाई से निकाला हुआ दुःखित हुआ जगत में घूम रहा है ॥१४॥ वानर मुख्यों के राजा उस सुग्रीव महात्मा से भेजा हुआ मैं हनुमान् नाम वानर आपके पास आया हूं ॥ १५ ॥ वह धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनोंके साथ मैत्री चाहता है, मुझे आप उसका मन्त्री पवन-सुत वानर जानें ॥ १६ ॥

सर्ग ३ (वं०३ हनुमान् की बात चीत और राम से हनुमान् की प्रशंसा

* मू०—ततः श्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । प्रहृष्टवदनःश्री-मान्भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम् ॥ १ ॥ सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्री-वस्य महात्मनः । तमेव कांक्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः ॥ २ ॥ तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम् । वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिन्दमम् ॥३॥ + नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः । नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥ ४ ॥ + नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् । बहु व्याहरताऽनेन न किञ्चिदपशब्दितम् ॥ ५ ॥ न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा । अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥ ६ ॥+संस्कारक्रमसंपन्नामद्भुताम विलम्बिताम् । उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥ ७ ॥ अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया । कस्य नाराध्यते चि-त्तमुद्यतासेररेरपि ॥ ८ ॥ एवंविधो यस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु । सिध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ ॥९॥+ एवंगुण-गणैर्युक्तः यस्य स्युः कार्यसाधकाः । तस्य सिध्यन्ति सर्वेऽर्था दूत-वाक्य सञ्चोदिताः ॥१०॥ एवमुक्तस्तु सौमित्रिः सुग्रीवसचिवं कपिम् । अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम् ॥ ११ ॥ विदिता नौ

गुणा विद्वन्सुग्रीवस्य महात्मनः । तमेव चावां मार्गावःसुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥ १२ ॥ यथा ब्रवीषि हनुमन्सुग्रीववचनादिह । तत्तथा हि करिष्यावो वचनात्तव सत्तम ॥ १३ ॥

टीका—उसके इस वचन को सुनकर प्रसन्नमुख श्रीमान् राम पास स्थित भाई लक्ष्मण से बोला ॥ १ ॥ यह कपिराज महात्मा सुग्रीव का मंत्री है, उसी की इच्छा करते हुए के मेरे पास यहां आया है ॥२॥ सो हे सौमित्रे ! स्नेह से भरेहुए, शत्रुओं के दबाने वाले, वाक्य के जाननेवाले, सुग्रीव के मन्त्री इस वानर से मधुर वाक्यों से सम्भाषण कर ॥३॥ न ऋग्वेद में शिक्षा न पाया हुआ, न यजुर्वेद का न धारने वाला, न सामवेद का न जाननेवाला ऐसा भाषण कर सक्ता है ॥४॥ निःसन्देह इसने व्याकरण अनेकवार सुना है, बहुत बोलते हुए इसने कहीं भी अपभ्रंश नहीं बोला है ॥ ५ ॥ (बोलते समय) इसके मुख पर, नेत्रों में, ललाट पर, भवों में, और भी सारे अङ्गों में कहीं दोष विदित नहीं हुआ है ॥ ६ ॥ संस्कार के क्रम से सम्पन्न, अद्रुत, विलम्ब दोष से रहित, हृदय को हर्ष देनेवाली कल्याणी वाणी का उच्चारण करता है ॥ ७ ॥ तीन स्थानों में उत्पन्न होनेवाली ऐसी विचित्र वाणी से किसका चित्त वस में नहीं आजाता, चाहे तलवार उठाए शत्रु भी हो, ॥८॥ जिस राजा का दूत इसप्रकारका न हो, हे निष्पाप ! उसके कामों के फल कैसे सिद्ध होते हैं ॥९॥ इसप्रकार के गुणगणों से युक्त पुरुष जिसके कार्य-साधक हों, उसके सारे कार्य दूत के वाक्य से प्रेरे हुए सिद्ध होते हैं, ॥ १० ॥ ऐसे कहा हुआ वाक्य के जाननेवाला लक्ष्मण वाक्य के जानने वाले सुग्रीव के मंत्री पवनसुत वानर से भाषण करता भया ॥११॥ हे विद्वन् ! महात्मा सुग्रीव के गुण हमें विदित हैं, उसी वानरपति सुग्रीव को हम ढूंढते हैं ॥ १२ ॥ हे हनुमान्

जैसा आप सुग्रीव के वचन से कहते हैं हे सत्तम! वैसा ही हम आप के वचन से करेंगे ॥ १३ ॥

सर्ग ४ (व० ४) हनुमान् का प्रश्न और लक्ष्मण का उत्तर

मूल—ततः परमसंहृष्टो हनूमाँल्लक्ष्मणेरितः । प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदः ॥ १ ॥ किमर्थं च वनं घोरं पम्पाकानन-मण्डितम् । आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम् ॥ २ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः । आचचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ॥ ३ ॥ राजा दशरथो नाम द्युतिमान्धर्मवत्सलः । तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैःश्रुतः ॥४॥ सर्वलक्षणसंयुक्तः संयुक्तः राज्यसम्पदा । राज्याद्भ्रष्टो मया वस्तुं वने [illegible]मिहागतः ॥ ५ ॥ भार्यया च महाभाग सीतयानुगतो वशी । दिनक्षये महा-तेजाः प्रभयेव दिवाकरः ॥ ६ ॥ अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्य-मुपागतः । कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः ॥ ७ ॥ रक्षसा-पहृता भार्या रहिते कामरूपिणा । तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी ये-नास्य वा हृता ॥ ८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः । अहं चैव च रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ ॥ ९ ॥+ सीता यस्य स्नुषा चासीच्छरण्यो धर्मवत्सलः । तस्य पुत्रः शरण्यस्य सुग्रीवं शरणं गतः ॥१०॥+सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा । गुरुर्मे रा-घवः सोऽयं सुग्रीवं शरणं गतः ॥ ११ ॥ यस्य प्रसादे सततं प्रसी-देयुरिमाः प्रजाः । स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकांक्षते ॥ १२ ॥ येन सर्वगुणोपेताः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः । मानिताः सततं राज्ञा सदा दशरथेन वै ॥ १३ ॥ तस्यायं पूर्वजः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । सुग्रीवं वानरेन्द्रं तु रामः शरणमागतः ॥ १४ ॥ शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरणं गते । कर्त्तुमर्हति सुग्रीवः प्रसादं सह यूथपैः ॥१५॥ एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुपातनम् । हनूमान्प्रत्युवाचेदं वाक्यं

वाक्यविशारदः॥१६॥ईदृशा बुद्धिसम्पन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः। द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः ॥ १७ ॥ स हि राज्याच्च विभ्रष्टः कृतवैरश्च वालिना। हृतदारो वने त्रस्तो भ्रात्रा विनिष्कृतो भृशम् ॥ १८ ॥ करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः। सुग्रीवः सह चास्माभिः सीताया परिमार्गणे ॥ १९ ॥ ततः स सुमहाप्राज्ञो हनूमान्मारुतात्मजः। जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ ॥ २० ॥

टीका—तब परम प्रसन्न हुआ वानरोत्तम हनुमान् वाक्य के जानने वाले राम से वाक्य बोला ॥१॥ कैसे आप पम्पा के जंगलों से भूषित नाना व्याल मृगों से युक्त इस भयङ्कर दुर्गम वन में छोटे भाई समेत आए हैं ॥ २ ॥ उसके वचन को सुनकर राम से प्रेरा हुआ लक्ष्मण दशरथसुत महात्मा राम का परिचय देता भया ॥ ३ ॥ राजा दशरथ नाम तेजस्वी धर्मवत्सल हुआ है, उसका यह बड़ा पुत्र राम नाम लोगों में विख्यात है ॥ ४ ॥ राजा के लक्षणों से युक्त और राज्य सम्पदा से युक्त हुआ, राज्य से निकला हुआ वन में रहने के लिये मेरे साथ यहां आया है ॥ ५ ॥ जैसे दिन के अन्त में महातेजस्वी सूर्य प्रभा से अनुगत हो। इस प्रकार भार्या सीता से अनुगत हुआ आया है ॥६॥ मैं इसका छोटा भाई गुणों से दासभाव को प्राप्त हुआ हूं, यह जो कृतज्ञ है और बहुत जाननेवाला है ॥७॥ हम से रहित काल में इसकी भार्या कामरूपी राक्षस ने हरी है, उस राक्षस को पूरा २ नहीं जानते जिसने इसकी पत्नी हरी है ॥८॥ यह आप पूछते हुए को सब ठीक २ बतला दिया है, मैं और राम सुग्रीव की शरण प्राप्त हुए हैं ॥ ९ ॥ सीता जिस की स्नुषा थी, जो शरण लेने योग्य, धर्मवत्सल था, उस शरण देनेवाले का पुत्र सुग्रीव की शरण प्राप्त हुआ है ॥ १० ॥ जो

शरण लेने योग्य धर्मात्मा इससे पहले सारे लोक की शरण था, वह मेरा गुरु राम सुग्रीव की शरण लेता है ॥११॥ जिसके प्रसाद से यह सारी प्रजाएं सदा प्रसन्न होती हैं, वह राम वानरेन्द्र का प्रसाद चाहता है ॥१२॥ जिस राजा दशरथ ने पृथिवी में सारे गुणों से युक्त राजाओं को सम्मानित किया है ॥ १३ ॥ उसका यह बड़ा पुत्र तीनों लोकों में विख्यात राम वानरेन्द्र सुग्रीव की शरण आता है ॥१४॥ शोक से दबे हुए शोक से पीड़ित शरणगत हुए राम पर सुग्रीव अपने यूथपतियों (सरदारों) के समेत प्रसाद करने योग्य है ॥१५॥ इसप्रकार अश्रुपात के सहित करुण वचन कहते हुए लक्ष्मण को वाक्यचतुर हनुमान् यह वचन बोला ॥ १६॥ आप जैसे बुद्धिसम्पन्न, क्रोध को जीते हुए, इन्द्रियों को जीते हुए, पुरुष वानरेन्द्र के लिये दर्शन के योग्य हैं, हमारे भाग्य से आपके दर्शन हुए हैं ॥ १७ ॥ वह राज्य से फिसला हुआ है, बालि से वैर किये हुए है, उसकी स्त्री हरी गई है, भाई से अत्यन्त अपमानित हुआ डरकर वन में रहता है ॥ १८ ॥ वह सूर्यपुत्र सुग्रीव सीता के ढूंढने में हमारे समेत अवश्य आपकी सहायता करेगा ॥१९॥ तब वह महाप्राज्ञ पवनपुत्र हनुमान उन दोनों राघव वीरों को लेकर वानरराज के पास गया ॥ २० ॥

सर्ग ५ (व० ५) राम सुग्रीव की अग्नि साक्षिक मैत्री

मूल—ऋष्यमूकात्तु हनुमान् गत्वा तं मलयं गिरिम् । आचचक्षे तदा वीरो कपिराजाय राघवौ ॥ १ ॥+मन्त्रा सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । प्रगृह्य चार्चयस्वैतौ पूजनीयतमावुभौ ॥ २ ॥ श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं सुग्रीवो वानराधिपः। दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्योवाच च राघवम् ॥३॥+भवान्धर्मविनीतश्च सुतपाः सर्ववत्सलः । तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो॥४॥+रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष

प्रसारितः। गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा ॥ ५ ॥ एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम्। संप्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना॥६॥+ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम्। सुग्रीवो राघवश्चैव सख्यमुपागतौ ॥ ७ ॥ ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ। अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभिजग्मतुः ॥ ८ ॥ त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे एकं दुःखं सुखं च नौ। सुग्रीवो राघवं वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत् ॥ ९ ॥

टीका—हनुमान् ऋष्यमूक से उस मलयगिरि पर जाकर वानरराज को बतलाता भया, कि यह दोनों राघव हैं ॥ १ ॥ आपके साथ मैत्री की कामनावाले यह दोनों राम लक्ष्मण भाई हैं, इनको स्वीकार करके पूजिये, यह दोनों पूजनीयतम हैं ॥ २ ॥ हनुमान् के वाक्य को सुनकर वानराधिपति सुग्रीव दर्शनीयतम होकर प्रीतिपूर्वक राम से बोला ॥३॥ आप धर्म में विनीत, बड़े तपस्वी सब को प्यार करने वाले हैं, सो हे प्रभो ! यह मेरा ही सत्कार है, और मुझे ही बड़ा लाभ है ॥४॥ यदि मेरी मित्रता पसन्द है, तो यह मैंने भुजा फैलाई है, अपने हाथ से मेरे हाथ को पकड़िये, और अटल मर्यादा बांधिये ॥ ५ ॥ सुग्रीव के इस सुन्दर वचन को सुनकर प्रसन्न मन राम (दाएं) हाथ से (उसके दाएं) हाथ को ग्रहण करता भया ॥ ६ ॥ तब वह दोनों प्रदीप्त अग्नि की प्रदक्षिणा करते भए (मित्रता की दृढ़ता के लिये) सुग्रीव और राघव मित्र बन गये ॥७॥ तब वह वानर और राघव दोनों बड़े प्रसन्न हो, एक दूसरे को देखते हुए तृप्ति को प्राप्त नहीं होते हैं ॥८॥ तू मेरा सखा है, मेरे हृदय का प्यारा है, हमारा दोनों का सुख दुःख एक है, इसप्रकार सुग्रीव राघव को परम प्रसन्नवत् वाक्य कहता भया ॥ ९ ॥

सर्ग ६ (व० ६) सुग्रीव का सीता के भूषण वस्त्र दिखलाना

मूल—पुनरेवाब्रवीत्प्रीतो राघवं रघुनन्दनम् । अयमाख्याति ते राम सेवको मन्त्रिसत्तमः ॥ १ ॥ हनूमान्यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वसतश्च वने तव ॥ २ ॥ रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा । त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता ॥ ३ ॥ अन्तरं प्रेप्सुना तेन हत्वा गृध्रं जटायुषम् । भार्यावियोगजं दुःखं प्रापितस्तेन रक्षसा ॥ ४ ॥ + भार्यावियोगजं दुःखं नचिरात्त्वं विमोक्ष्यसे । अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतिमिव ॥५॥ + इदं तथ्यं मम वचस्त्वमवेहि च राघव । त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते ॥६॥ अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः । ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा ॥७॥ क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम् । स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा ॥ ८ ॥ आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम् । उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च ॥ ९ ॥ तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव । आनयिष्याम्यहं तानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि ॥ १० ॥ तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम् । आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे ॥ ११ ॥ एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम् । प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥ उत्तरीयं गृहीत्वा तु स तान्याभरणानि च । इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः ॥ १३ ॥ ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च । अभवद्बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥ १४ ॥ सीतास्नेहप्रवृत्तेन स तु बाष्पेण दूषितः । हा प्रियेति रुदन्धैर्यमुत्सृज्य न्यपतत्क्षितौ ॥ १५ ॥ हृदि कृत्वा स बहुशस्तमलङ्कारमुत्तमम् । निशश्वास भृशं सर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥ १६ ॥ अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं प्रेक्ष्य पार्श्वतः। परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे ॥ १७ ॥ पश्य लक्ष्मण वैदेह्या

संत्यक्तं ह्रियमाणया । उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराभूषणानि च ॥ १८॥+एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ॥ १९ ॥ + नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् । ततस्तु राघवो वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥२०॥ ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया । रक्षसा रौद्ररूपेण मम प्राणप्रिया हृता ॥ २१ ॥ क्व वा वसति तद्रक्षो महद्व्यसनदं मम । यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामि राक्षसान् ॥ २२ ॥

टीका—प्रसन्न हुआ सुग्रीव रघुनन्दन राम से फिर बोला, हे राम यह आपका सेवक मेरा मन्त्रिवर हनुमान् मुझे बतलाता है, कि जिस निमित्त आप निर्जन बन में आए हैं, और कि भाई लक्ष्मणके साथ बन में रहते आप की भार्या जनकपुत्री मैथिली आप से और बुद्धिमान् लक्ष्मण से अलग हुई रोती हुई छिद्र ढूंढते हुए उस राक्षस ने गृध्र जटायु को मारकर हरली है, उस राक्षस ने आपको भार्या के वियोगजन्य दुःख में डाला है ॥१-४॥ भार्या के वियोगज दुःख को आप जल्दी ही छोड़ देंगे, खोई हुई वेदश्रुति की तरह मैं उसे फिर लाऊंगा ॥५॥ हे राघव मेरे इस वचन को आप सत्य जानें, हे महाबाहो शोक को त्यागिये, मैं आप की उस कान्ता को लाऊंगा ॥ ६ ॥ मैं अनुमान से जानता हूं, कि वह मैथिली थी, इस में संशय नहीं, जो कि भयङ्कर कर्मवाले राक्षस से मैंने हरी जाती हुई देखी ॥७॥ राम राम लक्ष्मण इसप्रकार विस्वर पुकारती हुई रावण के पास नागनी की तरह तड़पती हुई ॥८॥ उसने मुझे चार बानरों के साथ पर्वततल पर स्थित देखकर अपना दुपट्टा तथा शुभ भूषण छोड़े हैं ॥ ९ ॥ वह हमने लेलिये हैं, और सम्भाले हुए हैं, हे राघव उनको मैं लाता हूं, आप उनको पहचानने योग्य हैं ॥ १० ॥ तब उस प्रियवादी सुग्रीव को राम बोले, सखे शीघ्र

लाओ, किस लिए विलम्ब करते हो ॥११॥ ऐसा कहा हुआ सुग्रीव राम का प्रिय करने की इच्छा से शीघ्र गहनगुफा में प्रविष्ट हुआ ॥१२॥ दुपट्टे को और उन भूषणों को लेकर यह देखिये यह कहकर राम को दिखलाता भया ॥ १३ ॥ तब उस वस्त्र और शुभ भूषणों को लेकर कुहर से चन्द्रमा की तरह वह आंसुओं से ढक गया ॥१४॥ सीता के स्नेह से प्रवृत्त हुई आंसुओं से दूषित हुआ धैर्य को त्यागकर हा प्यारी इसप्रकार रोता हुआ पृथिवी पर गिर पड़ा ॥१५॥ वह उस उत्तम भूषण को बहुधा हृदय पर रख कर बिल में स्थित क्रुद्ध किये सर्प की तरह बार २ सांस लेता भया ॥१६॥ न टूटे आंसुओं के वेगवाला राम पास स्थित दीन हुए लक्ष्मण को रुलाने लगा ॥१७॥ देख हे लक्ष्मण हरी जाती हुई सीता ने यह दुपट्टा और यह भूषण भूमि पर फैंके हैं ॥ १८ ॥ राम से ऐसे कहा हुआ लक्ष्मण यह वाक्य बोला । न मैं बाहुबन्दों को जानता हूं, न कुण्डलों को जानता हूं ॥१९॥ हां प्रतिदिन चरणों पर नमस्कार के हेतु नूपरों को पहचानता हूं । तब राम सुग्रीव से यह वाक्य बोला ॥ २० ॥ कहो हे सुग्रीव उस भयङ्कर रूपवाले राक्षस से मेरी प्राणप्यारी किस देश को हरी जाती हुई देखी है ॥ २१ ॥ और कहां वह मुझे भारी विपद में डालने वाला राक्षस बसता है, जिसके निमित्त मैं राक्षसों को नष्ट करूंगा ॥२२॥

सर्ग ७ (व० ७) सुग्रीव कृत राम को धैर्य

मूल—एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः। अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः॥१॥ सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिंदम करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम् ॥ २ ॥ रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम् । तथास्मि कर्ता न चिराद्यथा प्रीता भविष्यसि ॥ ३ ॥ अलं वैक्लव्यमालम्ब्य धैर्यमात्मगतं स्मर।

त्वद्विधानां न सदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम् ॥ ४ ॥ मयापि व्यसनं प्राप्तं भार्याविरहजं महत् । नाहमेवं हि शोचामि धैर्यं न च परित्यजे ॥ ५ ॥+ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम् । तेजश्च क्षयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ॥६॥ शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः । स शोकं त्यज राजेन्द्र धैर्यमाश्रय केवलम् ॥ ७ ॥ हितं वयस्यभावेन ब्रूमि नोपादिशामि ते । वयस्यतां पूजयन्मे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ८ ॥ मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः । मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयत् ॥ ९ ॥ प्रकृतिस्थस्तु काकुत्स्थः सुग्रीववचनात्प्रभुः । संपरिष्वज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥+ कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च । अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया ॥ ११ ॥ एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे । दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन्काले विशेषतः ॥ १२ ॥ किं तु यत्नस्त्वया कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे । राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ १३ ॥ मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम् । वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं संपद्यते तव॥१४॥ एवमेकान्तसंपृक्तौ ततस्तौ नरवानरौ । उभावन्योन्यसदृशं सुखं दुःखमभाषताम् ॥ १५ ॥

टीका—पीड़ित राम से ऐसे कहा हुआ सुग्रीव वानर आंसुओं से गद्गद हुआ हाथ जोड़कर आंसुओं सहित वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे शत्रुओं के दमन करने वाले, मैं सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं शोक को त्याग, वैसे यत्न करूंगा, कि आप मैथिली को प्राप्त होंगे ॥२॥ रावण को गणों सहित मारकर अपने पौरुष को पूरा दिखला कर जल्दी ऐसा करूंगा, जैसे आप प्रसन्न होंगे ॥ ३ ॥ घबराहट का आश्रय लेने से बस है, अपने अन्दर के धैर्य को स्मरण कर, तेरे जैसों को ऐसा बुद्धिलाघव उचित नहीं है ॥ ४॥ मैंने भी भार्या

के वियोग से बड़ी भारी विपत्ति उठाई है, मैं इसतरह शोक नहीं करता हूं, न धैर्य को त्यागता हूं ॥ ५ ॥ जो शोक में रहते हैं, उनको सुख नहीं होता है, उनका तेज क्षीण होता है, आप को शोक नहीं करना चाहिये ॥ ६ ॥ शोक से दबे हुए के तो जीवित में भी संशय होता है, सो हे राजेन्द्र आप शोक को त्यागें, और केवल धैर्य का आश्रय लें ॥ ७ ॥ मित्रभाव से मैं यह हित की बात कहता हूं, आप को उपदेश नहीं करता, मेरे मित्रभाव की पूजा करते हुए आप शोक को त्यागने योग्य हैं ॥ ८ ॥ सुग्रीव से इसप्रकार मधुर तसल्ली दिये हुए राघव ने आंसुओं से भीगे हुए मुख को अञ्चल से पोंछा ॥९॥ सुग्रीव के वचन से स्वस्थ हुआ राम सुग्रीव को आलिङ्गन करके यह वचन बोला ॥१०॥ स्निग्ध हितैषी मित्र का जो कर्त्तव्य है, वह हे सुग्रीव आपने उचित और अपने सदृश किया है ॥११॥ हे सखे यह आप से तसल्ली दिया मैं प्रकृतिस्थ हुआ हूं, ऐसा बन्धु सचमुच दुर्लभ है, विशेष करके ऐसे समय पर ॥ १२ ॥ किन्तु मैथिली के ढूंढने में और क्रूर दुरात्मा राक्षस रावण के मारने में आप को यत्न करना चाहिये ॥१३॥ मुझे जो कुछ करना है वह विश्वस्त होकर कहो, वर्षा में अच्छे क्षेत्र में (बोए बीज) की तरह तेरा सब सफल होगा ॥ १४ ॥ इसप्रकार एकान्त में मिलेहुए वह दोनों नर वानर एक दूसरे के तुल्य अपना २ दुःख कहते भए ॥ १५ ॥

सर्ग ८ (ब० ८) सुग्रीव कृत अपना दुःख निवेदन

मूल—ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णया शुभया गिरा । उवाच प्रणयाद्रामं हर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥ १ ॥ अहं विनिकृतो भ्रात्रा चाराम्येष भयार्दितः । ऋष्यमूकं गिरिवरं हृतभार्यः सुदुःखितः॥२॥ बालिना मे भयार्तस्य सर्वलोकाभयंकर । ममापि त्वमनाथस्य प्रसादं

कर्तुमर्हसि ॥३॥ एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः । प्रत्युवाच स काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥ ४ ॥ उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् । अद्यैव तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम्॥ ५ ॥ इमे हि मे महाभाग पत्रिणस्तिग्मतेजसः । कार्तिकेयवनोद्भूता शराः हेमविभूषिताः ॥ ६ ॥ वालिसंज्ञममित्रं ते भ्रातरं कृतकिल्बिषम् । शरैर्विनिहतं पश्य विकीर्णमिव पर्वतम् ॥ ७ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः । प्रहर्षमतुलं लेभे साधुसाध्विति चाब्रवीत् ८ त्वं हि पाणिप्रदानेन वयस्यो मेऽग्निसाक्षिकम् । वयस्य इति कृत्वा च विस्रब्धः प्रवदाम्यहम्॥९॥पुराहं वालिना राम राज्यात्स्वादवरोपितः॥ परुषाणि च संश्राव्य निर्धूतोऽस्मि बलीयसा ॥ १० ॥ हृता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । सुहृदश्च मदीयाः ये संयता बन्धनेषु ते ॥ ११ ॥ यत्नवांश्च स दुष्टात्मा मद्विनाशाय राघव । बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्च वानरा निहता मया ॥ १२ ॥ केवलं हि सहाया मे हनुमत्प्रमुखास्त्विमे । अतोऽहं धारयाम्यद्य प्राणान्कृच्छ्रगतोऽपि सन् ॥ १३ ॥ एते हि कपयः स्निग्धा मां रक्षन्ति समन्ततः । सह गच्छन्ति गन्तव्ये नित्यं तिष्ठन्ति चास्थिते ॥ १४ ॥ संक्षेपस्त्वेष मे राम किमुक्त्वा विस्तरं हि ते । स मे ज्येष्ठो रिपुर्भ्राता वाली विश्रुतपौरुषः ॥ १५ ॥+एष मे राम शोकान्तः शोकार्तेन निवेदितः दुःखितः सुखितो वापि सख्युर्नित्यं सखा गतिः ॥ १६ ॥

टीका—तब हर्षित हुआ सुग्रीव नर्म शुभ वाणी से हर्ष से व्याकुल अक्षरों सहित प्रेम से राम को कहने लगा ॥१॥ मैं भाई से अनादृत हो भय से पीड़ित हुआ हरी हुई भार्यावाला अतीव दुःखित हो इस पर्वतपर ऋष्यमूक में फिर रहा हूं ॥ २ ॥ हे सारे लोकों को अभय देनेवाले ! बालि के भय से पीड़ित हुए मुझ अनाथ पर आप कृपा करने योग्य हैं ॥ ३ ॥ ऐसे कहा हुआ तेजस्वी

धर्मज्ञ धर्मवत्सल राम हंसकर सुग्रीव से बोला ॥४॥ मित्र उपकार के फल से पहचाना जाता है और अपकार शत्रु का चिन्ह होता है। अभी तेरी स्त्री हरने वाले को मारूंगा ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! यह तीक्ष्ण तेज वाले, सोने से भूषित नोकों वाले, मेरे तीर कार्तिकेय बन में उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥ आप अब किये हुए अपराध वाले बाली नामी भाई रूप शत्रु को बिखरे हुए पर्वत की तरह तीरों से मरा हुआ देखें ॥ ७ ॥ राम के वचन को सुनकर सेनापति सुग्रीव अतुल हर्ष को प्राप्त हुआ और साधु २ कहने लगा ॥ ८ ॥ आप अग्नि के सामने (हाथ पर) हाथ देने से मेरे सखा हुए हैं, सखा जानकर मैं निःशङ्क यह कहता हूं ॥ ९ ॥ हे राम ! बालिने पहले मुझे अपने राज्य से उतारा, और उस बलवान् ने कठोर वाक्य कहकर मेरा अनादर किया ॥ १० ॥ प्राणों से प्यारी मेरी पत्नी उसने हरली, और जो मेरे सुहृद् थे, उनको बन्धनों में डाल दिया ॥ ११ ॥ और हे राघव ! वह दुष्टात्मा अब मेरे विनाश के लिये यत्नवान् है अनेकवार उससे भेजे हुए वानर मैंने मारे हैं ॥ १२ ॥ मेरे साथी केवल यह हनुमान् आदि हैं, इसलिये आज इतने क्लेश में पड़ा हुआ भी मैं प्राणों को धारता हूं ॥ १३ ॥ यह स्नेही वानर सब ओर से मेरी रक्षा करते हैं, चलने पर साथ चलते हैं, और ठहरने पर सदा ठहर जाते हैं ॥ १४ ॥ यह मेरे वृत्तान्त का संक्षेप है, हे राम आपको विस्तार कहने से क्या, वह मेरा बड़ा भाई विख्यात पराक्रम वाला बाली मेरा शत्रु है ॥ १५ ॥ यह हे राम ! शोक से पीड़ित हुए मैंने अपने शोक का अन्त आप को निवेदन किया है, पुरुष दुःखी हो, वा सुखी हो मित्र का मित्र ही सदा सहारा होता है ॥ १६ ॥

सर्ग ९ (व० १०, ११) सुग्रीव की राम का बल देखने की इच्छा

मूल—एवमुक्तः स तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम् । वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥ १ ॥ आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नस्त्वं शोकसागरे । त्वामहं तारयिष्यामि बाढं प्राप्स्यसि पुष्कलम् ॥ २ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम् । सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वालिनः पौरुषं यत्तद्यच्च वीर्यं धृतिश्च या । तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ ४ ॥ बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः । वालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयतात्मनः ॥ ५ ॥ महिषो दुन्दुभिर्नाम कैलासशिखरप्रभः । बलं नागसहस्रस्य धारयामास वीर्यवान् ॥ ६ ॥ विषाणयोर्गृहीत्वा तं दुन्दुभिं गिरिसन्निभम् । आविध्य तदा वाली विनदन्कपिकुञ्जरः ॥ ७ ॥ तं तु दुन्दुभिमुद्यम्य शरण्ये प्रत्यपातयत् । युद्धे प्राणहरे तस्मिन्निष्पिष्टो दुन्दुभिस्तदा ॥ ८ ॥ इमे च विपुलाः सालाः सप्तशाखावलम्बिनः । यत्रैकं घटते वाली निष्पत्रयितुमोजसा ॥ ९ ॥ एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकाशितम् । कथं तं वालिनं हन्तुं समरे शक्ष्यसे नृप ॥ १० ॥ तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं प्रहसँल्लक्ष्मणोऽब्रवीत् । कस्मिन्कर्मणि निर्वृत्ते श्रद्दध्या वालिनो वधम् ॥ ११ ॥ तमुवाचाथ सुग्रीवः सप्त सालानिमान्पुरा । एवमेकैकशो वाली विव्याधाथ स चासकृत् ॥ १२ ॥ रामो निर्दारयेदेषां बाणेनैकेन च द्रुमम् । वालिनं निहतं मन्ये दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं रामो रक्तान्तलोचनः । ध्यात्वा मुहूर्तं काकुत्स्थं पुनरेव वचोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥ उपालब्धं च मे श्लाघ्यं सन्मित्रं मित्रवत्सल । त्वामहं पुरुषव्याघ्र हिमवन्तमिवाश्रितः ॥ १५ ॥ किं तु तस्य बलज्ञोऽहं दुर्भ्रातुर्बलशालिनः । अप्रत्यक्षं तु मे वीर्यं समरे तव राघव ॥ १६ ॥ न खल्वहं त्वां तुलये नावमन्ये न भीषये । कर्मभिस्तस्य भी-

मैश्च कातर्यं जनितं मम ॥ १७ ॥+कामं राघव ते वाणी ममाणं धै-र्यमाकृतिः । सूचयन्ति परं तेजो भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ १८ ॥

टीका—ऐसे कहा हुआ वह तेजस्वी धर्मज्ञ मुस्कराकर सुग्रीव से यह वचन बोला ॥ १ ॥ अपने अनुमान से मैं देखता हूं, कि आप शोक के सागर में डूबे हुए हैं, मैं आपको तराऊंगा, आप निःसन्देह बड़े फल को प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ हर्ष और पौरुष के वर्धक उसके इस वचन को सुनकर परम प्रसन्न हुआ, सुग्रीव यह बड़ा वाक्य बोला ॥ ३ ॥ वाली का जो बल वीर्य और धैर्य है, उसको मुझ से एकाग्रचित्त होकर सुनिये, और फिर जो करना हो कीजिये ॥ ४ ॥ बन में अनेक प्रकार के बहुत से दृढ़ वृक्ष वाली ने अपना बल दिखलाते हुए बल के साथ तोड़े हैं ॥ ५ ॥ दुन्दुभि नाम भैंसा जो कि कैलास के शिखर सदृश (महाकाय) था, जो अनेक हाथियोंका बलधारी था ॥ ६ ॥ पर्वततुल्य उस दुन्दुभि को सींगों से पकड़कर वानर-श्रेष्ठ वाली गर्जा और उसे वींध दिया ॥ ७ ॥ उस दुन्दुभि को ऊंचा उठाकर उसने पृथिवी पर दे पटका, तब उस प्राणहर युद्ध में वह दुन्दुभि चूरा २ होगया ॥ ८ ॥ और यह सात बड़े २ साल जो लटकती हुई बड़ी २ शाखाओं वाले हैं, इन में से एक को वाली अपने बल से (कम्पाकर) पत्रहीन कर देता है ॥ ९ ॥ हे राम यह मैंने उसका असाधारण वीर्य प्रकाशित किया है, हे नृप कैसे आप उस वाली को युद्ध में मार सकेंगे ॥ १० ॥ ऐसा कहते हुए सुग्रीव को हंसता हुआ लक्ष्मण बोला, किसकाम के पूरा कर देने में आपको वालि के वध का विश्वास होगा ११ तब सुग्रीव उससे बोला, कि वालि ने इसप्रकार सात साल वृक्षों को एक २ करके वींधा है, और उस ने यह काम कई वार किया है ॥ १२ ॥ सो राम यदि इनमें से एक बाण से एक वृक्ष को फोड़

दे, तो रामके विक्रम को देखकर मैं बालि को मरा समझूंगा॥१३॥ रक्त किनारे वाले नेत्रोंवाला सुग्रीव ऐसा कहकर तनिक सोचकर फिर काकुत्स्थ राम से यह वचन बोला ॥ १४ ॥ हे मित्रवत्सल मैंने श्लाघा के योग्य सन्मित्र को उपालम्भ दिया है, हे पुरुष-श्रेष्ठ ! मैं तो आपका आश्रय लिये हूं, जैसे कोई हिमालय का आश्रय ले ॥ १५ ॥ किन्तु उस बलशाली दुर्भ्राता के बल का जाननेवाला हूं, और हे राघव आपका संग्राम में बल मेरे अप्रत्यक्ष है ॥ १६ ॥ न मैं आपको तोलता हूं, न अपमान (गुस्ताखी) करता हूं, न डराता हूं, किन्तु उसके भयङ्कर कर्मों ने मेरी काय-रता उत्पन्न करदी है ॥ १७ ॥ बेशक हे राम ! आपकी वाणी प्रमाण है, आपका धैर्य और आकृति भस्म से ढके हुए अग्नि की तरह आप में परमतेज को जितलाते हैं ॥ १८ ॥

सर्ग १० (व० १२) प्रथम युद्ध में सुग्रीव की हार

मूल—एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् । प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम् ॥ १ ॥ स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः । सालमुद्दिश्य चिक्षेप पूरयन्स रवैर्दिशः ॥ २ ॥ स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः । भित्वा तालान्गिरिप्रस्थं सप्त भूमिं विवेश ह ॥ ३ ॥ तान्दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान्सालान्वानरपुंगवः । रामस्य शरवेगेन विस्मयं परमं गतः ॥ ४ ॥ इदं चोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः । रामं सर्वास्त्रविदुषां श्रेष्ठं शूरमवस्थितम् ॥ ५ ॥ सेन्द्रानपि सुरान्सर्वांस्त्वं बाणैः पुरुषर्षभ । समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्वालिनं प्रभो ॥ ६ ॥ येन सप्त महाताला गिरिर्भूमिश्च दारिता । बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः ॥ ७ ॥ अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम । सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ८ ॥ तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम् । वालिनं जहि काकुत्स्थ

मया बद्धोऽयमञ्जलिः ॥ ९ ॥ ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम् । प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुमतं वचः ॥ १० ॥ अस्माद्गच्छाम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः । गत्वा चाह्वय सुग्रीव वालिनं भ्रातृगन्धिनम् ॥ ११ ॥ सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम् । वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन्गहने वने ॥१२॥ सुग्रीवोऽप्यनदद्घोरं वालिनो ह्वानकारणात् । तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो वाली महाबलः ॥ १३ ॥ निष्पपात सुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव । ततः स तुमुलं युद्धं वालिसुग्रीवयोरभूत् ॥१४ तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः । जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं भ्रातरौ क्रोधमूर्छितौ ॥ १५ ॥ ततो रामो धनुष्पाणिस्तावुभौ समुदैक्षत । अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ ॥ १६ ॥ यन्नावगच्छत्सुग्रीवं वालिनं वापि राघवः । ततो न कृतवान्बुद्धिं मोक्तुमन्तकरं शरम् ॥ १७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे भग्नः सुग्रीवस्तेन वालिना । अपश्यन्राघवं नाथमृष्यमूकं प्रदुद्रुवे ॥ १८ ॥ राघवोऽपि सह भ्रात्रा सह चैव हनूमता । तदेव वनमागच्छत्सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ १९ ॥ तं समीक्ष्यागतं रामं सुग्रीवः सहलक्ष्मणम् । ह्रीमान्दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन् ॥ २० ॥ आह्वयस्वेति मामुक्त्वा दर्शयित्वा च विक्रमम् । वैरिणो घातयित्वा च किमिदानीं त्वया कृतम् ॥ २१ ॥ तामेव वेलां वक्तव्यं त्वया राघव तत्त्वतः । वालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो व्रजे ॥ २२ ॥

टीका—सुग्रीव के इस सुभाषित वचन को सुनकर महातेजस्वी राम ने उसके विश्वास के लिये धनुष को पकड़ा ॥ १ ॥ उस मानदाता ने भयङ्कर धनुष और एक बाण को लेकर उसकी ध्वनि से दिशाओं को पूर्ण करते हुए ने साल को लक्ष्य करके छोड़ा ॥ २ ॥ बलवान् से छोड़ा हुआ वह सुवर्ण भूषित बाण सातों तालों को और

पर्वत की चोटी को फोड़कर भूमि में जागड़ा ॥ ३ ॥ वह बानरश्रेष्ठ ! राम के बाण के वेग से उन सात ताड़ों को फोड़ा हुआ देखकर परम विस्मय को प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥ और उस कर्म से हर्षित हुआ अस्त्र जानने वालों में सब से श्रेष्ठ सामने खड़े हुए धर्मज्ञ शूर बीर राम से यह बोला ॥ ५ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! आप अपने बाणों से इन्द्र समेत सारे देवताओं को भी युद्ध में जीतने को समर्थ हैं क्या फिर बाली को ॥ ६ ॥ जिसने सात बड़े ताड़, पर्वत और भूमि एक बाण से फोड़ दी है, हे काकुत्स्थ ! आपके आगे रण में कौन खड़ा होसक्ता है ॥ ७ ॥ आज महेन्द्र और वरुण के तुल्य आप जैसे सुहृद् को पाकर मेरा शोक दूर होगया, आज मुझे परमप्रीति है ॥ ८ ॥ आज ही मेरी प्रीति के लिये उस भाई रूपी मेरे वैरी बालि को मारें, हे राम मैं यह हाथ बांधता हूं ॥ ९ ॥ तब महाप्राज्ञ राम प्रियदर्शन लक्ष्मण से अनुगत सुग्रीव को कण्ठ लगाकर यह वचन बोला ॥ १० ॥ यहां से किष्किन्धा को चलते हैं, आप आगे जाएं, और जाकर हे सुग्रीव ! उस खोटे भाई बाली को आ-ह्वान (चैलंज) दें ॥ ११ ॥ तब वह सारे जल्दी बाली की किष्किन्धापुरी में जाकर घने बन में वृक्षों से अपने आपको ढांपकर ठहरे ॥ १२ ॥ सुग्रीव ने बाली के आह्वान के लिये ऊंचा सिंहनाद किया, उस नाद को सुनकर क्रुद्ध हुआ महाबली बाली ॥ १३ ॥ जोश में भरा हुआ अस्तागिरि के तट से सूर्य तुल्य बाहर निकला तब बाली और सुग्रीव का बड़ा तुमल युद्ध हुआ ॥ १४ ॥ क्रोध से मूर्छित दोनों भाई बिजली तुल्य तलियों से और फूलाद के तुल्य मुक्कियों से एक दूसरे को ताड़ते भए ॥ १५ ॥ तब राम ने हाथ में धनुष लिया, पर उन दोनों बीरों में से हरएक को अश्वि देवों की तरह एक दूसरे के सदृश देखा ॥ १६ ॥ जब रामचन्द्र जी सुग्रीव वा बाली को

अलग करके नहीं जान सके, तब उन्होंने अन्तकारी बाण छोड़ने की बुद्धि नहीं की ॥ १७ ॥ इस अवसर पर वाली से भागा हुआ सुग्रीव राम को अपना रक्षक न देखता हुआ ऋष्यमूक को भागगया ॥ १८ ॥ राम भी भाई के साथ और हनुमान् के साथ उसी बन में आए जहां सुग्रीव वानर था ॥१९॥ लक्ष्मण समेत रामको आया देखकर सुग्रीव लज्जित हो नीचे देखता हुआ यह वचन बोला॥२०॥ आह्वान कर मुझे ऐसा कहकर फिर मुझे वैरी से मरवाकर आपने यह क्या किया ॥२१॥ उसी समय हे राघव मुझे आपने ठीक २ कह देना चाहिये था, कि मैं वाली को नहीं मारूंगा ॥ २२ ॥

सर्ग ११ (व० १२) सुग्रीव के गले में निशान बांधना

मूल—तस्य चैवं ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । करुणं दीनया वाचा राघवः पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ सुग्रीव श्रूयतां तात क्रोधश्च व्यपनीयताम् । कारणं येन बाणोऽयं स मया न विसर्जितः ॥ २ ॥ अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च । त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौ स्थः परस्परम् ॥ ३ ॥ स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर । विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये ॥ ४ ॥ ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम । नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम् ॥ ५ ॥ जीवितान्तकरं घोरं सादृश्यात्तु विशङ्कितः । मूघलातो न नौ स्याद्धि द्वयोरिति कृतो मया ॥ ६ ॥ त्वयि वीर विपन्ने हि अज्ञानाल्लाघवान्मया । मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यातं स्यात्कपीश्वर ॥७॥+दत्ताभयवधो नाम पातकं महदद्भुतम् । अहं च लक्ष्मणश्चैव सीता च वरवर्णिनी ॥ ८ ॥ त्वदधीना वयं सर्वे वनेऽस्मिञ्शरणं भवान् । तस्माद्युध्यस्व भूयस्त्वं मा माशङ्कीश्च वानर ॥ ९ ॥ एतन्मुहूर्ते तु मया पश्य वालिनमाहवे । निरस्तामि-

घुर्णैकेनं चेष्टमानं महीतले ॥ १० ॥ अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो वानरेश्वर । येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम् ॥ ११ ॥ गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम् । कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥ १२ ॥ ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य कुसुमायुताम् । लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत् ॥ १३ ॥ स तया शुशुभे श्रीमाँल्लतया कण्ठसक्तया । मालयेव बलाकानां ससंध्य इव तोयदः ॥ १४ ॥ विभ्राजमानो वपुषा रामवाक्यसमाहितः । जगाम सह रामेण किष्किन्धां पुनराप्तः ॥ १५ ॥

टीका—महात्मा सुग्रीव के ऐसा कहते हुए दीन वाणी से राम दीन वचन बोला ॥१॥ तात सुग्रीव क्रोध को दूर कीजिये, और वह कारण सुनिये, जिससे मैंने बाण नहीं छोड़ा है ॥ २ ॥ अलङ्कार से वेष से, डील डौल से और चाल से हे सुग्रीव आप और वाली परस्पर तुल्य हैं ॥ ३ ॥ स्वर से, कान्ति से दृष्टि से, विक्रम से और वाक्यों से हे वानर तुम दोनों की व्यक्ति को नहीं जान सका ॥४॥ तब मैं रूप की तुल्यता से धोखे में आया, और तुल्यता से शङ्का वाले हुए मैंने शत्रुओं के उखाड़ने वाला बड़े वेगवाला जीवन का अन्त करने वाला भयङ्कर बाण नहीं छोड़ा, ऐसा न हो कि हम दोनों का मूलघात होजाए, इससे मैंने ऐसा किया ॥ ५,६ ॥ यदि हे वीर मैं अज्ञान से वा चञ्चलता से आपको मार डालता, तो हे वानरेश्वर मैं अपनी मूढ़ता और बालकपन दिखलाता ॥ ७ ॥ अभय दिये हुए को मारना बड़ा भारी पाप भी होता । किञ्च मैं, लक्ष्मण और सुन्दरी सीता ॥८॥ हम सब आपके अधीन हैं, इस वन में आप हमारे शरण हैं । इसलिये फिर युद्धकर, मत शङ्काकर, हे वानर ॥ ९ ॥ इस समय युद्ध में मुझसे एक बाण से गिराए हुए पृथिवीतल पर लोटते हुए वाली को देख ॥ १० ॥ हे नरेश्व

आप कोई चिन्ह लगाएं, जिससे द्वन्द्वयुद्ध में जुटे हुए आपको मैं जानलूं ॥११॥ हे लक्ष्मण ! शुभ लक्षणों वाली फूली हुई इस गजपुष्पी को उखाड़कर महात्मा सुग्रीव के कण्ठ में बांध ॥ १२ ॥ तब पर्वत पर उगी उस गजपुष्पी को उखाड़कर लक्ष्मण ने उसके कण्ठ में बांध दिया ॥१३॥ वह श्रीमान् कण्ठ में लटकती हुई उस लता से बगलों की पंक्ति से सन्ध्या कालीन मेघ के तुल्य शोभायमान हुआ ॥१४॥ शरीर से प्रकाशता हुआ राम के वाक्य से सावधान हुआ वह राम के साथ फिर किष्किन्धा को गया ॥१५॥

सर्ग १२ (व० १३-१५) तारा का बाली को युद्ध से रोकना।

मूल—ऋष्यमूकात्स धर्मात्मा किष्किन्धां लक्ष्मणाग्रजः। जगाम सह सुग्रीवो वालिविक्रमपालिताम् ॥ १ ॥ अग्रतस्तु ययौ तस्य राघवस्य महात्मनः। सुग्रीवः संहतग्रीवो लक्ष्मणश्च महाबलः॥ २ ॥ पृष्ठतो हनुमान्वीरो नलो नीलश्च वीर्यवान् तारश्चैव महातेज हरियूथपयूथपः ॥३॥ सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम्। वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन्गहने वने ॥ ४ ॥ विसार्य सर्वतो दृष्टिं कानने काननप्रियः। सुग्रीवो विपुलग्रीवः क्रोधमाहारयद्भृशम् ॥५॥ ततस्तु निनदं घोरं कृत्वा युद्धाय चाह्वयत्। परिवारैः परिवृतो नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥ ६ ॥ अथ तस्य निनदं तं सुग्रीवस्य महात्मनः। शुश्रावान्तःपुरगतो वाली भ्रातुरमर्षणः ॥ ७ ॥ शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः। वेगेन च पदन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥८॥ तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद्दर्शितसौहृदा। उवाच त्रस्तसंभ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः ॥९॥ साधु क्रोधमिमं वीर नदीवेगमिवागतम्। शयनादुत्थितः काल्यं त्यज भुक्तामिव स्रजम् ॥ १० ॥ सहसा तव निष्कामो मम तावन्न रोचते। श्रूयतामभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यते ॥११॥ पूर्वमापतितःक्रोधात्स त्वामा-

ह्वयते युधि । निष्पस्य च निरस्तस्ते हन्यमानो दिशो गतः ॥ १२ ॥ त्वया तस्य निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः । इहैत्य पुनराह्वान शङ्कां जनयतीव मे ॥ १३ ॥ दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः । निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम् ॥ १४ ॥ नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम् । अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति ॥ १५ ॥ पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः । अङ्गदस्य कुमारस्य वक्ष्याम्यद्य हितं वचः ॥१६॥ अङ्गदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुपनिर्गतः । प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैरासीन्निवेदिता ॥ १७ ॥ अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ । इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रथितौ रामलक्ष्मणौ ॥१८॥ सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ । स ते भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्मणि ॥ १९॥ रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः । निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः॥ २० ॥ आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम् । ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः ॥२१॥ तत्क्षमो न विरोधस्ते सह तेन महात्मना । शूर वक्ष्यामि ते किञ्चिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम् ॥२२॥ श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम् । यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय ॥ २३ ॥ विग्रहं मा कृथा वीर भ्राता राजन्यवीयसा । अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम् ॥२४॥ दानमानादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम् । वैरमेतत्समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु ॥ २५ ॥ यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां हिताम् । याच्यमानः प्रियत्वेन साधु वाक्यं कुरुष्व मे ॥२६॥

टीका—ऋष्यमूकसे वह धर्मात्मा लक्ष्मणका बड़ा भाई सुग्रीवसहित बाली के पराक्रम से पालित किष्किन्धा को गया ॥१॥ गठी हुई ग्रीवावाला महाबली सुग्रीव उस महात्मा राम के और लक्ष्मण के आगे २ गया ॥ २ ॥ और पीछे वीर हनुमान्, वीर्यवान् नल

और नील, और महातेजस्वी वानरों के यूथपतियों का यूथपति (मुख्य जरनैल) तार गया ॥ ३ ॥ वह सब जल्दी वाली की किष्किन्धापुरी में जाकर वृक्षों से अपने आपको ढांपकर गहन बन में ठहरे ॥ ४ ॥ और वन के प्यारे विशाल ग्रीवावाले सुग्रीव ने वन में सब ओर दृष्टि डाली, और बड़े क्रोध में आया ॥ ५ ॥ तब परिवार से घिरे हुए ने, अपने सिंहनादों से मानों आकाश को फोड़ते हुए ने, भयङ्कर ध्वनि करके युद्ध के लिये आह्वान दिया ॥ ६ ॥ तब महात्मा सुग्रीव की उस गर्ज को भाई के न सहारने वाले वाली ने अन्तःपुर में सुना ॥ ७ ॥ दुःसह शब्द को सुनकर तब वानर पाओं रखने से पृथिवी को मानों फोड़ता हुआ वेग से बाहर निकला ॥ ८ ॥ स्नेह से सौहार्द दिखलाती हुई तारा उसे कण्ठ लगाकर डरी हुई और घबराई हुई भला करनेवाला वचन बोली ॥ ९ ॥ हे वीर नदी के वेग की तरह आए इस क्रोध को, शयन से उठा हुआ प्रातःकाल भोगी हुई माला की तरह त्याग ॥ १० ॥ सहसा आपका बाहर निकलना मुझे पसन्द नहीं है, सुनिये कहती हूं, जिस कारण से आपको रोकती हूं ॥ ११ ॥ पहले वह क्रोध से आया, और आपको युद्ध में आह्वान दिया, तब आपने निकलकर उसे हराया और ताड़ना किया, तब वह भाग गया ॥ १२ ॥ जब आप ने उसे हरा दिया, और बहुत तंग किया, तब फिर उसका यहां आकर आह्वान देना मुझे शङ्का उत्पन्न करता है ॥ १३ ॥ उस गर्जते हुए का जैसा अभिमान, और व्यवसाय है, और जैसा उसके नाद का जोश है, यह कोई छोटा सा कारण नहीं है ॥ १४ ॥ मैं उस सुग्रीव को यहां विना साथी के आया नहीं समझती हूं, उसको साथी मिला है, जिसके सहारे पर वह गर्जता है ॥ १५ ॥ पूर्व ही मैंने हे वीर कुमार अङ्गद के कहने से

यह वचन सुना है, उस हितकारी वचन को आज कहती हूं॥१६॥ कुमार अङ्गद वन के अन्दर गया था, उसको वन में घूमने वालों ने यह समाचार बतलाया और उसने मुझे कहा॥१७॥ अयोध्याधिपति के दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण इक्ष्वाकुकुल के बचे शूर वीर युद्ध में दुर्जय वन को प्रस्थित हुए ॥ १८ ॥ वह दुष्प्राप सुग्रीव की प्रिय कामना के लिये प्राप्त हुए हैं।(उनमें से)वह विख्यात रणकर्म में तेरे भाई का साथी है॥ १९ ॥ जो प्रलय की अग्नि की तरह उठा हुआ शत्रुओं की सेना का नाशक है,भलों का निवासवृक्ष है आपद्ग्रस्तों का परम गति है ॥ २० ॥ पीड़ितों का आश्रय है, यश का एक पात्र है, ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न है, पिता की आज्ञा में रता हुआ है ॥ २१ ॥ सो उस महात्मा के साथ आपको विरोध उचित नहीं, हे शूर मैं कुछ कहना चाहती हूं, असूया नहीं चाहती हूं ॥ २२ ॥ सुनिये, और कीजिये जो मैं आपका हित बतलाती हूं, जल्दी सुग्रीव को यौवराज्य में तिलक दें ॥ २३ ॥ हे राजन् अपने छोटे भाई के साथ विग्रह मतकर, मैं उसके बराबर पृथिवी में तेरा कोई बन्धु नहीं जानती हूं ॥२४॥ दान मानादि सत्कारों से उसको अपने अधीन बना, जिससे कि वह इस वैर को छोड़कर तेरे पास ठहरे॥२५॥ यदि आपको मेरा प्रिय करना है, और यदि आप मुझे हितैषिणी जानते हैं तो इस प्रेम से याचना किये हुए आप मेरे वचन को स्वीकार करें ॥ २६ ॥

सर्ग १३ (व० १६) युद्ध और वाली का बध।

मूल—तामेवं ब्रुवतीं तारां ताराधिपनिभाननाम् । वाली निर्भर्त्सयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ गर्जतोऽस्य सुसंरब्धं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः । मर्षयिष्यामि केनापि कारणेन वरानने ॥ २ ॥ + अधर्षितानां शूराणां समरेष्वानिवर्तिनाम् । धर्षणामर्षणं भीरु मर-

णाद्विनिश्चयते ॥ ३ ॥ सोढुं न च समर्थोऽहं युद्धकामस्य संयुगे । सुग्रीवस्य संरम्भं हीनग्रीवस्य गर्जितम् ॥ ४ ॥ न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति ॥ ५ ॥ निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयो ऽनुगच्छसि । सौहृदं दर्शितं तावन्मयि भक्तिस्त्वया कृता ॥ ६ ॥ प्रतियोत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि संभ्रमम् । दर्पं चास्य विनेष्यामि न च प्राणैर्वियोक्ष्यते ॥ ७ ॥ शापितासि मम प्राणैर्निवर्तस्व जनेन च । अहं जित्वा निवर्तिष्ये तमहं भ्रातरं रणे ॥८॥ तं तु तारा परिष्वज्य वालिनं प्रियवादिनी । चकार रुदती मन्दं दक्षिणा सा प्रदक्षिणम् ॥९॥+ ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी । अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता ॥ १० ॥ प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम् । नगर्या निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन् ॥ ११ ॥ स ददर्श ततः श्रीमान्सुग्रीवं हेमपिङ्गलम् । सुसंवीतमवष्टब्धं दीप्यमानमिवानलम् ॥ १२ ॥ स वाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान् । सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः ॥ १३ ॥ श्लिष्टं मुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः । सुग्रीवोऽपि समुद्दिश्य वालिनं हेममालिनम्॥१४॥ मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनः पुनः । तयोर्युद्धमभूद्घोरं वृत्रवासवयोरिव॥ १५ ॥ तौ शोणिताक्तौ युध्येतां वानरौ वनचारिणौ। मेघाविव महाशब्दैस्तर्जमानौ परस्परम् ॥ १६ ॥ हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवं वानरेश्वरम् । प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः ॥१७॥ ततो धनुषि संधाय शरमाशीविषोपमम् । पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः ॥ १८ ॥ मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसन्निभः । राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ॥ १९ ॥ ततस्तेन महातेजा वीर्ययुक्तः कपीश्वरः । वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले ॥ २० ॥ इन्द्रध्वज इवोद्धूतः पौर्णमास्यां महीतले । आ-

श्वयुक्समये मासि गतसत्त्वो विचेतनः ॥ २१ ॥ भूमौ निपातितस्यापि तस्य देहं महात्मनः । न श्रीर्जहाति न प्राणा न तेजो न पराक्रमः ॥ २२ ॥

टीका—इसप्रकार कहती हुई उस चन्द्रमुखी तारा को बाली ने झिड़क दिया और यह वचन कहा ॥ १ ॥ जोश से गर्जते हुए विशेषतः भाई होकर शत्रु को हे सुन्दरमुखि! मैं किस कारण सहारूं ॥ २ ॥ युद्ध में न लौटनेवाले शूरवीर जो किसी से दबे न हों उनके लिये दबाव को सहना मरने से बढ़कर होता है ॥३॥ युद्ध की कामना वाले हीन हुई ग्रीवा वाले सुग्रीव का युद्ध के लिये जोश और गर्जन मैं नहीं सहार सक्ता हूं ॥ ४ ॥ और राम के हेतु मेरे लिये तुझे विषाद नहीं करना चाहिये, वह धर्मज्ञ कृतज्ञ कैसे पाप करेगा ॥ ५ ॥ स्त्रियों के साथ लौट जा, कैसे आगे २ चलती है, तूने सौहार्द दिखला दिया, और मुझ में भक्ति पूरी की है ॥ ६ ॥ मैं जाकर सुग्रीव के साथ युद्ध करूंगा, घबराहट को त्याग, मैं इसका अभिमान तोडूंगा, प्राणों से वियुक्त नहीं होगा ॥ ७ ॥ मेरे प्राणों की तुझे शपथ है, अपने जनों के साथ लौटजा, मैं उस भाई को रण में जीतनामात्र करके लौट आऊंगा ॥ ८ ॥ तब प्रिय बोलने वाली तारा बाली को आलिङ्गन करके मन्द २ रोती हुई उसकी प्रदक्षिणा करती भई ॥ ९ ॥ फिर विजय चाहती हुई वह मन्त्र के जानने वाली स्वस्तिवाचन करके शोक से मोहित हुई स्त्रियों के साथ अन्तःपुर में प्रविष्ट हुई ॥ १० ॥ तारा के स्त्रियों के सहित अपने घर में प्रविष्ट होने पर बाली क्रोध से भरा हुआ, नाग की तरह सांस लेता हुआ नगरी से निकला ॥ ११ ॥ उस श्रीमान् ने सुवर्ण की तरह पीत वर्ण, कमर बांधकर दृढ़ खड़े हुए, अग्नि की तरह दीप्य-

मान सुग्रीव को देखा ॥ १२ ॥ वह वीर्यवान् वाली दृढ़ कमर कसकर और मुक्का उठाकर युद्ध के लिये उत्साहित हुआ सुग्रीव के अभिमुख गया ॥ १३ ॥ सुग्रीव भी सुवर्ण की माला वाले वाली को लक्ष्य में करके दृढ़ मुक्का उठाकर अधिक क्रोध में आया ॥ १४ ॥ मुक्कों से, गोड़ों से, पाओं से और भुजाओं से बार २ उन दोनों का इन्द्र और वृत्र की तरह घोर युद्ध हुआ ॥ १५ ॥ वह रुधिर से लिबड़े हुए दोनों वनचारी वानर मेघ की तरह बड़ी गर्जों से एक दूसरे को झिड़कते हुए, युद्ध करते भए ॥ १६ ॥ अब राघव ने वानरेश्वर सुग्रीव को घटा हुआ और बार २ दिशाओं में दृष्टि डालता हुआ देखा ॥१७॥ तब उसने कालचक्र को, काल की तरह विषैले सांप जैसे बाण को, धनुष में जोड़कर पूर्ण किया ॥ १८ ॥ बिजलीको भी कड़कवाला, बिजली के तुल्य चमकता हुआ, वह महाबाण बाली की छाती में जा गड़ा ॥ १९ ॥ तब उस (बाण) से वेग से ताड़ना किया हुआ महातेजस्वी, वीर्यशाली, वानरेश्वर, वाली भूमि पर गिर पड़ा ॥ २० ॥ असूज की पौर्णमासी को इन्द्रध्वज की तरह विचेतन हो महीतल पर गिरा ॥ २१ ॥ भूमि पर गिरे हुए भी उस महात्मा के देह को न शोभा त्यागती है, न प्राण, न तेज, न पराक्रम ॥ २२ ॥

सर्ग १४ (व० १७) वाली के राम पर आक्षेप

मूल—तं तथा पतितं वीरं गतार्चिषमिवानलम्। बहु मान्य च तं वीरं वीक्षमाणं शनैरिव ॥१॥उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥ तं दृष्ट्वा राघवं वाली लक्ष्मणं च महाबलम्। अब्रवीत्परुषं वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् ॥ ३ ॥ पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः। यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः॥ १४ ॥ कुलीनः सत्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः।रामः करुणवेदी च प्रजानां

च हिते रतः ॥ ५ ॥ सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढव्रतः । इत्येतत्सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि ॥ ६ ॥ तान्गुणान्संप्रधार्याहमग्र्यं चाभिजनं तव । तारया प्रतिषिद्धः सन्सुग्रीवेण समागतः ॥ ७ ॥ न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्धुमर्हसि । इति मे बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने तव ॥ ८ ॥ स त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम्। जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥ ९ ॥ सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम् । नाहं त्वामभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम् ॥ १० ॥ विषये वा पुरे वा ते यदा पापं करोम्यहम् । न च त्वामवजानेऽहं कस्मात्त्वं हंस्यकिल्बिषम् ॥ ११ ॥ त्वं राघवकुले जातो धर्मवानिति विश्रुतः । अभव्यो भव्यरूपेण किमर्थं परिधावसे॥१२॥ साम दानं क्षमा धर्मः सत्यं धृतिपराक्रमौ । पार्थिवानां गुणा राजन्दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥ १३ ॥ हत्वा बाणेन काकुत्स्थ मामिहानपराधिनम् । किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कर्म कृत्वा जुगुप्सितम् ॥ १४ ॥ त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा । प्रमदा शीलसम्पूर्णा पत्येव च विधर्मणा ॥ १५ ॥ उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमोऽयं प्रकाशितः । अपकारिषु ते राम नैवं पश्यामि विक्रमम् ॥ १६ ॥ दृश्यमानस्तु युध्येथा मया युधि नृपात्मज । अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया ॥ १७ ॥ युक्तं यत्प्राप्नुयाद्राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि । अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे ॥ १८ ॥ इत्येवमुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः शराभिघातादृव्यथितो महात्मा। समीक्ष्य रामं रविसंनिकाशं तूष्णीं बभौ वानरराजसूनुः ॥ १९ ॥

टीका—दूर हुई ज्वालावाले अग्नि के तुल्य इसप्रकार गिरे हुए धैर्य से देखते हुए उस वीर का बहुत मान करके ॥ १ ॥ बड़े वीर्यवाले दोनों भाई राम लक्ष्मण पास गये ॥ २ ॥ बाली उस राघव को और महाबली लक्ष्मण को देखकर कठोर पर धैर्ययुक्त विनय से

वाक्य बोला। सामने न लड़ते हुए को मारकर कौन गुण लाभ किया है, जो युद्ध में जुटा हुआ मैं तेरे अर्ध मृत्यु को प्राप्त हुआ॥ ४ ॥ कुलीन, धैर्ययुक्त, तेजस्वी, ब्रह्मचर्य को पूर्ण किया हुआ, दयाभाव को जाननेवाला, और प्रजाओं के हित में रत ॥ ५ ॥ दयावान, बड़ा उत्साही, समय का जाननेवाला, दृढ़व्रती इसप्रकार सब लोग पृथिवी में आपका यश कहते हैं ॥ ६ ॥ आपके इन गुणों का और श्रेष्ठवंश का निश्चय करके तारा से रोका हुआ भी मैं सुग्रीव से आजुटा ॥ ७ ॥ आप मुझे दूसरे से जुटे हुए असावधान हुए को नहीं बींधेंगे, यह मेरी आपके दर्शन से पहली बुद्धि थी ॥ ८ ॥ वही मैं अब आपको नष्ट हुए आत्मावाला, धर्मध्वजी, अधार्मिक पाप आचारवाला, तिनकों से ढके हुए कुँएं की तरह जानता हूं॥९॥ मुनियों का भेष बनाए हुए, पापी, ढके हुए अग्नि की तरह, धर्म की आड़ मे ढका हुआ मैं तुझे नहीं जानता था ॥ १० ॥ आपके देश में वा पुर में जब मैं कोई पाप नहीं करता हूं, न आपकी अवज्ञा करता हूं, तो कैसे आप मुझ निरपराध को मारते हैं ॥ ११ ॥ राघवकुल में उत्पन्न हुए धर्मवान्, जगत् में ऐसे विख्यात, वस्तुतः अविनीत आप विनीत वेष से कैसे फिर रहे हैं ॥१२॥ साम, दान, क्षमा, धर्म, सचाई, धैर्य और पराक्रम हे राजन् ! राजाओं के यह गुण होते हैं, और अपकारियों में दण्ड ॥ १३ ॥ हे काकुत्स्थ! मुझे यहां निरपराध को बाण से मारकर यह निन्दित कर्म करके भलों के मध्य में क्या कहेगा ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ तुझ नाथ से पृथिवी सनाथ नहीं, जैसे शीलवती स्त्री विधर्मी पति से ॥ १५ ॥ हम उदासीनों में जो आपने विक्रम प्रकट किया है, हे राम अपकारियों (स्त्री हरनेवालों) में आपका ऐसा विक्रम नहीं देखता हूं ॥ १६ ॥ हे राजपुत्र! युद्ध में यदि सामने होकर तू मेरे साथ लड़ता, तो आज मुझसे मारा हुआ

तू यमदेव को देखता ॥ १७ ॥ मेरे स्वर्ग जाने पर सुग्रीव राज्य को प्राप्त हो यह युक्त है, पर जो आपने मुझे अधर्म से मारा है, यह अयुक्त है ॥ १८ ॥ यह कहकर बाण की पीड़ा से पीड़ित सूखे हुए मुखवाला वानरराज का पुत्र सूर्यतुल्य राम को देखकर चुप-होगया ॥ १९ ॥

सर्ग १८ (व० १८) राम का बाली को उत्तर

मूल—धर्मार्थ गुण सम्पन्नं हरीश्वर मनुत्तमम् । अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चाद्वालिनम ब्रवीत् ॥ १ ॥ धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम् । अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे ॥ २ ॥ इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना । मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥ ३ ॥ तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवानृजुः । धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः ॥ ४ ॥ नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन्सत्यं च सुस्थितम् । विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित्॥५॥ +तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः । चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसन्तानमिच्छवः ॥ ६ ॥ + तस्मिन्नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले । पालयत्यखिलां पृथ्वीं कश्चरेद्धर्मविप्रियम् ॥७॥ +ते वयं मार्गविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः।भरताज्ञां पुरस्कृत्य निगृह्णीमो यथाविधि॥८॥+त्वं तु संक्लिष्टधर्मश्च कर्मणा च विगर्हितः । कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि ॥ ९ ॥+ ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति । त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः॥१०॥+यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः । पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्र कारणम् ॥ ११ ॥+ तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः । भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥ १२ ॥ अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत् ॥१३॥ + तद्व्यतीतस्य ते धर्मा-

तकामवृत्तस्य वानर। भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दण्डोऽयं प्रतियादितः ॥ १४ ॥ नहि लोकविरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः। दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥ १५ ॥+न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्भवः ॥१६॥ औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः। प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः ॥१७॥ भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः। त्वं च धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम् ॥१८॥ श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ। गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया ॥ १९ ॥

टीका—कठोर कहा हुआ राम उस उत्तम वानरेश्वर बाली से धर्म अर्थ से युक्त वाक्य कहने लगा ॥१॥ धर्म, अर्थ, काम और लोकाचार को न जानकर कैसे बालकपन से तू मुझे कठोर कहता है ॥२॥ पर्वत, वन, जङ्गलों समेत यह सारी भूमि इक्ष्वाकुओं की है, पशु, पक्षि और मनुष्यों के निग्रह अनुग्रह में भी (उन्हीं को अधिकार है) ॥३॥ उसको धर्मात्मा भरत पालन कर रहा है, जो सत्यवान्, सरल, धर्म, अर्थ, काम का तत्त्व जानने वाला (दुष्टों के निग्रह और शिष्टों के अनुग्रह में रत है) ॥ ४ ॥ जिस में न्याय और विनय दोनों स्थित हैं, और सत्य स्थित है, और विक्रम देखा गया है, देशकाल के जाननेवाला, वह भरत इस समय राजा है ॥ ५ ॥ उसकी धर्मकृत आज्ञा पाए हुए हम और दूसरे राजा धर्म वृद्धि चाहते हुए सारी पृथिवी पर घूम रहे हैं ॥ ६ ॥ उस राजश्रेष्ठ धर्मवत्सल भरत के सारी पृथिवी को पालन करते हुए कौन धर्म नाश कर सक्ता है ॥ ७ ॥ सो हम परमधर्म (दुष्टों के निग्रह) में स्थित हुए भरत की आज्ञा का आदर कर मार्ग से गिरे हुए को यथाविधि निग्रह करते हैं ॥ ८ ॥ तू (लोक में) अपने कर्म से निन्दित, धर्म को पीड़ित किये हुए, कामवृत्ति को

मुख्य किये हुए राजमार्ग पर स्थित नहीं है ॥ ९ ॥ बड़ा भाई, पिता और जो विद्या देता है, यह तीनों पिता मानने चाहियें यदि धर्ममार्ग में स्थित हैं ॥ १० ॥ और छोटा भाई अपना पुत्र और गुणी शिष्य, यह तीनों पुत्रवत् समझने चाहियें, इसमें धर्म कारण है ॥११॥ सो यह कारण देख, जिससे मैंने तुझे मारा है तू सनातन धर्म को त्यागकर भाई की स्त्री में वर्तता है ॥१२॥ तू इस महात्मा सुग्रीव के जीते हुए कामवश हो *स्नुषातुल्य रुमा में वर्तता है, इसलिए तू पाप कर्मकारी है ॥१३॥ सो धर्म से फिसले हुए, इच्छाचारी हुए तुझको भाई की स्त्री की धर्षणा में यह दण्ड दिया है ॥ १४ ॥ हे वानरों के यूथपति मैं लोकमर्यादा से गिरे हुए लोक के विरुद्ध चलते हुए का दण्ड के सिवाय और निग्रह नहीं देखता हूं ॥ १५ ॥ मैं तेरे पाप को नहीं सहार सका मैं कुलीन क्षत्रिय हूं ॥ १६ ॥ जो अपनी सगी बहिन वा छोटे भाई की भार्या में कामवृत्ति हो, उसके लिये वध दण्ड स्मृति में

---

*"जीते हुए" कहने से मरने के पीछे पुनर्विवाह सिद्ध है जैसे कि सुग्रीव का तारा से हुआ। इस श्लोक की टीका रामायण तिलक में इसी बात को स्पष्ट किया है। और उसके यह शब्द कि-"त्रैवर्णिकेष्वपि देवरस्य मृतभ्रातुःस्त्रियामपुत्रायां प्रवृत्तिदर्शनात्" ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में भी यह देखा जाता है, कि मृत भाई की स्त्री अपुत्रा हो, तो उसमें देवर की प्रवृत्ति होती है" प्रकट करते हैं, कि इस टीका के समय द्विजातियों में नियोग और शूद्रों में पुनर्विवाह होता था। जैसा कि इस के आगे कहा है। "अनेन त्रैवर्णिकेतरस्त्रीणां मृतभर्तृकाणां तरुणीनां स्वजातीयपुरुषाङ्गीकारोनाधर्मइति सूचितम्" इससे यह सूचित किया है, कि द्विजातियों से भिन्न स्त्रियें जिनका पति मर चुका हो उन युवतियों को अपनी जाति के पुरुष का अंगीकार अधर्म्म नहीं है।

कहा है ॥ १७ ॥ पृथिवी का अधिपति भरत है, हम आज्ञा में वर्तने वाले हैं, और तू धर्म को उलांघे हुए है, कैसे उपेक्षा की जाए ॥१८॥ चरित्र के प्यारे दो श्लोक मनु से गाए हुए और धर्म कुशलों से ग्रहण किये हुए सुने जाते हैं, उनके अनुसार मैंने आचरण किया है ॥१९ ॥ (मनु० ८ । ३१८, ३१६)

मूल—राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्ग-मायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥२०॥ शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते । राजा त्वशासन्पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥+आर्येण मम मांधात्रा व्यसनं घोरमीप्सितम् । श्रमणेन कृते पापे यथा पापं कृतं त्वया ॥ २२ ॥ तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः । वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः ॥ १ ॥ दुर्लभस्य च धर्मस्य जीवितस्य शुभस्य च । राजानो वानरश्रेष्ठ प्रदातारो न संशयः ॥ २४ ॥ तान्न हिंस्यान्न चाक्रोशेन्नाक्षिपे-न्नाप्रियं वदेत् । देवा मानुषरूपेण चरन्त्येते महीतले ॥ २५ ॥ त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं रोषमास्थितः । विदूषयसि मां धर्मे पितृ पैतामहे स्थितम् ॥ २६ ॥

टीका—पाप करने के पीछे राजाओं से दण्ड दिये हुए पुरुष पाप रहित हो, पुण्यात्मा भले पुरुषों की तरह स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ (मैंने अमुक पाप किया है, मुझे दण्ड दीजिये, यह कहते हुए अपने पास आए पापी को) दण्ड देने से वा (दया करके) छोड़ देने से (दोनों तरह चोर वा कोई और पापी) पाप से छूट जाता है, पर राजा पाप को न रोकता हुआ उस पाप को प्राप्त होता है (इसलिये तुझे दण्ड देना हमारे लिये आवश्यक था, यह ध्वनि है) ॥२१॥ मेरे पूर्वज मान्धाता ने एक संन्यासी को पाप करने पर भयङ्कर दण्ड दिया था जैसे तूने पाप किया है ॥२२॥ सो

सन्ताप मत कर हे वानरश्रेष्ठ यह तेरा वध धर्म से किया गया है, हम अपने वश में स्थित नहीं हैं (किन्तु धर्म की आज्ञा में स्थित हैं) ॥ २३ ॥ (धर्मानुसारी) राजा प्रजा को दुर्लभ धर्म के और शुभ जीवन के देने वाले होते हैं, सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ (इसलिए) उनसे न द्रोह करे, न निन्दा करे, न अपमान करे, न अप्रिय बोले, यह राजा लोग मानुषरूप से पृथिवी पर देवता घूम रहे हैं ॥२५॥ तू तो धर्म को न जानकर केवल क्रोध में स्थित हुआ पिता पितामह के धर्म में स्थित मुझ को दोष लगाता है ॥ २६ ॥

सर्ग १६ (व०१८) अंगद के विषय में राम का वाली को तसल्ली देना

मूल—एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम् । न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥ १ ॥ प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः । यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः ॥ २ ॥ यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादाद्वाक्यमप्रियम् । तत्रापि खलु मां दोषं कर्तुं नार्हसि राघव ॥ ३ ॥ बाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु वाली सार्तरवः शनैः । उवाच रामं संप्रेक्ष्य पङ्कलग्न इव द्विपः ॥ ४ ॥ न चात्मानमहं शोचे न तारां नापि बान्धवान् । यथा पुत्रं गुणज्येष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम् ॥ ५ ॥ स ममादर्शनाद्दीनो बाल्यात्प्रभृति लालितः । तटाक इव पीताम्बुरुपशोषं गमिष्यति ॥ ६ ॥ बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः । तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः ॥ ७ ॥ सुग्रीवे चाङ्गदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम् । त्वं हि गोप्ता च शास्ता च कार्याकार्यविधौ स्थितः ॥ ८ ॥ या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणे च या । सुग्रीवे चाङ्गदे राजंस्तां चिन्तयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा वानरो रामं विरराम हरीश्वरः । स तमाश्वासयद्रामो बालिनं व्यक्तदर्शनम् ॥ १० ॥ न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम । वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः ॥ ११ ॥ दण्ड्ये यः पातयेद्दण्डं

दण्ड्यो यश्चापि दण्ड्येत । कार्यकारणसिद्धार्थावुभौ तौ नावसीदतः ॥१२॥ तद्भवान्दण्डसंयोगादस्माद्विगतकल्मषः । गतः स्वां प्रकृतिं धर्म्यां दण्डदिष्टेन वर्त्मना ॥ १३ ॥ त्यज शोकं च मोहं च भयं च हृदये स्थितम् । त्वया विधानं हर्यग्र्य न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ १ ॥ यथा त्वय्यङ्गदो नित्यं वर्तते वानरेश्वर । तथा वर्तेत सुग्रीवे मयि चापि न संशयः ॥ १८ ॥

टीका—राम से ऐसे कहा हुआ बाली धर्म में निश्चय पाकर (अपनी पहली क्रोध की बातों पर) अतीव दुःखित हुआ, राम में दोष न देता भया ॥ १ ॥ तब वह वानरेश्वर हाथ जोड़कर राम से बोला, हे नरश्रेष्ठ ! जो आप कहते हैं, ठीक है, सन्देह नहीं ॥२॥ जो कुछ मैंने प्रमाद से पूर्व अप्रिय वाक्य कहा है, हे राम उसमें भी मुझे आप दोष लगाने योग्य नहीं हैं ॥ ३ ॥ इतने में बाली का गला बाष्प से रुक गया, और वह धीरे २ आर्तध्वनि के साथ कीचड़ में फंसे हाथी की तरह राम को देखता हुआ कहने लगा ॥ ४ ॥ न मुझे अपना शोक है, न तारा का, न बन्धुओं का, जैसा कि सोने के बाहुबन्द वाले गुणों में ज्येष्ठ अङ्गद पुत्र का ॥ ५ ॥ वह बाल्य से लेकर लालन किया हुआ मेरे अदर्शन से दीन हुआ पिये गये जलवाले तालाब की तरह सूख जाएगा ॥ ६ ॥ बाल अकृत बुद्धि है, इकलौता बेटा मेरा प्यारा है, तारा का पुत्र वह महाबली आप से रक्षा के योग्य है, ॥ ७ ॥ सुग्रीव और अङ्गद में उत्तम बुद्धि रखिये, आप रक्षक हैं, और कार्य अकार्य में शासन करनेवाले हैं ॥ ८ ॥ हे नरपते ! जो आपका बर्ताव भरत में है और जो लक्ष्मण में है, हे राजन् वही बर्ताव सुग्रीव और अङ्गद में आप चिन्तन करने योग्य हैं ॥ ९ ॥ राम को इतना कहकर वानरेश्वर वानर चुप होगया, तब स्पष्ट दर्शनवाले

उस बाली को राम तसल्ली देते भए ॥१०॥ हे वानरश्रेष्ठ! आप न अपनी चिन्ता करें, न हमारी, हम आप से अधिक धर्म में निश्चय वाले हैं॥ ११ ॥ जो दण्ड के योग्य को दण्ड देता है, और जो दण्ड के योग्य दण्डा जाता है, वह दोनों कार्य कारण से सिद्ध प्रयोजन हुए दुःखी नहीं होते हैं॥ १२ ॥ सो आप इस दण्ड के सम्बन्ध से निष्पाप हुए, दण्ड शास्त्र के मार्ग से अपने शुद्ध स्वभाव को प्राप्त हुए हैं॥ १३ ॥ हृदय में स्थित शोक मोह और भय को त्यागें, हे वानरश्रेष्ठ आप विधि (दैव) को नहीं उलांघ सक्के ॥ १४ ॥ हे वानरेश्वर! अङ्गद जैसे तुझ में सदा वर्तता है, वैसे सुग्रीव में और मुझमें वर्तेगा, संशय नहीं॥ १५ ॥

सर्ग १७ (व० १९, २०) तारा का विलाप

मूल—स वानरमहाराजः शयानः शरपीडितः। प्रत्युक्तो हेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरं प्रतिपद्यत॥ १ ॥ तं भार्या बाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव वालिनम्॥ २ ॥ सा सपुत्राप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम्। निष्पपात भृशं तस्मादुद्विग्ना गिरिकन्दरात्॥ ३ ॥ सा व्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि। हन्तारं वानरेन्द्राणां समरेष्वनिवर्तिनाम्॥ ४ ॥ अवष्टभ्यावतिष्ठन्तं ददर्श धनुरूर्जितम्। रामं रामानुजं चैव भर्तुश्चैव तथानुजम्॥ ५ ॥ तानतीत्य समासाद्य भर्त्तारं निहतं रणे। समीक्ष्य व्यथिता भूमौ संभ्रान्ता निपपात ह॥ ६ ॥ तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्तीं कुररीमिव। विषादमगमत्कष्टं दृष्ट्वा चाङ्गदमागतम्॥७॥ सा समासाद्य भर्त्तारं पर्यष्वजत भामिनी। तारा तरुमिवोन्मूलं पर्यदेवयतातुरा॥ ८ ॥ कालो निःसंशयो नूनं जीवितान्तकरस्तव। बलाद्येनावपन्नोऽसि सुग्रीवस्यावशो वशी॥ ९ ॥ अस्थाने वालिनं हत्वा युध्यमानं परेण च। न सन्तप्यति काकुत्स्थः कृत्वा कर्म सुगर्हितम्॥१०॥ कुरुष्व

पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम् । दुर्लभंदर्शनं तस्य तव वत्स भविष्यति ॥ ११ ॥ समाश्वासय पुत्रं त्वं सन्देशं सन्दिशस्व मे । मूर्ध्नि चैनं समाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि ॥ १२ ॥

टीका—वह वानर महाराज लेटा हुआ बाणों से पीड़ित हुआ युक्ति-युक्त वाक्यों से उत्तर पाकर आगे उत्तर नहीं देता भया ॥ १ ॥ उस वानर श्रेष्ठ बाली को उसकी पत्नी तारा ने राम से छोड़े बाण द्वारा युद्ध में मरा हुआ सुना॥२॥ वह भर्त्ता के वध रूप बड़े दारुण अप्रियको सुनकर अत्यन्त घबराई हुई पुत्र समेत उस पर्वतकन्दरा (किंष्किन्धा) से निकली ॥ ३ ॥ उसने जाकर पति को भूमि पर गिरा हुआ देखा, जोकि युद्ध में न लौटने वाले वानरेन्द्रों का मारनेवाला था ॥ ४ ॥ और पराक्रम वाले धनुष को थामकर खड़े हुए राम, राम के छोटे भाई और अपने भर्त्ता के छोटे भाई को देखा ॥ ५ ॥ उनको उलांघकर रण में पड़े हुए भर्त्ता को देख कर दुःखी हो भूमि पर गिर पड़ी ॥ ६ ॥ कुररी की तरह उसे पुकारती हुई देखकर और अङ्गद को आया देखकर सुग्रीव बड़े विषाद को प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ उस सुन्दरी तारा ने भर्त्ता के पास जा उसे आलिङ्गन किया, और जड़ से उखड़े हुए वृक्ष की तरह गिरे हुए के पास आतुर हो रोने लगी ॥ ८ ॥ काल निःसन्देह तेरे जीवन का अन्त करने वाला है, जिसने किसी के बस में न आने वाले तुझको बल से सुग्रीव के बस में ला डाला है ॥ ९ ॥ दूसरे के साथ युद्ध करते हुए को मारकर ऐसा निन्दित कर्म करके राम संतप्त नहीं होता है, यह अयोग्य है ॥ १० ॥ हे पुत्र (अङ्गद) धर्मप्रिय पिता को सुदृष्ट कर, हे वत्स अब तुझे इसका दर्शन दुर्लभ होगा ॥ ११ ॥ (हे राजन् !) अपने पुत्र को मस्तक पर चूमकर तसल्ली दे, और मुझे सन्देश दे, अब आप परलोक को प्रस्थित होते हैं ॥ १२ ॥

सर्ग १८ (व० २२) वाली का अन्तिम संदेश

मूल—वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन्। आदावेव तु सुग्रीवं ददर्शानुजमग्रतः ॥१॥ तं प्राप्तविजयं वाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरम्। आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ युगपद्विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः। सौहार्दं भ्रातृयुक्तं हि तदिदं जातमन्यथा ॥ ३ ॥ प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम्। मामप्यद्यैव गच्छन्तं विद्धि वैवस्वतक्षयम् ॥ ४ ॥ जीवितं च हि राज्यं च श्रियं च विपुलां तथा। प्रजहाम्येष वै तूर्णमहं चागर्हितं यशः ॥ ५ ॥ अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद्वचः। यद्यप्यसुकरं राजन्कर्तुमेव त्वमर्हसि ॥ ६ ॥ सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम्। बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमङ्गदम् ॥ ७ ॥ मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम्। मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय ॥ ८ ॥ त्वमप्यस्य पिता दाता परित्राता च सर्वशः। भयेष्वभयदश्चैव यथाहं प्लवगेश्वर ॥९॥ एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः। रक्षसां च वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति ॥ १० ॥ अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान्रणे। करिष्यत्येष तारेयस्तेजस्वी तरुणोऽङ्गदः॥११॥ सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये। औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ॥ १२ ॥ यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्यं तन्मुक्तसंशयम्। नहि तारामतं किञ्चिदन्यथा परिवर्तते ॥१३॥+राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया। स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्यादमानितः ॥ १४ ॥ इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम्। उदारा श्रीः स्थिता ह्यस्यां संप्रजह्यान्मृते मयि ॥ १५ ॥ इत्येवमुक्तः सुग्रीवो वालिनो भ्रातृसौहृदात्। हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोडुराट् ॥१६॥ तद्वालिवचनाच्छान्तः कुर्वन्युक्तमतन्द्रितः। जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तां चैव काञ्चनीम् ॥ ६ ॥ तां मालां काञ्चनीं दत्त्वा

दृष्ट्वा चैवात्मजं स्थितम् । संसिद्धः प्रेत्यभावाय स्नेहाद्वचनमब्रवीत् ॥१८॥ देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये । सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥ १९ ॥ नाक्यामित्रैर्मैत्रीं गच्छेर्मा शत्रुभिररिन्दम । भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव ॥ २० ॥ इत्युक्त्वाथ विवृत्ताक्षः शरसंपीडितो भृशम् । विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः ॥ २१ ॥

टीका—मन्द हुए सांस वाला, मन्द २ सांस लेता हुआ, सब ओर देखकर पहले ही आगे छोटे भाई सुग्रीव को देखता भया ॥ १ ॥ उस विजय पाए हुए वानराधिपति सुग्रीव को वाली सम्बोधन कर स्पष्ट वाणी से स्नेह से यह बोला ॥२॥ हे तात मैं जानता हूं, हम दोनों के लिए एक साथ सुख नहीं होना था (ऐसे ही कुछ मन्द कर्म प्रबल थे) जिससे कि यह सौहार्द जोकि भाई को उचित है, हम में उलटा होगया ॥३॥ तू आज ही इन वानरों के राज्य को प्राप्त हो, और मुझे भी अभी यम के घर जाना हुआ जान ॥४॥ जीवन, राज्य और बड़ी लक्ष्मी, और अनिन्दित यश यह अब मैं यहीं छोड़ता हूं, ॥ ५ ॥ किन्तु इस अवस्था में हे वीर जो बचन मैं कहूंगा, यद्यपि हे राजन् ! सुकर न हो, तो भी तुझे करना चाहिये ॥६॥ सुख से पले हुए, सुख के योग्य, बालक, पर शक्तिवाले इस अङ्गद को आंसुओं से पूर्ण मुखवाला भूमि पर गिरा हुआ देख ॥७॥ मेरे प्राणों से प्यारा पुत्र, जो मुझसे हीन होता है, इसके अर्थों को पूरा करते हुए औरस पुत्र की तरह सब ओर से पालन कर ॥८॥ भी इसका पिता, दाता, भयों में अभय देनेवाला मेरी तरह सब ओर से रक्षक है ॥९॥ यह श्रीमान् तारा का पुत्र तेरे तुल्य पराक्रमवाला है, राक्षसों के वध में तेरा अग्रणी होगा ॥१०॥ यह बलवान् तेजस्वी तारा का पुत्र तरुण अङ्गद रण में बहादुरी

के साथ योग्य कर्म करेगा ॥११॥ और यह सुषेण की कन्या (तारा) सूक्ष्म बातों के निश्चय में और अनेक प्रकार के उपद्रवों के विषय में पूरी २ समझवाली है ॥१२॥ जो कुछ यह भला कहे उसे निःसन्देह होकर करना, तारा का मत कभी उलटा नहीं होता है ॥ १३ ॥ और राघव का कार्य तूने निडर होकर करना, न करने में पाप होगा, अवमानित हुआ वह तुझे मार देगा ॥१४॥ और इस दिव्य सुनहरी माला को हे सुग्रीव पहन, इसमें बड़ी शोभा है, मेरे मरने पर वह शोभा इसे त्याग देगी ॥१५॥ जब भाई के सौहार्द से बाली ने सुग्रीव को ऐसे कहा, तो वह हर्ष को त्यागकर राहुग्रस्त चन्द्र की तरह फिर दीन होगया ॥१६॥ बाली के उस वचन से (वैर को मन से त्यागकर) ठण्डाहुआ सावधान हो उचित व्यवहार करता हुआ, आज्ञा दिया हुआ उस माला को ग्रहण करलेता भया ॥१७॥ उस रत्नमाला को देकर और पुत्र को आगे देखकर मरने के लिये तय्यार हुआ, स्नेह से अङ्गद को कहने लगा ॥१८॥ अब (उस २ कर्म के उचित) देश काल का सेवन करना, प्रिय अप्रिय को सहारना, और सुख दुःख को सहते हुए सुग्रीव के वशगामी रहना ॥१९॥ इससे उदासीनों के साथ वा इसके शत्रुओं के साथ सङ्गति न करना, हे शत्रुओं के दबानेवाले सुग्रीव के कार्यसाधन में तत्पर रहकर सुशील बनकर सुग्रीव के वशगामी रहना ॥२॥ इतना कह चुकने के अनन्तर उसकी आंखें फिर गईं जीवन निकलगया, तबवानर सारे यूथपतिको मरादेख रोने लगे॥

सर्ग १९ (व० २३) तारा का विलाप

मूल–पतिं लोकश्रुता तारा मृतं वचनमब्रवीत् । शेषे त्वं विषमे दुःखमकृत्वा वचनं मम ॥१॥+इदंतद्वीरशयनं तत्र शेषे हतो युधि ।

शायिता निहता यत्र त्वयैव रिपवः पुरा ॥२॥ विशुद्धसत्त्वाभिजन प्रिययुद्ध मम प्रिय । मामनाथां विहायैकां गतस्त्वमसि मानद ॥३॥ अवभग्नश्च मे मानो भग्ना मे शाश्वती गतिः । अगाधे च निमग्नास्मि विपुले शोकसागरे ॥ ४ ॥ अश्मसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम् । भर्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधा कृतम् ॥५॥ सुहृच्चैव च भर्ता च प्रकृत्या च मम प्रियः । प्रहारे च पराक्रान्तःशूरः पञ्चत्वमागतः ॥६॥ पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी । धनधान्यसमृद्धापि विधवेत्युच्यते बुधैः ॥७॥ उद्बर्ह शरं नीलस्तस्य गात्रगतं तदा । पेतुः क्षतजधारास्तु व्रणेभ्यस्तस्य सर्वशः ॥ ८ ॥ रुधिरोक्षितसर्वाङ्गं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम् । उवाच तारा पिङ्गाक्षं पुत्रमङ्गदमङ्गना ॥९॥ बालसूर्योज्ज्वलतनुं प्रयातं यमसादनम् । अभिवादय राजानं पितरं पुत्र मानदम् ॥ १० ॥ एवमुक्ता समुत्थाय जग्राह चरणौ पितुः । भुजाभ्यां पीनवृत्ताभ्यामङ्गदोऽहमिति ब्रुवन् ॥११॥ अभिवादयमानं त्वामङ्गदं त्वं यथा पुरा । दीर्घायुर्भवपुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे ॥१२॥ दृष्ट्वा संग्रामयज्ञेन रामप्रहरणाम्भसा । तस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मया विना ॥ १३ ॥ न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं न चास्मि शक्ता हि निवारणे तव । हता सपुत्रास्मि हतेन संयुगे सह त्वया श्रीर्विजहाति मामपि ॥ १४ ॥

टीका—जगत विख्यात तारा मरे पति से यह वचन बोली, हाय! शोक ! मेरे वचन को न मानकर इस विषम स्थान में लेटा है ॥१॥ यह वह वीरशय्या है, वहां तू अब युद्ध में मरा हुआ लेटा है, जहां तूने ही पहले अनेक शत्रु लिटाए थे ॥ २ ॥ हे शुद्धमन और वंशवाले, युद्ध के प्यारे हे मेरे प्यारे हे मान के देने वाले मुझ अनाथा को अकेली छोड़कर तू कहां चला गया है ॥ ३ ॥ मेरा मान टूट गया मेरी स्थिर गति टूट गई, मैं अथाह और असीम

शोकसागर में डूबी हूं ॥ ४ ॥ मेरा यह हृदय निःसन्देह बड़ा दृढ़ पत्थर का बना हुआ है, जो पति को मरा देखकर आज सौ टुकड़े नहीं होजाता है ॥ ५ ॥ सुहृद भी और भर्ता भी और प्रकृति से ही मेरा प्यारा युद्ध में पराक्रमी शूर मृत्यु को प्राप्त हुआ है ॥६॥ जो नारी पति हीना है, चाहे वह पुत्रवाली भी हो, धन धान्य से पूर्ण भी हो, पर लोगों में विधवा (मनुष्य हीन) ही कही जाती है ॥७॥ तब उसके शरीर से नील ने वाण को निकाला, उसके व्रणों से रुधिर की धारें सब ओर गिरीं ॥ ८ ॥ रुधिर से सेवन किये अङ्गोंवले पति को मरा हुआ देखकर श्रेष्ठ अङ्गोंवाली तारा पीले नेत्रवाले पुत्र अङ्गद से बोली ॥ ९ ॥ उदय होते हुए सूर्य की तरह उज्वल शरीर वाले, यम के घर जाते हुए अपने पिता राजा को हे पुत्र अभिवादन कर ॥ १० ॥ ऐसे कहा हुआ अङ्गद "मैं अङ्गद हूं" यह कहता हुआ मोटी गोल भुजाओं से पिता के चरण पकड़ता भया ॥ ११ ॥ (अभिवादन करता देखकर तारा कहती है) तुझे अभिवादन करते हुए अङ्गद को हे राजन् पूर्ववत् 'हे पुत्र दीर्घायु हो' यह क्यों नहीं कहता॥१२॥ संग्राम यज्ञ पूरा करके उस अवभृथ में रामवाणरूपी जल से कैसे तूने मुझ पत्नी के बिना स्नान कर लिया है*॥१३॥ न मेरे वचन को तूने पथ्य जानकर किया, न मैं तेरे रोकने में समर्थ हुई युद्ध में तेरे मरने से मैं पुत्र सहित मारी गई, तेरे साथ मुझे भी श्री छोड़ती है ॥ १४ ॥

सर्ग २० (ब० २४) तारा और राम का संवाद

मूल—तां चारुनेत्रां कपिसिंहनाथां पतिं समाश्लिष्य तदा शयानाम्

*यज्ञ की समाप्ति में अवभृथ स्नान पत्नी के साथ किया जाता है न कि अकेला अपने आप ।

[illegible]हीनसत्त्वां मन्त्रिप्रधानाः [illegible] ॥ १ ॥ सा विस्फुरन्ती परिरभ्यमाणा भर्तुः [illegible] । ददर्श रामं शरचापपाणिं स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तम् ॥ २ सुसंवृतं पार्थिवलक्षणैश्च तं चारुनेत्रं मृगशावनेत्रा । अदृष्टपूर्वं पुरुषप्रधानं स काकुत्स्थ इति प्रजज्ञे ॥३॥ तं सा [illegible] विशुद्धसत्त्वं शोकेन संभ्रान्तशरीरभावा । मनस्विनी वाक्यमुवाच तारा रामं रणोत्कर्षणलब्धलक्ष्यम् ॥ ४ ॥ त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च । अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान्क्षतजोपमाक्षः ॥ ५ ॥ येनैव बाणेन हतः प्रियो मे तेनैव बाणेन हि मां जहीहि । हता गमिष्यामि समीपमस्य न मां विना वीर रमेत वाली ॥ ६ ॥ स्वर्गेऽपि पद्मामलपत्रनेत्र समेत्य संप्रेक्ष्य च मामपश्यन् । तत्रैत्य तावद्वनिताविहीनः प्राप्नोति दुःखं पुरुषः कुमारः । तत्त्वं प्रजानन्नाहि मां न वाली दुःखं ममादर्शनजं भजेत ॥७॥+यच्चापि मन्येत भवान्महात्मा स्त्रीघातदोषस्तु भवेन्न मह्यम् । आत्मेयमस्येति हि मां जहि त्वं न स्त्रीवधः स्यान्मनुजेन्द्रपुत्र ॥ ८ ॥ शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्च वेदादनन्यरूपाः पुरुषस्य दाराः । दारप्रदानाद्धि न दानमन्यत्प्रदृश्यते ज्ञानवतां हि लोके ॥ ९ ॥ त्वं चापि मां तस्य मम प्रियस्य प्रदास्यसे धर्ममवेक्ष्य वीर । अनेन दानेन न लप्स्यसे त्वमधर्मयोगं मम वीर घातात् ॥१०॥ इत्येवमुक्तस्तु विभुर्महात्मा तारां समाश्वास्य हितं बभाषे । मा वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व लोको हि सर्वो विहितो विधात्रा ॥ ११ ॥ प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव पुत्रश्च ते प्राप्स्यति यौवराज्यम् धात्रा विधानं विहितं तथैव न शूरपत्न्यः परिदेवयन्ति ॥ १२ ॥

टीका—उस सुन्दर नेत्रोंवाली वानरसिंह की पत्नी पति को आलिङ्गन करके लेटी हुई अदीन हृदयवाली कपिराज की पत्नी को मुख्य मन्त्री उठाते भए ॥ १ ॥ वह कण्ठ लगाकर रोती हुई जब

भर्ता के पास से अलग की गई, तो उसने हाथ में धनुषबाण लिये अपने तेज से सूर्य की तरह जलते हुए राम को देखा ॥२॥ वह मृगनयनी राजलक्षणों से युक्त सुन्दर नेत्रोंवाले उस पहले न देखे हुए पुरुषप्रधान को देखकर यह राम है, यह जानती भई ॥ ३ ॥ उस शुद्ध हृदयवाले के निकट होकर शोक से अपने आपको भी भूली हुई मनस्विनी तारा रण में सब से बढ़कर लक्ष्य बींधनेवाले राम से यह वाक्य बोली ॥ ४ ॥ तू अप्रमेय, दुर्धर्ष, जितेन्द्रिय, उत्तम धर्मवाला, अक्षीण यशवाला निपुण, पृथिवी तुल्य क्षमा-वाला, लाल नेत्रोंवाला, (शूरवीर) है ॥ ५ ॥ जिस बाण से तूने वाली को मारा है, उसी बाण से मुझे मार, मैं मरकर उसके पास जाऊंगी, मेरे विना वीर वाली रमण नहीं करेगा ॥६॥ तू जानता है कि स्त्री से हीन पुरुष काम से सताया हुआ दुःख उठाता है सो तू यह जानता हुआ मुझे मार, जिस से कि वाली मेरे वियोग से दुःख न पाए ॥७॥ यदि आप उत्तम महात्मा यह समझें, कि मुझे स्त्री बध का दोष न लगे, तो मुझे इसी (वाली) का स्वरूप जानकर मार, हो नरेन्द्र पुत्र ! तुझे दोष न होगा ॥८॥ शास्त्रीय अनुष्ठान (मिलकर यागादि करने) से और अनेक वेद वाक्यों से स्त्रियें पुरुष की अभिन्नरूपा हैं, ज्ञानवालों के लिये लोक में स्त्रीदान (खोई हुई स्त्री मिलाने) से बढ़ कर दान नहीं है ॥ ९ ॥ तू भी हे वीर धर्म को लक्ष्य करके उस प्यारे को मेरा दान देगा इस दान से हे वीर तू मेरे बध से अधर्म को नहीं प्राप्त होगा ॥ १० ॥ ऐसे कहा हुआ समर्थ महात्मा तारा को तसल्ली देकर हित बचन बोला, हे वीरपत्नी विरुद्धमति मतकर, जगत सारा परमेश्वर की आज्ञा में चल रहा है. (तीनों लोक आज्ञा को उल्लंघन नहीं करते, उसके

वश में है) ॥११॥ तू वैसी ही परम प्रीति को प्राप्त होगी. तेरा पुत्र यौवराज्य को प्राप्त होगा. विधाता की यही आज्ञा थी. शूरपत्नियें रोया नहीं करती हैं ॥ १२ ॥

सर्ग २१ (व० २५) वाली के दाह की तय्यारी

मूल–स सुग्रीवं च तारां च साङ्गदां सहलक्ष्मणः । समानशोकः काकुत्स्थः सान्त्वयन्निदमब्रवीत् ॥१॥ न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः । यदत्रानन्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हथ ॥२॥ स्वधर्मस्य च संयोगाज्जितस्तेन महात्मना । स्वर्गःपरिगृहीतश्च प्राणानपरिरक्षत- ॥३॥ एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः । तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम् ॥४॥ वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा अवदत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम् ॥५॥ कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम् । ताराङ्गदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति ॥६॥ अङ्गदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च । घृतं तैलमथो गन्धान्यच्चात्र समनन्तरम् ॥७॥ त्वं तारं शिबिकां शीघ्रमादायागच्छ संभ्रमात् । आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापतद्द्रुतः ॥ ८ ॥ दिव्यां भद्रासनयुतां शिबिकां स्यन्दनोपमाम् । पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्मविभूषिताम् ॥९॥ विमानमिव सिद्धानां जालवातायनायुताम् । दारुपर्वतकोपेतां चारुकर्मपरिष्कृताम् ॥ १० ॥ वराभरणहारैश्च चित्रमाल्योपशोभिताम् । गुहागहनसंछन्नां रक्तचन्दन-भूषिताम् ॥११॥ ईदृशीं शिबिकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । क्षिप्रं विनीयतां वाली प्रेतकार्यं विधीयताम् ॥१२॥ ततो वालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिबिकां तदा । आरोपयत विक्रोशन्नङ्गदेनसहैव तु ॥१३॥ आरोप्य शिबिकां चैव वालिनं गतजीवितम् । अलङ्कारैश्च विविधै-र्माल्यैर्वस्त्रैश्च भूषितम् ॥१४॥ आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः । विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहूनि च ॥ १५ ॥

अग्रतः प्लवगा यान्तु शिविका तदनन्तरम् ॥ १६ ॥ राज्ञामृद्धिविशेषा हि दृश्यन्ते भुवि यादृशाः। तादृशैरिह कुर्वन्तु वानरा भर्तृसत्क्रियाम् ॥ १७ ॥

टीका—इनके समान शोकवाले राम ने लक्ष्मण के साथ मिलकर सुग्रीव तारा और अङ्गद को तसल्ली देते हुए यह कहा ॥१॥ शोक और सन्ताप करने से मरा हुआ पुरुष कल्याण से युक्त नहीं होता है, अब जो इसके अनन्तर करना चाहिए, वह करने योग्य हो ॥२॥ अपने धर्म पालने (प्रजा पालन) के संयोग से उस महात्मा ने स्वर्ग को जीता था, अब (युद्ध में) प्राणों की रक्षा न करते हुए न स्वर्ग को पालिया है ॥३॥ यह श्रेष्ठ होनी है (युद्ध में मरना) जिसको वानर यूथपति प्राप्त हुआ है, अब सन्ताप से बस है, इस समय का कार्य कीजिये ॥ ४ ॥ राम के वचन की समाप्ति पर शत्रुओं के वीरों को मारनेवाला लक्ष्मण बेहोश हुए सुग्रीव से नम्र वाक्य बोला ॥ ५ ॥ हे सुग्रीव तू तारा और अङ्गद के साहित बाली के दाह सम्बन्धी प्रेतकार्य को कर ॥ ६ ॥ अङ्गद माला, विविध वस्त्र, घृत, तैल गन्ध और भी अपेक्षित वस्तुएं लावे ॥८॥ तू हे तार शिविका (पालकी=अर्थी) लेकर शीघ्र आ, तब तार जल्दी शिविका को लेकर फिर वापिस आया ॥ ८ ॥ जोकि दिव्य भद्रासन (राज योग्यासन) से युक्त युद्ध के रथ के तुल्य, पक्षियों (के चित्रों) से चित्रित बृक्षों के चित्रों से भूषित ॥ ९ ॥ सिद्धों के विमान की तरह जालीदार झरोखों से युक्त, लकड़ी की पहाड़ियों से युक्त, चारुकर्म (सजावट) से सजी हुई ॥ १० ॥ सुन्दर भूषण और हारों से और विचित्र मालाओं से सजी हुई ऊपर पिंजरे से ढकी हुई, रक्त चन्दन से भूषित ॥११॥ ऐसी शिविका को देखकर राम लक्ष्मण से बोले, बाली

को जल्दी लेजाइए, और प्रेतकार्य कीजिए ॥ १२ ॥ तब सुग्रीव अङ्गद के सहित रोता हुआ वाली को उठाकर शिविका पर चढ़ाता भया ॥ १३ ॥ विविध अलङ्कारों मालाओं और वस्त्रों से भूषित मृत वाली को शिविका पर चढ़ाकर ॥ १४ ॥ वानराधिपति राजा सुग्रीव ने आज्ञा दी, कि अनेक प्रकार बहुत रत्न देते हुए ॥ १५ ॥ आगे २ वानर चलें, उनके पीछे शिविका ॥ १६ ॥ पृथिवी में राजाओं का जैसा ऐश्वर्य होता है, वैसे ऐश्वर्य से वानर अपने राजा का सत्कार करें ॥ १७ ॥

सर्ग २२ (व० २५) वाली का अन्त्येष्टि कर्म

मूल—अङ्गदं परिरभ्याशु तारप्रभृतयस्तथा । क्रोशन्तः प्रययुः सर्वे वानरा हतबान्धवाः ॥ १ ॥ ताराप्रभृतयः सर्वा वानर्यो हतबान्धवाः अनुजग्मुश्च भर्तारं क्रोशन्त्यः करुणस्वनाः ॥ २ ॥ तासां रुदितशब्देन वानरीणां वनान्तरे । वनानि गिरयश्चैव विक्रोशन्तीव सर्वतः ॥ ३ ॥ पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते । चितां चक्रुः सुबहवो वानरा वनचारिणः ॥ ४ ॥ अवरोप्य ततः स्कन्धाच्छिविकां वानरोत्तमाः । तस्थुरेकान्तमाश्रित्य सर्वे शोकपरायणाः ॥ ५ ॥ ततस्तारा पतिं दृष्ट्वा शिबिकातलशायिनम् । आरोप्याङ्के शिरस्तस्य विललाप सुदुःखिता ॥ ६ ॥ हा वानरमहाराज हा नाथ मम वत्सल । हा महार्ह महाबाहो हा मम प्रिय पश्य माम् ॥ ७ ॥ प्रहृष्टमिह ते वक्त्रं गतासोरपि मानद । अस्तार्कसमवर्णं च दृश्यते जीवतो यथा ॥ ८ ॥ + तवेष्टा ननु चैवेमा भार्याश्चन्द्रनिभाननाः । एते हि सचिवा राजंस्तारप्रभृतयस्तव ॥ ९ ॥ पुरवासिजनश्चायं परिवार्य विषीदति । विसर्जयैनान्प्रचिवान्यथापुरमरिन्दम ॥ १० ॥ एवं विलपतीं तारां पतिशोकपरीप्लुताम् । उत्थापयन्ति स्म तदा वानर्यः शोककर्शिताः ॥ ११ ॥ सुग्रीवेण ततः सार्धं सोऽङ्गदः पितरं

रुदन् । चितामारोपयामास शोकेनाभिप्लुतेन्द्रियः ॥१२ ॥ ततोऽग्निं विधिवद्दत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह । पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः ॥ १३ ॥ संस्कृत्य वालिनं तं तु विधिवत्प्लवगर्षभाः । आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शुभजलां शिवाम् ॥ १४ ॥ ततस्ते सहितास्तत्र अङ्गदं स्थाप्य चाग्रतः । सुग्रीवतारासहिताः सिषिचुर्वानिरा जलम् ॥ १५ ॥ सुग्रीवेणेव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः । समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत् ॥ १६ ॥

टीका—जिनका बन्धु मरा है, वह तार आदि सारे वानर अङ्गद के साथ रोते हुए चले ॥ १ ॥ जिनका बन्धु मरा है, वह तारा आदि सब वानरियें दीन ध्वनि में पुकार करती हुई भर्ता के पीछे चलीं ॥ २ ॥ उन वानरियों के रोने की प्रतिध्वनि में बन के मध्य में मानों सब ओर बन और पर्वत रोरहे थे ॥ ३ ॥ जल से चारों ओर ढके हुए (द्वीप से बने हुए) पर्वती नदी के एक एकान्त पुलिन (बरेते) पर बहुत से वनचारी बानर चिता बनाते भए ॥ ४ ॥ तब वह बानरश्रेष्ठ कन्धों से शिविका को उतारकर, सभी एकान्त होकर शोकपरायण हुए ठहरे ॥ ५ ॥ तब तारा शिविकातल पर लेटे हुए पति को देखकर उसके सिर को चूमकर उसके सिर को गोद में रखकर अतीव दुःखित हुई विलाप करती भई ॥ ६ ॥ हा वानरों के महाराज, हा नाथ मेरे प्यारे, हा बड़े पूजनीय, महाबाहो, हा मेरे प्यारे मुझे देख ॥ ७ ॥ हे मान के देने वाले प्राणों के निकल जाने पर भी तेरा मुख खिला हुआ अस्त होते सूर्य के सदृश दीखता है,जैसे जीते का था॥८॥ वही हम चन्द्रमुखी तेरी पत्नियें हैं। और हे राजन्!वही यह तार आदि तेरे मन्त्री हैं॥९ ॥ और यह पुरवासी लोग तेरे चारों ओर विषण्ण होरहे हैं हे शत्रुदमन ! इनको पूर्ववत् विसर्जनकर ॥ १० ॥ इसप्रकार पति

शोक से भरी हुई विलपती हुई तारा को शोक से दुर्बल वानरियोंने उठाया ॥ ११ ॥ तब सुग्रीव के साथ रोते हुए शोक से व्याप्त इन्द्रियों वाले अङ्गद ने पिता को चिता पर आरोपण किया॥१२॥ तब उस व्याकुल इन्द्रियोंवाले ने लम्बे मार्ग पर प्रस्थित हुए पिता को यथाविधि अग्नि दे करके प्रदक्षिणा की ॥ १३ ॥ वह वानर-श्रेष्ठ उस वाली को विधिवत संस्कार करके सुन्दर शुभ जल वाली नदी पर जलक्रिया करने के लिए आए ॥ १४ ॥ तब वह सब मिलकर अङ्गद को आगे करके सुग्रीव और तारा के सहित जल-क्रिया करते भए ॥ १५ ॥ समान शोकवाले महाबली राम भी दीन सुग्रीव की तरह दीन हुए सारे प्रेतकार्यों में साथ रहे ।

सर्ग २३ (व० २६) सुग्रीव के राज्यभिषेक की अनुज्ञा

मूल—अभिगम्य महाबाहुं राममक्लिष्टकारिणम् ।स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पितामहमिवर्षयः॥१॥ ततःकाञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः ॥ २ ॥ भवत्प्रसादात्काकुत्स्थ पितृपैतामहं महत् । वानराणां सुदंष्ट्राणां संपन्नबलशालिनाम् ॥ ३ ॥ महात्मनां सुदुष्प्रापं प्राप्तं राज्यमिदं प्रभो ॥ ४ ॥ भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम् । संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि ससुहृद्गणः ॥ ५ ॥ स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि । अर्चयिष्यति माल्यैश्च रत्नैश्च त्वां विशेषतः ॥ ६ ॥ इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुं त्वमर्हसि । कुरुष्व स्वामिसंबन्धं वानरान्संप्रहर्षय ॥ ७ ॥ एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा । प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान्वाक्यकोविदः ॥ ८ ॥ चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम् । न प्रवेक्ष्यामि हनुमन्पितुर्निर्देशपारगः ॥ ९ ॥ सुसमृद्धां गुहां दिव्यां सुग्रीवो वानरर्षभः । प्रविष्टो विधिवद्वीरःक्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम् ॥ १० ॥ एवमुक्त्वा हनूमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत् ।

इममप्यङ्गदं वीरं यौवराज्येऽभिषेचय ॥ ११ ॥ ज्येष्ठस्य हि सुतो ज्येष्ठः सदृशो विक्रमेण च । अङ्गदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम् ॥ १२ ॥ पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः । प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः ॥१३॥ नायमुद्योग-समयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम् । अस्मिन्वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता । प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला॥ १५ ॥ कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत । एष नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम् ॥ १६ ॥ इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानरर्षभः । प्रविवेश पुरीं रम्यां किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥ १७ ॥

टीका—तब वह सुन्दर कर्मोंवाले महाबाहु राम के पास जाकर सभी हाथ जोड़कर खड़े होगये, जैसे ब्रह्मा के पास ऋषि ॥ १ ॥ उनमें से सुवर्ण पर्वत के सदृश, बालसूर्य के तुल्य मुखवाला, पवन पुत्र हनुमान् हाथ जोड़कर बोला ॥ २ ॥ हे राम आपकी कृपा से बड़ी दाढ़ोंवाले (बड़े सबल) पूर्ण बलशाली महात्मा वानरों का यह अतीव दुष्प्राप्य बड़ा राज्य है प्रभो जो पितृ पितामह से आया था पालिया है ३, ४ ॥ अब यह आपसे आज्ञा दिया हुआ शुभ नगर में प्रवेश करके सुहृद्गणों के सहित (सुग्रीव) कार्यों को करेगा ॥ ५ ॥ विविध गन्धों से और औषधियों से यथाविधि अभिषिक्त हुआ रत्नों से और मालाओं से आपको विशेषतः पूजेगा ॥ ६ ॥ सो आप इस रमणीय पर्वत गुफा में चलने योग्य हैं (वानरों के लिये सुग्रीव के राज्याभिषेक से आप) स्वामि का सम्बन्ध उत्पन्न करें और वानरों को प्रसन्न करें ॥ ७ ॥ हनुमान् से ऐसे कहा हुआ शत्रुवीरों का मारने वाला, वाक्य के जाननेवाला, बुद्धिमान् राघव हनुमान् को उत्तर देता भया ॥ ८ ॥ चौदह बरस हे सौम्य

हनुमन् ! ग्राम में यदि वा पुर में प्रवेश नहीं करूंगा, जब तक पिता के निर्देश के पार पहुंचता हूं॥९॥अत्यन्त समृद्धि वाली दिव्य गुफा में वानरश्रेष्ठ वीर सुग्रीव प्रविष्ट हुआ जल्दी राज्य में अभिषेक दीजिए ॥ १० ॥ हनुमान् को ऐसे कहकर राम सुग्रीव से बोले इस वीर अङ्गद् को भी यौवराज्य में अभिषिक्त कर ॥ ११ ॥ बड़े भाई का बड़ा पुत्र, पराक्रम से (पिता के) सदृश यह अदीन स्वभाव अङ्गद् यौवराज्य का पात्र है ॥ १२ ॥ हे सौम्य अब जो वार्षिक चार मास प्रवृत्त हुए हैं, उनमें से यह पहला जलों का लाने वाला श्रावणमास है॥ १३ ॥ हे सौम्य यह उद्योग का समय नहीं, तू शुभ पुरी में प्रवेश कर, मैं लक्ष्मण समेत इस पर्वत पर बसूंगा ॥ १४ ॥ यह पर्वत गुफा सुहावनी, विशाल युक्त पवनवाली, प्रभूत जल वाली, प्रभूत कमलोंवाली है (इसमें रहूंगा) ॥ १५॥ कार्तिक आने पर तूने रावण के वध में यत्न करना, यह हमारा संकेत है, हे सौम्य तू अपने घर में प्रवेश कर ॥ १६ ॥ राम से ऐसे अनुज्ञा दिया वानरश्रेष्ठ सुग्रीव बाली से पाली हुई सुहावनी किष्किन्धापुरी में प्रविष्ट हुआ ॥ १७ ॥

सर्ग २४ (व० २६) सुग्रीव का राज्याभिषेक

मूल—प्रविष्टं भीमविक्रान्तं सुग्रीवं वानरर्षभम् । अभ्यषिञ्चन्त सुहृदः सहस्राक्षमिवामराः ॥ १ ॥ तस्य पाण्डुरमाजह्रुश्छत्रं हेमपरिष्कृतम् । शुक्ले च वालव्यजने हेमदण्डे यशस्करे ॥ २ ॥ तथा रत्नानि सर्वाणि सर्वबीजौषधानि च । सक्षीरगणां च वृक्षाणां प्ररोहान्कुसुमानि च ॥ ३ ॥ शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेतं चैवानुलेपनम् । सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च ॥ ४ ॥ चन्दनानि च दिव्यानि गन्धांश्च विविधान्बहून् । अक्षतं जातरूपं च प्रियङ्गमधुसर्पिषी ॥ ५ ॥ दधि चर्म च वैयाघ्रं परार्ध्यौ चाप्युपा-

न्हौ । समालम्भनमादाय गोरोचनं मनःशिलाम् ॥ ६ ॥ आजग्मुस्तत्र मुदिता वराः कन्याश्च षोडश ॥ ७ ॥ ततस्ते वानरश्रेष्ठमभिषेक्तुं यथाविधि । रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान्॥ ८ ॥ +ततः कुशपरिस्तीर्णं समिद्धं जातवेदसम् । मन्त्र पूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदो जनाः ॥ ९ ॥ प्राङ्मुखं विधिवन्मन्त्रैः स्थापयित्वा वरासने । शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ॥ १० ॥ गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः । मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा ॥ १२ ॥ रामस्य तु वचः कुर्वन्सुग्रीवो वानरेश्वरः । अङ्गदं संपरिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ १३ ॥ अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवंगमाः । साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानो ह्यपूजयन् ॥१४॥रामं चैव महात्मानं लक्ष्मणं च पुनः पुनः । प्रीताश्च तुष्टुवुः सर्वे तादृशे तत्र वर्तिनि ॥ १५ ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता।बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे॥१६॥

टीका–प्रविष्ट हुए भयानक बलवाले वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को सुहृद्जन तिलक देते भए, जैसे देवता इन्द्र को ॥ १ ॥ उस के लिये सुवर्ण से भूषित श्वेत छत्र लाए, और सुवर्ण के दण्ड वालीं, यश देने वालीं, दो श्वेत चौरियें ॥ २ ॥ तथा सारे रत्न, सब बीज, सब औषधियें, दूध वाले वृक्षों के अंकुर और फूल ॥ ३ ॥ श्वेत वस्त्र और श्वेत अनुलेपन, सुगन्धी वाली मालाएं और स्थलकमल ॥ ४ ॥ दिव्य चन्दन और विविध बहुत गन्ध, अक्षत सुवर्ण, कङ्गनी, शहद, घृत ॥ ५ ॥ दही, शेर का मृगान, और उत्तम दो जोड़े और अनुलेपनद्रव्य गोरोचन और मनाशिल लेकर ॥ ६ ॥ वहां प्रसन्न हुई सोलह कन्याएं आईं ॥ ७ ॥ तब वह वानरश्रेष्ठ को यथाविधि अभिषेक देने के लिये पहले रत्नों से वस्त्रों से और भक्ष्यों से ब्राह्मणों को प्रसन्न करके ॥ ८ ॥

फिर जिसके चारों ओर कुशा बिछी है उस प्रदीप्त अग्नि में वेद-वेत्ताजन मन्त्रों से पवित्र हविद्वारा होम करके ॥ ९ ॥ मंत्रों से यथाविधि श्रेष्ठ आसन पर पूर्वाभिमुख (सुग्रीव को) बिठलाकर वेदविहित और महर्षि विहित विधि से ॥ १० ॥ गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद,हनुमान्,जाम्बवान् ॥११॥ यह मिलकर निर्मल सुगन्धित जल से (सुग्रीव का) अभिषेक करते भए जैसे देवता इन्द्र का ॥ १२ ॥ राम का वचन मानता हुआ सुग्रीव अङ्गद को कण्ठ लगाकर यौवराज्य में अभिषिक्त रखता भया ॥ १३ ॥ अङ्गद के अभिषिक्त होने पर महात्मा बानर साधु साधु ऐसी उच्च ध्वनि करते हुए सुग्रीव को पूजते भए ॥ १४ ॥ वहां ऐसा होने पर प्रसन्न हुए सभी महात्मा राम की और लक्ष्मण की बार २ स्तुति करते भए ॥ १५ ॥ हृष्ट पुष्ट जनों से भरी हुई झण्डों और झंडों से शोभित किष्किन्धा नगरी पर्वत की कन्दरा में सुहावनी बन गई ॥ १६ ॥

सर्ग २५ (व० २८) वर्षा ऋतु का वर्णन

मूल—स तदा वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च । वसन्माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥ अयं स कालः संप्राप्तः समयोऽद्य जलागमः । संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसन्निभैः ॥२॥ नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः । पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥३॥ शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपंक्तिभिः । कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुं दिवाकरः ॥ ४ ॥ मन्दमारुतनिःश्वासं सन्ध्याचन्दनरञ्जितम् । आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम् ॥ ५ ॥एषा धर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता । सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥ ६ ॥ एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभिवासितः । सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥ ७ ॥ मेघकृष्णा-

जिनधरा धारा यज्ञोपवीतिनः । मारुतापूरितगुहाःप्राधीता इव पर्वताः ॥ ८ ॥ रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायुर्निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः । स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान् ॥ ९ ॥ संप्रस्थिता मानसवासलुब्धा प्रियान्विताः संप्रति चक्रवाकाः । अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु यानानि मार्गेषु न संपतन्ति ॥ १० ॥ व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम् । मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥ ११ ॥ रसाकुलं षट्पदसंनिकाशं प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम् । अनेकवर्णं पवनावधूतं भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥ १२ ॥ समुद्वहन्तः सलिलातिभारं बलाकिनो वारिधरा नदन्तः । महत्सु शृङ्गेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ॥ १३ ॥ बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन । गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण नारीव लाक्षोक्षितकम्बलेन ॥ १४ ॥ मत्ता वनान्ताः शिखिसुप्रनृत्ता जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः । जाता वृषा गोषु समानकामा जाता मही सस्यवनाभिरामा ॥ १५ ॥ वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति । नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः ॥ १६ ॥ धारानिपातैरभिहन्यमानाः कदम्बशाखासु विलम्बमानाः । क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति ॥ १७ ॥

टीका—वाली को मारकर और सुग्रीव को अभिषिक्त करके माल्यवान् पर बसता हुआ राम लक्ष्मण से बोला ॥ १ ॥ यह वह काल प्राप्त हुआ है, अब जल के आने का समय है, देख तू पर्वतसदृश मेघों से आकाश ढक गया है॥२॥ द्यौलोक समुद्रों के रस को सूर्य की किरणों से धारण कर नौ महीने धारण किये गर्भ को जीवन रूप (जलरूप)में जन्म देरहा है ॥ ३ ॥ अब मेघ की सीढ़ी २ से आकाश

पर चढ़कर कुटज और अर्जुन फूलों की माला से सूर्य को अलं-कृत किया जासक्ता है ॥४॥ मन्द २ वायुरूपी सांसवाला, सन्ध्या-के चन्दन से रङ्गा हुआ, धूसर मेघों वाला, आकाश कामातुर की तरह प्रतीत होता है ॥५॥ गर्मी से तपी हुई, नए जल से भीगी हुई, यह भूमि शोक से तपी हुई सीता की तरह बाष्प(गर्मी) छोड़ती है ॥ ६ ॥ यह फूले हुए कौवाला, केवड़े के फूलों से सुगन्धित पर्वत शांत हुए शत्रुवाले सुग्रीव की तरह अभिषिक्त होरहा है ॥७॥ पर्वत मेघरूपी काले मृगान पहनकर धारारूपी यज्ञोपवीत डाले हुए वायु से भरी हुई गुफाओं वाले (होने से शब्दवाले) मानों ब्रह्मचारियों की तरह पढ़ने लगे हैं ॥ ८ ॥ धूल मिट गई, वायु भीनी हुई है, गर्मी के दोष शान्त हो गये, पृथिवीपतियों की यात्रा रुक गई प्रवासी लोग अपने देशों को जारहे हैं ॥९॥ चकवे अब मानस सरोवर में वास के लिये प्यारियों समेत प्रस्थित हुए हैं, लगातार वर्षा के जल से मार्गों के टूट जाने के हेतु यान (रथ आदि) नहीं चलते हैं ॥ १० ॥ सर्ज और कदम्ब के फूलों से मिला हुआ, पर्वत की धात की तरह लाल, जल को पर्वत की नदियें शीघ्रतर वहा रही हैं, जिन पर कि मोर केके कर रहे हैं ॥ ११ ॥ रस भरे, भ्रमर सदृश, जम्बूफल को लोग प्रभूत खारहे हैं, और अनेक रङ्ग का, पकाहुआ आमफल, पवन से कम्पाया हुआ भूमि पर गिरता है ॥ १२ ॥ जिनके आगे २ बगलों की पंक्तियें उड़ रही हैं, वह मेघ गर्जते हुए जल के अति भार को उठाए पर्वतों के बड़े २ शिखरों पर विश्राम कर करके फिर चल पड़ते हैं ॥ १३ छोटी २ बीरबहूटियों के मध्य २ में युक्त नई हरियाली से भूमि उस स्त्री की तरह शोभावाली है, जिसने तोते के रङ्गवाला, बीच २ में लाल बिन्दुओं वाला, अङ्गों

के साथ लगा हुआ कपड़ा पहना हुआ हो ॥ १४ ॥ बनों के मध्य में जगह २ मोर नाच रहे हैं, कदम्बों की शाखाएं फूलों से भर गई है, गौओं और साण्डों में कामना तुल्य रूप से बढ़ी है, पृथिवी सब सब्ज बनों से सुहावनी होगई है ॥ १५ ॥ वह रही हैं, बरस रहे हैं, चिंघाड़ते हैं, सुहाते हैं, चिन्ता में हैं, नाचते हैं,तसल्ली पाए हुए हैं, (कौन ?) नदियें, मेघ, हाथी, बनप्रदेश, प्यारियों से वियुक्त पुरुष, मोर और बानर (सुग्रीव के राज्यलाभ से तसल्ली में है) ॥१६॥ भौंरे कदम की शाखाओंपर लटकते हुए और जल धाराओं के गिरने से ताड़न किये हुए खुशी में प्राप्त किये पुष्प रसों से बढ़े हुए मद को धीरे २ त्यागते हैं ॥ १७ ॥

मूल—तड़ित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगम्भीरमहारवाणाम् । विभान्ति रूपाणि बलाहकानां रणोत्सुकानामिव वानराणाम् ॥१८॥ मार्गानुगः शैलवनानुसारी संप्रस्थितो मेघरवं निशम्य । युद्धाभिकामः प्रतिनादशङ्की मत्तो गजेन्द्रः प्रतिसन्निवृत्तः ॥ १९ ॥ कचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः । क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेन्द्रैर्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ॥ २० ॥ मुक्तासमाभं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् । हृष्टा विवर्णच्छदना विहङ्गा सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति ॥ २१ ॥ स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धा विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धाम् । अनेकरूपाकृतिवर्णनादा नवाम्बुधाराभिहता नदन्ति ॥ २२ ॥ नीलेषु नीला नववारिपूर्णा मेघेषु मेघाःप्रतिभान्ति सक्ता । दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः ॥ २३ ॥ मेघाः समुद्धूतसमुद्रनादा महाजलौघैर्गगनावलम्बाः । नदीस्तटाकानि सरांसि वापीर्महीं च कृत्स्नामपवाहयन्ति ॥ २४ ॥ वर्षप्रवेगा विपुलाः पतन्ति प्रवान्ति वाताः

समुदीर्णवेगाः । प्रनष्टकूलाः प्रवहन्ति शीघ्रं नद्यो जलं विप्रतिपन्नमार्गाः ॥ २५ ॥ नरैर्नरेन्द्रा इव पर्वतेन्द्राः सुरेन्द्रनीतैः पवनोपनीतैः । घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्यमाना रूपं श्रियं स्वामिव दर्शयन्ति ॥ २६ ॥ महान्ति कूटानि महीधराणां धाराविधौतान्यधिकं विभान्ति । महाप्रमाणैर्विपुलैः प्रपातैर्मुक्ताकलापैरिव लम्बमानैः ॥२७॥ विलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्चपङ्कजैः । विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं ज्ञायत रविः ॥२८॥ वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना पथ्येव वर्तते । वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः ॥ २९ ॥ मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम् । अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः ॥ ३० ॥ इमाः स्फीतगुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमश्नुते । विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः ॥ ३१ ॥ स्वयमेव हि विश्रम्य ज्ञात्वा कालमुपागतम् । उपकारं च सुग्रीवो वेत्स्यते नात्र संशयः ॥ ३२ ॥

टीका—बिजली के झण्डे से शोभित, गम्भीर गर्जना (सिंहनाद) करतेहुए, मेघों के रूप रणोत्साही बानरोंकी तरह सुहाते हैं ॥१८॥ (अहह ! यह) पर्वतवन में घूमने वाला, रस्ते २ चलता हुआ, युद्धाभिलाषी मत्त गजेन्द्र (पीछे से) मेघ की ध्वनि सुनकर (किसी अन्य गजेन्द्र की) प्रति गर्ज समझकर पीछे लौट पड़ा है ॥ १९ ॥ बन के प्रदेशों में कहीं भौंरों के गीत हैं, कहीं नीलकण्ठों के नाच हैं, कहीं गजेन्द्रों की मस्तियें हैं, इसतरह अनेक रङ्गों में शोभा पारहे हैं ॥२०॥ मोतियों के तुल्य अतीव निर्मल जल जो गिरकर पत्तों के दोनों पर टिक गया है, इन्द्र से दिये उस जल को भीगे हुए पंखों वाले प्यासे पंछी प्रसन्न होकर पीरहे हैं ॥ २१ ॥ मेघों की ध्वनियों से अपनी (सूखी मट्टी में पाई हुई) निद्रा को त्यागकर जागे हुए अनेक प्रकार की आकृति रङ्ग और

ध्वनियों वाले मेंडक नये जल की धाराओं से ताड़ित हुए बोल रहे हैं ॥२२॥ नीले मेघों के ऊपर चढ़े हुए नए जल से भरे हुए दूसरे नील मेघ इसतरह सोहते हैं जैसे वनाग्नि से दग्ध हुए पर्वतों के ऊपर और जड़ पकड़े हुए पर्वत हों॥२३॥ समुद्र की गर्ज को मात करते हुए आकाश में घूमतेहुए मेघ महाजल समूहों से नदी,तालाब, सरोवर, बावड़ी और सारी पृथिवी पर जल को एकरस बहा रहे हैं ॥२४॥ वृष्टि के वेग विपुल गिर रहेहैं, और वायु जोर के वेग से बहा रहे हैं, नदियें किनारों को तोड़कर रस्ते रोककरजोर से जल बहा रही हैं ॥२५॥ मनुष्यों से लाए हुए जल से अभिषिक्त राजों की तरह मेघ जल के कुम्भों से अभिषिक्त हुए पर्वत अपने (निर्मल) रूप को मानों (अनेक धातु रूपी) अपनी श्री की तरह दिखला रहे हैं ॥२६॥ धाराओं से धोए हुए पर्वतों के ऊंचे शिखरों पर से उतरते हुए बड़े मोटे और लम्बे (झरने) ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों मोतियों की लड़ियां टूट रही हैं ॥ २७ ॥ पंछियों के छिप जाने से, कमलों के मिच जाने से और मालती के खिलने से, सूर्य का अस्त होना प्रतीत होता है ॥ २८॥ राजाओं की चढ़ाई बन्द हुई, सेना मार्ग में ही स्थित होगई, पानी ने वैर और मार्ग दोनों बराबर कर (रोक) दिये हैं ॥ भाद्रपद मास में वेद पढ़ना चाहते हुए सामग ब्राह्मणों का यह पढ़ने का समय उपस्थित हुआ है ॥ ३० ॥ शत्रु को जीत चुका हुआ, और बड़े राज्य में स्थित हुआ सुग्रीव स्त्री समेत इन उत्तम गुणोंवाली वर्षाओं में सुख भोग रहा है ॥३१॥ अपने आप ही विश्राम करके समय आया जानकर सुग्रीव उपकार को जानेगा, इस में संशय नहीं ॥ ३२ ॥

सर्ग २६ (व० ३०) शरद ऋतु का वर्णन

मूल—गृहं प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः। वर्षरात्रे स्थितो रामः

कामशोकाभिपीड़ितः ॥१॥ पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् । शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम् ॥ २ ॥ कामवृत्तं च सुग्रीवं नष्टां च जनकात्मजाम् । दृष्ट्वा कालमतीतं च मुमोह परमातुरः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा च विमलं व्योम गतविद्युद्वलाहकम् । सारसारवसंघुष्टं विललापार्तया गिरा ॥ ४ ॥ सरांसि सरिता वापीः काननानि वनानि च । तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे ॥५॥ अपि तां मद्वियोगाच्च सौकुमार्याच्च भामिनीम् । सुन्दरं पीडयेत्कामः शरद्गुणनिरन्तरः ॥ ६ ॥ एवमादि नरश्रेष्ठो विललाप नृपात्मजः। विहङ्ग इव सारङ्गः सलिलं त्रिदशेश्वरात् । ७॥ ततश्चचार रम्येषु फलार्थी गिरिसानुषु ददर्श पर्युपावृत्तो लक्ष्मीवांल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥ ८ ॥ अथ पद्मपलाक्षीं मैथिलीमनुचिन्तयन् । उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ॥ ९ ॥ दीर्घगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः । विसृज्य सलिलं मेघाः परिशान्ता नृपात्मज ॥१०॥ नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृत्वा दिशो दश । विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः ॥ ११ ॥ शाखासु सप्तच्छदपादपानां प्रभासु तारार्कनिशाकरणाम् । लीलासु चैवोत्तम वारणानां श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥ १२ ॥ संप्रत्यनेकाश्रयचित्रशोभा लक्ष्मीः शरत्कालगुणोपपन्ना । सूर्याग्रहस्तप्रतिबोधितेषु पद्माकरेष्वभ्यधिकं विभाति ॥ १३ ॥ अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः स्मरप्रियैःपद्मरजोवकीर्णैः । महानदीनां पुलिनोपयातैः क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः ॥ १४ ॥

टीका—सुग्रीव घर में प्रविष्ट है आकाश मेघों से वियुक्त है, राम शोक से पीड़ित हुए बरसात के दिन बिता चुके हैं ॥ १ ॥ अब आकाश को श्वेत और चन्द्रमण्डल को निर्मल देखकर और शरद ऋतु की रात्रि को चांदनी से लिपा हुआ देखकर ॥ २ ॥ सुग्रीव

को कामवश देखकर, जनकसुताको अभीतक बेपता देखकर समय को बीतता जाता देखकर परम आतुर हुआ राम व्याकुल चित्त होगया ॥३॥ और विमल आकाश को बिजली और मेघ से शून्य सारसों की ध्वनियों से गूंजता हुआ देखकर आर्त वाणी से विलाप करता भया ॥४॥ आज उस मृगनयनी के बिना सरोवर, नदी, बावड़ी, वन और बगीचों में घूमता हुआ सुख नहीं पाता हूं ॥५॥ हा शोक ! शरद के गुणों से निरन्तर प्रवृत्त हुआ काम सीता को मेरे वियोग और अपनी सुकुमारता के हेतु अत्यन्त पीड़ित करेगा ॥६॥ इत्यादि वह नरश्रेष्ठ नृपसुत विलाप करता भया, जैसे पपीहा इन्द्र से जल चाहता हुआ विलपता है ॥७॥ उसी समय फल लाने को गए हुए रमणीय पर्वत चोटियों पर घूमकर लौटे हुए लक्ष्मीवान् लक्ष्मण ने बड़े भाई को इस अवस्था में देखा ॥८॥ तब पद्म पत्र तुल्य नेत्रोंवाली मैथिली को सोचते हुए राम ने सूखते हुए मुख से लक्ष्मण को कहा ॥९॥ हे नृपात्मज ! दीर्घ गम्भीर ध्वनिवाले, पर्वतों, वृक्षों और पुरों पर पहुंचनेवाले मेघ जल को त्यागकर अब शान्त होचुके हैं ॥ १० ॥ हाथियों की तरह महामेघ जिन पर बरस चुके हैं, वह चित्रा चोटियों वाले निर्मल पर्वत चन्द्र रश्मियों से अनुलिप्त हुए से प्रतीत होते हैं ॥ ११ ॥ सतौनों की शाखाओं पर, तारों, चन्द्र और सूर्य की प्रभाओं में, और उत्तम हाथियों की लीलाओं में श्री को बांटकर अब शरद प्रवृत्त हुई है ॥१२॥ शरत्काल के गुणों से प्रकट हुई, अनेक पदार्थों में विचित्र शोभावाली लक्ष्मी अब सूर्य की प्रथम किरणों से खिले हुए पद्मो में अधिक शोभा पाती है ॥१३॥ हंस (मानस सरोवर से अपने साथ) आये, सुन्दर विशाल पंखों वाले, पद्मों की धूलवाले, महानदियों के पुलिनों पर स्थित, काम के प्यारे चकवों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ १४ ॥

मूलमदप्रगल्भेषु च वारणेषु गवां समूहेषु च दर्पितेषु। प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु विभाति लक्ष्मीर्बहुधा विभक्ता ॥ १५ ॥ नभः समीक्ष्याम्बुधरैर्विमुक्तं विमुक्तबर्हाभरणा वनेषु। प्रियास्वरक्ता विनिवृत्तशोभा गतोत्सवा ध्यानपरा मयूराः ॥१६॥ व्यक्तंनभः शस्त्रविधौतवर्णं कृशप्रवाहाणि नदीजलानि। कह्लरशीताः पवनाः प्रवान्ति तमोविमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः ॥१७॥ सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का भूमिश्चिरोद्घाटितसान्द्ररेणुः। अन्योन्यवैरेण समायुतानामुद्योगकालोऽद्य नराधिपानाम् ॥१८॥ शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाः प्रहर्षिताः पांसुसमुत्थिताङ्गाः। मदोत्कटाः संप्रति युद्धलुब्धा वृषा गवां मध्यगता नदन्ति ॥१९॥ वित्रास्य कारण्डवचक्रवाकान्महारवैर्भिन्नकटा गजेन्द्राः। सरःसु बद्धाम्बुजभूषणेषु विक्षोभ्य विक्षोभ्य जलं पिबन्ति ॥२०॥ रात्रिः शशाङ्कोदितसौम्यवक्त्रा तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा। ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति नारीव शुक्लांशुकसंवृताङ्गी ॥२१॥ विपक्वशालिप्रसवानि भुक्त्वा प्रहर्षिता सारसचारुपङ्क्तिः। नभः समाक्रमति शीघ्रवेगा वातावधूता ग्रथितेव माला ॥२२॥ जलं प्रसन्नं कुसुमप्रहासं क्रौञ्चस्वनं शालिवनं विपक्वम्। मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः शंसन्ति वर्षव्यपीतकालम् ॥२३ लोकं सुवृष्ट्या परितोषयित्वा नदीस्तटाकानि च पूरयित्वा। निष्पन्नसस्यां वसुधां च कृत्वा त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रनष्टाः ॥ २४ ॥ अन्योन्यबद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज। उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः ॥ २५ ॥ इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज। न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम् ॥ २६ ॥ चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः। मम शोकाभितप्तस्य तथा सीतामपश्यतः ॥२७॥ प्रियाविहीने दुःखार्ते हृतराज्ये विवासिते। कृपां न कुरुते राजा सुग्रीवो मयि लक्ष्मण ॥ २८ ॥

स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुंगवम् । मूर्खं ग्राम्यसुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम ॥२९॥ शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम् । सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥ ३० ॥ कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये । तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥ ३१ ॥

टीका—मदमत्त हाथियों में, दर्पवाले बैल समूहों में, और निर्मल जलवाली नदियों में अनेक प्रकार से विभक्त हुई लक्ष्मी शोभा पाती है ॥१५ मोर आकाश को मेघों से वियुक्त हुआ देखकर वनों में अपने चँवर रूपी भूषण त्यागे हुए प्यारियों में राग रहित हुए दूर हुई शोभा वाले, अब उत्सव के चले जाने पर ध्यान परायण हुए प्रतीत होते हैं ॥१६॥ तलवार की तरह निर्मल रङ्ग (नील) वाला आकाश साफ होगया है, नदियों के जल दुर्बल प्रवाह वाले हैं, कमल फूलों की ठण्डी सुगन्ध लिये पवन बहरहे हैं, अन्धकार से विमुक्त हुई दिशाएं साफ हैं, ॥१७॥ सूर्य की धूप के आक्रमण से भूमि का कीचड़ नष्ट हुआ है और चिर के पीछे फिर घनी रेणु उठी है, परस्पर वैर से मुकाबिले में जाने वाले राजों का अब उद्योग का समय है ॥१८॥ शरद् के गुणों से जिनके रूप की शोभा पुष्ट हुई है, वह प्रहर्षित हुए धूल उखाड़कर अपने अङ्गों में डाले हुए मदोत्कट बैल (दूसरे बैलों से) युद्ध के लोभी हुए गौओं के मध्यगत हो गर्ज रहे हैं ॥१९॥ जिनके कपोलों से मद बह रहे हैं, वह गजेन्द्र बड़ी गर्जों से बतख और चकवों को डराकर खिले हुए कमलरूपी भूषणों वाले सरोवरों में हिला हिलाकर जल पीते हैं ॥२०॥ रात जिसका कि उदय हुआ चन्द्र सौम्यमुख है, जिसने तारागण रूपी सुन्दर नेत्र खोले हुए हैं, चांदनी का दुपट्टा ओढ़े हुए श्वेत वस्त्र से ढके हुए शरीरवाली नारी की तरह शोभा देती

है ॥ २१ ॥ पके हुए चावलोंको खाकर प्रहर्षित हुई शीघ्र वेगवाली सारसों की सुन्दर पंक्ति वायु से उड़ाई हुई गून्दी हुई माला की तरह आकाश में उड़ती है ॥ २२ ॥ निर्मल जल, पुष्पों की मुसकराहट, चकवों की ध्वनि, पके हुए शालि समूह, नर्म वायु और विमल चन्द्र यह वर्षा समय का बीतना बतला रहे हैं ॥ २३ ॥ लोक को सुवृष्टि से प्रसन्न करके नदी और तालाबों को पूर्ण करके, पृथिवी को खेती से सजा करके बादल आकाश को त्यागकर भाग गये हैं ॥ २४ ॥ हे नृपात्मज ! परस्पर से बद्ध वैर जिगीषु राजों का हे सौम्य यह उद्योग समय उपस्थित हुआ है ॥ २५ ॥ हे नृपात्मज राजाओं की यह पहली यात्रा है, पर न मैं सुग्रीव को देखता हूं, न वैसे उद्योग को ॥ २६ ॥ शोक से तपे हुए तथा सीता को न देखते हुए मुझे बरसात के चार महीने सौ बरस के तुल्य बीते हैं ॥ २७ ॥ प्रिया से हीन, दुःख से पीड़ित, हरे गये राज्यवाले परदेशी पर हे लक्ष्मण ! राजा सुग्रीव कृपा नहीं करता है ॥ २८ ॥ सो तू किष्किन्धा में प्रवेश करके वानरश्रेष्ठ ग्राम्यसुख में फंसे हुए मूर्ख सुग्रीव को मेरे बचन से कहो ॥ २९ ॥ अच्छा वा बुरा जो वचन कहा हो, जो उसे सत्य कर दिखलाता है, वही पुरुषोत्तम है ॥ ३० ॥ जो मित्र कृतार्थ हुए अकृतार्थ मित्रों के नहीं बनते हैं, उन कृतघ्नों को मारने पर गीध भी नहीं खाते हैं॥३१॥

सर्ग २७ व० ३३) लक्ष्मण का किष्किन्धा प्रवेश

मूल—अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा । प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात् ॥ १ ॥ स तां रत्नमयीं दिव्यां श्रीमान् पुष्पितकाननाम् । रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम् ॥ २ ॥ हर्म्यप्रासादसम्बाधां नानारत्नोपशोभिताम् । सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभिताम् ॥ ३ ॥ देवगन्धर्वपुत्रैश्च वानरैःकामरूपिभिः ।

दिव्यमाल्याम्बरधरैः शोभितां प्रियदर्शनैः ॥ ४ ॥ चन्दनागुरुपद्मानां गन्धैः सुरभिगन्धिताम् । मैरेयाणां मधूनां च सम्मोदितमहापथाम् ॥ ५ ॥ अङ्गदस्य गृहं रम्यं मैन्दस्य द्विविदस्य च । गवयस्य गवाक्षस्य गजस्य शरभस्य च ॥ ६ ॥ विद्युन्मालेश्च संपातेः सूर्याक्षस्य हनूमतः । वीरबाहोः सुबाहोश्च नलस्य च महात्मनः॥७॥ कुमुदस्य सुषेणस्य तारजाम्बवतोस्तथा । दधिवक्त्रस्य नीलस्य सुपाटलसुनेत्रयोः ॥८॥ एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम् । ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः ॥ ९ ॥ पाण्डुरेण तु शैलेन परिक्षिप्तं दुरासदम् । वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम् ॥ १० ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभितम् । दिव्यमाल्यवृतं शुभ्रं तप्तकाञ्चनतोरणम् ॥ ११ ॥ सुग्रीवस्य गृहं रम्यं प्रविवेश महाबलः । अवार्यमाणः सौमित्रिर्महाभ्रमिव भास्करः ॥ १२ ॥ स सप्त कक्ष्या धर्मात्मा यानासनसमावृताः । ददर्श सुमहद्गुप्तं ददर्शान्तःपुरं महत् ॥ १३ ॥ प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वनम् । तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समतालपदाक्षरम् ॥ १४ ॥ बह्वीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः । स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श स महाबलः ॥ १५ ॥ कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निःस्वनं तथा । स निशम्य ततः श्रीमान्सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥ १६ ॥ रोषवेगप्रकुपितः श्रुत्वा चाभरणस्वनम् । चकार ज्यास्वनं वीरो दिशः शब्देन पूरयन् ॥१७॥ ततस्तारां हरिश्रेष्ठः सुग्रीवः प्रियदर्शनाम् । उवाच हितमव्यग्रस्त्राससंभ्रान्तमानसः ॥ १८ ॥ किं नु रुट्कारणं सुभ्रु प्रकृत्या मृदुमानसः । सरोष इव संप्राप्तो येनायं राघवानुजः॥१९॥

टीका—तब आज्ञा दिया हुआ, शत्रु वीरों के मारने वाला लक्ष्मण राम की आज्ञा से रमणीय किष्किन्धा गुफा में प्रविष्ट हुआ॥ १ ॥ उस ने वह दिव्य रत्नमयी, फूले हुए बगीचों वाली, रत्नों से भरीहुई

रमणीय बड़ी गुफा देखी ॥ २ ॥ जो बड़े २ मन्दिर और प्रासादों से भरी हुई रत्नों (उत्तम वस्तुओं) से सजी हुई, सदा मनमाने फल देने वाले फूले हुए वृक्षों से शोभित ॥ ३ ॥ दिव्य माला और वस्त्र धारे हुए प्रिय दर्शन वाले काम रूपी वानरों से और देव गन्धर्वों के पुत्रों से शोभित ॥ ४ ॥ चन्दन, अगर और पद्म के गन्धों से सुगन्धित, मैरेय और महुए के समूहों से महकती हुई सड़कों वाली ॥ ५ ॥ राजमार्ग के ऊपर लक्ष्मण ने इन मुख्य वानर महात्माओं के बड़े २ भारी महल देखे अङ्गद का, मैन्द का, द्विविद का, गवय का, गवाक्ष का, गज का, शरभ का, विद्युन्मालिका, संपातिका, सूर्याक्ष का, हनुमान का, वीरबाहुका, सुबाहु का, नल का, कुमद का, सुषेण का, तार का, जाम्बवान् का, दधिवक्र का, नील का, सुपाटल का और सुनेत्र का ॥ ६, ७, ८, ९ ॥ और श्वेत कोट से चारों ओर से घिरे हुए, दुरासद, कैलास की चोटियों के सदृश प्रासाद की श्वेत चोटियों से और सर्वदा यथेच्छ फल देने वाले फूले हुए वृक्षों से शोभित, दिव्य मालाओं से ढके हुए शुभ्र, शोभित सुवर्ण की तोरणों वाले सुग्रीव के रमणीय गृह में वह महाबली लक्ष्मण बिना रोक के प्रविष्ट हुआ जैसे सूर्य बड़े मेघ में ॥ १०, ११, १२, उस धर्मात्मा ने नाना जनों से भरी हुई सात डेउढ़ियें लंघकर आगे प्रवेश करके पूरी तरह से रक्षा किये हुए बहुत बड़े अन्तःपुर (रनिवास) को देखा ॥ १३ ॥ वहां प्रवेश करते ही उसने वीणा की ध्वनि से युक्त, समताल पद अक्षरों वाला मधुर गीत सुना ॥ १४ ॥ और रूप यौवन से गर्वित विविध प्रकार की बहुत स्त्रियें सुग्रीव के भवन में देखीं ॥ १५ ॥ नूपरों का शब्द और मेखलाओं का शब्द सुनकर श्रीमान् लक्ष्मण लज्जित होगया ॥ १६ ॥ भूषणों के शब्द को

सुनकर रोष के वेग से प्रकुपित हुए शब्द से दिशाओं को पूरण करते हुए उस वीरने चिल्ला की ध्वनि की ॥ १७ ॥ तब डर से घबराए मन वाला वानरश्रेष्ठ सुग्रीव अव्यग्र हो प्रियदर्शना तारा से यह हित शुभ लक्षणों वाला वचन बोला ॥ १८ ॥ हे सुभ्रु रोष का क्या कारण होसक्ता है, जिस से स्वभाव से ही मृदुचित्त यह राघव का छोटा भाई क्रुद्ध सा हुआ आया है॥ १९॥

मूल—अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनी । वचनैःसान्त्वयुक्तैश्च प्रसादयितुमर्हसि॥२०॥सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी प्रलम्बकाञ्चीगुणहेमसूत्रा । सलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः ॥ २१ ॥ स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं तस्थावुदासीनतया महात्मा । अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः स्त्रीसंनिकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥ २२ ॥ सा पानयोगाच्च निवृत्तलज्जा दृष्टिप्रसादाच्च नरेन्द्रसूनोः । उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं वाक्यं महार्थं परिसान्त्वरूपम् ॥२३॥ किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र कस्ते न संतिष्ठति वा निदेशे । कः शुष्कवृक्षं वनमापतन्तं दावाग्निमासीदति निर्विशङ्कः॥२४॥न कोपकालः क्षितिपालपुत्र न चापि कोपः स्वजने विधेयः । त्वदर्थकामस्य जनस्य तस्य प्रमादमप्यर्हसि वीरसोढुम् ॥२५॥ तं कामवृत्तं मम संनिकृष्टं कामाभियोगाच्च विमुक्तलज्जम् । क्षमस्व तावत्परवीरहन्तस्त्वद्भ्रातरं वानरवंशनाथम् ॥ २६ ॥ उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम । कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने ॥ २७ ॥ तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया । अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम् ॥ २८ ॥ तारया चाप्यनुज्ञातस्त्वरया चापि चोदितः । प्रविवेश महाबाहुरभ्यन्तरमरिन्दमः ॥ २९ ॥

टीका—अथवा हे सुन्दरि ! आप जाकर ही इसे देखने योग्य हैं, और तसल्ली युक्त वचनों से प्रसन्न करने योग्य हैं ॥ २० ॥ वह

मद से भरे नेत्रों वाली, लटकते हुए मेखला की सुनहरी ज़ञ्जीर वाली झुकी हुई अङ्गयष्टिवाली, फिसलती हुई लक्ष्मण के निकट गई ॥ २१ ॥ वह महात्मा वानरेश की पत्नी को देखकर उदासीनता से स्थित हुआ, उस राजपुत्र ने मुख नीचे कर लिया और स्त्री के निकट आने से क्रोध हटा दिया ॥ २२ ॥ वह तारा (मधु) पान के योग से दूर हुई लज्जा वाली और राजपुत्र की प्रसन्न दृष्टि से निर्भय हुई प्रेम से निडर बड़े अर्थ वाला तसल्ली देने वाला वाक्य बोली ॥ २३ ॥ हे नरेन्द्रपुत्र आपके कोप का क्या मूल है, कौन आपकी आज्ञा में स्थित नहीं होता है, कौन सूखे वृक्षों वाले बन में लगे अग्नि को निःशंक होकर दबाता है ॥ २४ ॥ हे पृथिवीपाल के पुत्र ! आपका यह कोप का काल नहीं है, और न ही अपने जन में कोप करना चाहिये, हे वीर ! आपका भला चाहते हुए जन का प्रमाद भी हो तो क्षमा करने योग्य हो ॥ २५ ॥ कामवश से मेरे समीप वर्तमान, और कामावेश से लज्जा रहित हुए उस अपने भाई वानर वंश के नाथ को हे शत्रुओं के वीरों को मारने वाले आप क्षमा करने योग्य हो ॥ २६ ॥ किन्तु हे नरोत्तम काम के वशवर्ती भी सुग्रीव ने आपका अर्थ साधने में चिर से उद्योग आरम्भ किया हुआ है ॥ २७ ॥ सो आइये हे महाबाहो आपने चरित्र की रक्षा की है, बिना छल के मित्र-भाव से (न कि विकार से) स्त्री को देखना सत्पुरुषों का धर्म है ॥ २८ ॥ तारा से अनुज्ञा दिया हुआ और जल्दी से प्रेरा हुआ शत्रुओं को सिधाने वाला वह महाबाहु अभ्यन्तर प्रविष्ट हुआ ॥ २९ ॥

सर्ग २८ (व० ३४) लक्ष्मण का सुग्रीव को उपदेश

मूल—तमप्रतिहतं क्रुद्धं प्रविष्टं पुरुषर्षभम् । सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥ उत्पपात हरिश्रेष्ठो हित्वा सौवर्णमा-

सनम् । महान्महेन्द्रस्य यथा स्वलंकृत इव ध्वजः ॥ २ ॥ रुमाद्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम् । अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः सतारं शशिनं यथा ॥ ३ ॥ सत्त्वाभिजनसम्पन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः । कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते ॥ ४ ॥ शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं तु गवानृते । आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषानृते ॥ ५ ॥ गीतोऽयं ब्रह्मणः श्लोकः सर्वलोकनमस्कृतः । दृष्ट्वा कृतघ्नं क्रुद्धेन तन्निबोध प्लवंगम ॥६॥ + गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा । निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ ७ ॥ ननु नाम कृतार्थेन त्वया रामस्य वानर । सीताया मार्गणे यत्नः कर्त्तव्यः कृतमिच्छता ॥ ८ ॥

टीका—वेरोक प्रविष्ट हुए उस पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मण को क्रुद्ध देखकर सुग्रीव के इन्द्रिय घबराए ॥ १ ॥ वह वानरश्रेष्ठ सोने के आसन को त्याग कर सजी हुई महेन्द्र की ध्वजा की तरह उठा ॥ २ ॥ तारा सहित चन्द्र की तरह नारी मध्य में रुमा सहित स्थित सुग्रीव को क्रुद्ध हुआ लक्ष्मण बोला ॥३॥ कि शुद्ध मन और वंश से युक्त, दयावान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी राजा लोक में पूजा जाता है ॥ ४ ॥ घोड़े के विषय में झूठ से सौ को मारता है (घोड़े के देने आदि की प्रतिज्ञा को झूठ करने में सौ घोड़े की हत्या का पाप लगता है)गौ के विषय झूठ में हज़ार को और पुरुष के विषय में झूठ से अपने आप को और अपने जन को मारता है, (आत्महत्या और स्वजन हत्या का पाप भागी होता है)॥ ५ ॥ कृतघ्न को देखकर क्रुद्ध हुए ब्रह्मा ने यह श्लोक गाया है, जो सब लोकों से आदृत है, हे वानर ! उसे जान ॥ ६ ॥ गौहत्यारे, सुरा पीने वाले, चौर और व्रत को तोड़ने वाले को सत्पुरुषों ने निष्कृति (बदला, कुफारा) कहा है, परन्तु कृतघ्न की कोई

निष्कृति नहीं है॥७॥निःसन्देह राम से कृतार्थ हुए अब प्रत्युपकार करना चाहते हुए आपको सीता के ढूंढने में यत्न करना चाहिये।

सर्ग २९ (श्लो० ३६) सुग्रीव का नम्र उत्तर

मूल—स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः। अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं संप्रहर्षयन् ॥ १ ॥ प्रनष्टा श्रीश्च कीर्त्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम्। रामप्रसादात्सौमित्रे पुनश्चाप्तमिदं मया ॥ २ ॥ कः शक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा। तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज ॥ ३ ॥ सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम्। सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा ॥ ४ ॥ अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ। गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरःसरम्॥५॥+यदि किंचिदतिक्रान्तं विश्वासात्प्रणयेन वा। प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति ॥ ६ ॥ इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः। अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चेदमुवाच ह ॥ ७ ॥ सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वर। त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः ॥ ८ ॥ धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः। उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम् ॥ ९ ॥ किं तु शीघ्रमितो वीर निष्क्रम त्वं मया सह। सान्त्वयस्व वयस्यं च भार्याहरणदुःखितम् ॥ १० ॥ यच्च शोकाभिभूतस्य श्रुत्वा रामस्य भाषितम्। मया त्वं परुषाण्युक्तस्तत्क्षमस्व सखे मम ॥ ११ ॥

टीका—सब वानरों में श्रेष्ठ सुग्रीव भीमबल वाले लक्ष्मण को प्रहर्षित करता हुआ नम्र वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण ! राम के प्रसाद से मैंने नष्ट हुई श्री, कीर्त्ति और पुराना वानरराज्य प्राप्त किया है ॥ २ ॥ अपने कर्म से विख्यात उस देव का हे नृपात्मज ! कौन पुरुष है जो अंश से भी बदला देसक्ता है ॥ ३ ॥ धर्मात्मा राघव मुझ सहायमात्र से वस्तुतः अपने ही तेज से सीता को प्राप्त

होगा, और रावण को मारेगा ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अपने आगे चलनेवालों के सहित वैरी रावण को मारने जाते हुए नरेन्द्र (राम) की मैं अनुयात्रा करूंगा ॥ ५ ॥ यदि विश्वास से वा प्रेम से कुछ अतिक्रम हुआ है, तो मुझ दास को क्षमा करनी चाहिए, कोई ऐसा नहीं, जिससे अपराध न हुआ हो ॥ ६ ॥ सुग्रीव महात्मा के ऐसा कहते हुए प्रसन्न हुआ लक्ष्मण प्रेम से यह बोला ॥ ७ ॥ हे वानरेश्वर सुग्रीव विशेषतया नम्र तुझ नाथ से सर्वथा मेरा भाई सनाथ है॥८॥ धर्मज्ञ कृतज्ञ, संग्रामों में न लौटनेवाले का यह तेरा भाषण योग्य और युक्ति युक्त है ॥ ९ ॥ किन्तु हे वीर यहां से जल्दी मेरे साथ चल, और चलकर स्त्री के हरण से दुःखित अपने मित्र को तसल्ली दे॥१०॥और जो शोक से दबे हुए राम का विलाप देखकर मैंने कठोर कहा है, हे मेरे मित्र उसे क्षमा करना ११

सर्ग ३० (व० ३८) सुग्रीव का राम के पास जाना

मूल—एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना।हनूमन्तं स्थितं पार्श्वे वचनं चेदमब्रवीत ॥ १ ॥ तांस्तांस्त्वमानाय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान् । सामदानादिभिः कल्पैर्व नरैर्गवत्तरैः ॥ २ ॥ प्रेषिताःप्रथमं ये च मया ज्ञाता महाजवाः।त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं संप्रेषय हरीश्वरान् ॥ ३ ॥ तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः । दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान्प्रेषयामास वानरान् ॥ ४ ॥ मृत्युकालोपमस्याज्ञां राजराजस्य वानराः । सुग्रीवस्याययुः श्रुत्वा सुग्रीवभयशङ्किताः ॥ ५ ॥ वनेभ्यो गह्वरेभ्यश्च सरिद्भ्यश्च महाबला । आगच्छद्वानरी सेना पिबन्तीव दिवाकरम्॥६॥स वानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिःशस्त्रपाणिभिः। परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः ॥ ७ ॥ आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत।कृताञ्जलौ स्थिते तस्मिन्वानराश्चाभवंस्तथा ॥ ८ ॥ तटाकमिव तं दृष्ट्वा रामः कुड्मलपङ्कजम । वानराणां

महत्सैन्यं सुग्रीवे प्रीतिमानभूत् ॥९॥ पादयोः पतितं मूर्ध्ना तमुत्थाप्य हरीश्वरम्। प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे ॥१०॥

टीका—महात्मा लक्ष्मण से ऐसे कहा हुआ सुग्रीव पास स्थित हनुमान् से यह बचन बोला ॥ १ ॥ पृथिवी पर से उन २ सारे वानरों को अति वेगवाले वानरों के द्वारा साम दान आदि उपायों से जल्दी मंगवा ॥२॥ जो महा वेगवाले पहले भेजे गये हैं, वह मुझे ज्ञात हैं, तथापि जल्दी के लिये फिर तू और सरदारों को भेज ॥३॥ उस वानरराज के बचन को सुनकर पवनसुत ने सारी दिशाओं में पराक्रमी वानरों को भेजा ॥४॥ मृत्यु काल के तुल्य अपने राजराज सुग्रीव की आज्ञा को सुनकर सुग्रीव के भय से डरे हुए सब वानर आगए ॥५॥ बनों से, कन्दराओं से और नदियों पर से बड़े वेगवाली वानरी सेना मानों सूर्य को पीती हुई (धूल से ढांपती हुई) आई ॥ ६ ॥ तब वह हाथ में शस्त्र लिये, बड़े तीक्ष्ण अनेक वानरों से घिरा हुआ वहां गया, जहां राम स्थित थे ॥ ७॥ वहां वह राम के पास जाकर हाथ जोड़कर खड़ा होगया, उसके हाथ जोड़कर खड़ा होने पर सभी वानर हाथ जोड़कर खड़े होगये ॥ ८ ॥ राम कमलों की कलियोंवाले तालाब के तुल्य उसकी और वानरों की बड़ी सेना को देखकर सुग्रीव मे प्रीतिमान् हुए ॥ ९ ॥ मस्तक द्वारा पाओं पर गिरे हुए उस वानरेश्वर को प्रेम और बहुमान से उठाकर राम ने गले लगाया ॥ १० ॥

सर्ग ३१ (व० ४०,४५) वानरों को सीता के ढूंढने के लिये भेजना

मूल—अथ राजा समृद्धार्थः सुग्रीवः प्लवगेश्वरः । उवाच नरशार्दूलं रामं परबलार्दनम् ॥१॥ आगता विनिविष्टाश्च बलिनः कामरूपिणः । वानरेन्द्रा महेन्द्राभा ये मद्विषयवासिनः ॥२॥ ख्यातकर्मापदानाश्च बलवन्तो जितक्लमाः । पराक्रमेषु विख्याता व्यवसायेषु

चोत्तमाः ॥३॥ यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम् । त्वत्सैन्यं त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ४ ॥ तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ ज्ञायतां सौम्य वैदेही यदि जीवति वा न वा । स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन्वसति रावणः ॥ ६ ॥ नाहमस्मिन्प्रभुः कार्ये वानरेन्द्र न लक्ष्मणः । त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वरः ॥७॥ एवमुक्तस्तु सुग्रीवो वीरः कपिगणेश्वरः । वेगविक्रमसंपन्नान्संदिदेश विशेषवित् ॥८॥ यश्च मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति । मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति ॥ ९ ॥ विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमत्यर्थमुक्तवान् । स हि तस्मिन्हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १० ॥ न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये । नाप्सु वा गतिसङ्गं ते पश्यामि हरिपुङ्गव ॥ ११ ॥ सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः । विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ॥१२॥ तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते । तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ॥ १३ ॥ त्वय्येव हनुमन्नास्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः । देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित ॥१४॥ ततः कार्यसमासङ्गमवगम्य हनूमति । विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः ॥ १५॥ सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः । निश्चितार्थतरश्चापि हनूमान्कार्यसाधने ॥१६॥ तदेवं प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः । भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्यफलोदयः ॥ १७ ॥ ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् । अंगुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः ॥१८॥ अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिन्हेन जनकात्मजा । मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति ॥ १९ ॥ व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः । सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥ २० ॥ स तद्गृह्य हरिश्रेष्ठः कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः । वन्दित्वा चरणौ चैव

प्रस्थितः प्लवगर्षभः ॥ २१ ॥ एवं संचोदिताः सर्वे राज्ञा वानरयूथपाः। स्वां स्वां दिशमभिप्रेत्य त्वरिताः संप्रतस्थिरे ॥ २२ ॥ ते सरांसि सरित्कक्षानाकाशं नगराणि च। नदीदुर्गांस्तथा देशान्विचिन्वन्ति समन्ततः ॥ २३ ॥

टीका—तब पूर्ण कार्योंवाले वानरपति सुग्रीव ने शत्रुबल के पीड़ने वाले नरश्रेष्ठ राम से कहा ॥ १ ॥ मेरे देशवासी, महेन्द्रतुल्य, कामचारी बली वानरेन्द्र आगये हैं, और उन्हों ने छावनियां डाल दी हैं ॥ २॥ युद्ध में जिनका शौर्य प्रसिद्ध है, बलवाले हैं, थकावट को जीते हुए हैं, पराक्रमों में विख्यात हैं, और कर्मों में उत्तम हैं ॥ ३ ॥ हे नरश्रेष्ठ जो कुछ इस समय के योग्य समझते हो, वह आज्ञा दीजिये, आपकी सेना आपके बस में है, उसे युक्त आज्ञा दीजिये ॥४॥ ऐसे कहते हुए सुग्रीव को दशरथसुत राम भुजाओं से गले लगाकर यह बचन बोले ॥ ५ ॥ हे सौम्य वैदेही का पता लगाइये, जीती है वा नहीं, और उस देश का हे महाप्राज्ञ जहां रावण बसता है ॥६॥ हे वानरेन्द्र इस कार्य में न मैं समर्थ हूं, न लक्ष्मण, हे वानरेश्वर तू ही इस कार्य का कर्त्ता है और तू ही समर्थ है ॥७॥ ऐसे कहे हुए (वानरों की) विशेषता को जाननेवाले, वानरगण के स्वामी वीर सुग्रीव ने वेग और पराक्रम से सम्पन्न प्रसिद्ध वानरों को आज्ञा दी ॥ ८ ॥ कि जो एक महीने के अन्दर २ आकर मुझे यह बतलाएगा, कि मैंने सीता देखी है, वह भोगों से मेरे तुल्य ऐश्वर्यवाला हुआ सुखसे विचरेगा ॥९॥ विशेष करके सुग्रीव ने हनुमान् को कहा, क्योंकि वह अर्थ साधन के विषय में उस वानरश्रेष्ठ पर पूरा भरोसा रखता था ॥१०॥ हे वानरश्रेष्ठ ! न भूमि में, न अन्तरिक्ष में, न आकाश में, न देवलोक में, न जलों में कहीं तेरी गति का रुकना देखता हूं ॥ ११ ॥

तुझे असुर, गन्धर्व, नाग नर और देवताओं के सारे स्थान समुद्र पर्वतों समेत विदित हैं ॥ १२ ॥ तेज से भी तेरे बराबर कोई प्राणधारी पृथिवी पर नहीं है, सो जिसतरह सीता का पता लगे, वह तूही सोच ॥ १३ ॥ तुझ में ही हे नीति में पण्डित हनुमन् ! बल बुद्धि पराक्रम, देशकाल का अनुसरण और नीति है ॥१४॥ तब हनुमान् में कार्य सिद्धि जानकर और हनुमान् को वैसा जानकर राम ने सोचा ॥ १५ ॥ कि यह वानरेश्वर हनुमान् पर पूरा भरोसा रखता है, और हनुमान् भी कार्यसाधन में बढ़कर निश्चयवाला है ॥ १६ ॥ सो इसप्रकार से भेजे हुए और अपने किये कर्मों से जाने हुए, स्वामी से आदर किये हुए को अवश्य कार्य में सफलता होगी ॥ १७ ॥ तब उस परन्तप ने प्रसन्न होकर अपने नाम के चिन्ह से शोभित अंगूठी राजपुत्री के लिये निशानी दी ॥१८॥ इस चिन्ह से हे वानरश्रेष्ठ जनकसुता अनुद्विग्न हुई तुझे मेरे पास से आया जानेगी ॥ १९ ॥ हे वीर तेरा निश्चय और दिलेरी वाला पराक्रम और सुग्रीव का सन्देश मुझे सिद्धि बतलाते हैं ॥ २० ॥ वह वानरश्रेष्ठ ! उसे लेकर हाथ जोड़कर माथे पर रखकर राम के चरणों की वन्दना करके प्रस्थित हुआ ॥ २१ ॥ इस प्रकार राजा से प्रेरे हुए सारे वानर यूथपति जल्दी करते हुए अपनी २ दिशा को लक्ष्य करके प्रस्थित हुए ॥ २२ ॥ वह सरोवर, नदी, बेलें उजाड़, नगर, नदी तथा दुर्ग देशों में घूमते भए ॥ २३ ॥

सर्ग ३२ (व० ४८-५८) सम्पाति से सीता का पता लगना

मूल—सह ताराङ्गदाभ्यां तु सहसा हनुमान्कपिः । सुग्रीवेण यथोदिष्टं गन्तुं देशं प्रचक्रमे ॥ १ ॥ स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः । ततो विचित्य विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥ २ ॥ पर्व-

ताग्रनदीदुर्गान्सरांसि विपुलद्रुमान् । वृक्षखण्डांश्च विविधान्पर्वतान्वनपादपान् ॥ ३ ॥ अन्वेषमाणास्तु सर्वे वानराः सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥ ते विचित्य पुनः खिन्ना विनिष्पत्य समागताः । एकान्ते वृक्षमूलेतु निषेदुर्दीनमानसाः ॥ ५ ॥ ते मुहूर्तं समाश्वस्ताः किञ्चिद्भग्नपरिश्रमाः । पुनरेवोद्यताः कृत्स्नां मार्गितुं दक्षिणां दिशम् ॥ ६ ॥ हनुमत्प्रमुखास्तावत्प्रस्थिताः प्लवगर्षभाः । विन्ध्यमेवादितः कृत्वा विचेरुश्च समन्ततः ॥ ७ ॥ ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम् । अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥ ८ ॥ विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे संप्रपुष्पितपादपे । उपविश्य महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तदा ॥ ९ ॥ इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः । प्रधानभूताश्च वयं सुग्रीवस्य समागताः ॥१०॥ इहैव सीतामन्वीक्ष्य प्रवृत्तिमुपलभ्य वा । नो चेद्गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम् ॥ ११ ॥ उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन्प्रायं गिरिस्थले । हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रमे ॥१२ ॥ संपातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहङ्गमः । भ्राता जटायुषः श्रीमान्विख्यातबलपौरुषः ॥ १३ ॥ अङ्गदः परमायस्तो हनूमन्तमथाब्रवीत् । प्रियं कृतं हि रामस्य धर्मज्ञेन जटायुषा ॥ १४ ॥ राघवार्थे परिश्रान्ता वयं संत्यक्तजीविताः । कान्ताराणि प्रपन्नाः स्म न च पश्याम मैथिलीम् ॥ १५ ॥ तत्तु श्रुत्वा तथा वाक्यमङ्गदस्य मुखोद्गतम् । सबाष्पो वानरान्गृध्रः प्रत्युवाच महास्वनः ॥ १६ ॥ यवीयान्स मम भ्राता जटायुर्नाम वानराः । यमाख्यात हतं युद्धे रावणेन बलीयसा ॥ १७ ॥ नाहि मे शक्तिरस्त्यद्य भ्रातुर्वैरविमोक्षणे । वाङ्मात्रेणापि रामस्य करिष्ये साह्यमुत्तमम् ॥ १८ ॥ रामस्ययदिदं कार्यं कर्त्तव्यं प्रथमं मया । जरया च हृतं तेजः प्राणाश्च शिथिला मम ॥ १९ ॥ तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता । ह्रियमाणा

मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना ॥ २० ॥ क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च भामिनी । तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परिकीर्तनात् ॥ २१ ॥ इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने । तस्मिँल्लङ्का पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥२२॥ जाम्बूनदमयै र्द्वारैश्चित्रैः काञ्चनवेदिकैः । प्रासादैर्हेमवर्णैश्च महद्भिः सुसमाकृता ॥ २३ ॥ प्राकारेणार्कवर्णेन महता च समन्विता । तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी ॥२४॥ रावणान्तः पुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता । जनकस्यात्मजां राज्ञस्तस्यां द्रक्ष्यथ मैथिलीम् ॥ २५ ॥ उपायो दृश्यतां कश्चिल्लङ्घने लवणाम्भसः । अभिगम्य तु वैदेही समृद्धार्था गमिष्यथ ॥ २० ॥

टीका—उसी समय हनुमान् वानर तार और अङ्गद के सहित सुग्रीव से बतलाए देश की ओर चल पड़ा ॥ १ ॥ वह उन सब वानरों के साथ दूर जाकर विन्ध्याचल की गुफा और जङ्गलों को ढूंढकर फिर पर्वत की चोटियां, नदी तटों के दुर्गम स्थान सरोवर, बड़े २ वृक्ष, भान्ति २ के वृक्ष समूह, पर्वत और वन, वृक्षों का सारी दिशाओं में ढूंढते भए ॥ २, ३, ४ ॥ वह ढूंढकर फिर थके हुए निकलकर सब दीन मन हुए, एकान्त में एक वृक्ष के नीचे बैठ गये ॥ ५ ॥ वह बड़ी देर आराम करके कुछ दूर हुए परिश्रम वाले फिर सारी दक्षिण दिशा ढूंढने को तय्यार हुए ॥ ६ ॥ तब हनुमान् आदि सब वानरश्रेष्ठ प्रस्थित हुए और विन्ध्याचल से आरम्भ कर सब ओर घूमे ॥ ७ ॥ तब उन्हों ने वरुण के स्थानभूत भयंकर अपार समुद्र को देखा, जो घोर लहरों से आकुल हुआ गर्ज रहा है ॥ ८ ॥ फूले हुए वृक्षों वाले विन्ध्यपर्वत के पाद पर बैठ कर वह महात्मा सोचने लगे ॥९॥ अब अकृत कार्य हुए हम को मरना उत्तम है, इस में संशय नहीं, हम सुग्रीव

के प्रधान हुए मिल कर आए हैं ॥ १० ॥ या तो यहां ही सीता को ढूंढ कर उस का समाचार लेकर उस बीर के पास चलें, नहीं तो यम के घर चलें ॥ ११ ॥ वह सारे वानर पर्वत के जिस प्रदेश पर खाना पीना छोड़ कर बैठे थे,उस देश में एक गृध्रराज आया ॥ १२ ॥ संपाति नाम बड़ा बूढ़ा विहङ्गम, जटायु का भाई विख्यात बल पौरुष वाला ॥ १३ ॥ इधर परम दुःखित हुए अङ्गद ने हनुमान् से कहा, धर्मज्ञ जटायु ने राम का प्रिय कार्य किया (जिसने अपना जीवन त्यागते हुए सीता की प्रवृत्ति दी) ॥ १४ ॥ हम ने जीवन से बे परवाह होकर राम के लिये परिश्रम किया, उजाडों में घूमे, पर मैथिली का पता न मिला ॥ १५ ॥ अंगद के मुख से निकले उस वाक्य को सुन कर वह बड़ी ध्वनि वाला गृध्र आंसु भर कर वानरों से बोला ॥ १६ ॥ हे वानरो जटायु नाम मेरा ही छोटा भाई था, जिस को तुम युद्ध में बली रावण से मारा गया बतलाते हो ॥ १७ ॥ मेरा अब भाई का वैर छुड़ाने में तो शक्ति नहीं है, तथापि बाणी मात्र से ही मैं राम की उत्तम सहायता करूंगा ॥ १८ ॥ राम का जो यह कार्य है, यह मेरे लिये (आप से) प्रथम कर्तव्य है, किन्तु बुढ़ापे ने मेरा तेज हर लिया है, और प्राण ढीले होगए हैं ॥ १९ ॥ रूप से सम्पन्न, सारे भूषणों से भूषित एक युवाति दुरात्मा रावण से हरी जाती हुई मैंने देखी है ॥ २० ॥ जो सुन्दरी राम राम और लक्ष्मण ऐसे पुकार रही थी, राम के कीर्तन से मैं उसे सीता समझता हूं ॥ २१ ॥ यहां से पूरे सौ योजन पर समुद्र के द्वीप में विश्वकर्मा की बनाई हुई रमणीय लङ्का पुरी है ॥ २२ ॥ जो चित्र सुनहरी द्वारों से सुनहरी वेदियों से और सुनहरी रंग के बड़े २ मन्दिरों से सजी हुई है ॥ २३ ॥ सूर्य तुल्य चमकते हुए

बड़े कोट से युक्त है, उस में रेशमी वस्त्रों वाली दीन वैदेही बसती है ॥ २४ ॥ रावण के अन्तःपुर में रुकी हुई राक्षसियों से सुरक्षित है, उस में जनकराज की कन्या मैथिली को तुम देखोगे ॥ २५ ॥ समुद्र से पार लंघने का उपाय देखो, वैदेही के पास पहुंच कर सफल मनोरथ हुए वापिस आओगे ॥ २६ ॥

सर्ग ३३ (व०६४-६६) हनुमान् को लंका जानेके लिये उत्साहित करना

मूल—सम्पातेर्वचनं श्रुत्वा हरयो रावणक्षयम् । हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शनकांक्षिणः ॥ १ ॥ दक्षिणस्य समुद्रस्य समासाद्योत्तरां दिशम् । सन्निवेशं ततश्चक्रुर्हरिवीरा महाबलाः ॥ २ ॥ प्रसुप्तमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यतः । क्वचित्पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम् ॥ ३ ॥ आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः । विषेदुः सहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥ ४ ॥ ततस्तान्हरिवृद्धांश्च तच्च सैन्यमरिन्दमः । अनुमान्याङ्गदः श्रीमान्वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥ ५ ॥ क इदानीं महातेजा लंघयिष्यति सागरम् । कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसन्धमरिन्दमम् ॥ ६ ॥ कस्य प्रसादाद्रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् । अभिगच्छेम संहृष्टाः सुग्रीवं च वनौकसम् ॥ ७ ॥ यदि कश्चित्समर्थो वः सागरप्लवने हरिः । स ददात्विह नः शीघ्रं पुण्यामभयदक्षिणाम् ॥ ८ ॥ अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित्किञ्चदब्रवीत् । स्तिमितेवाभवत्सर्वा सा तत्र हरिवाहिनी ॥ ९ ॥ जाम्बवान्समुदीक्ष्यैवं हनूमन्तमथाब्रवीत् । वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर ॥ १० ॥ तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमान्किं न जल्पसि ॥ ११ ॥ बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव । विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे ॥ १२ ॥ वयमद्य गतप्राणा भवानस्मासु सांप्रतम् । दाक्ष्यविक्रमसम्पन्नः कपिराज इवापरः ॥ १३ ॥ त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामा हि सर्वा वानरवाहिनी । उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लंघयस्व महार्णवम् ॥ १४ ॥

टीका—सम्पाति के वचन को सुन कर प्रसन्न हुए सीता के दर्शन के अभिलाषी वह वानर रावण के घर सागर पर आए ॥ १ ॥ दक्षिण समुद्र की उत्तर दिशा में पहुंच कर वह महाबली वानर वीर ठहर गए ॥ २ ॥ जो (सागर) कहीं सोए हुए की तरह है, कहीं खेलते हुए की तरह है, कहीं पर्वत जितनी ऊंची लहरों से युक्त है ॥ ३ ॥ आकाश की तरह दुष्पार सागर को देख कर 'कैसे कार्य बने' यह कहते हुए सारे वानर निराश होगए ॥ ४ ॥ तब उन वानर वृद्धों को और सैनिकों का मान कर के शत्रुओं के दबाने वाला श्रीमान् अङ्गद अर्थयुक्त वाक्य बोला ॥ ५ ॥ कौन महातजस्वी अब सागर को लंघेगा और शत्रुओं के दबाने वाले सुग्रीव को सच्ची प्रतिज्ञा वाला बनाएगा ॥ ६ ॥ किस के प्रसाद से हम महाबली राम और लक्ष्मण को और वानर सुग्रीव को देखेंगे ॥ ७ ॥ यदि आप में से कोई वानर सागर पार होने के समर्थ है, तो वह जल्दी हमें पवित्र अभय दक्षिणा देवे ॥ ८ ॥ अङ्गद के वचन को सुन कर कोई कुछ नहीं बोला, वह सारी वानरसेना थम सी गई ॥ ९ ॥ तब जाम्बवान् यह दशा देख कर हनुमान् से बोला, हे वानरलोक के वीर, सर्व शास्त्र के जानने वालों में श्रेष्ठ, हनुमान्, आप एकान्त में चुपचाप हैं, बोलते नहीं ॥ १०, ११ ॥ हे वानरश्रेष्ठ आप का बल बुद्धि तेज और दिलेरी सब लोगों में बढ़ कर है, तुम अपने आपको क्यों तय्यार नहीं करते हो ॥ १२ ॥ हमारी शक्ति अब घट गई है, आप हम में इस समय फुर्ती और पराक्रम से सम्पन्न मानों दूसरे सुग्रीव हैं ॥ १३ ॥ सारी वानर सेना तेरी शक्ति देखना चाहती है, उठ हे वानरश्रेष्ठ ! महासागर के पार हो ॥ १४ ॥

सर्ग ३४ (व० ६७) हनुमान् का स्वीकार करना

मू—तं दृष्ट्वा जृम्भमाणं ते क्रमितुं शतयोजनम्। वेगेनापूर्यमाणं च सहसा वानरोत्तमम् ॥ १ ॥ सहसा शोकमुत्सृज्य प्रहर्षेण समन्विताः। विनेदुस्तुष्टुवुश्चापि हनूमन्तं महाबलम् ॥ २ ॥ तस्य संस्तूयमानस्य वृद्धैर्वानरपुङ्गवैः। तेजसापूर्यमाणस्य रूपमासीदनुत्तमम् ॥ ३ ॥ हरीणामुत्थितो मध्यात्संप्रहृष्टतनूरुहः। अभिवाद्य हरीन्वृद्धान्हनूमानिदमब्रवीत् ॥४॥ + बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा। अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवङ्गमाः ॥ ५ ॥ तच्चास्य वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम्। उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान्प्लवगेश्वरः ॥ ६ ॥ वीर केसरिणः पुत्र वेगवन्मारुतात्मज। ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात प्रणाशितः ॥ ७ ॥ तव कल्याणरुचयः कपिमुख्याः समागताः। मङ्गलान्यर्थसिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः ॥ ८ ॥ ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धमतेन च। गुरूणां च प्रसादेन संप्लव त्वं महार्णवम् ॥ ९ ॥ स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमनं तव। त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवनानि वनौकसाम्॥ १० ॥ स वेगवान्वेगसमाहितात्मा हरिप्रवीरः परवीरहन्ता। मनः समाधाय महानुभावो जगाम लङ्कां मनसा मनस्वी ॥ ११ ॥

टीका-तब वह वानर सौ योजन पार होने के लिये उत्साहित हुए, और तत्क्षण वेग से पूर्ण हुए उस वानरोत्तम को देखकर ॥ १ ॥ तत्क्षण शोक को छोड़ कर प्रहर्ष से युक्त हुए वह गर्जने लगे और महाबली हनुमान की स्तुति करते भए ॥ २ ॥ वृद्ध वानरश्रेष्ठों से स्तुति किये हुए और तेज से पूर्ण हुए हनुमान् का रूप सर्वोत्तम होगया ॥ ३ ॥ वानरों के मध्य से उठा, उसके रोंगटे खड़े होगए और वृद्ध वानरों को अभिवादन करके हनुमान् यह

बोला ॥ ४ ॥ मैं बुद्धि से निश्चय जानता हूं और मेरे मन की चेष्टा वैसी है, कि मैं वैदेही को अवश्य देखूंगा, हे वानरो प्रसन्न हो वो ॥ ५ ॥ ज्ञातियों के शोक नाशक उसके इस वचन को सुन कर परम प्रसन्न हुआ वानरेश्वर जाम्बवान् बोला ॥ ६ ॥ हे वीर हे केसरी के (क्षेत्रज) पुत्र हे वेग वाले हे मारुत के (औरस) पुत्र हे तात तूने ज्ञातियों का बड़ा शोक दूर किया है ॥ ७ ॥ तेरे साथ आए वानरमुख्य तेरा कल्याण चाहते हुए तेरी अर्थ-सिद्धि के लिये एकाग्र हो मङ्गल कार्य करेंगे ॥ ८ ॥ ऋषियों के प्रसाद से और वानर वृद्धों के आशीर्वाद से और गुरुओं के प्रसाद से तू महासागर से पार हो ॥ ९ ॥ तेरे आने तक (तेरे लिये वर मांगते हुए) हम एक पाद से (तप में) खड़े रहेंगे, तेरे अधीन सारे वानरों के जीवन हैं ॥ १० ॥ तब वह वेगवाला, वेग से एकाग्र मन वाला, शत्रुवीरों का मारने वाला वानरवीर उदार मन वाला महानुभाव मन को एकाग्र करके मन से लंका में पहुंचा (लंका का ध्यान किया) ॥ ११ ॥

॥ इति किष्किन्धाकाण्डं समाप्तम् ॥



अथ सुन्दरकाण्ड प्रारम्भः



सर्ग १ (व० १) हनुमान् का समुद्र पार होना

लमू—दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन्कर्म वानरः । समुदग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवाबभौ ॥ १ ॥ प्लवगप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः । ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥ २ ॥ विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि । पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी ॥ ३ ॥ मेरुमन्दरसंकाशानुद्गतान्सुमहार्णवे । अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान्गणयन्निव ॥ ४ ॥ तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा । वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ५ ॥ येनासौ याति बलवान्वेगेन कपिकुञ्जरः । तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः ॥ ६ ॥ प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन् । योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श सः ॥ ७ ॥ सागरं सागरानूपान्सागरानूपजान्द्रुमान् । सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयत् ॥ ८ ॥ स चारुनानाविधरूपधारी परं समासाद्य समुद्रतीरम् । निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा ददर्श लङ्काममरावतीमिव ॥ ९ ॥

टीका—बड़ा कठिन, तुलना से रहित कर्म करना चाहता हुआ, ऊंचे सिर और ग्रीवावाला बानर सांड की तरह भासने लगा ॥ १ ॥ डोंगी से तैरने में निश्चयवाला, डोंगी * से तैरने वालों में श्रेष्ठों से देखा

---

* इस सारे सर्ग से अधिकतर हनुमान् का समुद्र को फान्द कर पार होना पाया जाता है, जोकि असम्भावित है । किन्तु डोंगीसे तैर कर पार होने के इशारे भी स्पष्ट हैं । प्लव=छोटी नौका, डोंगी । यह सम्भव है कि हनुमान् वहां से वृक्षों को काटकर उनकी डोंगी

हुआ वह पर्वों में समुद्र की तरह राम के अर्थवृद्धि को प्राप्त हुआ ॥२॥ उस खारी जल में बड़े २ लहरों के समूहों को चीरता हुआ वह बानर श्रेष्ठ मानों द्यौ पृथिवी पर (जल के फूल) बिखेरता हुआ खेवा करने लगा ॥ ३ ॥ मेरु मन्दर के बराबर महासागर में उठती हुई लहरों को बड़े वेगवाला, मानों गिनता हुआ गया ॥ ४ ॥ (बल से जल उछलने पर) मछलियें, मगर, मच्छ, इस तरह नङ्गे हुए दीखते हैं जैसे वस्त्र के खींच लेने से शरीर धारियों के शरीर ॥ ५ ॥ बलवान् वानर श्रेष्ठ वेग से जिस मार्ग से जारहा था, उस मार्ग से समुद्र सहसा द्रोण की तरह होता जाता था (पानी में उसकी डोंगी के आकार बनते जाते थे) ॥६॥ बहुत बड़ा भाग पार करके सब ओर देखता हुआ वह सौ योजन की समाप्ति पर बन समूह को देखता भया ॥ ७ ॥ सागर, सागर के किनारे के देश, और उस देश में होने वाले वृक्ष और सागर की पत्नियें (नदियों) के मुहाने देखता भया ॥ ८ ॥ सुन्दर नानाविधरूप धारी वानर समुद्र के परले तीर पर पहुंचकर महासागर के किनारे पर उतरकर अमरावती के तुल्य लङ्का को देखता भया ॥ ९ ॥

सर्ग २ (व० २) हनुमान् का लङ्का प्रवेश के लिये विचार

मूल—योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः । अनिःश्वसन्कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥ १ ॥ स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः । जगाम वेगवाँल्लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥ २ ॥ शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च । मधुमन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च ॥ ३ ॥ समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लङ्कां रावण-

---

बनाकर उसके द्वारा लंका पहुंचा हो, और यह इसलिए किया हो कि उसे बेमालूम जाना था। अतएव यहां प्लवग दुहरे अर्थ में कहा है जाम्बवान् आदि बानर डोंगी से समुद्र में तैरने वाले थे।

पालिताम् । परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम् ॥ ४ ॥ सीतापहरणात्तेन रावणेन सुरक्षिताम् । समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्षसैरुग्रधन्विभिः ॥ ५ ॥ काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम् । अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजशोभिताम् ॥ ६ ॥ गिरिमूर्ध्नि स्थितां लङ्कां पाण्डुरैर्भवनैः शुभैः । ददर्श स कपिः श्रीमान्पुरीमाकाशगामिव ॥ ७ ॥ ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः । गिरेः शृङ्गे स्थितस्तस्मिन्रामस्याभ्युदयं ततः ॥ ८ ॥ अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी । प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमान्वितैः ॥ ९ ॥ महौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः । वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥ १० ॥ केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम् । अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥ ११ ॥ न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः । एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ॥ १२ ॥ मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः । भवेद्व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥ १३ ॥ नहि शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः । अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ॥ १४ ॥ वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम । नह्यत्राविदितं किञ्चिद्रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ १५ ॥ तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः । लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये ॥ १६ ॥ इति निश्चित्य हनूमान्सूर्यस्यास्तमयं कपिः । आचकांक्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥ १७ ॥

टीका—उत्तम पराक्रम वाला वह श्रीमान् सौ योजन पार होकर भी न हांपा है, न खेद को प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ वह वीर्यवालों में श्रेष्ठ और फांदने वालों में उत्तम महा सागर को लंघ कर वेग से लंका को गया ॥ २ ॥ नीले हरे घास के, उत्तम गन्ध वाले, मधु वाले और उत्तम वृक्षों वाले बनों के मध्य में से गया ॥ ३ ॥ उस लक्ष्मी

वान् ने वहां पहुंच कर रावण से पालित लंका को देखा, जो पत्तों और उत्पलों वाली खाइयों से अलंकृत है ॥ ४ ॥ सीता को हर लाने के हेतु अब जो उस रावण से विशेषतः रक्षा की गई है, प्रचण्ड धनुषों वाले राक्षस जिसके चारों ओर घूम रहे हैं ॥ ५ ॥ ऐसी रमणीय महापुरी जिस के इर्द गिर्द सुनहरी कोट है, सैंकड़ों ऊंची २ अटारियों से युक्त है और झंडियों और झंडों से सजी हुई है ॥ ६ ॥ श्वेत सुन्दर भवनों से पर्वत की चोटी पर स्थित लंका को श्रीमान् वानर ने आकाशगामी पुरी की तरह देखा ॥ ७ ॥ तब वह वानरश्रेष्ठ थोड़ी देर पर्वत की चोटी पर ठहरा हुआ राम की कार्यसिद्धि को सोचने लगा ॥ ८ ॥ कि बल वाले क्रूर राक्षसों से रक्षा की हुई राक्षसों की इस पुरी में मैं इस रूप से प्रवेश नहीं कर सक्ता हूं ॥ ९ ॥ जानकी को ढूंढते हुए मैंने इन सारे महा पराक्रमी महावीर्य बलवान् राक्षसों को ठगना है॥ १० ॥ क्या उपाय हो, जिस से कि राक्षसेन्द्र दुरात्मा रावण से न देखा हुआ मैं सीता को देख सकूं॥ ११ ॥ कैसे विदितात्मा राम का कार्य नष्ट न हो, अकेला कैसे मैं अकेली जनकसुता को एकान्त में देखूं ॥ १२ ॥ राक्षसों ने यदि मुझे जान लिया, तो रावण का बध चाहते हुए विदितात्मा राम का कार्य व्यर्थ होजाएगा ॥ १३ ॥ और न कहीं राक्षसों से बे मालूम ठहरा जासक्ता है, चाहे राक्षसों के भेष में ही ठहरूं, क्या फिर किसी और भेष में ॥ १४ ॥ यहां वायु भी बे मालूम नहीं जा सक्ता है, यह मेरा निश्चय है, यहां भयंकर कर्मोंवाले राक्षसों को कुछ बे मालूम नहीं रह सक्ता ॥ १५ ॥ सो मैं रात के समय अपने ही भेष में एक साधारण सा बन कर राघव की कार्य सिद्धि के लिये लंका में प्रवेश करूंगा ॥ १६ ॥ यह निश्चय करके वीर

वानर हनुमान् सीता के देखने की उत्कण्ठा में सूर्यास्त की प्रतीक्षा करता भया ॥ १७ ॥

सर्ग ३ (व० ४-९) सीता को रावण के अन्तःपुर में ढूंढना

मूल—अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे । निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ॥ १ ॥ प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितंकरः। चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि ॥ २ ॥ प्रजज्वाल तदा लङ्का रक्षोगणगृहैः शुभैः । सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वास्तिकसंस्थितैः ॥ ३ ॥ वर्धमानगृहैश्चापि सर्वतः सुविभूषितैः । राघवार्थं चरञ्श्रीमान्ददर्श च ननन्द च ॥ ४ ॥ भवनाद्भवनं गच्छन्ददर्श कपिकुञ्जरः । विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः ॥ ५ ॥ +शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान्रक्षोगृहेषु वै । स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः ॥ ६ ॥ गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च सर्वशः । वीक्षमाणोऽप्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥ ७ ॥ ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान्मारुतात्मजः । भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसंकुलम् ॥ ८ ॥ मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् । सर्वतः परिचक्राम हनूमानरिसूदनः ॥ ९ ॥ ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शिवाम् । रावणस्य महाकान्तां कान्तामिव वरस्त्रियम् ॥ १० ॥ मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम् । स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम् ॥ ११ ॥ समैर्ऋजुभिरत्युच्चैः समन्तात्सुविभूषितैः । स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं संप्रस्थितामिव ॥ १२ ॥ पराध्यास्तरणोपेतां रक्षोधिपनिषेविताम् । मनसो मोदजननीं वर्णस्यापि प्रसाधिनीम् ॥ १३ ॥ दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च । अर्चिर्भिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यभ्यमन्यत ॥ १४ ॥ तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम् । अवेक्षमाणो हनुमान्ददर्श शयनासनम् ॥ १५ ॥ पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महा-

कपिः । भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ॥ १६ ॥ आसाद्य परमोद्विग्नः सोपासर्पत्सुभीतवत् । पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षः पतेर्गृहे ॥ १७ ॥ शशिप्रकाशवदना वरकुण्डलभूषणाः । अम्लान माल्याभरणा ददर्श हरियूथपः ॥ १८ ॥ तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयन शुभे । ददर्श रूपसंपन्नामथ तां स कपिः स्त्रियम् ॥ १९ ॥ विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम् । कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम् ॥ २० ॥ स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः । तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसंपदा ॥ २१ ॥

टीका—वह महावीर्य महान् हृदय वाला वानरश्रेष्ठ रात के समय अद्वार से कोट को फांद कर लंका में प्रविष्ट हुआ ॥ १ ॥ वानर-राज के उस हितैषी ने लंका नगरी में प्रवेश करके मानों अपना बायां पाओं शत्रु के सिर पर रख दिया ॥ २ ॥ उस समय सुन्दर सब ओर से सजे हुए श्वेत मेघ के तुल्य राक्षसों के जो पद्माकार, स्वस्तिकाकार, और वर्धमान घर हैं, उन से लंका जगमज कर रही थी, राघव के अर्थ वह श्रीमान् घूमता हुआ उसे देखता भया और आनन्दित होता भया ॥ ३, ४ ॥ एक भवन से दूसरे भवन को जाते हुए उस वानरश्रेष्ठ ने वहां २ विविध आकृति और रूपों वाले भवन देखे ॥ ५ ॥ वहां राक्षसों के घरों में उस ने जप करते हुओं के मन्त्र सुने और स्वाध्याय में रत राक्षसों को देखा ॥ ६ ॥ राक्षसों के घर से घर और बगीचों को देखता हुआ बेधड़क वह महलों के पास घूमा ॥ ७ ॥ तब पवनपुत्र हनुमान् ने वह भवनश्रेष्ठ देखा, जो राक्षसपति का भवन है, और बहुत महलों से भरपूर है ॥ ८ ॥ विशाल नेत्रोंवाली वैदेही सीता को ढूंढता हुआ शत्रुओं के मारनेवाला, हनुमान् उसके चारों ओर घूमा ॥ ९ ॥

तब वह उस सुन्दर बड़ी शाला की ओर प्रस्थित हुआ, जो उत्तम स्त्री की तरह रावण की बड़ी प्यारी थी ॥ १० ॥ जिसकी सीढ़ियों में मणियां जड़ी हुई हैं, जो सोने के झरोकों से भूषित हैं, सङ्गमर्मर का फर्श है, और बीच २ में दान्त का काम किया हुआ है ॥ ११ ॥ जो सम, सीधे, बड़े ऊंचे पूरे २ सजे हुए स्तम्भों से मानों अति ऊंचे पङ्खों से द्यौ की ओर प्रस्थित हुई है ॥ १२ ॥ सर्वोत्तम गलीचा जिसमें बिछा हुआ है, राक्षसों के अधिपति से सेवित है, मन को प्रसन्न करने वाली और शरीर की कान्ति को बढ़ाने वाली है ॥ १३ ॥ दीपकों के प्रकाश से, रावण के तेज से, और भूषणों की चमक से, मानों जलती हुई प्रतीत होती है ॥ १४ ॥ उस शाला में देखते हुए हनुमान् ने रत्नों से भूषित एक दिव्य बिल्लोरी शयनासन (बैठने सोने का पलङ्ग) देखा ॥ १५ ॥ और शराब पीकर बन्द हुए, और चमकते हुए पलङ्ग पर लेटे हुए राक्षसाधिपति को उस महावानर ने देखा ॥ १६ ॥ उसके पास आकर बड़ा उद्विग्न हुआ अत्यन्त डरे हुए की तरह पीछे हट गया, और प्यारी स्त्रियों वाले उस राक्षसपति के घर में उस वानर यूथपति ने चन्द्र तुल्य मुखवाली, सुन्दर कुण्डल पहने हुई, ताज़े पुष्पों की मालाएं और भूषणोंवाली पत्नियों को देखा ॥ १७, १८ ॥ उन में से एकान्त स्थित एक शुभ शय्या के ऊपर लेटी हुई रूपवती उस ने एक स्त्री देखी ॥ १९ ॥ जो अपनी शोभा से मानों उस उत्तम भवन को शोभायमान कर रही थी, वह मन्दोदरी थी, जोकि सुन्दर रूपवती वहां लेटी हुई थी ॥२०॥ महाबाहु पवनसुत ने उस भूषित स्त्री को देखकर उसके रूप यौवन की सम्पदा से ख्याल किया, कि कदाचित् यह सीता हो ॥ २१ ॥

सर्ग ४ (व० १०-११) रावण के अन्तःपुर में सीता का न पाना

मूल—अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा । जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः ॥ १ ॥ + न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्ह भामिनी । न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम् ॥ २ ॥ अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः । एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः ॥ ३ ॥ ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम् ॥४॥ + निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः । जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः ॥ ५ ॥ + परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् । इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥६॥ +नाहि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी । अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ॥ ७ ॥+तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः । निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ॥८॥ + कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः । न तु मे मनसा किंचिद्वैकृत्यमुपपद्यते ॥ ९ ॥+मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने । शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥१०॥ नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् । स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे ॥ ११ ॥+ तादिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया । रावणान्तः पुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी ॥ १२ ॥ तामपश्यन्कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः । अपक्रम्य तदा वीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ १३ ॥

टीका—पर उसी समय उन ख्याल को हटाकर, स्थित हुआ महा बानर सीता के विषय दूसरा विचार करता भया ॥ १ ॥कि राम से वियुक्त हुई वह सुन्दरी न सो सक्ती है, न भोग सक्ती है, न अलङ्कार कर सक्ती है, न पान सेवन कर सक्ती है ॥ २ ॥ निः-सन्देह यह कोई और है, ऐसा निश्चय करके फिर वहां विचरने लगा, इसप्रकार रावण का सारा अन्तःपुर (रनिवास) उस महातेजस्वी

वानर ने पूरी तरह देखा, पर जानकी को नहीं देखा ॥ ३, ४ ॥ उन स्त्रियों को देखते हुए, धर्म भय से भीत हुए, उस महावानर को बड़ी शङ्का उत्पन्न हुई॥ ५ ॥ सोई हुई कुलीन परस्त्री को देखना, यह मेरा अत्यन्त धर्मलोप करेगा ॥ ६ ॥ मेरी दृष्टि आजतक (ऐसी अवस्था में) परस्त्रियों के ऊपर नहीं पड़ी थी, और यहां मैंने परस्त्रियों को देखा है ॥ ७ ॥ फिर उस एकाग्रचित्त वाले को ठीक निश्चय पर पहुंचानेवाला, एक निश्चित दूसरा विचार उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ निःसन्देह मैंने विश्वस्त लेटी हुई रावण की सब स्त्रियें देखी हैं, पर मेरे मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ है ॥ ९ ॥ शुभ अशुभ अवस्थाओं में मन ही सारे इन्द्रियों की प्रवृत्ति में हेतु है, और वह मेरा ठीक टिका हुआ है (बिलकुल नहीं डोला है) ॥ १० ॥ सीता और कहीं ढूंढी जाहीं नहीं सक्ती है, ढूंढने में स्त्रियें सदा स्त्रियों में ही देखी जाती हैं ॥ ११ ॥ सो मैंने शुद्ध मन से रावण का सारा अन्तःपुर ढूंढ लिया, पर जानकी नहीं दीखती ॥ १२ ॥ जब उस वीर वानर ने वहां और ही सुन्दर स्त्रियों को देखा, किन्तु सीता को न देखा, तब वह वहां से निकलकर चलने को तय्यार हुआ ॥ १३ ॥

सर्ग ५ (व० १२) सीता के न मिलने से हनुमान् की उदासी

मूल—स चिन्तयामास ततो महाकपिः प्रियामपश्यन्रघुनन्दनस्य ताम् । ध्रुवं न सीता ध्रियते यथा न मे विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली ॥ १ ॥ सा राक्षसानां प्रवरेण बाला स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती । अनेन नूनं प्रतिदुष्टकर्मणा हता भवेदार्यपथे परे स्थिता ॥ २ ॥ दृष्टमन्तः पुरं सर्वं दृष्टा राक्षसयोषितः । न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ॥ ३ ॥ किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति संगताः । गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद्वदस्व नः ॥ ४ ॥

अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजम् । किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः ॥ ५ ॥ +अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् । भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः ॥ ६ ॥ + अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः । करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ॥ ७ ॥ इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे । सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः ॥ ८ ॥ चतुरंगुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते । रावणान्तःपुरे तस्मिन्यं कपिर्न जगाम सः ॥ ९ ॥ रूपेणाप्रतिमो लोके परा विद्याधरस्त्रियः । दृष्टा हनुमता तत्र न तु राघवनन्दिनी ॥ १० ॥ प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धृताः । दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनन्दिनी ॥ ११ ॥ साऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः । विषसाद महाबाहुर्हनूमान्मारुतात्मजः ॥ १२ ॥ उद्योगं वानरेन्द्राणां प्लवनं सागरस्य च । व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागतः ॥ १३ ॥

टीका—तब वह महावानर राम की इस प्यारी को न देखता हुआ सोचने लगा, निःसन्देह मैथिली सीता जीती नहीं है, जिससे मुझे ढूंढते हुए कहीं नहीं दीखती है ॥ १ ॥ पवित्र आर्यपथ में स्थित हो अपने शील रक्षण में तत्परा हुई उस बाला को इस दुष्ट कर्मा बली राक्षस ने मार डाला होगा ॥ २ ॥ मैंने सारा अन्तःपुर देख लिया, रावण की स्त्रियें देखलीं, पतिव्रता सीता नहीं देखी, सारा परिश्रम व्यर्थ गया ॥ ३ ॥ जब मैं जाऊंगा, तो सारे वानर मिलकर मुझे क्या कहेंगे, हे वीर वहां जाकर तूने क्या किया सो कहो॥ ४ ॥ और मैं उस जनकसुता को न देखकर क्या कहूंगा, और वृद्ध जाम्बवान् और वह अङ्गद मुझे क्या कहेगा ॥ ५ ॥ (क्षणमात्र उत्साहहीन हो फिर उत्साह का अवलम्बन करके कहता है)

उत्साह न हारना श्री का मूल है, उत्साह न हारना परम सुख है, सो फिर वहां ढूंढूंगा, जहां ढूंढ नहीं की है ॥ ६ ॥ उत्साह न हारना ही सारे कार्यों में प्रवृत्ति कराता है, और मनुष्य के उन कार्य को सफल बनाता है, जो कि वह करता है ॥७॥ यह सोचकर वह फिर ढूंढने लगा, और वह महावानर हरएक अवकाश में फिरा ॥ ८ ॥ रावण के अन्तःपुर में चार अंगुल का भी अवकाश ऐसा न बचा, जिसमें वह वानर न पहुंचा हो ॥९॥ लोक में रूप से अतुल, विद्याधरों की स्त्रियें हनुमान् ने देखीं, पर वहां राघव की प्यारी न देखी ॥ १० ॥ राक्षसराजने छीनकर बल से हरी हुई नागकन्याएं हनुमान् ने देखीं, पर वहां भी वह जनकनन्दिनी न देखी॥ ११ ॥ तब वह महाबाहु पवनसुत उसको न देखता हुआ, और अन्य सुन्दर स्त्रियों को देखता हुआ निराश होगया ॥ १२ ॥ वानरपतियों का उद्योग और समुद्र का लङ्घना सब व्यर्थ देखकर पवनसुत फिर चिन्ता को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥

सर्ग ६ (व० १३) हनुमान् के अनेक विध विचार

मूल—सम्परिक्रम्य हनुमान्रावणस्य निवेशनात् । अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः ॥ १ ॥ भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम् । नहि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ २ ॥ किं तु सीताथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा । उपतिष्ठत विवशा रावणेन हृता बलात् ॥ ३ ॥+ तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया ॥ ४ ॥ अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने । भृशं लालप्यते बाला पञ्जरस्थेव सारिका ॥ ५ ॥ जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा । कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् ॥ ६ ॥ विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा । रामस्य प्रिय

भार्यस्य न निवेदायितुं क्षमम् ॥ ७ ॥ निवेद्यमाने दोषः स्याद्दोषः स्यादनिवेदने । कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ॥ ८ ॥ यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः । गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति ॥ ९ ॥ ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति प्रवेशश्चैव लङ्कायां राक्षसानां च दर्शनम् ॥ १० ॥ गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुषं वचः । न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥ ११ ॥ कृतज्ञः सत्यसंधश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः । रामं तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥१२॥ सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः । नाहि शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ॥ १३ ॥ मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ । आशया तौ धरिष्येते वानराश्च तरस्विनः ॥ १४ ॥ इति चिन्तासमापन्नः सीतामनधिगम्य ताम् । ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः॥ १५ ॥ यावत्सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम् । तावदेतां पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः ॥ १६ ॥ अशोकवनिका चापि महतीयं महाद्रुमा । इमामधिगमिष्यामि नहीयं विचिता मया ॥१७॥

टीका—रावण के सारे घरों में फिर कर, वहां जानकी को न देखकर वानर हनुमान् बोला ॥ १ ॥ राम का प्रिय करते हुए मैंने लङ्का बहुत ढूंढी है, पर सर्वाङ्गसुन्दरी वैदेही सीता को नहीं देखता हूं ॥ २ ॥ क्या विदेहों की कन्या जनकसुता मैथिली बल से हरी हुई बेबस हुई भी रावण को सेवन कर सक्ती है ? (नहीं, कभी नहीं) ॥ ३ ॥ सो मैं मानता हूं कि उस विशालनेत्रा आर्या ने अपना जीवन त्याग दिया है ॥ ४ ॥ अथवा रावण के महल में कहीं गुप्त डाली हुई वह बाला पिञ्जरे में स्थित मैना की तरह अतीव विलप रही होगी ॥ ५ ॥ जनक के कुल में उत्पन्न हुई कमल तुल्य नेत्रोंवाली सुमध्यमा राम की पत्नी कैसे रावण के वश होसक्ती है ॥ ६ ॥

जनकसुता नहीं मिली, वा नष्ट होगई है, वा मर गई है. यह प्यारी स्त्रीवाले राम को निवेदन नहीं किया जासक्ता ॥ ७ ॥ ऐसा कहने में भी दोष होगा (राम प्राण त्याग देंगे) न कहने में भी दोष होगा (न कहना स्वामी को धोखा देना है) अब क्या करना चाहिये, मुझे विषम प्रतीत होता है ॥ ८ ॥ यदि मैं सीता को न देखकर यहां से वानरेन्द्र की पुरी को चला जाऊं, तो मेरा पुरुषार्थ क्या होगा ॥ ९ ॥ मेरा यह समुद्र का लंघना, लङ्का में प्रवेश और राक्षसों का दर्शन सब व्यर्थ होजाएगा ॥१०॥ जाकर राम को यदि कठोर वचन कहूंगा, कि सीता मैंने नहीं देखी, तब वह प्राण त्याग देंगे ॥ ११ ॥ राम को इस अवस्था में देखकर, किये के जाननेवाला, सच्ची प्रतिज्ञावाला, वानरों का अधिपति सुग्रीव भी प्राण त्याग देगा ॥ १२ ॥ सो मैं यहां से किष्किन्धा नगरी को नहीं जाऊंगा. मैथिली के बिना मैं सुग्रीव को नहीं देख सक्ता हूं ॥ १३ ॥ जब तक मैं नहीं जाता, यहां स्थित हूं, तबतक वह दोनों महारथी धर्मात्मा आशा से जीते हैं, और बलवान् वानर भी ॥ १४ ॥ इसप्रकार चिन्ता में डूबा हुआ उस सीता को न पाकर चिन्ता शोक से युक्त अन्तःकरण वाला वानर सोचने लगा ॥ १५ ॥ कि जब तक यशस्विनी रामपत्नी सीता को नहीं देख पाता हूं, तब तक इस लंका को फिर२ ढूंढता हूं ॥१६॥ और यह जो बड़े वृक्षों वाली अशोकवनिका है इस को भी ढूंढूंगा, यह मैंने अभी तक नहीं ढूंढी है ॥ १७ ॥

सर्ग ७ (व० १४) अशोक वनिका में सीता को ढूंढना

मूल—स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम् । अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः ॥ १ ॥ स प्रविश्य विचित्रां तां पादपैः सर्वतो वृताम् । उदितादित्यसंकाशां ददर्श हनुमान्बली ॥

२ ॥ वृतैर्नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः । कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥ ३ ॥ प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम् । मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥ ४ ॥ वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः । रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता ॥ ५ ॥ स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः । तथा काञ्चनभूमीश्च विचरन्ददृशे कपिः ॥ ६ ॥ वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा । महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥ ७ ॥ दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्भिश्च समन्ततः । अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिरुपसंस्कृताः ॥ ८ ॥ ततोऽम्बुधरसंकाशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् । विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् ॥ ९ ॥ ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपतितां कपिः । जलेन पतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् ॥ १० ॥ काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श स महाकपिः । वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ॥ ११ ॥ तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम् । इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् ॥१२॥+संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी । नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ॥ १३ ॥ + तस्याश्चाप्यनुरूपेय मशोकवनिका शुभा । शुभा या पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य संमता ॥१४॥+यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना । आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥ १५ ॥ एवं तु गत्वा हनुमान्महात्मा प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम् । अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं सुपुष्पिते पर्णघने निलीनः ॥ १६ ॥

टीका—मुहूर्तभर यह सोचकर और मन से निश्चय करके वह महा तेजस्वी उस मन्दिर के कोट को फांद गया ॥ १ ॥ विचित्र वृक्षों से सब ओर से ढकी हुई (फूलों से) उदय हुए सूर्य के तुल्य उस (वनिका) को हनुमान् बली देखता भया ॥ २ ॥ पुष्प फलों से

युक्त नानाविध वृक्षों से और मस्त कोइलों और भौरों से सेवित॥३॥ सर्वदा जिसमें सब मनुष्य प्रसन्न हैं, जो मत्त, मृग पक्षियों से भरे हुए मस्त भौरों से गूंजती हुई नाना द्विजगणों से युक्त है॥४॥ वृक्षों से गिरे हुए नानाविध पुष्पों से भरी हुई वहां की भूमि सजी हुई स्त्री की तरह शोभा पाती थी ॥ ५ ॥ वह वानर वहां विचरता हुआ मनोरम मणिभूमियें, चान्दी की सी भूमियें, और सुनहरी भूमियें देखता भया ॥ ६ ॥ और वहां सुन्दर जल से भरी हुई विविध आकृतियोंवाली महार्ह सीढ़ियों से युक्त बावड़ियें ॥ ७ ॥ लम्बी २, वृक्षों से युक्त, अमृत तुल्य जलवाली, सुन्दर नहरों से सजी हुई ॥ ८ ॥ तब उस वानर ने सारे जगत् में सुहावना एक पर्वत देखा, जो चोटियों से सब ओर से घिरा हुआ, विचित्र-कूट नामी था ॥ ९ ॥ उस पर्वत से निकलती हुई वानर ने एक नदी देखी, जो जल में लगती हुई शाखाओं वाले वृक्षों से शोभित थी ॥ १० ॥ उस महावानर ने एक सुनहरी रङ्ग की शीशम देखी, जो चारों ओर सुनहरी वेदियों से युक्त थी॥ ११॥ वह महावानर पत्तों से पूर्ण उस शीशम पर चढ़ गया, कि यहां से मैं राम के देखने की लालसा वाली वैदेही को देखूंगा ॥ १२ ॥ सन्ध्याकाल में मन वाली, वह जानकी निःसन्देह इस शुभ जलवाली नदी पर आएगी ॥ १३ ॥ यह शुभ अशोकवनिका उसके योग्य है, जोकि राज राजेश्वर राम की सम्मत शुभ पत्नी है ॥ १४ ॥ यदि वह चन्द्रमुखी देवी जीती है, तो इस शीत जलवाली नदी पर अवश्य आएगी ॥ १५ ॥ इसप्रकार जाकर हनुमान् महात्मा मानवेन्द्र की पत्नी को ढूंढता हुआ फूले हुए पत्तों के समूह में छिपा हुआ दृष्टि डाल कर सब कुछ देखता भया ॥ १६ ॥

सर्ग ८ (व० १५) हनुमान् का सीता को देखना

मूल—सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः । नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणैर्द्विजैः ॥ १ ॥ अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुङ्गवः। स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम् ॥ २ ॥ ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् । उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ॥ ३ ॥+ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् । पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ॥ ४ ॥ पीड़ितां दुःखसंतप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम् । अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च ॥ ५ ॥ प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् । स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव ॥६॥ नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया । नीलया नीलपादाये वनराज्या महीमिव ॥ ७ ॥ कुर्वन्ती प्रभया देवीं सर्वा वितिमिरा दिशः । भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम् ॥ ८ ॥ विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव । अभूतेनापवादेन कीर्त्तिं निपतितामिव ॥ ९ ॥ तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् । तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन् ॥ १० ॥+ इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते । कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥ ११ ॥ स्त्रीप्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः । पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥ १२ ॥+ अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् । तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥ १३ ॥ एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः।जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥ १४ ॥

टीका—उस वानर श्रेष्ठ ने उस अशोक वनिका के अन्दर निकट ही एक बगीचा सब ऋतुओं के फूलों वाले और मीठी गन्धवाले वृक्षों से युक्त, नाना ध्वनियों वाले, मृग और पक्षियों से रमणीय

चैत्य और मन्दिरों वाला बड़ा बगीचा देखा ॥ १, २ ॥ वहां मलीन वस्त्रों से ढकी हुई, राक्षसियों से घिरी हुई, उपवासों से दुर्बल हुई, दीन बार २ आहें भरती हुई, शुक्लपक्ष के आदि में निर्मल चन्द्ररेखा की तरह एक स्त्री देखी जो पीले एक तङ्ग से उत्तम वस्त्र से ढकी हुई थी ॥ ३, ४ ॥ पीड़ित, दुःख से संतप्त, दुर्बल, बेचारी, आंसुओं से पूर्ण मुखवाली, दीन, न खाने से दुर्बल ॥ ५ ॥ प्रिय-जन को न देखती हुई राक्षसीगण को देखती हुई वह अपने समूह से हीन और कुत्तियों से घिरी हुई मृगी की तरह थी ॥ ६ ॥ काले नाग जैसी, जघन तक पहुंची हुई एक बेणी से मेघ के दूर होजाने पर नील बनराजि से भूमि की तरह स्थित ॥ ७ ॥ अपनी प्रभा से सारी दिशाओं को अन्धकार हीन बनाती हुई, सुकुमारी, नियमोंवाली, तपस्विनी, की तरह भूमिपर लेटी हुई ॥ ८ ॥ नष्ट हुई श्रद्धा की तरह, दूर हुई आशा की तरह, और झूठे अपवाद से ढिगी कीर्त्ति की तरह ॥ ९ ॥ उस विशालनेत्रा अनन्दित राजपुत्री को देखकर कारणों से निश्चय करते हुए उसने ख्याल किया कि यह सीता है ॥ १० ॥ यह है जिसके लिए राम करुणा, दया, शोक, और काम इन चार से तप रहा है ॥ ११ ॥ स्त्री खोई गई इसलिए करुणा से, मेरे सहारे पर थी इसलिए दया से, पत्नी हरी गई इसलिए शोक से और प्यारी थी, इसलिये काम से (संतप्त होता है) ॥ १२ ॥ इस देवी का मन उसमें और उसका इसमें स्थित है, इस हेतु से यह और वह धर्मात्मा मुहूर्त भी जीता है ॥ १३ ॥ इसप्रकार सीता को देखकर प्रसन्न हुआ पवनपुत्र मन से राम को प्राप्त हुआ और उस प्रभु की प्रशंसा करता भया ॥ ११ ॥

सर्ग ९ (व० १६) हनुमान् का सीता को राक्षसियों से घिरा हुआ देखना

मूल—तां दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककान्तामिव श्रियम् । जगाम मनसा रामं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम् । अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवांल्लोकविश्रुतः॥२॥सागरश्च मयाक्रान्तः श्रीमान्नदनदीपतिः । अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता॥ ३ ॥ यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् । अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः ॥ ४ ॥ राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा । त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात्कलाम् ॥ ५ ॥ इयं स धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मनः । सुता मैथिलराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता ॥ ६ ॥ धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः । इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता ॥ ७ ॥ सर्वान्भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता । अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् ॥ ८ ॥ संतुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा । या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥ ९ ॥ सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी। सहते यातनामेतामनर्थानाम भागिनी ॥ १० ॥ इमां तु शीलसम्पन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः । रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥ ११ ॥ अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति । राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥ १२ ॥ काम भोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन चाधारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी ॥ १३ ॥ नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान्पुष्पफलद्रुमान् । एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥१४॥ भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि । एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते ॥ १५ ॥ दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः । धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति ॥ १६ ॥ इमामसि-

तकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम् । सुखार्हां दुःखिता ज्ञात्वा ममापि व्यथिते मनः ॥ १७ ॥ इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य सीतेयमित्येव जातबुद्धिः । संश्रित्य तस्मिन्निषसाद वृक्षे बली हरीणामृषभस्तरस्वी ॥ १८ ॥

टीका—उस सुवर्ण की आभावाली, युवति को लोक की सुन्दर श्री की तरह देखकर मन से राम को स्मरण किया और यह वचन बोला ॥ १ ॥ इसके निमित्त लोक विख्यात सुग्रीव वालि से रक्षित वानरों के दुर्लभ ऐश्वर्य को प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥ और नद नदियों का पति श्रीमान् सागर मैंने लंघा है, इस विशालनेत्रा के हेतु मैंने यह सारी पुरी ढूंढ़ी है ॥ ३ ॥ इसके लिये यदि राम समुद्र पर्यन्त सारी पृथिवी को और जगत् को भी उलट दे, तो युक्त है, यह मेरी मति है ॥ ४ ॥ एक ओर तीनों लोकों में राज्य, दूसरी ओर जनकसुता सीता, तीनों लोक का राज्य सीता की कला को नहीं पासक्ता है॥ ५ ॥ यह धर्म शील, मैथिलराज महात्मा जनक की पुत्री सीता ह, जो भर्त्ता में दृढ़ व्रतवाली है ॥ ६ ॥ धर्मज्ञ, कृतज्ञ अपने आत्मा को जाने हुए राम की यह प्यारी भार्या राक्षसियों के बस में पड़ी है ॥ ७ ॥ जो भर्ता के स्नेह के बल से सारे भोगों को त्यागकर और कष्टों की परवाह न करके निर्जन वन में प्रविष्ट हुई है ॥ ८ ॥ जोकि फल मूल से प्रसन्न भर्ता की सेवा परायण हुई वन में भी भवन की तरह परम प्रीति को भोगती थी ॥ ९ ॥ सो यह सुवर्ण तुल्य रङ्गवाली, नित्य हंसती हुई बोलने वाली इस तीव्र दुःख को सह रही है, जोकि अनर्थों की योग्या नहीं है ॥ १० ॥ रावण के दबाव डालने पर भी चरित्र में दृढ़ इस को राम इस तरह देखने की इच्छा रखते हैं, जैसे प्यासा प्याऊकी ॥ ११ ॥ इसके लाभ से राम निःसन्देह फिर प्रीति को प्राप्त होंगे,

जैसे राज्य से गिरा हुआ राजा फिर पृथिवी को पाकर ॥ १२ ॥ काम भोगों से अलग हुई, बन्धुजनों से हीन हुई केवल राम के समागम को चाहती हुई अपने देह को धारती है ॥ १३ ॥ न यह इन राक्षसियों को देखती है, न पुष्प फलों वाले वृक्षों को, किन्तु एक ही जगह दिल को टिकाकर केवल राम को ही देख रही है ॥ १४ ॥ पति स्त्री को भूषण से भी बढ़कर शोभा देनेवाला होता है। यह उस से रहित हुई शोभा के योग्य भी शोभा नहीं पाती है ॥ १५ ॥ राम बड़ा दुष्कर कर्म कर रहे हैं, जो इससे हीन हुए अपने देह को धारते हैं, दुःख से फट नहीं जाते ॥ १६ ॥ इस काले बालों वाली पद्मपत्र तुल्य नेत्रोंवाली, सुख के योग्या को दुःखिया देख कर मेरा भी हृदय दुःखित होरहा है ॥ १७ ॥ इत्यादि बातों को देखकर यह सीता है, इसप्रकार निश्चयवाला बलवाला, वेगवाला, वानरश्रेष्ठ उस वृक्ष पर बैठ गया ॥ १८ ॥

सर्ग १० (व० १७, १८) प्रभात का समय और रावण का अशोकवनिका में आना

मूल—ततः कुमुदखण्डाभो निर्मलं निर्मलोदयः। प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् ॥ १ ॥ साचिव्यमिव कुर्वन्स प्रभया निर्मलप्रभः। चन्द्रमा रश्मिभिः शीतैः सिषेवे पवनात्मजम् ॥ २ ॥ स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्। शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ॥ ३ ॥ हर्षजानि च सोऽश्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम्। मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम् ॥ ४ ॥ तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम्। विचिन्वतश्च वैदेहीं किंचिच्छेषा निशाऽभवत् ॥ ५ ॥+षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्। शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥ ६ ॥ अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः। प्राबोध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः

॥ ७ ॥ विबुध्य तु महाभागो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् । अशोकवनिकामेव प्राविशत्सन्ततद्रुमाम् ॥ ८ ॥ निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमस्त्रियः । अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥ ९ ॥ स च कामपराधीनः पतिस्तासां महाबलः । सीतासक्तमना मन्दो मन्दाञ्चितगतिर्बभौ ॥१०॥ तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः । रावणोऽयं महाबाहुरिति संचिन्त्य वानरः ॥ ११ ॥ पत्रे गुह्यान्तरे सक्तो मतिमान्संवृतोऽभवत् ॥ १२ ॥ स तामसितकेशान्तां सुश्रोणिं संहतस्तनीम् । दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः ॥ १३ ॥

टीका—तब कुमुद खण्ड के तुल्य निर्मल चन्द्र, नीले जल पर हंस की तरह निर्मल आकाश पर उदय हुआ ॥ १ ॥ वह निर्मल प्रभा वाला चन्द्र उसकी सहायता सी करता हुआ शीतल किरणों से पवनपुत्र को सेवन करता भया ॥ २ ॥ तब उसने चन्द्र तुल्य मुखवाली सीता को जल में भारों से दबी हुई नौका की तरह शोक के भारों से दबी हुई देखा ॥ ३ ॥ उस मत्त नेत्रोंवाली को देखकर हनुमान् ने हर्ष से उत्पन्न हुए आंसु छोड़े, और राम को नमस्कार किया ॥ ४ ॥ इसप्रकार फूले हुए वृक्षों वाले बन को देखते हुए, और सीता को ढूंढते हुए उसे रात थोड़ी सी शेष रह गई ॥ ५ ॥ वह पिछली रात के समय षडङ्ग वेद के जाननेवाले, उत्तम यज्ञों के करनेवाले, ब्राह्मण राक्षसों की वेद ध्वनियें सुनता भया ॥ ६ ॥ उस समय मङ्गल बाजों और कानों के प्यारे शब्दों से महाबाहु महाबली रावण जागा ॥ ७ ॥ जागकर वह प्रतापी महाभाग राक्षसेन्द्र लगातार वृक्षोंवाली अशोक वनिका में ही प्रविष्ट हुआ ॥ ८ ॥ निद्रा और मद से भरे हुए नेत्रोंवाली रावण की उत्तम स्त्रियें मेघ के साथ बिजलियोंकी तरह वीरपति के साथ आई ॥ ९ ॥ वह महाबली उनका पति काम के पराधीन हुआ

सीता में लगे हुए मनवाला, मन्द २ शोभनगति से शोभायमान था ॥१०॥ महातेजस्वी महावानर ने उस तेजस्वी को देखा, तब वह बुद्धिमान् वानर "यह महाबाहु रावण है" ऐसा सोचकर शाखाओं के अन्दर पत्तों में छिप गया ॥ ११, १२ ॥ वह रावण उस काले बालों वाली सुन्दर कमर वाली पीनस्तनों वाली काले कटाक्ष वाली को देखना चाहता हुआ पास आया ॥१३॥

सर्ग ११ (व० १९, २०) रावण को देखकर सीता का भय और रावण का प्रेम दिखलाना

मूल–ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम् । प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥ १ ॥ ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ । उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी ॥ २ ॥ दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः । ददर्श दीनां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे ॥ ३ ॥ असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम् । छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ॥४॥ मलमण्डनादिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डनाम् । मृणालीपङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥ ५ ॥ समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः । संकल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ॥ ६ ॥ शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम् । दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥ ७ ॥ पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दुमण्डलाम् । पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ॥८॥ पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव । परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव ॥ ९ ॥ स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् । साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥ १० ॥ मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम् । अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥ ११ ॥ कामये त्वां विशालाक्षि बहु मन्यस्व मां प्रिये । सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥ १२ ॥

+एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि। कामं कामःशरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥ १३ ॥ देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये । प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥ १४ ॥ स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम् । मां प्राप्य हि कथं वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥ १५ ॥ इदं ते चारु संजातं यौवनं ह्यतिवर्तते । यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव ॥ १६ ॥ त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता च विश्वकृत् । नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥ १७ ॥ यद्यत्पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने । तस्मिंस्तस्मिन्पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबद्ध्यते ॥ १८ ॥ भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय । बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ॥ १९ ॥ लोकेभ्यो यानि रत्नानि संप्रमथ्याहृतानि मे । तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते ॥ २० ॥ विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम् । जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि ॥ २१ ॥ भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च । यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ॥ २२ ॥ निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः । व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा ॥ २३ ॥ न हि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलभ्यते । पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ॥ २४ ॥

टीका—तब राक्षसाधिपति रावण को देखते ही वरारोहा सीता प्रबल वायु में कदली की तरह कांप उठी ॥ १ ॥ रानों से पेट को और भुजाओं से स्तनों को ढांप कर वह विशालनेत्रा वरवर्णिनी रोती हुई सिमटकर बैठ गई ॥ २ ॥ रावण ने राक्षसीगणों से रक्षा की हुई, दीन, दुःख से पीड़ित सीता को समुद्र में टूटी हुई नौकावत देखा ॥ ३ ॥ खाली भूमि पर बैठी हुई, तीक्ष्ण व्रत वाली (मानों रावण के वध के लिए तीक्ष्ण व्रत करती हुई) कटकर भूमि

पर गिरी वनस्पति की शाखा की तरह ॥ ४ ॥ मैले रूपी भूषण से लिबड़े हुए अङ्गोंवाली, भूषणों के योग्या, पर भूषणों मे रहित कीचड़ से लिबड़ी कमलिनी की तरह भासती है और नहीं भासती है ॥५॥ जो संकल्प के घोड़े जोड़कर मनोरथों मे मानों विदितात्मा राजसिंह राम के समीप जारही है ॥ ६ ॥ सूखती हुई रोती हुई अकेली ध्यान शोक परायण हुई दुःख का अन्त न देखती हुई राम के अनुव्रत रमणी ॥ ७ ॥ राहु से ग्रसे हुए चन्द्रमण्डल वाली पौर्णमासी की रात्रि की तरह, शुष्क हुई पद्मनी की तरह, हत हुए शूरोंवाली सेना की तरह ॥ ८॥ पति के शोक मे पीड़ित, सारे जल के (दूसरी ओर) बह जाने से सूखी नदी की तरह है, अङ्ग शुद्धि से सर्वथा हीन होने से कृष्णपक्ष में रात्रि की तरह स्थित है ॥ ९ ॥ रावण उस (राक्षसियों से) घिरी हुई दीन आनन्द रहित को अभिप्रायवाले मधुर वाक्यों मे (अपना अभिप्राय) दिखलाता भया ॥१०॥ मुझे देख कर हे हाथी के सूंड के तुल्य रानों वाली तू स्तन और उदर को छिपाती हुई मानों भय मे अपने आप को अदृश्य कर रही है ॥ ११ ॥ हे विशाल नेत्रोंवाली मैं तेरी कामना करता हूं. हे सारे सुन्दर अङ्गोंवाली, सारे जगत् के मन हरनेवाली मेरी प्यारी मेरा बहुमान कर ॥ १२ ॥ मैं तुझ अकामा को हे मैथिलि नहीं छूंगा, चाहे काम मेरे देह में यथेच्छ भी प्रवृत्त हो ॥ १३ ॥ हे देवि ! इसमें तुझे भय नहीं करना चाहिये, हे प्यारी मेरे ऊपर विश्वास कर, पूरा २ प्रेम कर, इसतरह शोकपरायण न हो ॥१४॥ तू स्त्रीरत्न है, ऐसी मत रहो, अङ्गों पर भूषण धारणकर,मुझे पाकर हे सुन्दरि तू किसतरह भूषणों के अयोग्य होसक्ती है ॥ १५ ॥ यह तेरा सुन्दर बना हुआ, यौवन चला जारहा है, जो गया हुआ नदियों के प्रवाह की तरह वापिस नहीं आता है ॥ १६ ॥ मैं

जानता हूं, कि तुझे उत्पन्न करके रूप के बनाने वाले विश्वकर्मा ने रूप बनाना छोड़ दिया है, हे शुभ दर्शनवाली तेरे तुल्य और रूप की उपमा नहीं है ॥१७॥ हे चन्द्र तुल्य मुख वाली तेरे जिस२ अङ्ग को देखता हूं, उस २ में हे विशाल श्रोणिवाली मेरी दृष्टि गड़ जाती है ॥ १८ ॥ हे मैथिलि मेरी भार्या हो, इस मोह को छोड़ बहुत उत्तम स्त्रियों में तू मेरी मुख्य पटरानी हो ॥ १९ ॥ सारे लोकों से बल से हर कर जो मैं रत्न लाया हूं, हे भीरु तुझे वह सारे और राज्य देता हूं ॥ २० ॥ अनेक नगरों की माला वाली सारी पृथिवी को जीतकर तेरी खातिर हे विलासिनि जनक को दूंगा ॥२१॥ हे भीरु यथारुचि भोगों को भोग, और पानकर, और यथारुचि पृथिवी और धन का दान दे ॥२२॥ राम अब जिसकी विजय की आशा दूर होगई, वन में घूमता हुआ, व्रती, स्थण्डिलों पर लेटता हुआ सन्देह है जीता है वा नहीं ॥ २३ ॥ हे वैदेहि जिनके आगे आगे बगले (उड़ रहे हैं, ऐसे) मेघों से ढकी चान्दनी की तरह राम अब तुझे देख नहीं पायेगा ॥ २४ ॥

सर्ग १२ (व० २१) सीता का पवित्र उत्तर

मूल—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः । दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी ॥ १ ॥ + चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता । तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता ॥२॥+निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः । न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ॥ ३ ॥+अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् । कुले संप्राप्तया पुण्ये कुले महति जातया ॥४॥+यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर । आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम् ॥५॥+इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे । यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ॥६॥+वचो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्य-

मुक्तं विचक्षणैः। राक्षसानामभ व य त्वं वा न प्रतिपद्यसे ॥ ७ ॥ अकृतात्मानमासाद्य राजानमनय रतम्। समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ॥ ८ ॥ तथेव त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघ संकुला। अपराधात्तवैकस्य नचिराद्विनशिष्यति ॥ ९ ॥ +शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा। अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ॥ १० ॥ उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम्। कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ॥ ११ ॥ अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः। व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः ॥ १२ ॥ साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम्। अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः परां प्राप्स्यसि चापदम् ॥ १३ ॥ वर्जयेद्वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम्। त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ॥ १४ ॥ इह शीघ्रं सुपर्णाः ज्वलित स्या इवोरगाः। इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षिताः ॥ १५ ॥

टीका—उस रौद्र राक्षस के वचन को सुनकर रोती हुई कांपती हुई, बेचारी दुःखिया सीता ॥१॥ पतिव्रता शुद्ध हंसीवाली वरारोहा पति का ही चिन्तन करती हुई मध्य में तृण रखकर (दुष्ट अभिप्राय वाले से साक्षात् बात करना भी पाप जानकर) उत्तर देती भई॥२॥ मुझ से मन को हटा, अपने जन (अपनी स्त्रियों) में मन को प्रीति वाला रख, सिद्धि को पापी पुरुष की तरह तू मुझे चाहने योग्य नहीं है॥३॥ मैं पतिव्रता महान् कुल में उत्पन्न हुई और महा कुल को प्राप्त हुई ऐसा निन्दित अकार्य नहीं करूंगी॥४॥ हे राक्षस जैसे तुझे अपनी वैसे पर स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिये, अपने आप को ही दृष्टान्त बनाकर अपनी स्त्रियों में रमणकर ॥ ५ ॥ क्या यहां भले पुरुष हैं नहीं, वा तू भलों के पीछे नहीं चलता है, जैसा कि यह तेरी उलटी बुद्धि सदाचार से उलटी है ॥ ६ ॥ अथवा तू आपही

कुमार्ग में पड़ा हुआ, विद्वानों से कहे पथ्य वचन को नहीं सुनता है ॥ ७ ॥ अजितेन्द्रिय, अनीति में रत, राजा को पाकर समृद्धि-शाली भी नगर और देश नष्ट होजाते हैं ॥ ८ ॥ वैसे ही तुझको पाकर तेरे अकेले के अपराध से रत्न समूहों से भरी सारी लङ्का जल्दी नष्ट होजाएगी ॥ ९ ॥ मैं ऐश्वर्य, वा धन से लुभाई नहीं जासक्ती, मैं राघव से इस तरह अभिन्न हूं, जैसे सूर्य से प्रभा ॥ १० ॥ उस लोकनाथ की पूजित भुजा को सिर के नीचे रखकर अब कैसे किसी दूसरे की भुजा को सिर के नीचे रखूंगी ॥ ११ ॥ मैं उसी पृथिवीपति के योग्य भार्या हूं, जैसे विद्या व्रतस्नात और साधनों के जानने वाले ब्राह्मण के ही योग्य होती है ॥ १२ ॥ हे रावण मुझ दुःखिया को राम के साथ मिला दे, यही भला है, इस से अन्यथा करता हुआ तू परम आपद को प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ (इन्द्र का) छोड़ा हुआ वज्र छोड़दे, यम चिर तक छोड़ दे, पर क्रुद्ध हुआ वह लोकनाथ राघव तेरे जैसे को कभी नहीं छोड़ेगा ॥ १४ ॥ जल्दी यहां राम लक्ष्मण के नामवाले तीक्षण नोकोंवाले तीर जलते हुए मुखवाले सांपों के तुल्य आकर पड़ेंगे ॥ १५ ॥

सर्ग १३ (० २२) रावण का क्रोध

मूल—सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः । प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥ १ ॥ संनियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः । द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥ २ ॥ वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन्किल निबध्यते । जनेतस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥ ३ ॥ एतस्मात्कारणान्न त्वां घातयामि वरानने । वधार्हामवमानार्हां मिथ्या प्रव्रजने रताम् ॥ ४ ॥ परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् । तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥ ५ ॥ एव मुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ।

क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ द्वौमासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः। ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥ ७ ॥ द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्। मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥८॥ तां भर्त्स्यमानां संप्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम्। देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः ॥ ९ ॥ ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम्। उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौटीर्यगर्वितम् ॥ १० ॥+नूनं न ते जनः कश्चिद स्मिन्निःश्रेयसि स्थितः। निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात् ॥ ११ ॥ +मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः। त्वदन्यास्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः ॥ १२ ॥ +राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः। उक्तवानासि यत्पापं क गतस्तस्य मोक्ष्यसे ॥ १३ ॥+इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिङ्गले। क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः ॥ १४ ॥ +तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च। कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति ॥ १५॥ असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्। न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्ह तेजसा ॥ १६ ॥ नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः। विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्रसंशयः ॥ १७ ॥ शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च। अपोह्य रामं कस्माच्चिदारचौर्यं त्वया कृतम् ॥ १८ ॥

टीका—राक्षसपति सीता के इस कठोर बचन को सुनकर उस प्रियदर्शना सीता को विप्रिय वचन बोला ॥१॥ तेरे विषय में उत्पन्न हुआ काम मेरे क्रोध को रोकता है, जैसे अमार्ग को पाकर दौड़ते हुए घोड़ों को अच्छा सारथि रोकता है, ॥ २ ॥ यह टेढ़ा काम मनुष्यों का जिसमें बन्ध जाता है, उस जन पर दया और स्नेह उत्पन्न होजाता है ॥३॥ इसकारण से हे वरानने मैं तुझे मारता नहीं

हूं, जो बध के योग्य, अपमान के योग्य और मिथ्यात्याग (विषय त्याग) में रत है ॥४॥ जो २ कठोर वाक्य तू मुझे कहती है, उन२ में हे मैथिलि तेरा दारुण बध युक्त है ॥ ५ ॥ राक्षसपति रावण सीता को ऐसे कहकर फिर क्रोध और जोश से भरा हुआ बचन बोला ॥ ६ ॥ दो महीने मैंने और देखना है, जोकि मैंने अवधि की हुई है, उसके पीछे हे वरवर्णिनि तुझ मेरी शय्या पर आरूढ़ होना पड़ेगा ॥७॥ दो महीने के पीछे यदि मुझे अपना भर्ता न चाहेगी, तो मेरे रसोइये तुझे प्रातराशके लिये टुकड़े२ काटेंगे ॥८॥ जब राक्षसेन्द्र ने सीता को इसतरह झिड़का, तो उसे देखकर देव गन्धर्वों की उन(सीता की तरह बल से लाई हुई)कन्याओं की दृष्टि में विकार आगया, और वह बहुत उदास हुई ॥९॥ उनसे तसल्ली दी हुई सीता राक्षसपति रावण को वृत्त और गर्व से भरा हुआ बचन बोली ॥ १० ॥ क्या इस नगर में कोई भी पुरुष तेरी भलाई में स्थिर नहीं, जो तुझ इस निन्दित कर्म से रोकता नहीं है ॥ ११ ॥ इन्द्र की इन्द्राणी की तरह धर्मात्मा की पत्नी मुझको कौन तीनों लोकों में तेरे बिना मन से भी चाह सक्ता है ॥१२॥ हे राक्षसाधम ! अमित तेजवाले राम की भार्या को जो तूने पाप कहा है, अब कहां गया हुआ तू उस से छूटेगा ॥ १३ ॥ यह तेरे काले कैरे विकृत क्रूर नेत्र हे अनार्य मेरी ओर देखते हुए के पृथिवी पर क्यों नहीं गिर पड़ते ॥ १४ ॥ उस धर्मात्मा की पत्नी दशरथ की स्नुषा मुझको ऐसी बात कहते हुए हे पापी तेरी जिह्वा क्यों नहीं फट जाती॥१५॥मुझे धर्मात्मा राम की आज्ञा नहीं और तप को बचाना है, इसलिये हे रावण मैं तुझे अपने (पातिव्रत्य के) तेज से भस्म नहीं करती हूं, यद्यपि तू भस्म के योग्य है ॥१६॥ उस बुद्धिमान् राम से मैं छीनी नहीं जासक्ती, यह विधाता ने

तेरे बध के लिये घटना घटाई है, इसमें संशय नहीं ॥ १७ ॥ शूरवीर, कुबेर के भाइ, सेनाओं से युक्त हुए तूने अकेले भी राम को क्यों दूर हटाकर उसकी स्त्री को चुराया ॥ १८ ॥

सर्ग १४ [व० २२] रावण का सीता पर क्रोध

मूल—सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः । विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥ १ ॥ अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः । उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन् ॥ २ ॥ अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते । नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः । संददर्श ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ४ ॥ यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी । तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वा क्षिप्रं समेत्य वा ॥ ५ ॥ प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः । आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च ॥६॥ इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनःपुनः । काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत ॥ ७ ॥ उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी । परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत्॥८॥ मया क्रीड महराज! सीतया किं तवानया । विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ॥९॥ नूनमस्यां महाराज न देवा भोगसत्तमान्। विदधत्यमरश्रेष्ठास्तव बाहुबलार्जितान् ॥ १० ॥ अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते । इच्छन्तीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ॥ ११॥ एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली । प्रहसन्मेघसंकाशो राक्षसः स न्यवर्तत ॥ १२ ॥

टीका—सीता के वचन को सुनकर राक्षसपति रावण क्रूर नेत्रों को मोड़कर जानकी की ओर देखता भया ॥ १ ॥ क्रोध से लाल हुए नेत्रों वाला भुजङ्ग की तरह सांस लेता हुआ रावण वैदेही सीता की ओर देखता हुआ बोला ॥ २ ॥ हे अनीति से युक्त, और अर्थ से

हीन राम के पीछे चलने वाली ! अभी तुझे बल से नाश करता हूं जैसे सूर्य सन्ध्या को ॥ ३ ॥ शत्रुओं के रुलाने वाला, राजा रावण मैथिली को यह कहकर फिर भयङ्कर दर्शनवाली, राक्षसियों की ओर देखता भया ॥ ४ ॥ हे राक्षसियो ! तुम सब मिलकर ऐसा करो, जिससे कि जानकी सीता जल्दी मेरे बस में हो ॥ ५ ॥ प्रतिकूल अनुकूल व्यवहारों से साम दाम भेद और दण्ड से वैदेही को मेरी ओर झुकाओ ॥ ६ ॥ वार २ वह आज्ञा देकर काम क्रोध से भरे हुए मन वाला राक्षसेन्द्र जानकी के प्रति गर्जा ॥७॥ उसी समय धान्यमालिनी राक्षसी निकट पहुंचकर आलिङ्गन करके रावण से यह वचन बोली ॥ ८ ॥ मुझ से क्रीड़ा कर हे महाराज, हे राक्षसेश्वर इस फीके रङ्गवाली, मानुषी से तुझे क्या है ॥ ९ ॥ निःसन्देह हे महाराज तेरे भुजबल से कमाए उत्तम भोग देवताओं ने इसके लिये नहीं बनाए ॥ १० ॥ न चाहती हुई को चाहने वाले का शरीर तपता है, चाहती हुई को चाहने वाले की शोभना प्रीति होती है ॥ ११ ॥ राक्षसी से ऐसे कहा हुआ वह मेघ तुल्य राक्षस बली वहां से हटकर चला गया ॥ १२ ॥

सर्ग १५ (व० २३, २४) राक्षसियों का सीता को समझाना और सीता का उन को उत्तर

मूल—ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः । परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन् ॥१॥ किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोरमे । महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥ २ ॥ त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम् । भर्तारमुपसङ्गम्य विहरस्व यथासुखम् ॥ ३ ॥ मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने । राज्याद्भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवंतमनिन्दिते ॥ ४ ॥ राक्षसानां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥+यदिदं

लोकविद्विष्टमुदाहरत सङ्गताः । नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतितिष्ठति ॥ ६ ॥ +न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति । कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥७॥+दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः । तं नित्यमनुरक्तास्मि यथासूर्यंसुवर्चला॥८॥ यथा शची महाभाग शक्रं समुपतिष्ठति । अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥ ९ ॥ लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा । सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥ १० ॥ सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा । नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ॥ ११ ॥ तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ॥ १२ ॥ सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः । भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः ॥ १३ ॥ अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमाञ्शिंशपाद्रुमे । सीतां संतर्जयन्तीस्ता राक्षसीरशृणोत्कपिः ॥ १४ ॥ सा भर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वराङ्गना । सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत् ॥ १५ ॥

टीका--उसके पीछे सीता के पास आकर क्रोध से मूर्च्छित राक्षसियें सीता को कठोर वचन बोलीं ॥१॥ हे सीते बहुमूल्य शय्याओं से युक्त सब लोगों के मन को लुभानेवाले अन्तःपुर में वास तू क्यों पसन्द नहीं करती है ॥ २ ॥ त्रिलोकी के ऐश्वर्य को भोगने वाले राक्षसेश्वर रावण को भर्ता बनाकार सुख पूर्वक विहार कर ॥ ३ ॥ हे शोभने मानुषी तू मानुष राम को चाहती है, हे आनिन्दिते जो राज्य से भ्रष्ट, अर्थ से हीन घबराया फिरता है ॥ ४ ॥ राक्षसियों के वचन को सुनकर पद्म तुल्य नेत्रोंवाली सीता आंसू भरे नेत्रों से यह वचन बोली ॥ ५ ॥ तुम सब इकट्ठी होकर यह जो लोक निन्दित वाक्य कहती हो, यह पाप भरा वाक्य मेरे मन में जगह नहीं पकड़ सक्ता है ॥ ६ ॥ मानुषी राक्षस की भार्या नहीं हो

सकती है बेशक सब मिलकर मुझे खाजाओ, पर तुम्हारी बात नहीं मानूंगी ॥ ७ ॥ दीन वा राज्यहीन है, जो मेरा भर्ता है, वह मेरा गुरु है, उस पर सदा अनुरक्त हूं, जैसे सूर्य पर सुवर्चला ॥८॥ जैसे महाभागी इन्द्राणी इन्द्र के, अरुन्धती वसिष्ठ के, रोहिणी चन्द्र के ॥ ९ ॥ लोपामुद्रा अगस्त्य के, सुकन्या च्यवन के, सावित्री सत्यवान् के, श्रीमती कपिल के ॥ १० ॥ मदयन्ति सौदास के, केशिनी सगर के, भीम की पुत्री दमयन्ती निषध के राजा अपने पति के अनुव्रता है ॥ ११ ॥ इसप्रकार मैं इक्ष्वाकुवर राम पति के अनुव्रता हूं ॥ १२ ॥ सीता के वचन को सुनकर रावण से प्रेरी हुई राक्षसियें क्रोध से मूर्छित हुई कठोर वाक्यों से उसे झिड़कती भई ॥ १३ ॥ उस शीशम के वृक्ष पर चुपचाप छिपा हुआ हनुमान् वानर सीता को झिड़कती हुई राक्षसियों को सुनता भया ॥ १४ ॥ उन भयङ्कर राक्षसियों की झिड़कें सहकर वह उत्तम नारी आंसुओं को पोंछती हुई उस शीशम की ओर ही आई ॥१५॥

सर्ग १६ (स० २५, २६) सीता का अति करुण विलाप

मूल—वेपते साधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः । वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ॥ १ ॥ सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम् । चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा ॥ २ ॥ सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः । चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति ॥ ३ ॥ सा निःश्वसन्ती शोकार्ता कोपोपहतचेतना । आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च ॥४॥ हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च । हाश्वश्रूर्मम कौशल्ये हा सुमित्रेति भामिनी ॥ ५ ॥ लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः । अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥६॥ यत्राहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता । जीवामि हीना रामेण

मुहूर्तमपि दुःखिता ॥ ७ ॥ भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता । सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा ॥८॥ सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना । तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवनम् ॥९॥+कीदृशं तु महापापं मया देहान्तरे कृतम् । येनेदं प्राप्यते घोरं महादुःखं, सुदारुणम् ॥१०॥ जीवितं सक्तुमिच्छामि शोकेन महताऽऽवृता । राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो नासाद्यते मया ॥११ ॥ धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम् । न शक्यं यत्परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् ॥१२॥+अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम् । हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते ॥१३॥+धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता । मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका ॥१४॥+चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् । रावणं किं पुनरहं कामयेयं निशाचरम् ॥१५॥ इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः । जानन्नपि स तेजस्वी धर्षणां मर्षयिष्यति ॥१६॥ हृतेति मां योऽधिगत्य राघवाय निवेदयेत् । गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥१७॥ कृतं तेन महत्कर्म मां तदाभ्यवपद्यता । तिष्ठता रावणवधे वृद्धेनापि जटायुषा ॥१८॥ यदि मामिह जानीयाद्वर्तमानां हि राघवः । अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥१९॥ यादृशानि तु दृश्यन्ते लङ्कायामशुभानि तु । अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा ॥२०॥ रामं रक्तान्तनयनमपश्यन्ती सुदुःखिता । क्षिप्रं वैवस्वतं देवं पश्येयं पतिना विना ॥२१॥ नाजानाज्जीवतीं रामः स मां भरतपूर्वजः । जानन्तौ तु न कुर्यातां नोर्व्यां हि परिमार्गणम् ॥२२॥+नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः । देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले ॥२३॥ किं वा मय्यगुणाः केचित्किं वा भाग्यक्षयो हि मे । या हि सीता वरार्हेण हीना रामेण भामिनी ॥२४॥ अथवा राक्षसेन्द्रेण

रावणेन दुरात्मना। छद्मना घातितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२५॥ साहं त्यक्ता प्रियेणैव रामेण विदितात्मना। प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम् ॥२६॥

टीका—वन में यूथ से भ्रष्ट हुई, भेड़ियों से पीड़ित हरिणी की तरह पीड़ित सीता (भय से) मानों अपने अङ्गों में प्रवेश करती हुई अधिक कांप रही थी ॥ १ ॥ वह टूटे हुए मनवाली अशोक की एक फूली हुई शाखा को पकड़ कर शोक से भर्ता को सोचने लगी ॥२॥ वह नेत्रों के जल के बहने से अपने विपुल स्तनों को स्नान कराती हुई, और सोचती हुई, तब शोक का अन्त नहीं पाती है ॥३॥ वह शोक से पीड़ित हुई, कोप से दूर हुई चेतनावाली, आहें भरती हुई मैथिली रोती और विलाप करती भई ॥ ४ ॥ वह दुखिया सुन्दरी "हा राम" हा लक्ष्मण, हा मेरी सास कौशल्या, हा सुमित्रा, यह बार २ कहती भई ॥५॥ विद्वानों ने यह कहावत ठीक कही है, कि बिना काल के स्त्री वा पुरुष को मृत्यु दुर्लभ है ॥६॥ जब कि मैं इन क्रूर राक्षसियों से यहां पीड़ित हुई राम से वियुक्त हो दुःखिया होकर मुहूर्त भी जीती हूं ॥७॥ भर्ता को न देखती हुई राक्षसियों के बस पड़ी हुई, जल से तोड़े हुए किनारे की तरह शोक से गिर रही हूं ॥८॥ उस विदितात्मा राम से हीन हुई मुझको तीक्ष्ण विष खाकर जैसे वैसे जीना दुर्लभ है ॥९॥ कैसा महापाप मैंने देहान्तर में किया है, जिससे यह बड़ा दारुण घोर महा दुःख पारही हूं ॥१०॥ बड़े शोक से घिरी हुई, मैं जीवन त्यागना चाहती हूं, इन राक्षसियों से रक्षा की हुई मैं राम को नहीं पासकूंगी ॥ ११ ॥ धिक्कार है मनुष्यता को और धिक्कार है पराधीनता को, जिस में कि अपनी इच्छा से जीवन भी नहीं त्यागा जासक्ता ॥१२॥ निःसन्देह यह मेरा हृदय पत्थर का

बना हुआ है, अथवा अजर अमर है, जो यह इतने बड़े दुःख से फट नहीं जाता है ॥ १३ ॥ धिक्कार है मुझ अनार्या असती को जो मैं पति से अलग की हुई मुहूर्त भी पाप का जीवन जीती हूं ॥ १४ ॥ मैं राक्षस रावण को बाएं पाओं से भी नहीं छूंगी, क्या फिर मैं उसे कामना करूं ॥ १५ ॥ मैं जानती हूं लक्ष्मण का बड़ा भाई मुझे यहां स्थित नहीं जानता है, जाने तो वह तेजस्वी अपमान को नहीं सहारेगा ॥ १६ ॥ "हरी गई" यह जानकर जो राघव को मेरा पता देता, वह गृध्रराज भी रावण ने रण में मार गिराया ॥ १७ ॥ मेरे ऊपर अनुग्रह करते हुए जटायु ने बड़ा काम किया, जो वृद्ध होकरभी रावण के बध के लिए खड़ा होगया॥१८॥ राघव यदि यहां मेरा होना जानले, तो क्रुद्ध हुआ वह अभी बाणों से लोक को बिन राक्षसों के बना दे ॥ १९ ॥ लङ्का में जैसे अशुभ कार्य दीखते हैं, थोड़े ही काल में इसकी प्रभा उड़ जायगी ॥२० ॥ रक्तनेत्रोंवाले राम को न देखती हुई पति के बिना अत्यन्त दुःखित हुई (हे भगवन्) मैं जल्दी यमदेव को देखूं ॥ २१ ॥ वह भरत का बड़ा भाई राम मुझे जीती हुई नहीं जानता है, वह जानते तो क्या पृथिवी में ढूंढ भाल न करते ॥ २२ ॥ अथवा निःसन्देह मेरे ही शोक से वह वीर लक्ष्मण का बड़ा भाई पृथिवी पर देह को त्याग कर यहां से देवलोक का चला गया ॥ २३ ॥ अथवा क्या मुझ में कोई अवगुण है, वा क्या मेरे भाग्य का ही क्षय होगया, जो कि प्यारी सीता प्यारे राम से वियुक्त है ॥ २४ ॥ अथवा दुरात्मा राक्षसेन्द्र रावण ने उन शूरवीर राम लक्ष्मण दोनों भाइयों को धोखे से मरवा डाला है ॥ २५ सो मैं विदितात्मा प्यारे राम से त्यागी हुई पापी रावण के वश पड़ी हुई प्राणों को त्यागूंगी ॥२६॥

सर्ग १७ (ब० १०) हनुमान् का सीता से सम्भाषण का विचार

मूल—हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः । ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥ यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च । दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥ २ ॥ यदि ह्येवं सतीमेनां शोकोपहतचेतनाम् । अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद्गमनं भवेत् ॥ ३ ॥ गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी । परित्राणमपश्यन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ॥ ४ ॥ अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया । सर्वथा नास्ति सन्देहः परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥ ५ ॥ रामस्तु यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद्वचः । किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम् ॥ ६ ॥ अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामवस्थितः । शनैराश्वासयाम्यद्य सन्तापबहुलामिमाम् ॥ ७ ॥ कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत च । इति संचिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान्मतिम् ॥ ८ ॥ राममक्लिष्टकर्माणं सुबन्धुमनुकीर्तयन् । नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्बन्धुगतचेतनाम् ॥ ९ ॥ श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन्गिरम् । श्रद्धास्यति यथा सीता तथा सर्वं समादधे ॥ १० ॥

टीका—हनुमान् ने भी वह सारा वाक्य ठीक २ सुना, तब वह वानर अनेक प्रकार की सोच करता भया ॥ १ ॥ जिसको बहुत २ वानर सारी दिशाओं में ढूंढ रहे हैं, वह यह मैंने पाली है ॥ २ ॥ अब यदि मैं शोक से नष्ट चेतनावाली इस पतिव्रता को बिन तसल्ली दिये चला जाऊंगा, तो मेरा जाना दोषवाला होगा ॥ ३ ॥ मेरे वहां चले जाने पर यह यशस्विनी राजपुत्री जानकी परित्राण न देखती हुई जीवन को त्याग देगी ॥ ४ ॥ इसी रात्रिशेषमें यदि मैं इसे तसल्ली न दे सका, तो बिल्कुल सन्देह नहीं, कि यह जीवन त्याग देगी ॥ ५ ॥ और राम भी यदि

पूछेंगे, सीता ने मुझे क्या कहा, तो मैं इस सुमध्यमा से बात किये बिना उनको क्या उत्तर दूंगा ॥६॥ राक्षसियों से यहां दूरी पर खड़ा हुआ, इस बड़ी संतप्त हुई को धीरे २ तसल्ली देता हूं ॥ ७ ॥ कैसे यह मेरे वाक्य को सुने, और डरे नहीं, यह सोचकर मतिमान् हनुमान् ने यह विचार किया ॥८॥ सुखदायी कर्मोंवाले उसके बन्धु राम का कीर्त्तन करता हुआ इसको डरने से बचाऊंगा, क्योंकि इस का चित्त उसी बन्धु में लग रहा है ॥ ९ ॥ मीठी वाणी बोलता हुआ (राम के) सारे (कार्य) सुनाऊंगा, जिससे सीता विश्वास करेगी वैसे सब कुछ कहूंगा ॥ १० ॥

सर्ग १८ (व० ३१) हनुमान् का राम के गुण वर्णन

मूल–एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महामतिः । संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥ १ ॥ राजा दशरथो नाम रथकुञ्जर-वाजिमान् । पुण्यशीलो महाकीर्त्तिरिक्ष्वाकूणां महायशाः ॥ २ ॥ तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः । रामो नाम विशेषज्ञः ज्येष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ३ ॥ रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता । रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥ ४ ॥ तस्य सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्य वचनात्पितुः । सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्राजितो वनम् ॥५॥ तेन तत्र महारण्ये मृगयांपरिधावता । राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः ॥६॥ जनस्थानवधं श्रुत्वा निहतौ खरदूषणौ । ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु ॥ ७ ॥ वञ्चयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया । स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीताम-निन्दिताम् ॥ ८ ॥ आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम् । ततः स वालिनं हत्वा रामः परपुरञ्जयः ॥ ९ ॥ आयच्छत्कपिराज्यं तु सुग्रीवाय महात्मने । सुग्रीवेणाभिसन्दिष्टा हरयः कामरूपिणः ॥१०॥ दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्तः सहस्रशः । अहं सम्पातिवचना-

च्छतयोजनमायतम् ॥ ११ ॥ तस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः समुद्रं वेगवान्प्लुतः । यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मवतीं च ताम् ॥ १२ ॥ अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया । विरराभैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुङ्गवः ॥ १३ ॥ निशम्य सीता वचनं कपेश्च दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य । स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ॥१४॥सा तिर्यगूर्ध्वं च तथा ह्यधस्तान्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम् । ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् ॥ १५ ॥

टीका—इस प्रकार वह महामति अनेक प्रकार की चिन्ता करके सीता को सुनाई देते स्वर में मधुर वाक्य बोला ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुओं का राजा दशरथ नामी रथ हाथी और घोड़ों का स्वामी पुण्यशील, महाकीर्त्ति महायशस्वी हुआ है ॥ २ ॥ उसका प्यारा ज्येष्ठ पुत्र चन्द्र तुल्यमुखवाला राम नाम, विशेषज्ञ, सब धनुष धारियों में श्रेष्ठ ॥ ३ ॥ अपने वृत्त की रक्षा करने वाला, अपने जन की रक्षा करने वाला, जीवलोक की रक्षा करने वाला, धर्म की रक्षा करने वाला, और शत्रुओं का तपानेवाला ॥ ४ ॥ वह सच्ची प्रतिज्ञावाले उस वृद्ध पिता के वचन से भार्या और भाई समेत बन को रवाना हुआ ॥ ५ ॥ वहां महावन में शिकार खेलते हुए उसने कामरूपी बहुत से शूरवीर राक्षस मारे ॥ ६ ॥ जनस्थान का वध और खर दूषण को मरा हुआ सुनकर क्रोध से रावण ने मायामृग द्वारा बन में राम को ठगकर जानकी को हर लिया, वह राम उस अनिन्दिता सीता को ढूंढता हुआ ॥ ७, ८ ॥ बन में सुग्रीव नाम बानर को मित्र बनाता भया, तब वह शत्रुओं के किले जीतने वाला राम बालि को मार कर ॥ ९ ॥ वानरों का राज्य महात्मा सुग्रीव को देता भया, सुग्रीव से आज्ञा दिये हुए, कामरूपी अनेक बानर उस देवी को ढूंढते हुए सब दिशाओं मैं गये, और मैं सम्पाति के कहने

से सौ योजन लम्बे ॥ १०,११ ॥ समुद्र को उस विशाल नेत्रोंवाली के हेतु वेग से पार हुआ। जैसी आकृतिवाली, जैसे रङ्गवाली और जैसे चिन्होंवाली ॥ १२ ॥ राम से मैंने वह सुनी थी, वह यह मैंने पाली है, इतना वचन कहकर वह वानरश्रेष्ठ चुप होगया ॥ १३ ॥ सीता वानर के वचन को सुनकर सारी दिशाओं प्रदिशाओं की ओर दृष्टि डालती हुई सर्वात्मा से राम को स्मरण करती हुई परम हर्ष को प्राप्त भई ॥ १४ ॥ वह इधर उधर ऊपर नीचे उस अचिन्त्य बुद्धिवाले को देखती हुई उदय होते हुए सूर्य की तरह स्थित सुग्रीव के मन्त्री पवनपुत्र को देखती भई ॥ १५ ॥

सर्ग १९ (व०३३,३४) हनुमान् का सीता के समीप आना और सीता का सन्देह

मूल—सोऽवतीर्य द्रुमात्तस्मात् प्रणिपत्योपसृत्य च। तामब्रवीन्महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ॥ १ ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥२॥ अहं रामस्य सन्देशाद्देवि दूतस्तवागतः। वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥३ ॥ यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेद-विदां वरः। स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥ ४ ॥ लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः । कृतवाञ्छोकसन्तप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ॥ ५ ॥ सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः। प्रतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥६॥ कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा । एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ ७ ॥ तयोः समागमे तस्मिन्प्रीतिरुत्पादिताद्भुता। परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ॥ ८ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः। सीताया शोकतप्तायाः समीपमुपचक्रमे ॥ ९ ॥ यथा यथा समीपं स हनूमानुपसर्पति। तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते ॥ १० ॥ अहो धिग्धिक्कृतमिदं कथितं हि

पदस्य मे । रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः॥ ११ ॥ अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम् । सा चैनं भयसंत्रस्ता भूयो नैनमुदैक्षत ॥१२॥तं दृष्ट्वा वन्दमानं च सीता शशिनिभानना । अब्रवीद्दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा॥१३॥मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणःस्वयम् । उत्पादयसि मे भूयः संतापं तन्न शोभनम् ॥१४॥स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपवान् । जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एव हि रावणः ॥ १५ ॥ उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर । संतापयसि मां भूयः सन्तापं तन्न शोभनम् ॥ १६ ॥ एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनुमध्यमा । न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा ॥ १७ ॥

टीका-तब वह उस वृक्ष से उतर कर पास आ प्रणाम करके पवनपुत्र हनुमान् सिर पर हाथ बांधकर मधुर वाणी से उस सीता से बोला ॥ १, २ ॥ राम के सन्देश से हे देवि ! मैं तेरे पास दूत आया हूं, हे वैदेहि ! राम कुशल से हैं, और उन्होंने तुझे कुशल कहा है ॥३॥ जो वेद के जाननेवालों में श्रेष्ठ ब्राह्मअस्त्र को और वेदों को जानता है उस दाशरथि राम ने हे देवि तुझे कुशल कहा है ॥ ४ ॥ और महातेजस्वी लक्ष्मण जो तेरे पति का प्यारा साथी है उस शोक से तपे हुए ने तुझे अभिवादन किया है॥ ५ ॥ वह देवी उन दोनों नरसिंहों के कुशल को सुनकर खिले हुए सारे अङ्गोंवाली हनुमान् से बोली ॥ ६ ॥ हां यह लौकिक कहावत मुझे कल्याणवाली प्रतीत होती है कि जीते पुरुष को सौ वर्ष के पीछे भी आनन्द प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ उन दोनों के इस समागम में उन दोनों में बड़ी अद्भुत खुशी उत्पन्न हुई,और वह दोनों आपस में विश्वस्त होकर बातें करते भए ॥ ८ ॥ शोक से तपी हुई सीता के वचन को सुनकर पवनपुत्र हनुमान् उसके समीप २ होता गया ॥ ९ ॥

पर ज्यों २ हनुमान् सीता के समीप आता है त्यों २ (रावण से डरी हुई) सीता उसके रावण होने का संदेह करती है ॥ १०॥ अहो धिक् २ जो मैंने इसके साथ बातें कीं, यह तो वही राक्षस ही भेष बदलकर आया है ॥ ११ ॥ तब उस महाबाहु ने जनकपुत्री को प्रणाम किया, पर वह भय से डरी हुई फिर उसकी ओर नहीं देखती भई ॥ १२ ॥ उसको प्रणाम करता हुआ देखकर चन्द्रमुखी सीता लम्बा सांस भरकर मधुर स्वरवाली, वानर से यह बोली ॥ १३ ॥ यदि तू छल करके छलिया रावण फिर मुझे सन्ताप उत्पन्न करता है तो यह अच्छा नहीं ॥ १४ ॥ अपने रूप को त्यागकर संन्यासी के रूप में जो मैंने जनस्थान में देखा था, तू वही (मायावी) रावण है ॥ १५ ॥ उपवास से दुर्बल मुझ दीन को हे कामरूप निशाचर तू बार बार तपाता है, यह अच्छा नहीं ॥ १६ ॥ ऐसी बुद्धि करके वह तनुमध्यमा जनकतनया सीता (प्रणाम कर) उत्तर नहीं देती भई ॥ १७ ॥

सर्ग २० (व०३४, ३५, ३६) हनुमान और सीता का सम्वाद।

मूल—सीताया निश्चितं बुद्ध्वा हनूमान्मारुतात्मजः। श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयन् ॥ १ ॥ रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः। अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान्नामवानरः ॥ २ ॥ त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् । नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ॥ ३ ॥ यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले । तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ॥ ४ ॥ तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेवितम् । शयितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ॥५॥ स तवादर्शनादार्ये राघवः परितप्यते । महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः ॥ ६ ॥ काननानि सुरम्याणि नदी प्रस्रवणा नि च । चरन्नरतिमाप्नोति त्वामपश्यन्नृपात्मजे ॥ ७ ॥ सत्वां मनुजशार्दूलः

क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः । समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे ॥ ८ ॥ वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः । रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यंगुलीयकम् ॥ ९ ॥ प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना । समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥ १० ॥ गृहीत्वा प्रेक्षमाणा स भर्तुः करविभूषितम् । भर्तारमिव संप्राप्तं जानकी मुदिताभवत् ॥ ११ ॥ चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् । बभूव हर्षोदग्रं च राहुमुक्त इवोडुराट् ॥ १२ ॥ ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुः सन्देशहर्षिता । परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम् ॥ १३ ॥ विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम । येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ॥ १४ ॥ नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ । यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि संभ्रमः ॥ १५ ॥ दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः । लक्ष्मणश्च महातेजा सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ १७ ॥ कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम् । महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥ अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे । ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः ॥ १८ ॥ कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते । उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥ कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान्मयि राघवः । कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति राघवः ॥ २० ॥ कौशल्यायास्तथा कच्चित्सुमित्रायास्तथैव च । अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित्कुशलं भरतस्य च ॥ २१ ॥ कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः । ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते ॥ २२ ॥ रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे । द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम् ॥ २३ ॥ कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं तस्याननं पद्मसमानगन्धि । मया विना शुष्यति शोकदीनं जलक्षये पद्ममिवातपेन ॥ २४ ॥ धर्मापदेशात्त्यजतः स्वराज्यं मां

चाप्यरण्यं नयतः पदातेः । नासीदुव्यथा यस्य न भीर्न शोकः कच्चित्सधैर्यं हृदये करोति ॥ २९ ॥

टी०-सीता का निश्चय जानकर पवनपुत्र हनुमान् कानों के अनुकूल वचनों से उसे प्रसन्न करता भया ॥ १ ॥ हे देवि ! सुग्रीव नाम वानर राम का सखा है और मैं सुग्रीव का मन्त्री हनुमान् नाम वानर हूं हे देवि ! मैं ऐसा नहीं हूं, जैसा तू मुझे समझती है ॥३॥ जो भूषण समूह तूने पृथिवी पर गिराए थे, वह मैंने ही राम की भेंट किये ॥ ४ ॥ (जिनको देखकर) वह देवतुल्य राजा बहुत रोया, और दुःख से पीड़ित हुआ, वह महात्मा देर तक भूमि पर लेटा रहा ॥ ५ ॥ वह राघव तेरे अदर्शन से हे आर्ये नित्य जलती हुई बड़ी अग्नि से अग्निपर्वत की तरह तप रहा है ॥ ६ ॥ तुझे न देखता हुआ हे राजपुत्रि सुरम्य बनों और नदी के झरनों पर घूमता हुआ आनन्द नहीं पाता है ॥ ७ ॥ वह पुरुषवर राघव हे जनकपुत्री रावण को उसके मित्र बान्धवों समेत मार करके तुझे जल्दी प्राप्त होगा ॥८॥ हे महाभागे मैं बुद्धिमान् राम का दूत वानर हूं, हे देवि ! राम नाम से मुद्रित यह अंगूठी देख ॥९॥ उस महात्मा से दी हुई तेरे विश्वास के लिये लाया हूं तसल्ली कर, तेरा भलाहो, अब दुःखफल क्षीण होगया है ॥ १० ॥ भर्ता के हाथ से भूषित उस अंगूठी को ले करके देखती हुई जानकी पति के मिलने की तरह प्रसन्न हुई ॥ ११ ॥ लाल, श्वेत, विशाल नेत्रोंवाला उसका सुन्दर मुख राहु से छूटे चन्द्र की तरह हर्ष से निर्मल होगया ॥१२॥ तब वह लज्जावाली बाला भर्ता के सन्देश से हर्षित हुई सन्तुष्ट हुई आदर करके महावानर प्रशंसा करती भई ॥१३॥ हे वानरोत्तम तू पराक्रमी है, समर्थ है, बुद्धिमान् है,

जिस तुझ अकेले ने राक्षसों का स्थान दबाया है ॥१४॥ हे बानश्रेष्ठ मैं तुझे साधारण वानर नहीं समझती हूं, जिस तुझको रावण से भी डर वा घबराहट नहीं है ॥ १५ ॥ भाग्य से धर्मात्मा सच्ची प्रतिज्ञा वाला, राम और सुमित्रा का आनन्द बढ़ाने वाला महातेजस्वी लक्ष्मण कुशली है ॥ १६ ॥ राम यदि कुशली है, तो क्यों बढ़े हुए मलयाग्नि की तरह क्रोध से पृथिवी को नहीं जला देता है ॥ १८ ॥ अथवा वह दोनों तो देवताओं के जीतने में भी शक्तिमान् हैं, किन्तु जानती हूं, कि मेरे ही दुःखों का अभी अन्त नहीं है ॥ १८ ॥ क्या पुरुषोत्तम राम पीड़ित तो नहीं होते हैं, क्या संतप्त तो नहीं होते हैं, क्या अगले कार्यों को (मेरे छुड़ाने के लिए) कर रहे हैं ॥ १९ ॥ क्या दूर वास से राघव का मुझमें स्नेह तो नहीं घटा, क्या राघव मुझे इस विपत्ति से छुड़ाएगा ॥ २२ ॥ और क्या कौशल्या, सुमित्रा और भरत का कुशल जल्दी २ सुना जाता है ॥२१॥ क्या भ्रातृवत्सल भरत मेरी खातिर मन्त्रियों से रक्षा की हुई (सूर्य वंशियों के) झण्डेवाली सेना भेजेगा ॥२२॥ क्या वह जल्दी समय आएगा, जब कि मैं सुहृद्जनों समेत रावण को राम से रौद्रअस्त्र द्वारा मारा हुआ देखूंगी ॥२३॥ क्या सुवर्ण तुल्य वर्णवाला पद्मसमान गन्धवाला उसका मुख मेरे बिना शोक से दीन हुआ जल के क्षय में धूप से पद्म की तरह सूख तो नहीं गया है ॥१४॥ धर्म के नाम पर अपने राज्यको छोड़ते हुए और मुझे वन में पैदल साथ लाते हुए उस समय जिसको जैसे भय और शोक नहीं था, क्या वह उसी धैर्य को हृदय में रखे हुए है ॥२५॥

सर्ग २१ [व० ३७] सीता और हनुमान् का सम्वाद

मूल—सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः। शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति

राघवः। चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंयुताम् ॥ २ ॥ तवादर्शनजेनार्ये शोकेन परिपूरितः । न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥ ३ ॥ नैव दंशान्न मशकान्न कीटान्न सरीसृपान् । राघवोऽपनयेद्गात्रात्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ ४ ॥ नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः । नान्यच्चिन्तयते किंचित्स तु कामवशं गतः ॥ ५ ॥ अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः । सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन्प्रतिबुध्यते ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यच्चान्यत्स्त्रीमनोहरम् । बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ॥७॥ सा सीता वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना । हनुमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः ॥ ८ ॥ अमृतं विषसंपृक्तं त्वया वानर भाषितम् । यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः ॥ ९ ॥ ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे । रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥१० ॥ विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम । सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान् ॥११॥ राक्षसानां वधंकृत्वा सूदयित्वा च रावणम् । लङ्कामुन्मथितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः ॥ १२ ॥ स वाच्यः सन्त्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते । अयं सम्वत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ॥ १३ ॥ वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंगम । रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥ १४ ॥ विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति । अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम् ॥१५॥ ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे । तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥१६॥ आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः । अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः ॥ १७ ॥ उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता । विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥ १८ ॥ चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः । जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत् ॥ १९ ॥ इति

संकल्पमानां तां रामार्थे शोककर्शिताम् । अश्रुसम्पूर्णवदनामुवाच हनुमान्कपिः ॥ २० ॥ अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव सराक्षसात् । अस्माद्दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥ २१ ॥ मैथिली तु हरिश्रेष्ठाच्छ्रुत्वा वचनमद्भुतम् । हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ २ ॥ +भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर । नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥ २३ ॥यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् । अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥ २४ +यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम् । मामितो गृह्य गच्छेत् तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ २५ ॥

टीका—सीता के वचन को सुनकर भयङ्कर पराक्रम वाला हनुमान् हाथ जोड़े हुए माथे पर रखकर यह उत्तर वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे देवि ! राघव मुझसे वचन सुनते ही वानर और ऋक्षों की बड़ी सेना लेकर जल्दी यहां आएगा ॥२॥ तेरे न दीखने के शोक से भरा हुआ राम, हे आर्ये सिंह से पीड़ित हाथी की तरह कहीं चैन नहीं पाता है ॥ ३ ॥ चित्त तेरी ओर लगे रहने के हेतु राम अपने शरीर से डांस, मच्छर, कीट और सरीसृपों को नहीं हटाता है ॥ ४ ॥ राम सदा चिन्तापरायण है, सदा शोकपरायण है, काम के वश पड़ा हुआ वह कुछ और नहीं सोचता है ॥५॥ राम लगातार अनिद्र रहता है, और सोया हुआ भी वह नरोत्तम "सीता" यह मधुर बाणी बोलता हुआ जाग उठता है ॥ ६ ॥ फल वा पुष्प वा और जो कुछ स्त्रियों को प्रिय है उसे देखकर अनेकबार "हा प्यारी" ऐसी आहें भरता हुआ बोलता है ॥७॥ पूर्णचन्द्रतुल्य मुखवाली सीता यह बचन सुनकर हनुमान् से धर्म अर्थ युक्त वचन बोली ॥ ८ ॥ हे वानर विष मिला अमृत तूने कहा है, कि राम का मन किसी दूसरी ओर नहीं, (यह अमृत)

और कि शोकपरायण है (यह विष है) ॥ ९ ॥ बड़े यश में वा दारुण विपद् में दैव पुरुष को मानों रस्सी बांधकर खींचता है ॥ १० ॥ दैव निःसन्देह रोका नहीं जासक्ता, राम लक्ष्मण और मुझको विपत्तियों से मोहित हुआ देख ॥ ११ ॥ राक्षसों को बध करके रावण को मारकर, और लङ्का को उलट पलट करके कब मुझे पति देखेगा ॥ १२ ॥ उन्हें कहना जल्दी करो, जब तक यह वर्ष पूरा नहीं होता है, तब तक ही मेरा जीवन है ॥१३॥ हे वानर यह दसवां महीना है, दो महीना शेष है, जो दुर्जन रावण ने मेरे लिये सङ्केत किया है, (इसके पीछे मार डालेगा) ॥ १४ ॥ उसके भाई विभीषण ने मेरे वापिस देने के लिये बहुत यत्न किया, पर रावण यह बुद्धि नहीं करता है ॥ १५ ॥ हे वानर स्वयं अपनी माता से भेजी हुई विभीषण की बड़ी कन्या कला ने यह मुझे बतलाया था ॥ १६ ॥ हे वानरश्रेष्ठ मुझे आशा है मुझे पति जल्दी प्राप्त होगा, क्योंकि मेरा अन्तरात्मा शुद्ध है, और राम में बहुत से गुण हैं ॥१७॥ हे वानर राम में उत्साह है, पौरुष, हृदय, दया, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव है ॥ १८ ॥ जिसने जनस्थान में बिना भाई के चौदह सहस्र राक्षसों को मारा, कौन उससे शत्रु नहीं कांपता है ॥ १९ ॥ ऐसे कहती हुई राम के लिए शोक से दुर्बल हुई सीता का मुख आंसुओं से भर गया, यह देख हनुमान् बोला ॥ २० ॥ अथवा मैं ही राक्षसों से प्राप्त हुए दुःख से तुझे अभी छुड़ाता हूं, हे अनिन्दिते मेरी पीठ पर सवार हो ॥ २१ ॥ जानकी वानरश्रेष्ठ से अद्भुत वचन सुनकर हर्ष से पुलकित सारे अङ्गों वाली हनुमान् से बोली ॥ २२ ॥ हे वानरोत्तम मैं पति की भक्ति का आदर करके राम के बिना किसी के शरीर को स्वतः स्पर्श करना नहीं चाहती ॥ २३ ॥ जो मैं बल से रावण के अङ्ग

स्पर्श को प्राप्त हुई हूं (हरने के समय) उसमें मैं असमर्थ, अनाथ बेवस हुई क्या करती ॥२४॥ यदि राम राक्षसों सहित रावण को मारकर मुझे यहां से लेजाए, तो वह उसके सदृश हो ॥२५॥

सर्ग २२ (व० ३८-४०) सीता के राम को सन्देश

मूल—ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन तोषितः । सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १ ॥ युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने । सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च ॥ २ ॥ एतत्ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः । का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद्वचनमीदृशम् ॥३॥ श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः । अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि तत् ॥ ४ ॥ ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम् । प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ॥ ५ ॥ मणिं दत्त्वा ततः सीता हनूमन्तमथाब्रवीत् । अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद्रामस्य तत्त्वतः ॥ ६ ॥ मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति । वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥ ७ ॥ स भूयस्त्वं समुत्साहचोदितो हरिसत्तम । अस्मिन्कार्यसमुत्साहे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ॥ ८ ॥ स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः । शिरसा वन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे ॥ ९ ॥ ज्ञात्वा संप्रस्थितं देवी वानरं पवनात्मजम् । बाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥ हनूमन्सिंहसंकाशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया अनामयम् ॥ ११ ॥ यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः । अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ १२ ॥ इदं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च । ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर १३

टीका—यह सुनकर उस वाक्य से सन्तुष्ट हुआ वाक्य निपुण वानर श्रेष्ठ सीता से यह वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे शुभदर्शने देवि तूने स्त्री

स्वभाव के और पतिव्रताओं के वृत्त के ठीक सदृश कहा है ॥२॥ हे देवि यह तेरा उस महात्मा की पत्नी होने के सदृश वचन है, कौन तेरे बिना हे देवि ऐसा वचन कह सक्ती है ॥ ३ ॥ राम मुझसे यह सब पूरा २ सुनेंगे, अब मुझे कोई अभिज्ञान दे, जिसको राम पहचान लें ॥४॥ तब वस्त्र के नीचे से सुन्दर दिव्य चूड़ामणि (शिरोमणि) खोलकर "यह राम को देना" ऐसा कहती हुई सीता ने हनुमान् को दिया ॥ ५ ॥ मणि देकर तब सीता हनुमान् से बोली, यह अभिज्ञान राम का पूरी तरह जाना हुआ है ॥ ६ ॥ मणि को देख करके राम तीनों को स्मरण करेंगे, मेरी माता को, मुझको और दशरथ को ॥ ७ ॥ अब फिर तू उत्साह से प्रेरा हुआ हे वानरश्रेष्ठ इस कार्योत्साह में जो आगे करना है सोच ॥ ८ ॥ भीमपराक्रमवाला पवनपुत्र तथास्तु यह प्रतिज्ञा करके सिर से वैदेही को प्रणाम करके जाने को तय्यार हुआ ॥ ९ ॥ पवनपुत्र वानर को प्रस्थित होता जानकर आंसुओं से गद्गद वाणी से देवी मैथिली वाक्य बोली ॥ १० ॥ हे हनुमन् राम लक्ष्मण को, और मन्त्रियों समेत सुग्रीव को सारों को कुशल कहना ॥ ११ ॥ और जैसे वह महाबाहु राम इस दुःख समुद्र से मुझे पार करे, वैसा ठीक २ करना ॥१२॥ यह मेरा तीव्र शोक का वेग, इन राक्षसों से झिड़कें यह राम के समीप जाकर कहो, हे वानरश्रेष्ठ तेरा मार्ग शुभ हो ॥ १३ ॥

सर्ग २३ (व० ४१-४२) हनुमान् का अशोक वनिका को उजाड़ना और किंकरों से युद्ध

मूल—स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन्पूजितस्तया । तस्माद्देशादपाक्रम्य चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥ अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा । त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते ॥ २ ॥ कार्ये कर्मणि निर्दिष्टे यो बहून्यपि साधयेत् । पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं

कर्तुमर्हति ॥३॥ न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः । यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥ ४ ॥ कथं नु खल्वद्य भवेत्सुखागतं प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह । तथैव खल्वात्मबलं च सारवत्संमानयेन्मां च रणे दशाननः ॥ ५ ॥ इदमस्य नृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम् । वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ ६ ॥ इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः । अस्मिन्भग्ने ततः कोपं करिष्यति स रावणः ॥७॥ ततस्तद्धनुमान्वीरो बभञ्ज प्रमदावनम् । मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ ८ ॥ न बभौ तद्वनं तत्र दावानलहतं यथा । व्याकुलावरणा रेजुर्विह्वला इव ता लताः॥९॥ रावणस्य समीपं तु राक्षस्यो विकृताननाः । विरूपं वानरं भीमं रावणाय न्यवेदिषुः ॥ १० ॥ अशोकवनिकामध्ये राजन्भीमवपुः कपिः । सीतया कृतसंवादास्तिष्ठत्यमितविक्रमः ॥११॥ तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि । सीता संभाषिता येन वनं तेन विनाशितम् ॥१२॥ राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः चिताग्निरिव जज्वाल कपिसंवर्तितेक्षणः ॥ १३ ॥ तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः । दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥१४॥ आत्मनः सदृशान्वीरान्किङ्करान्नाम राक्षसान् । व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः ॥१५॥ ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम् । अभिपेतुर्महाभागाः पतङ्गा इव पावकम् ॥१६ ॥ मुद्गरैः पट्टिशैःशूलैः प्रासतोमरपाणयः । परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः ॥ १७ ॥ स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः । आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम् ॥ १८ ॥ स हत्वा राक्षसान्वीरः किङ्करान्मारुतात्मजः । युद्धाकांक्षी महावीरस्तोरणे समवस्थितः ॥ १९ ॥ ततस्तस्माद्भयान्मुक्तः कतिचित्तत्र राक्षसाः । निहतान्किङ्करान्सर्वान्रावणाय न्यवेदयन् ॥ २० ॥

टीका-*जानेलगा वह वानर सीता से प्रशस्त वाणियों द्वारा पूजित किया हुआ उसदेश से दूर हटकर सोचने लगा ॥ १ ॥ यह कार्य अब थोड़ा सा रहगया है, इस काले नेत्रोंवाली को देख लिया है (अर्थात् यह प्रधान कार्य तो होगया है, अब शत्रु का बल देखना यह गौण कार्य शेष है) इसमें (साम, दाम, भेद) इन तीन उपायों को उलांघकर चौथा (दण्ड रूप) उपाय दीखता है ॥ २ ॥ जो मुख्य कार्य को करके उसके अविरोधी और भी बहुत से कार्यों को करले,वह कार्य करने के योग्य हुआ(कार्यों को) करता है ॥ ३ ॥ जगत् में छोटे से भी कार्य का पुरुष अकेला कारण साधन नहीं होता, जो अपने प्रयोजन को अनेक प्रकार से (साधना) जानता है, वह कार्य साधन में समर्थ होता है ॥ ४ ॥ कैसे अब आसान हो, कि राक्षसों के साथ प्रबल युद्ध हो, ताकि रावण रण में अपने सारवाले बल को मेरे मुकाबिले में लाए ॥ ५ ॥ सा यह इस निर्दय का नन्दन तुल्य बगीचा जो नेत्र और मन को प्यारा, नाना (वृक्ष लताओं से युक्त) है ॥ ६ ॥ इसको विध्वंस करूंगा, जैसे सूखे बन को अग्नि, इसके नष्ट होने पर रावण कोप करेगा ॥ ७ ॥ तब हनुमान् ने उस प्रमदाबन को तोड़ना आरम्भ किया, जिसमें मस्त पंछी बोल रहे थे, और अनेक बेल बूटों से युक्त था ॥ ८ ॥ तब वह बन बनाग्नि से नष्ट हुए की तरह शोभावाला न रहा, वृक्षों के टूटने से बेलें, व्याकुल स्त्रियों की तरह व्याकुल होकर गिरीं ॥ ९ ॥ तब विकृत मुखों वाली

---

* यहां से आगे जो हनुमान् के साथ युद्ध दिखलाया है, उसमें अत्युक्ति अवश्य है। सम्भव है, कि हनुमान् ने राक्षसों से द्वन्द्व युद्ध मांगा हो। द्वन्द्व युद्ध में एक के सामने एक ही खड़ा होता था, उसके हार जाने पर दूसरा सामने होसक्ता था॥

राक्षसियें रावण के पास जाकर एक भयङ्कर विरूप बानर का आना उसे बतलाती भईं ॥ १० ॥ हे राजन्! अशोक बानिका के मध्य में भयङ्कर, अपरिमित पराक्रमवाला बानर खड़ा है, जिसने सीता से बात चीत की है ॥ ११ ॥ उस क्रूर रूपवाले को क्रूर दण्ड की आप आज्ञा देने योग्य हैं, जिसने सीता से सम्भाषण किया और बन को नाश किया है ॥ १२ ॥ राक्षसियों के वचन को सुनकर राक्षसेश्वर रावण ने क्रोध से नेत्र पलटे और चिताग्नि की तरह जलने लगा ॥ १३ ॥ उस क्रुद्ध हुए के नेत्रों से जलते हुए दीपों से चिनगारियोंवाली तेल की बूंदों की तरह आंसुओं की बूंदें गिरीं ॥ १४ उस महा तेजस्वी ने अपने तुल्य अपने किंकर (नौकर) राक्षसों को हनुमान् के दबाने की आज्ञा दी ॥ १५ ॥ वह बाहर की डेउढी पर खड़े हुए उस बानर के पास पहुंचकर इसतरह उस पर टूट पड़े, जिसतरह पतिङ्गे आग्नि पर ॥१६॥ मुद्गर, पट्टिश, शूल और तोमर हाथों में लिए वह राक्षस सहसा हनुमान् को घेरकर उसके आगे खड़े होगए ॥ १७ ॥ उन शूरवीरों से चारों ओर से घिरे हुए उस महाबली ने बाहरीद्वार के पास स्थित लोहे का एक परिघ (मूसल) उठा लिया ॥१८॥ पवनपुत्र वीर उन किंकरों को मार कर वह महावीर युद्ध चाहता हुआ डेउढी पर स्थित रहा ॥ १९ ॥ तब उस भय से छूटे कई राक्षस सारे किंकरों का मरना रावण को जाकर निवेदन करते भए ॥ २० ॥

सर्ग २५ (व० ४४-४७) युद्ध में जम्बुमाली, सात मन्त्री सुतों, पांच सेना पतियों, और कुमार अक्ष का हनुमान् से बध।

मूल—संदिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली। जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धुनुर्धरः ॥ १ ॥ रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः। हनूमान्वेगसंपन्नो जहर्ष च ननाद च ॥ २ ॥ तं तोरणविट-

कूटस्थं हनूमन्तं महाकपिम् । जम्बुमाली महातेजा विव्याध निशितैः शरैः ॥ ३ ॥ स शरैः पूरिततनूः क्रोधेन महताऽऽवृतः । तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास वेगितः ॥ ४ ॥ अतिवेगो ऽतिवेगेन भ्रामयित्वा महोत्कटः । परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि ॥ ५ ॥ स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महारथः । पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्ग इव द्रुमः ॥ ६ ॥ जम्बुमालिं सुनिहतं किंकरांश्च महाबलान् । चुक्रोध रावणः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ७ ॥ ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः । निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्तसप्तार्चिवर्चसः ॥ ८ ॥ स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम् । चकार हनुमान्वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान् ॥ ९ ॥ ततस्तेष्ववपन्नेषु भूमौ निपातितेषु च । तत्सैन्यमगमत्सर्वं दिशो दश भयार्दितम् ॥ १० ॥ हतान्मन्त्रिसुतान्बुद्ध्वा वानरेण महात्मना । स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धर्षं चैव राक्षसम् ॥ ११ ॥ प्रघसं भासकर्णं च पञ्च सेनाग्रनायकान् । संदिदेश दशग्रीवो वीरान्नयविशारदान् ॥ १२ ॥ ततः कपिस्तान्ध्वजिनीपतीन्रणे निहत्य वीरान्सबलान्सवाहनान् । तथैव वीरः परिगृह्य तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥ १३ ॥ सेनापतीन्पञ्च स तु प्रमापितान्हनूमता सानुचरान्सवाहनान् । निशम्य राजा समरोद्धतोन्मुखं कुमारमक्षं प्रसमैक्षताक्षम् ॥ १४ ॥ स हेमनिष्काङ्गदचारुकुण्डलः समाससादाशुपराक्रमः कपिम् । तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः सुरासुराणामपि संभ्रमप्रदः ॥ १५ ॥ स तं समाविध्य सहस्रशः कपिर्महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः । मुमोच वेगात्पितृतुल्यविक्रमो महीतले संयति वानरोत्तमः ॥ १६ ॥ स भग्नबाहूरुकटीपयोधरः क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः । संभिन्नसंधिः प्रविकीर्णबन्धनो हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ॥ १७ ॥

टीका—तब राक्षसेन्द्र से आज्ञा दिया हुआ, प्रहस्त का पुत्र बड़ी डाढ़वाला धनुर्धारी बली जम्बुमाली निकला ॥ १ ॥ खच्चरों से युक्त रथ पर चढ़कर उसे आया देख वेग से भरा हुआ हनुमान् प्रसन्न हुआ और गर्जा ॥ २ ॥ तब डेउढ़ी के विटङ्क पर स्थित उस महावानर को महातेजस्वी जम्बूमाली ने तीक्ष्ण तीरों से बींध दिया ॥ ३ ॥ तब वह तीरों से भरे शरीरवाला, बड़े क्रोध से भरा हुआ उसी मूसल को उठाकर वेग से घुमाता भया ॥ ४ ॥ बड़े वेगवाले उस प्रबल बानर ने घुमाकर उस मूसल को जम्बूमाली की छाती पर मारा ॥ ५ ॥ वेग से ताड़ना किया हुआ वह महारथी जम्बूमाली अङ्गों के चूर २ होजाने से वृक्ष की तरह भूमि पर गिरा ॥ ६ ॥ जम्बूमाली और महाबली किंकरों का हत हुआ सुन कर रावण क्रोध से भरगया, और उसके नेत्र लाल होगये ॥ ७ ॥ तब उस राक्षसेन्द्र से प्रेरे हुए अग्नितुल्य कान्तिवाले सात मन्त्री-पुत्र उस भवन से निकले ॥ ८ ॥ वह भयंकर नाद करके उस सेना को डराता भया, और वह वीर्यवान् उन राक्षसों में वेग करता भया ॥ ९ ॥ तब उनके मरने और भूमि पर गिरने पर भय से पीड़ित वह सारी सेना दशों दिशाओं में भाग गई ॥ १० ॥ महात्मा बानर से मंत्रीसुतों का मरना सुनकर रावण ने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रघस, और भासकर्ण इन नीति निपुण सेनापतियों को आज्ञा दी ॥ ११, १२ ॥ तब वह वीर बानर उन सेनापतियों को सेना और वाहनों समेत मारकर प्रजा के नाश में काल की तरह डेउढ़ी पर उत्सव मनाता भया ॥ १३ ॥ उन पांच सेनापतियों को अनुचरों और वाहनों समेत मारा गया सुनकर राजा ने युद्ध के लिये तय्यार सामने खड़े हुए कुमार अक्ष को आज्ञा दी ॥ १४ ॥ वह सुवर्ण के हार बाहुबन्द और कुण्डलों वाला, तीव्र पराक्रमवाला

वानर के पास पहुंचा, उन दोनों का समागम अतुल हुआ जो देव दैत्यों को भी भय-प्रद था ॥ ९५ ॥ पितृ तुल्य पराक्रम वाले उस वानर ने उसको बांधकर और जैसे गरुड़ बड़े सर्प को उठाता है, इस तरह उठाकर वेग से पृथिवी पर पटका ॥ १६ ॥ उसकी भुजा, रानें, कमर और छाती टूट गई, रुधिर बहने लगा, हड्डियां चूर २ होगईं जोड़ और बन्धन टूट गये, ऐसा उस पवनपुत्र ने राक्षस को पृथिवी पर मार पटका ॥ १७ ॥

सर्ग २५ (वा० ४८-४९) मेघनाद से युद्ध हनुमान् का बन्धना और रावण के दर्शन ॥

मूल–ततस्तु रक्षोधिपतिर्महात्मा हनुमताक्षे निहते कुमारे । मनः समाधाय स देवकल्पं समादिदेशेन्द्रजितं सरोषः ॥ १ ॥ ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित्प्रतिपूजितः । युद्धोद्धतकृतोत्साहः संग्रामं सम्पद्यत ॥ २ ॥ श्रीमान्पद्मविशालाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः । निर्जगाम महातेजाः समुद्र इव पर्वणि ॥ ३ ॥ आयान्तं सरथं दृष्ट्वा पूर्णमिन्द्रध्वजं कपिः । ननाद च महानादं व्यवर्धत च वेगवान् ॥ ४ ॥ तावुभौ वेगसंपन्नौ रणकर्मविशारदौ । सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥५॥ अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित् । निजग्राह महाबाहुं मारुतात्मजमिन्द्रजित् ॥ ६ ॥ तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः । अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले ॥ ७ ॥ ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा विनिश्चेष्टमरिंदमम् । बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः ॥ ८ ॥ तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम् । राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥९॥ उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितम् । अपश्यद्राक्षसपतिं हनुमानतितेजसम् ॥ १ ॥ भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनूमान्राक्षसेश्वरम् । मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः ॥ ११ ॥ अहो रूपमहो धैर्यं महो

सत्त्व महो द्युतिः । अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता । यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः । स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता॥१२॥अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः । सर्वे बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः ॥ १३ ॥

टीका–जब हनुमान् ने कुमार अक्ष को मार दिया, तब महात्मा राक्षसपति ने मन को एकाग्र करके देवतुल्य इन्द्रजित (मेघनाद) को आज्ञा दी ॥ १ ॥ तब अपने प्यारे गणों से पूजित हुआ इन्द्रजित युद्ध में उद्धत और उत्साहित होकर संग्राम को चला ॥ २ ॥ पद्मतुल्य विशाल नेत्रोंवाला, राक्षसाधिपति महातेस्वा श्रीमान् पर्व में समुद्र की तरह बाहर निकला ॥ ३ ॥ रथ पर चढ़कर आते हुए पूर्ण इन्द्र ध्वजवाले को देखकर वानर महानाद करता हुआ गर्जा, और फूल गया॥४॥रण कर्म में निपुण वह दोनों वेग से भरे हुए सब लोगों के मन को आकर्षण करनेवाला उत्तम युद्ध करते भए ॥ ५ ॥ यह अवध्य है ऐसा जानकर अस्त्र के जानने वाले इन्द्रजित ने उस महाबाहु पवनपुत्र को (ब्रह्म) अस्त्र से बांधा ॥ ६ ॥ तब राक्षस द्वारा उस अस्त्र से बांधा हुआ वानर निश्चेष्ट होगया, और पृथिवी पर गिर पड़ा ॥७ ॥ तब शत्रुओं के दमन करनेवाले को निश्चेष्ट देखकर वह राक्षस उसे सन की रस्सियों से और वृक्षों की छालों से बांधते भए ॥ ८ ॥ मत्त हाथी की तरह बद्ध उस वानरवर को राक्षस राक्षसेन्द्र रावण के पास ले गए ॥ ९ ॥ हनुमान् ने गर्वित अति तेजस्वी राक्षसपति को देखा, जिसके चारों ओर चार राक्षस (मुख्य मन्त्री) बैठे हैं ॥ १० ॥ तेज से भखते हुए उस राक्षस को देखकर उसके तेज से मोहित हुए हनुमान् ने मन में सोचा ॥ ११ ॥ अहो रूप अहो धैर्य अहो दिलेरी, अहो तेज, अहो राक्षसराज का सब लक्षणों से

युक्त होना ॥१२॥ यदि इसमें अधर्म प्रबल न हो, तो यह राक्षस-पति इन्द्र सहित सुरलोक का भी राजा होने योग्य है॥ १३ ॥ किंतु इसके लोकनिन्दित निर्दय क्रूर कर्मों के हेतु इससे देव दानवों सहित सारे लोक कांप रहे हैं ॥ १४ ॥

सर्ग २६ (वं० ५०, ५१) हनुमान् और रावण का उत्तर प्रश्न ।

मूल—तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम् । स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम् ॥ १ ॥ कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत् । दुरात्मा पृच्छयतामेष कुतः किं वास्य कारणम् ॥२॥ वनभंगे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने । रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत्॥३॥तत्त्वमाख्याहि मा ते भूद्भयं वानर मोक्ष्यसे ॥४॥तं समीक्ष्य महासत्त्वं सत्त्ववान्हरिसत्तमः।वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाच दशाननम्॥५॥अहं सुग्रीवसन्देशादिह प्राप्तस्तवान्तिके । राक्षसेश हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् ॥ ६ ॥ भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः । धर्मार्थसंहितं वाक्यमिह चामुत्र च क्षमम् ॥ ७ ॥ तद्भवान्दृष्टधर्मार्थस्तपः कृतपरिग्रहः । परदारान्महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि॥८ ॥ नहि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु । मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः॥९॥कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् । शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि ॥ १० ॥ न चापि त्रिषु लोकेषु राजन्विद्येत कश्चन । राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥ तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुयायि च । मन्यस्व नरशार्दूल जानकी प्रतिदीयताम् ॥ १२ ॥ जनस्थानवधं बुद्ध्वा वालिनश्च वधं तथा । रामसुग्रीवसख्यं च बुद्ध्यस्व हितमात्मनः ॥ १३ ॥

टीका—पीले नेत्रों वाले सामने खड़े हुए उसको देखकर वह महाबाहु राजा क्रोध से लाल नेत्रों वाला हुआ मन्त्रिश्रेष्ठ प्रहस्त

से यह अवसर के योग्य अर्थ वाला बड़ा वचन बोला इस दुरात्मा से पूछिये, यह कहां से आया है, बाग को तोड़ने और राक्षसों को दबाने में इसका क्या प्रयोजन है, रावण की आज्ञा को सुन कर प्रहस्त वाक्य बोला ॥ १, २, ३ ॥ सच २ कहदे, तुझे भयमत हो, हे वानर तू छोड़ दिया जायगा ॥ ४ ॥ उस महा हृदय वाले रावण को देखकर महान् हृदय वाला वानरश्रेष्ठ सावधान हो अर्थ युक्त वाक्य बोला ॥ ५ ॥ मैं सुग्रीव के सन्देश से यहां तेरे पास आया हूं, हे राक्षसपति तेरे भाई वानर पति ने तुझे कुशल कहा है ॥ ६ ॥ अपने भाई महात्मा सुग्रीव के सन्देश को सुनिये, जो धर्म अर्थ से युक्त इस लोक परलोक की भलाई का वचन है ॥ ७ ॥ आप अर्थ के तत्त्व को जानते हैं, तप से आपके पास सब ऐश्वर्य है, हे महाप्राज्ञ आपको परस्त्री नहीं रोकनी चाहिये। ॥ ८ ॥ आप जैसे बुद्धिमान् धर्म विरुद्ध अनर्थ लाने वाले जड़ उखाड़ने वाले कर्मों में नहीं फंसते हैं, ॥ ९ ॥ लक्ष्मण से छोड़े हुए राम के क्रोध के अनुसारी बाणों के आगे देव और दैत्यों में से भी कौन ठहरसक्ता है ॥ १० ॥ हे राजन् तीनों लोकों में कोई भी ऐसा नहीं है, जो राम का अपराध करके सुख पाए ॥ ११ ॥ सो तीनों काल में हितकारी धर्मार्थ युक्त वचन को मानिये, जानकी नरश्रेष्ठ को वापिस दीजिये ॥१२॥ जन स्थान का बध तथा वाली का बध जानकर और राम सुग्रीव की मित्रता जानकर अपना हित समझ ॥ १३ ॥

सर्ग२७(व०५२,१३)हनुमान् की पूंछको आग लगाकर लंकामें घुमाना

मूल—स तस्य वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः । आज्ञापयद्वधं तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥१॥ वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने विभीषणः ॥ २ ॥ राजन्धर्मविरुद्धं च

लोकवृत्तेश्च गर्हितम् । तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम् ॥ ३ ॥ साधुर्वा यदि वाऽसाधुः परैरेष समर्पितः । ब्रुवन्परार्थं परवान्न दूतो वधमर्हति ॥ ४ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महात्मनः । देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत् ॥ ५ ॥ सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता । अवश्यं तु वधायान्यः क्रियतामस्य निग्रहः ॥ ६ ॥ कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम् । तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ॥ ७ ॥ ततः पश्यन्त्वमुं दीनमङ्गवैरूप्यकार्शितम् । सुमित्रज्ञातयः सर्वे बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥ ८ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः । वेष्टन्ते तस्य लाङ्गूलं जीर्णैः कार्पासिकैः पटैः ॥ ९ ॥ तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रोपपादयन् । सहस्त्रीबालवृद्धाश्च जग्मुः प्रीतिं निशाचराः ॥ १० ॥ ततस्ते संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम् । परिगृह्य ययुर्हृष्टा राक्षसाः कपिकुञ्जरम् ॥ ११ ॥ शङ्खभेरीनिनादैश्च घोषयन्तः स्वकर्मभिः । राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम् ॥ १२ ॥ ततश्छित्त्वा च तान्पाशान्वेगवान्वै महाकपिः । उत्पपाताथ वेगेन ननाद च महाकपिः ॥ १३ ॥ पुरद्वारं ततः श्रीमाञ्छैलशृङ्गमिवोन्नतम् । वीक्षमाणश्च ददृशे परिघं तोरणाश्रितम् ॥१४॥ स तं गृह्य महाबाहुः कालायसपरिष्कृतम् । रक्षिणस्तान्पुनः सर्वान्सूदयामास मारुतिः॥१५

टीका—* महात्मा वानर के वचन को सुनकर क्रोध से मूर्च्छित हुए रावण ने उसके बध की आज्ञा दी॥१॥पर विभीषण ने इस में अनुमति

---

* यहांसे आगे लंका दाह का जो प्रकरण है, इस में बहुत ही अत्युक्ति प्रतीत होती है। यह असंभावित है, कि प्रबल राक्षसों की राजधानी में अकेला हनुमान् लोगों के घरों में फिर २ कर उनको जलाता फिरे,और पकड़ा न जाए। किञ्च हनुमान् ने जो उसके प्रबल योद्धाओं का पता लगाना चाहा था, वह द्वन्द्व युद्ध से मिल

नहीं दी, क्योंकि (हनुमान्) अपना दूत होना बतला चुका था ॥ २ ॥ (उसने कहा) इस बानर को मारना हे राजन्! यह धर्म-विरुद्ध है, लोक वर्ताव से निन्दित है, और तेरे असदृश है ॥ ३ ॥ भला चाहे बुरा यह दूसरों से हमें सौंपा गया है, दूसरों के लिये कहता हुआ पराधीन दूत बध के योग्य नहीं होता है ॥ ४ ॥ उस महात्मा के बचन को सुनकर रावण भाई को देश काल के योग्य उत्तर वाक्य बोला ॥ ५ ॥ आपने ठीक कहा है, दूत का मारना निन्दित ही है, अवश्य इसके बध के स्थान कोई और दण्ड देना चाहिये ॥ ६ ॥ पूंछ बानरों का प्यारा भूषण होता है, वह इसकी जल्दी प्रदीप्त करो तब यह उस जली हुई के साथ जाए ॥ ७ ॥ तब अंग की विरूपता से दुर्बल दीन हुए इसको इसके मित्र ज्ञाति बान्धव और सुहृद् जन देखेंगे ॥ ८ ॥ उसके बचन को सुनकर क्रोध से प्रचण्ड राक्षस पुराने

चुका था। अब इसकी भी आवश्यकता न थी। हनुमान् वानर न था, किन्तु दूसरी जातियों के मुकाबिले में यह उस जाति का नाम था। इसलिये पूंछ का होना ही असंभव है, क्या फिर उसको आग लगाना। संभव यह है, कि रावण ने दूत होने से हनुमान् को अबध्य जान कर छोड़ दिया, पर जो हनुमान् ने वानरराज सुग्रीव की चढ़ाई की धमकी दी थी, उसके बदले में हनुमान् के सन्मुख वानर की पूंछ बनाकर जलाई गई, और इस तरह पर उस वानर जाति पर उपहास किया गया। जैसा कि अब रूस की आकृति रीछ बनाते हैं। हनुमान् जब छोड़ा गया, तो उसने इस जात्यपमान का बदला यह लिया, कि वानर की पूंछ से ही बे मालूम किले को आगे लगाई, यह जितलाते हुए कि वानर की पूंछ ही तुम्हारे किलों को भस्मसात् करेगी। यह अभिप्राय इतने बड़े अलंकार में प्रकट किया है। वस्तुतः न हनुमान् की पूंछ थी, न उसने घूम २ कर एक २ घर जलाया, किन्तु एक ही जगह आग लगाई उस आग से पवन द्वारा फैलकर बहुत बड़ी हानि हुई ॥

कपासी कपड़ों से उसकी पूंछ को लपेटते भए ॥ ९ ॥ तेल से तर करके उसमें आग लगाते भए, ऐसा करके स्त्री, बाल, बूढ़े सब निशाचर प्रीति को प्राप्त हुए ॥ १० ॥ तब गूढ़ अभिप्राय वाले बड़े दिलवाले, उस महावानर वानरश्रेष्ठ को पकड़कर राक्षस बहुत हर्षित हुए चले ॥ २१ ॥ शंख और भेरी की ध्वनियों के साथ उसके कर्म (राज द्रोह) का ढिंढोरा देते हुए क्रूरकर्मा राक्षस उसे लङ्का पुरी में घुमाते भए ॥ १२ ॥ तब वह वेगवान् महावानर उन फांसों को काटकर, वेग से उछलकर निकल गया, और सिंहनाद करता भया ॥ १३ ॥ तब पर्वतशृङ्ग की तरह ऊंचे पुरद्वार को देखते हुए उस श्रीमान् ने बाहर के द्वार पर मूसल देखा ॥ १४ ॥ काले लोहे से सजे हुए उसको पकड़कर उस पवनपुत्र ने फिर उन सारे रखवालों को मारा ॥ १५ ॥

सर्ग २८ (व०५४) लंका दाह ।

मूल—वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः । वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत ॥ १ ॥ किं नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह सांप्रतम् । यदेषां रक्षसां भूयः संतापजननं भवेत् ॥ २ ॥ वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः । बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् ॥ ३ ॥ ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः । भवनाग्रेषु लङ्काया विचचार महाकपिः ॥ ४ ॥ गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः । वीक्षमाणो ह्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥ ५ ॥ वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति । क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुंगवः ॥ ६ ॥ तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः । गृहेष्वृद्धिमतामृद्धिं ददाह कपिकुञ्जरः ॥ ७ ॥ सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यवान् । आससादाथ लक्ष्मीवान्रावणस्य निवेशनम् ॥ ८ ॥ ततस्तस्मिन्गृहे मुख्ये नानारत्नविभूषिते ।

मेरुमन्दरसंकाशे नाना मङ्गलशोभिते ॥९॥ प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितम्। ननाद हनुमान्वीरो युगान्तजलदो यथा ॥ १० ॥ प्रदीप्तमग्निं पवनस्तेषु वेश्मसु चारयन् । तानि काञ्चनजालानि मुक्तामणिमयानि च ॥ ११ ॥ भवनानि व्यशीर्यन्त रत्नवन्ति महान्ति च। तानि भग्नविमानानि निपेतुर्वसुधातले ॥ १२ ॥ संजज्ञे तुमुलः शब्दो राक्षसानां प्रधावताम्। स्वे स्वे गृहपरित्राणे भग्नोत्साहोज्झितश्रियाम् ॥ १३ ॥ हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना। लङ्कापुरं प्रदग्धं तद्रुद्रेण त्रिपुरं यथा ॥ २४ ॥ भङ्क्त्वा वनं महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे। दग्ध्वा लङ्कापुरीं भीमां रराज स महाकपिः ॥ १५ ॥ लङ्कां समस्तां संपीड्य लाङ्गूलाग्निं महाकपिः। निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुंगवः ॥ १६ ॥

टीका—वानर का मनोर्थ पूरा हुआ, उसने लङ्का की ओर देखा, उसका उत्साह बढ़ गया और उसने कार्यशेष का विचार किया ॥ १ ॥ अब क्या करना मुझे बाकी है, जो इन राक्षसों को फिर सन्तापजनक हो ॥ २ ॥ बगीचा विनाश किया, उत्तम राक्षस मारे, थोड़ी सी सेना भी मारी, अब किले (लङ्का) का नाश करना शेष है ॥ ३ ॥ यह सोच जलती हुई पुच्छवाला बिजलीवाले मेघके तुल्य वह महावानर लङ्का के भवनों की चोटियों पर घूमा ॥ ४ ॥ राक्षसों के घर से घर और घरों के बगीचों को देखता हुआ वह वानर निडर हो महलों पर घूमा ॥ ५ ॥ घूमते हुए महातेजस्वी वानरश्रेष्ठ ने विभीषण के घर को छोड़कर क्रम से सब दाह कर दिये ॥६॥ महायशस्वी वानरश्रेष्ठ ने उन २ महा घरों में ऐश्वर्यवालों के ऐश्वर्य को दाह किया ॥ ७ ॥ तब वह वीर्यवान् सब के घरों को उलांघ कर राक्षसेन्द्र रावण के महल पर पहुंचा, तब नाना रत्नों से भूषित मेरु मन्दर के तुल्य, नाना मङ्गलों से शोभित, उस मुख्यगृह में

॥ ९ ॥ पुच्छ के अग्र पर स्थित जलती हुई अग्नि को छोड़कर वीर हनुमान् प्रलय के मेघ की तरह गर्जा ॥ १० ॥ पवन ने उस प्रदीप्त अग्नि को उन मन्दरों में फैला दिया, वह सुनहरी जालियों वाले मोती मणियों से युक्त ॥ ११ ॥ रत्नोंवाले बड़े २ भवन विनाश होगये, अटारियें टूट २ कर पृथिवी तलपर गिर पड़ीं ॥१२॥ राक्षसों का तुमल शब्द उत्पन्न हुआ, जो अपने २ घर के बचाव में दौड़ रहे थे, पर उत्साह टूटे हुए और शोभा से हीन हुए थे ॥ १३ ॥ वेगवाले वानर महात्मा हनुमान् ने वह लंका पुर दग्ध किया, जैसे रुद्र ने त्रिपुर दग्ध किया था ॥ १४ ॥ वह महातेजस्वी बन को तोड़कर युद्ध में राक्षसों को मारकर भयंकर लंकापुरी को दग्धकर शोभायमान हुआ ॥ १५ ॥ सारी लंका को पीड़ित करके उस बानरश्रेष्ठ ने पूंछ के अग्नि को समुद्र में जाकर बुझाया ॥१६॥

सर्ग २९ (व० ५७) हनुमान् का जाम्बवान् आदि के पास वापिस जाना

मूल—नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः । प्रवरान्राक्षसान्हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ १ ॥ आकुलां नगरीं कृत्वा व्यथयित्वा च रावणम् । अर्दयित्वा महावीरान्वैदेहीमभिवाद्य च ॥ २ ॥ आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम् । पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ ३ ॥ ज्यामुक्त इव नाराचो महावेगोऽभ्युपागमत् । स तं देशमनुप्राप्तः सुहृद्दर्शनलालसः ॥४॥ निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः । बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५ ॥ जाम्बवान्स हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः । उपामन्त्र्य हरीन्सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनुमान्नात्र संशयः । न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ॥ ७ ॥ ते नगाग्राश्च नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च । प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनुमन्तं दिदृक्षवः ॥ ८ ॥ ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुंगवाः । हनुमन्तं महा-

स्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ९ ॥ उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च । प्रत्यर्चयन्हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ॥ १० ॥ हनुमांस्तु गुरून्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा । कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ॥११॥ स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादिताः । दृष्टा देवीति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ॥१२॥ ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम् । निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानराभवन् ॥ १३ ॥

टीका—बड़े नाद से गर्जता हुआ मेघ की ध्वनि तुल्य ध्वनि वाला वह महातेजस्वी प्रवर राक्षसों को मारकर अपना नाम विख्यात करके, नगरी को व्याकुल करके, रावण को तङ्ग करके, बड़े वीरों को पीड़ित करके, और सीता को अभिवादन करके फिर समुद्र के मध्य से पर्वतेन्द्र मैनाक को छूकर आया ॥१,२,३॥ ज्या से छूटे हुए तीर की तरह बड़े वेग से आया, वह सुहृदों के देखने की लालसा वाला उसी स्थान पर आपहुंचा ॥ ४ ॥ तब उस गर्जते हुए की ध्वनि को सुनकर वह वानर चारों ओर से सब अपने सुहृद् के देखने की इच्छा वाले हुए ॥ ५ ॥ वानरश्रेष्ठ जाम्बवान् अतीव प्रसन्न हुआ उन सब वानरों को बुलाकर यह वचन बोला ॥ ६ ॥ हनुमान् सर्वथा कृतकार्य होकर आया है, इसमें संशय नहीं, कार्य को किये बिना उसकी ऐसी गर्ज नहीं होसक्ती ॥ ७ ॥ तब प्रसन्न हुए सभी वानर हनुमान् को देखने की इच्छा से पर्वत की ऊंचाई से दूसरी ऊंचाई पर और चोटी से दूसरी चोटी पर पहुंचे ॥ ८ ॥ तब वह प्रसन्न मन हुए सभी वानरश्रेष्ठ महात्मा हनुमान् को घेर कर चारों ओर बैठ गये ॥ ९ ॥ फल मूल की भेंटें लिये वह वानर वानरश्रेष्ठ पवनपुत्र को पूजते भए ॥ १० ॥ हनुमान् ने जाम्बवान् आदि वृद्धों को और कुमार अङ्गद को प्रणाम किया ॥ ११ ॥

वह आदरणीय पराक्रमी उन दोनों (अङ्गद, जाम्बवान्) से आदृत हुआ और वानरों से प्रसन्न किया हुआ सीता दर्शन की सारी कथा संक्षेप से सुनाता भया ॥१२॥ तब "देखी है" इस अमृत तुल्य बड़े अर्थवाले वचन को सुनकर सारे वानर प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥

सर्ग ३० (वा० ६१, ६५) हनुमान् का राम के पास आकर सीता का संदेश देना ।

मूल—प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्र पुरःसराः । महेन्द्राग्रात्समुत्पत्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः ॥ १ ॥ सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः । नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमशतायुतम् ॥२॥ यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम् । यद्रक्षति महावीरः सदा दधिमुखः कपिः ॥३॥ ततः कुमारस्तान्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान्कपीन् । अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥४॥ भक्षयन्त सुगन्धीनि मूलानि च फलानि च । जग्मुः प्रहर्षं ते सर्वे बभूवुश्च मदोत्कटाः ॥ ५ ॥ ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् । प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ ६ ॥ युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च । प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ७ ॥ तं मणिं काञ्चनं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा । दत्वा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ८ ॥ समुद्रं लङ्घयित्वाहं शतयोजनमायतम् । अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया ॥ ९ ॥ तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः । दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ॥ १० ॥ तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तः पुरे सती । त्वयि संन्यस्य जीवन्ती रामा राम मनोरथम् ॥ ११ ॥ दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः । अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥ १२ ॥ रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया । सा मया नरशार्दूल शनैर्विश्वासिता तदा ॥ १३ ॥ ततः संभाषिता देवी सर्वमर्थं

च दर्शिता । रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा हर्षमुपागता ॥१४॥ नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्याःसदा त्वयि । एवं मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी ॥१५॥ विज्ञाप्यःपुनरप्येषरामो वायुसुत त्वया । अखिलेन यथा दृष्टमिति मामाह जानकी ॥१६॥ एष निर्यातितः श्रीमान्मयाते वारिसंभवः । एनं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ॥१७॥ जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज । ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता ॥ १८ ॥ एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः । तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः ॥१९॥ तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २० ॥ यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला । तथा ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात् ॥ २१ ॥ मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे । वधूकाले यथा बद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते ॥ २२ ॥ इतस्तु किं दुःखतरं यमिमं वारिसम्भवम् । मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतं विना ॥ २३ ॥ चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति । क्षणं वीर न जीवेयं विना तामसितेक्षणाम् ॥ २४ ॥ नय मामपि तं देशं यत्र दृष्ट्वा मम प्रिया । न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च । ॥ २५ ॥ कथं सा मम सुश्रोणी भीरुभीरुः सती तदा । भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ॥ २६ ॥

टीका—प्रीतिवाले हुए तब सब वानरश्रेष्ठ हनुमान् को आगे करके महेन्द्र की चोटी से उछलकर छलांगें मारते गए ॥ १ ॥ सब के सब राम का (रावण से) बदला लेने में निश्चित मनवाले मनस्वी, अनेक वृक्षों से पूर्ण नन्दन तुल्य बन (बगीचे) में आपहुंचे ॥२॥ जो मधुवन नामी बगीचा सुग्रीव का रक्षित था, और (सुग्रीव के मामा) महावीर दधिमुख वानर से पालित था ॥ ३ ॥ वहां कुमार (अंगद)ने जाम्बवान् आदि पूज्य वानरों को आदर पूर्वक महुओं

के खाने की आज्ञा दी ॥ ४॥ वह सुगन्धित मूल फलों को भक्षण करते हुए मस्त हुए परम हर्ष को प्राप्त भए ॥५॥ तब उन्होंने विचित्र बनों वाले प्रस्त्रवण पर्वत पर पहुंचकर महाबली राम और लक्ष्मण को सिर से प्रणाम करके ॥ ६ ॥ और युवराज अङ्गद को आगे करके सुग्रीव का अभिवादन कर सीता का समाचार कहना प्रारम्भ किया ॥७॥ दिव्य सुनहरी मणि जो अपने तेज से दीप्त होरही थी, वह राम को दे करके हनुमान् हाथ जोड़कर कहने लगा ॥ ८ ॥ सौ योजन लम्बे समुद्र को लंघकर देखने की इच्छा से जानकी सीता को ढूंढता हुआ गया ॥ ९ ॥ वहां दुरात्मा रावण की नगरी लङ्का है, जो दक्षिण समुद्र के दक्षिण तीर पर बसी है ॥ १० ॥ वहां रावण के अन्तःपुर में मैंने रमणी सती सीता तुझ में अपने मनोरथ को धारकर जीती हुई देखी है ॥ ११ ॥ राक्षसियों के मध्य में वार २ झिड़की जाती हुई देखी है, भूमि पर लेटी हुई जाड़े के आने पर पद्मिनी की तरह मुरझाए अङ्गोंवाली ॥ १२ ॥ रावण से अपने सतीत्व को बचाती हुई उसे मैंने हे नरश्रेष्ठ धीरे २ तसल्ली दी ॥ १३ ॥ तब मैंने देवी से सम्भाषण किया, और सारी बातें सुनाई, वह राम सुग्रीव की मैत्री को सुनकर हर्ष को प्राप्त भई ॥ १४ ॥ सदा तेरे नाम का जप करती है उसकी भक्ति सदा तुझ में है, इस प्रकार हे महाभाग वह जनकनन्दिनी मैंने देखी है ॥ १५ ॥ मुझे जानकी ने फिर कहा, हे वायु सुत जैसा देखा है, वह सब राम को कहना ॥१६॥ यह शोभा वाली समुद्रिय मणि उसने दी है, हे निष्पाप ! तेरे दर्शन के तुल्य इस (आपकी दी मणि) के दर्शन करके दुःख में आनन्द मनाऊंगी॥१७॥ हे दशरथ सुत मैं (वर्तमान दशवें महीने के पीछे) महीना भर और जीवन धारण करूंगी, महीने के पीछे राक्षसों के बस में पड़ी जीती नहीं

रहूंगी ॥ १८ ॥ हनुमान् से ऐसे कहा हुआ, दशरथसुत उस मणि को हृदय पर रखकर लक्ष्मण समेत बहुत रोया ॥ १९ ॥ उस मणिश्रेष्ठ को देखकर शोक से दुर्बल राम आंसु भरे नेत्रों से सुग्रीव से यह बोला ॥ २० ॥ जैसे कपिलाधेनु बछड़े के आने से स्नेह से दूध उतारती है, इसी तरह इस मणि श्रेष्ठ के देखने से मेरा हृदय पिघल आया है ॥ २१ ॥ यह मणिरत्न विवाह के समय मेरे श्वसुर ने सीता को दिया था, जोकि सिर पर बांधा हुआ अधिक शोभायमान हुआ ॥ २२ ॥ इस से बढ़कर क्या दुःख होगा, जबकि इस समुद्रिय मणि को सीता के बिना आया देखता हूं ॥ २३ ॥ सीता चिर जियेगी, यदि महीना जीती रहेगी, हे वीर मैं उस काले नेत्रोंवाली के बिना क्षण भी नहीं जिउंगा ॥ २४ ॥ मुझे भी उसी जगह ले चल जहां मेरी प्यारी देखी है, उसका समाचार पाकर मैं क्षण भी नहीं ठहर सक्ता हूं ॥ २५ ॥ कैसे वह सुन्दर कमरवाली मेरी पतिव्रता अतीव भीरु भयङ्कर घोर राक्षसियों के मध्य में रहती है ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे सुन्दरकाण्डं

समाप्तम् ।

युद्धकाण्ड-लङ्काकाण्ड

सर्ग १ (व० १,२) हनुमान् को पुरस्कार और सेना समेत एक साथ समुद्र पार होने का प्रस्ताव

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदभिभाषितम् । रामः प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतं हनूमता कार्यं सुमहद्भुवि दुर्लभम् । मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले ॥ २ ॥ इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति । यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम् ॥ ३ ॥ एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः । मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनाः ॥४॥ इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे । हनूमन्तं कृतात्मानं कृतवाक्यमुपागतम् ॥ ५ ॥ ध्यात्वा पुनरुवाचेदं वचनं रघुसत्तमः । हरीणामीश्वरस्यापि सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ ६ ॥ सर्वथा सुकृतं तावत्सीतायाः परिमार्गणम् । सागरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम ॥ ७ ॥ कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महाम्भसः । हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समागताः ॥ ८ ॥ तं तु शोकपरिद्यूनं रामं दशरथात्मजम् । उवाच वचनं श्रीमान्सुग्रीवः शोकनाशनम् ॥ ९ ॥ संतापस्य च ते स्थानं नहि पश्यामि राघव । प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः ॥१०॥ इमे शूराः समर्थाश्च सर्वतो हरियूथपाः । त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहा प्रवेष्टुमपि पावकम्॥ ११ ॥ सेतुरत्र यथा बध्येद्यथा पश्येम तां पुरीम् । तस्य राक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राघव ॥ १२ ॥ तदलं शोकमालम्ब्य क्रोधमालम्ब भूपते । निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः सर्वे चण्डस्य बिभ्यति ॥ १३ ॥

अर्थ०—हनुमान् से यथावत कहे वाक्य को सुनकर प्रीति युक्त हुए राम उत्तर वाक्य बोले ॥ १ ॥ हनुमान् ने भूमि में दुर्लभ बहुत

बड़ा कार्य किया है, जो किसी दूसरे से पृथिवीतल पर मन से भी करना अशक्य है ॥ २ ॥ किन्तु इस दीन अवस्था में यह बात मेरे मन को बहुत ही चुभती है, कि मैं इस प्रिय करनेवाले के सदृश प्रिय नहीं कर सक्ता हूं ॥ ३ ॥ हां इस समय प्रेम से गले मिलना यही अपना सर्वस्व इस हनुमान् महात्मा को देता हूं ॥ ४ ॥ यह कहकर प्रीति से हर्षित अङ्गोंवाले, वाक्य को पूरा करके आए, जितेन्द्रिय हनुमान् को राम ने गले लगाया ॥ ५ ॥ फिर थोड़ी देर सोचकर राम वानरपति सुग्रीव के सुनते हुए यह वचन बोले ॥ ६ ॥ सीता का ढूंढना तो बड़ी अच्छी तरह होचुका, पर समुद्र को पाकर फिर मेरा मन डिगा जाता है ॥ ७ ॥ कैसे बड़े जल वाले दुष्पार समुद्र के पार दक्षिण तीर पर वानर इकट्ठे पहुंचेंगे ॥ ८ ॥ तब श्रीमान् सुग्रीव शोक से दबे हुए दशरथ सुत राम को शोकनाशक वचन बोला ॥ ९ ॥ हे राघव जब कि सीता की सुध मिल गई, और शत्रु का घर जाना गया, तो अब मैं आपके शोक का स्थान नहीं देखता हूं ॥ १० ॥ यह शूरवीर समर्थ, वानर सेनापति सब के सब आपका प्रिय करने के लिये अग्नि में भी प्रवेश करने का उत्साह रखते हैं (तब समुद्र का पार होना कौन बड़ी बात है) ॥ ११ ॥ सो हे राघव अब जैसे समुद्र के ऊपर पुल बन्धजाए और जैसे उस राक्षसराज की पुरी को देखें, वैसे आप करें ॥१२॥ इसलिये आप शोक को त्यागकर क्रोध का आलम्बन कीजिये, क्षत्रिय जो उद्योगी नहीं रहते, वह गिर जाते हैं, प्रचण्ड से ही सब डरते हैं ॥ १३ ॥

सर्ग २ (व० ४) लंका पर चढाई, समुद्रतक की यात्रा।

मूल०—ततोऽब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः । अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय ॥ १ ॥ सीता श्रुत्वाभियानं मे आशा-

मेष्यति जीविते ॥ २ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनी-पतिः । व्यादिदेश महावीर्यो वानरान्वानरर्षभः ॥ ३ ॥ ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः । जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ॥ ४ ॥ आप्लुवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः । क्ष्वेलन्तो निनदन्तश्च जग्मुर्वै दक्षिणां दिशम् ॥ ५ ॥ पुरस्ताद‍ृषभो नीलो वीरः कुमुद एव च । पन्थानं शोधयन्ति स्म वानरैर्बहुभिः सह ॥ ६ ॥ मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च । बलि-भिर्बहुभिर्भीमैर्वृतः शत्रुनिवर्हणः ॥ ७ ॥ ततः पादपसंबाधं नाना-वनसमायुतम् । सह्यपर्वतमासाद्य वानरास्ते समारुहन् ॥ ८ ॥ काननानि विचित्राणि नदीप्रस्रवणानि च । पश्यन्नपि ययौ रामः सह्यस्य मलयस्य च ॥९॥ महेन्द्रमथ संप्राप्य रामो राजीवलोचनः । आरुरोह महाबाहुः शिखरं द्रुमभूषितम् ॥ १० ॥ ततः शिखरमारुह्य रामो दशरथात्मजः । कूर्ममीनसमाकीर्णमपश्यत्सलिलाकुलम् ॥११॥ ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम् । आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् ॥१२॥ अथ धौतोपलतलां तोयौघैः सहसोत्थितैः । वेलामासाद्य विपुलां रामो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥ एते वयमनु-प्राप्ताः सुग्रीव वरुणालयम् । इहेदानीं विचिन्ता सा या नः पूर्वमु-पस्थिता ॥ १४ ॥ तदिहैव निवेशोऽस्तु मन्त्रः प्रस्तूयतामिह । यथेदं वानरबलं परं पारमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ स्वां स्वां सेनां समु-त्सृज्य मा च कश्चित्कुतो व्रजेत् । गच्छन्तु वानराः शूराः ज्ञेयं छन्नं भयं च नः ॥ १६ ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सहलक्ष्म-णः । सेनां निवेशयत्तीरे सागरस्य द्रुमायुते ॥ १७ ॥ विरराज समीपस्थं सागरस्य च तद्बलम् । मधुपाण्डुजलः श्रीमान्द्वितीय इव सागरः ॥ १८ ॥ दूरपारमसंबाधं रक्षोगणनिषेवितम् । पश्यन्तो वरुणावासं निषेदुर्हरियूथपाः ॥ १९ ॥ हसन्तमिव फेनौघैर्नृत्यन्त-

मिव चोर्मिभिः । चन्द्रोदय समुद्भूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम् ॥ २० ॥ सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् । सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषमदृश्यत ॥२१॥ संपृक्तं नभसाप्यम्भः संपृक्तं च नभोऽम्भसा । तादृग्रूपे स्म दृश्येते तारारत्नसमाकुले ॥ २२॥ समुत्पतितमेघस्य वीचिमालाकुलस्य च । विशेषो न द्वयोरासीत्सागरस्याम्बरस्य च ॥

टीका—तब माहातेजस्वी सच्चे पराक्रमी राम बोले, हे सुग्रीव इसी समय चढ़ाई करने को तय्यार होना चाहिए ॥ १ ॥ सीता मेरी चढ़ाई को सुनकर जीवन की आशा धारेगी ॥२॥ राघव के वचन को सुनकर वानरश्रेष्ठ महाबली सेनापति सुग्रीव ने वानरों को (चढ़ाई की) आज्ञा दी ॥३॥ तब राम वानरराज से और लक्ष्मण से पूजित हुए सेना सहित दक्षिण दिशा को चले ॥४॥ कूदते फांदते गर्जते खम ठोकते और सिंहनाद करते हुए वानर दक्षिण दिशा को चले ॥५॥ आगे २ वीर ऋषभ, नील और कुमुद यह और बहुत से वानरों के साथ मार्ग को शोधते जारहे थे ॥ ६ ॥ मध्य में राजा सुग्रीव और शत्रुओं के मारनेवाले राम लक्ष्मण बहुत से भयङ्कर बलवानों से युक्त हुए गये ॥ ७ ॥ तब वृक्षों से भरे हुए नाना वनों से युक्त सह्य पर्वत को पाकर वह वानर उस पर चढ़ गए ॥ ८ ॥ सह्य और मलय के विचित्र वनों और नदियों के झरनों को देखते हुए राम गये ॥९॥ उसके पीछे महाबाहु कमलनेत्र राम महेन्द्र पर पहुंचकर वृक्षों से भूषित उसके शिखर पर चढ़े ॥ १० ॥ शिखर पर चढ़कर दशरथसुत राम ने कूर्म मछलियों से पूर्ण समुद्र के दर्शन किये ॥११॥ वह सब महापर्वत सह्य और मलय को उलांघकर क्रमशः भयङ्कर ध्वनिवाले समुद्र पर पहुंचे ॥ १२॥ अब समुद्र से उठे जल प्रवाहों से धोई हुई शिलाओं वाले विशाल किनारे पर पहुंचकर राम यह वचन बोले ॥ १३ ॥ हे

सुग्रीव यह हम समुद्र पर आगए हैं, यहां अब फिर वही पहली चिन्ता हमारे सामने है ॥ १४ ॥ सो यहां ही छावनी डालिए, और विचार कीजिये, जिससे कि यह वानर सेना परले पार पहुंच जाए ॥ १५ ॥ अपनी २ सेना को छोड़कर मत कोई कहीं जाए, हां कुछ चुने हुए वानर जाएं, और छिपे हुए भय (खतरे) का पता लगाते रहें ॥ १६ ॥ राम के वचन को सुनकर सुग्रीव और लक्ष्मण ने वृक्षों से भरे हुए सागर तीर पर सेना की छावनी डालदी ॥ १७ ॥ सागर के समीप टिकी हुई वह सेना ऐसी सुन्दर शोभायमान होती थी, मानों कि मधु के से पीले रङ्गवाला दूसरा शोभाशाली सागर है ॥ १८ ॥ दूर किनारे वाले, अथाह, राक्षस-गणों से सेवित सागर को देखते हुए वानर सेनापति टिके ॥१९॥ जो सागर के फेन समूह से मानों हंस रहा है, लहरों से नाच रहा है, और चन्द्र के उदय होने पर (लहर २ में पड़ते हुए) प्रतिचन्द्रों (चन्द्रप्रतिबिम्बों) से भरा हुआ प्रतीत होता है ॥२०॥समुद्र आकाशके समान और आकाश समुद्र के समान होने से समुद्र और आकाश निर्विशेष (एक से) दीखते थे ॥२१॥ (समुद्र का) जल आकाश के (प्रतिबिम्ब) से मिला हुआ, और आकाश (ऊंची लहरों के) जल से मिला हुआ, इसप्रकार दोनों तारे और रत्नों से भरे हुए एक से रूपवाले दीखते थे ॥२२॥ आकाश मेघमाला से भरा हुआ और समुद्र तरङ्गमाला से भरा हुआ होने से दोनों में विशेष नहीं था ॥ २३ ॥

सर्ग २ (व० ६,७] रावण का राक्षसों के साथ विचार

मूल—लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम् । राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणेव महात्मना ॥ १ ॥ अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः । रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः ॥ २ ॥

वानराणां हि वीराणां सहस्रैः परिवारितः। तारिष्यति च सुव्यक्तं राघवः सागरं सुखम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्नेवंविधे कार्ये विरुद्धे वानरैः सह। हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं संमन्त्र्यतां मम ॥ ४ ॥ इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः। ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ ५ ॥ सुमहन्नो बलं कस्माद्विषादं भजते भवान्। त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिताः पन्नगा युधि ॥ ६ ॥ विनिपत्य च यक्षौघान्विक्षोभ्य विनिगृह्य च। त्वया कैलासशिखराद्विमानमिदमाहृतम् ॥ ७ ॥ मयेन दानवेन्द्रेण त्वद्भयात्सख्यमिच्छता। दुहिता तव भार्यार्थे दत्ता राक्षसपुंगव ॥ ८ ॥ तेषां वीर्यगुणोत्सा- हैर्न समौ राघवौ रणे। प्रसह्य ते त्वया राजन्हताः समरदुर्जयाः॥९॥ तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान्। अयमेको महाराज इन्द्रजित्क्षपयिष्यति ॥१०॥ राजन्नापदयुक्तेयमागता प्राकृताज्जनात्। हृदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥ ११ ॥

(अब कवि लङ्का का वृतान्त कहता है)—

टीका—लङ्का में इन्द्रके तुल्य महात्मा हनुमान् से किये भय लाने वाले घोर कर्म को देखकर राक्षसेन्द्र ॥ २ ॥ लज्जा से मुख कुछ नीचे करके राक्षसों से बोला। सहस्रों धीर बानरों से घिरा हुआ राम हमारे रोकने के लिये लङ्का की ओर आरहा है यह स्पष्ट दिखाई देता है, कि राम आसानी से समुद्र पार भी होजाएगा ॥ २,३ ॥ बानरों के साथ ऐसे विरुद्ध कार्य के आने पर मेरे पुर और सेना के विषय में हित विचारिये ॥४॥ राक्षसेन्द्र से ऐसे कहे हुए महाबली राक्षस हाथ जोड़कर राक्षसेन्द्र रावण से बोले ॥५॥ हमारा बल (सेना) बहुत बड़ा है, आप क्यों उदास होते हैं, आपने भोगवती में जाकर नाग जीते हैं ॥ ६ ॥ आप यक्षों के समूहों को गिराकर हिलाकर और जीतकर कैलास की चोटी से विमान लाए हैं ॥७॥

दानवराज मयने आपके डर से मैत्री की इच्छा से आपकी पत्नी होने के अर्थ अपनी कन्या दी है ॥८॥ राम रण में उनके वीर्य और उत्साह के तुल्य नहीं, जो हे राजन् आपने युद्ध में दुर्जय लोग बल से जीते थे ॥ ९ ॥ अथवा हे महाराज आप ठहरे रहें, आपको श्रम से क्या, यह अकेला इन्द्रजित् सारे वानरों को मार खपाएगा ॥ १० ॥ हे राजन् यह एक प्राकृतजन के अनुचित विपत्ति आप मन में न रक्खें, आप सब को मारेंगे ॥११॥

सर्ग ४ (व० ९, १०) विभीषण की सीता को वापिस देने की रावण को सम्मति।

मूल—तान्गृहीतायुधान्सर्वान्वारयित्वा विभीषणः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पुनः प्रत्युपवेश्य तान् ॥ १ ॥ अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते। तस्य विक्रमकालांस्तान्युक्तानाहुर्मनीषिणः ॥२॥ प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च । विक्रमास्तात सिद्ध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृताः ॥ ३ ॥ अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषुं बले स्थितम् । जितरोषं दुराधर्षं तं धर्षयितुमिच्छथ ॥ ४ ॥ समुद्रं लङ्घयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम् । गतिं हनूमतो लोके को विद्यात्तर्कयेत वा ॥ ५ ॥ बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च निशाचराः । परेषां सहसावज्ञा न कर्तव्या कथंचन ॥ ६ ॥ नतुक्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना । वैरं निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली ॥ ७ ॥ प्रसादये त्वां बन्धुत्वात्कुरुष्व वचनं मम। हितं तथ्यं त्वहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली ॥ ८ ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः । विसर्जयित्वा तान्सर्वान्प्रविवेश स्वकं गृहम् ॥९॥ ततः प्रत्युषसि प्राप्ते भीमकर्मा विभीषणः। अग्रजस्यालयं वीरः प्रविवेश महाद्युतिः॥१०॥ स पूज्यमानो रक्षोभिर्दीप्यमानं स्वतेजसा । आसनस्थं महाबाहुर्ववन्दे धनदानुजम् ॥ ११ ॥ स रावणं महात्मानं विजने मन्त्रिसंनिधौ । उवाच हितमत्यर्थं वचनं हेतुनिश्चितम् ॥ १२ ॥ रोचये

वीर वैदेही राघवाय प्रदीयताम् । प्रापणे चास्य मन्त्रस्य निवृत्ताः सर्वमन्त्रिणः ॥ १३ ॥ अवश्यं च मया वाच्यं यद्दृष्टमथवा श्रुतम् । संविधाय यथान्यायं तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ १४ ॥ हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितं व्यतीतकालायतिसम्प्रति क्षमम् । निशम्य तद्वाक्यमुपास्थितज्वरः प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥ १५ ॥ भयं न पश्यामि कुतश्चिदप्यहं न राघवः प्राप्स्यति जातु मैथिलीम् । सुरैः सहेन्द्रैरपि संगरे कथं ममाग्रतःस्थास्यति लक्ष्मणाग्रजः ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्त्वा सुरसैन्यनाशनो महाबलः संयति चण्डविक्रमः । दशाननो भ्रातरमात्मवादिनं विसर्जयामास तदा विभीषणम् ॥ १७ ॥

टीका--शस्त्र पकड़कर तय्यार हुए उनसब को रोककर विभीषण फिर उनको बिठलाकर वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे तात जो काम तीन उपायों (साम, दाम, दण्ड) से न होसके, बुद्धिमान् पुरुष वहां पराक्रम दिखलाने का समय बतलाते हैं ॥ २ ॥ प्रमादी और दैव से मारे हुए शत्रुओं में पराक्रम फलते हैं, जब परीक्षा करके विधि से लगाए गए हों ॥ ३ ॥ पर तुम कैसे उस अप्रमादी बल में स्थित, जयशील, क्रोध को जीते हुए, दुर्धर्ष को दबाना चाहते हो ॥ ४ ॥ भयंकर नद नदियों के पति समुद्र को लंघकर हनुमान् का यहां आना लोक में कौन जान सक्ता, वा ख्याल कर सक्ता था ॥ ५ ॥ हे राक्षसो शत्रुओं के भी बल और वीर्य अपरिमेय हैं, किसी तरह भी उनकी एकाएक अवज्ञा नहीं करनी चाहिये ॥६॥ उस वीर्यवान् धर्मानुयायी के साथ निरर्थक बैर युक्त नहीं, उसे मैथिली दे दीजिये ॥ ७ ॥ बन्धु होने से आपको प्रसन्न करता हूं मेरा वचन मानिये, मैं हित और सत्य कहता हूं, सीता उसे दे दीजिए ॥ ८ ॥ विभीषण के वचन को सुनकर राक्षसेश्वर रावण उन सब को विसर्जन करके अपने घर में प्रविष्ट हुआ ॥ ९ ॥

दूसरे दिन प्रभात के समय भीषण कर्मोंवाला महातेजस्वी वीर विभीषण बड़े भाई के घर में प्रविष्ट हुआ ॥ १० ॥ राक्षसों से पूजित उस महाबाहु ने अपने तेज से दीप्यमान, आसन पर बैठे हुए, रावण को प्रणाम किया ॥ ११ ॥ और एकान्त में मन्त्रियों के समक्ष उसने महात्मा रावण को हेतुओं से निश्चित अतीव हितकारी वचन कहा ॥ १२ ॥ हे वीर मुझे यही पसन्द आता है, कि सीता राम को दे दीजिए, इस मन्त्र के आप तक पहुंचाने में सब मन्त्री रुकते हैं ॥ १३ ॥ पर मुझे अवश्य कहना चाहिए, जो मैंने समझा वा सुना है, सो जैसा ठीक हो, वैसा कीजिए ॥ १४ ॥ इस गम्भीर अर्थवाले नर्म हेतुओं से युक्त भूत भविष्यत् और वर्त्तमान में फलप्रद हित वचन को सुनकर विषयासक्त रावण ने सन्तप्त होकर यह उत्तर दिया ॥१५॥ मैं किसी से भय नहीं देखता हूं, राम कभी सीता को नहीं पाएगा, युद्ध में इन्द्र सहित देवताओं के साथ भी राम मेरे आगे कैसे खड़ा होगा ॥ १४ ॥ यह कहकर देवताओं की सेना के नाश करनेवाले रण में प्रचण्ड पराक्रमवाले महाबली रावणने सत्यवादी भाई विभीषण को विसर्जन किया॥१७॥

सर्ग ५ (व० १२) रावण का सभा करना

मूल—स बभूव कृशो राजा मैथिलीकाममोहितः । अतीव कामसंपन्नो वैदेहीमनुचिन्तयन् ॥ १ ॥ अतीतसमये काले तस्मिन्वै युधि रावणः । अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च प्राप्तकालममन्यत ॥ २ ॥ स हेमजालविततं मणिविद्रुमभूषितम् । उपगम्य विनीताश्वमारुरोह महारथम् ॥३॥ तमास्थाय रथश्रेष्ठं महामेघसमस्वनम् । प्रययौ रक्षसां श्रेष्ठो दशग्रीवः सभां प्रति ॥ ४ ॥ असिचर्मधरा योधाः सर्वायुधधरास्ततः । राक्षसा राक्षसेन्द्रस्य पुरस्तात्संप्रतस्थिरे ॥ ५ ॥ नानाविकृतवेषाश्च नानाभूषणभूषिताः । पार्श्वतः पृष्ठतश्चैनं परिवार्य

ययुस्तदा ॥ ६ ॥ राक्षसैः स्तूयमानः सजयाशीर्भिररिंदमः । आससाद महातेजाः सभां विरचितां तदा ॥ ७ ॥ मन्त्रिणश्च यथामुख्या निश्चितार्थेषु पण्डिताः । अमात्याश्च गुणोपेताः सर्वज्ञा बुद्धिदर्शनाः ॥ ८ ॥ समीयुस्तत्र शतशः शूराश्च बहवस्तथा । सभायां हेमवर्णायां सर्वार्थस्य सुखाय वै ॥ ९ ॥ ततो महात्मा विपुलं सुयुग्यं रथं वरं हेमविचित्रिताङ्गम् । शुभं समास्थाय ययौ यशस्वी विभीषणः संसदमग्रजस्य ॥ १० ॥

टीका—सीता की कामना से मोहित वह राजा दुर्बल हुआ अत्यन्त कामना से भरा हुआ, सीता का ही चिन्तन करता हुआ ॥ १ ॥ अब समय बीत जाने पर रावण युद्ध में मन्त्री और सुहृदों के साथ सलाह का समय समझता भया ॥२॥ वह सुवर्ण की जालियों वाले मणि और गुलियों से भूषित सिधे हुए घोड़ों वाले महारथ पर आकर सवार हुआ ॥३॥ बड़े मेघ के तुल्य ध्वनि वाले उस रथ पर चढ़ कर वह राक्षसश्रेष्ठ रावण सभा की ओर गया ॥ ४ ॥ ढाल तलवार और सारे शस्त्रों से सजे हुए राक्षस योधे राक्षसेन्द्र के आगे २ चले ॥ ५ ॥ और नाना प्रकार के अलग २ वेषों वाले नाना भूषणों से भूषित योधे पार्श्वों से और पीछे से घेर कर चले ॥ ६ ॥ राक्षसों से जय की असीसें लेता हुआ शत्रुओं का दमन करने वाला, वह महातेजस्वी सजी हुई सभा में आया ॥ ७ ॥ निश्चित विषयों में निपुण मुख्य २ मन्त्री गुणों से युक्त, सर्वज्ञ, बुद्धिदर्शी, अमात्य (प्राइवेट मन्त्री) ॥ ८ ॥ सैकड़ों और अनेक शूरवीर उस सुनहरी सभा में सब विषयों की आसानी के लिये इकट्ठे हुए ॥ ९ ॥ तब महात्मा विभीषण सोने से विचित्रित अङ्गों वाले उत्तम घोड़ों वाले शुभ रथ पर चढ़कर बड़े भाई की सभा को गया ॥ १० ॥

सर्ग ६ (व० १३) राज सभा में राजा और मन्त्रियों का विचार ।

मूल–स तां परिषदं कृत्स्नां समीक्ष्य समितिंजयः । प्रबोधयामास तदा प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ १ ॥ सेनापते यथा ते स्युः कृतविद्याश्चतुर्विधाः । योधा नगररक्षायां तथा व्यादेष्टुमर्हसि ॥ २ ॥ ततो विनिक्षिप्य बलं सर्वं नगरगुप्तये । प्रहस्तः प्रमुखे राज्ञो निषसाद जगाद च ॥ ३ ॥ विहितं बहिरन्तश्च बलं बलवतस्तव । कुरुष्वाविमनाः क्षिप्रं यदभिप्रेतमस्ति ते ॥ ४ ॥ प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा राजा राज्यहितैषिणः । सुखेप्सुः सुहृदां मध्ये व्याजहार स रावणः ॥ ५ ॥ प्रियाप्रिये सुखे दुःखे लाभालाभे हिताहिते । धर्मकामार्थकृच्छ्रेषु यूयमर्हथ वेदितुम् ॥ ६ ॥ सर्वकृत्यानि युष्माभिः समारब्धानि सर्वदा । मन्त्रकर्मनियुक्तानि न जातु विफलानि मे ॥ ७ ॥+अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ । भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः सुनीतं चाभिधीयताम् ॥ ८ ॥ तस्य कामपरीतस्य निशम्य परिदेवितम् । कुम्भकर्णः प्रचुक्रोध वचनं चेदमब्रवीत् ॥९॥ सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव । विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः ॥ १० ॥+न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन । न स संतप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥ ११ ॥+अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च । क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ १२ ॥ यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कर्माण्यभिचिकीर्षति । पूर्वं चापरकार्याणि स न वेद नयानयौ ॥ १३ ॥ त्वयेदं महदारब्धं कार्यमप्रतिचिन्तितम् । अहं समीकरिष्यामि हत्वा शत्रूंस्तवानघ ॥ १४ ॥ रावणं क्रुद्धमाज्ञाय महापार्श्वो महाबलः । मुहूर्तमनुसंचिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥ कुम्भकर्णः सहास्माभिरिन्द्रजिच्च महाबलः । प्रतिषेधयितुं शक्तौ सवज्रमपि वज्रिणम् ॥ १६ ॥ इह प्राप्तान्वयं सर्वाञ्छत्रूंस्तव महाबल । वशं

शस्त्रप्रतापेन करिष्यामो न संशयः ॥ १७ ॥ एवमुक्तस्तदा राजा महापार्श्वेन रावणः । तस्य संपूजयन्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत ॥१८॥ न मत्तो निर्गतान्बाणान्द्विजिह्वान्पन्नगानिव । रामः पश्यति सङ्ग्रामे तेन मामभिगच्छति ॥ १९ ॥ तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः । उदितः सविता काले नक्षत्राणां प्रभामिव ॥ २० ॥

टीका—वह रणों के जीतनेवाला, उस भरी सभा की ओर देखकर सेनापति प्रहस्त को आज्ञा देता भया ॥ १ ॥ हे सेनापते चारों प्रकार के (पैदल, घुड़सवार, हाथीसवार, और रथसवार) सुशिक्षित योधे नगर की रक्षा में तत्पर करो ॥ २ ॥ तब सारी सेना को नगर की रक्षा के लिये अलग २ लगाकर प्रहस्त राजा के सामने बैठगया और बोला ॥ ३ ॥ सेना के मालिक की सेना बाहर अन्दर लगादी है, आप निश्चिन्त होकर अपना अभिप्रेत कीजिये ॥ ४ ॥ राज्य के हितैषी प्रहस्त के वचन को सुनकर सुखाभिलाषी रावण सुहृदों के मध्य में, बोला ॥ ५ ॥ प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख हानि, लाभ, हित, अहित में, धर्म और अर्थ की कठिनाइयों में, आप जानने योग्य हैं ॥ ६ ॥ आपने सदा विचार पूर्वक मेरे सारे कार्य आरम्भ किये हैं, और कभी विफल नहीं हुए हैं ॥ ७ ॥ सीता देनी नहीं है, और दशरथ के दोनों पुत्रों को मारना है, यह सोच कर आप विचार कीजिये और सुनीति युक्त कहिये ॥८॥ कामके वस हुए (रावण) के रोने को सुनकर कुम्भकर्ण क्रुद्ध हुआ और यह वचन बोला ॥ ९ ॥ हे महाराज ! यह सब आपका अतुल काम है, इस काम की सलाह आरम्भ में ही हमारे साथ करनी थी ॥ १० ॥ हे रावण जो न्याय से राजकार्यों को करता है, वह निश्चित मति वाला राजा पीछे संतप्त नहीं होता है ॥ ११ ॥ विना उपाय के जितने उलटे काम किये जाते हैं वह सब दूषित होजाते हैं, जैसे

अशुद्ध हृदयवालों की हवियें ॥ १२ ॥ जो पहले करने योग्य कर्मों को पीछे करना चाहता है, और पीछे करनेवालों को पहले, वह नीति अनीति को नहीं जानता है ॥ १३ ॥ आपने यह विन सोचे बड़ा काम आरम्भ कर दिया है, हे निष्पाप! अब मैं तेरे शत्रुओं को मारकर इसे ठीक करूंगा ॥१४॥ रावण को क्रुद्ध जानकर महाबली महापार्श्व थोड़ी देर सोचकर हाथ जोड़कर बोला ॥१५ महाबली कुम्भकर्ण और इन्द्राजित् हमें साथ लेकर वज्रवाले इन्द्र को भी रोकने में समर्थ हैं ॥ १६ ॥ सो हे महाबल यहां आए आपके सारे शत्रुओं को हम शस्त्र के प्रताप से बस में करेंगे ॥ १७ ॥ महापार्श्व से ऐसे कहा हुआ राजा रावण उसके वचन को पूजता हुआ यह वचन बोला ॥ १८ ॥ राम रण में मेरी ओर से निकले दो जिह्वा वाले सांपों के तुल्य बाणों को नहीं देखता है, इससे मेरी ओर आ रहा है ॥१९॥ सो मैं बड़ी सेना से युक्त हुआ इसकी सेना को नाशकर दूंगा, जैसे सूर्य समय पर उदय हुआ नक्षत्रों की प्रभा को ॥२०॥

सर्ग ७ (व० १४) विभीषण की सीता को वापिस देने की सम्मति।

मूल—निशाचरेन्द्रस्य निशम्य वाक्यं स कुम्भकर्णस्य च गर्जितानि। विभीषणो राक्षसराजमुख्यमुवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम् ॥ १ ॥ वृतो हि बाह्वन्तरभोगराशिश्चिन्ताविषः सुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः। पञ्चांगुली पञ्चशिरोऽतिकायः सीतामहाहिस्तव केन राजन् ॥ २ ॥ यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा रामेरिता राक्षसपुंगवानाम्। वज्रोपमा वायुसमानवेगाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ ३ ॥ निशम्य वाक्यं तु विभीषणस्य ततः प्रहस्तो वचनं बभाषे। न नो भयं विद्म न दैवतेभ्यो न दानवेभ्योऽप्यथवा कदाचित् ॥ ४ ॥ कथं नु रामाद्भविता भयं नो नरेन्द्रपुत्रात्समरे कदाचित् ॥ ५ ॥ प्रहस्त वाक्यं त्वहितं निशम्य विभीषणो राजहितानुकाङ्क्षी। ततो महार्थं

वचनं बभाषे धर्मार्थकामेषु निविष्टबुद्धिः ॥ ६ ॥ वधस्तु रामस्य मया त्वया च प्रहस्त सर्वैरपि राक्षसैर्वा । कथं भवेदर्थविशारदस्य महार्णवं तर्तुमिवाप्लवस्य ॥ ७ ॥ धर्मप्रधानस्य महारथस्य इक्ष्वाकुवंशप्रभवस्य राज्ञः । पुरोऽस्य देवाश्च तथाविधस्य कृत्येषु शक्तस्य भवन्ति मूढाः ॥ ८ ॥ अयं च राजा व्यसनाभिभूतो मित्रैरमित्रप्रतिमैर्भवद्भिः । अन्वास्यते राक्षसनाशनार्थे तीक्ष्णः प्रकृत्या ह्यसमीक्ष्यकारी ॥ ९ ॥ इदं पुरस्यास्य सराक्षसस्य राज्ञश्च पथ्यं ससुहृज्जनस्य । सम्यग्घि वाक्यं स्वमतं ब्रवीमि नरेन्द्रपुत्राय ददातु मैथलीम् ॥ १० ॥ परस्य वीर्यं स्वबलं च बुद्ध्वा स्थानं क्षयं चैव तथैव वृद्धिम् । तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुद्ध्या वदेत्क्षमं स्वामिहितं स मन्त्री ॥ ११ ॥

टीका–राक्षसेन्द्र के वचन को और कुम्भक की गर्जनाओं को सुनकर विभीषण राक्षसराज का हितकारी गम्भीर तात्पर्य वाला मुख्य बचन बोला ॥ १ ॥ हे राजन् ! यह सीता रूपी बड़ा सांप जिसकी छाती फण है, जिसकी ओर ख्यालही विष है, जिसकी मुसकराहट ही तीक्ष्ण दाढ़ें हैं, पांच अंगुलियें पांच सिर हैं, किस निमित्त आपने हाथ में पकड़ा है ॥ २ ॥ जब तक वायु के समान वेगवाले राम से प्रेरे हुए वज्र तुल्य बाण राक्षसवरों के सिरों को नहीं पकड़ते हैं तब तक ही सीता राम को दे दीजिये ॥ ३ ॥ विभिषण के वाक्य को सुनकर प्रहस्त बोला, हम न देवताओं से न दानावों से कभी भय समझते हैं ॥ ४ ॥ कैसे फिर हमें नरेन्द्रपुत्र राम से रण में कभी भय होसक्ता है ॥ ५ ॥ प्रहस्त के अहित वाक्य को सुनकर राजा का हित चाहनेवाला धर्म अर्थ काम में स्थित बुद्धिवाला विभीषण बड़े अर्थवाला वचन बोला ॥ ६ ॥ हे प्रहस्त राम जोकि अपना काम करने में बड़ा निपुण है, उसका

बध बिना नौका से समुद्र तरने की तरह मुझ से वा तुझसे वा सारे राक्षसों से कैसे हो सक्ता है ॥ ७ ॥ धर्म प्रधान, महारथी, इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए, अपने कार्यों में शक्तिमान् राजा राम के सामने देवता भी मूढ़ होजाते हैं ॥ ८ ॥ यह राजा व्यसनों के वश में हुआ स्वभाव से ही तीक्ष्ण और बिन सोचे करने वाला है, तिस पर शत्रु तुल्य आप जैसे मित्र राक्षसों के नाशार्थ उसे सलाह दे रहे हैं ॥९॥ यह इस पुर के तथा सुहृद जनों और दूसरे राक्षसों समेत राजा के लिये पथ्य ठीक वचन जो अपना मत है, कहता हूं, वह यह, कि सीता नरेन्द्रपुत्र को दे दीजिये ॥१०॥ शत्रु का बल, और अपना बल, देशकाल,क्षय और वृद्धि यह सब बातें बुद्धि से सोचकर जो स्वामी का हित योग्य वाक्य कहे, वही मन्त्री है ॥ ११ ॥

सर्ग ८ (श्लो० १५, १६) विभीषण और इन्द्रजित का विवाद

मूल—बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्तान्निशम्य यत्नेन विभीषणस्य । ततो महात्मा वचनं बभाषे तत्रेन्द्रजिन्नैर्ऋतयूथमुख्यः ॥ १ ॥ किं नाम ते तात कनिष्ठ वाक्यमनर्थकं वै बहुभीतवच्च । अस्मिन्कुले योऽपि भवेन्न जातः सोऽपीदृशं नैव वदेन्न कुर्यात् ॥ २ ॥ सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण धैर्येण शौर्येण च तेजसा च।एकः कुलेऽस्मिन्पुरुषो विमुक्तो विभीषणस्तातकनिष्ठः एषः ॥ ३ ॥ अथेन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य महौजसस्तद्वचनं निशम्य । ततो महार्थं वचनं बभाषे विभीषणः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥ ४ ॥ न तात मन्त्रे तव निश्चयोऽस्ति बालस्त्वमद्याप्यविपक्वबुद्धिः । तस्मात्त्वयाप्यात्मविनाशनाय वचोऽर्थहीनं बहु विप्रलप्तम् ॥ ५ ॥ धनानि रत्नानि सुभूषणानि वासांसि दिव्यानि मणींश्च चित्रान् । सीतां च रामाय निवेद्य देवीं वसेम राजन्निह वीतशोकाः ॥ ६ ॥ सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभी-

षणम् । अब्रवीत्पुरुषं वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥७॥ वसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च । न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥ ८ ॥ नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः । प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः ॥ ९ ॥ श्रूयन्ते हस्तिभिर्गीताः श्लोकाः पद्मवने पुरा । पाशहस्तान्नरान्दृष्ट्वा शृणु त्वं गदतो मम ॥१०॥

टीका—बृहस्पति के तुल्य मतिवाले विभीषण के वचन को सुनकर राक्षसयूथ का मुखिया महात्मा इन्द्रजित् वचन बोला ॥ १० ॥ हे छोटे तात आप अति भीरु की तरह अनर्थक वाक्य कहते हैं(पौलस्त्य वंशियों की तो बात ही दूर है,पर) जो इस वंश में भी उत्पन्न न हुआ हो, वह भी न ऐसा कहेगा, न करेगा ॥ २ ॥ इस कुल में एक ही पुरुष सत्व, वीर्य, पराक्रम, धैर्य, शौर्य, और तेज से हीन हुआ है, और वह यह छोटा तात विभीषण है ॥ ३ ॥ तब इन्द्रसदृश दुर्जेय बड़े पराक्रमी के वचन को सुनकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण बड़े अर्थवाला वचन बोला ॥ ४ ॥ हे तात विचार में तेरी बुद्धि नहीं पहुंचती, तू बाल अपक बुद्धि है, इसी से तूने भी अपने नाश के लिये अर्थ से हीन बहुत बात कह डाली है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! हम धन, रत्न, भूषण, दिव्य वस्त्र, विचित्र मणियें और देवी सीता राम को अर्पण करके यहां वीतशोक हुए बसें ॥ ६ ॥ सुन्दर हित वाक्य कहते हुए विभीषण को काल से प्रेरा हुआ रावण कठोर वाक्य बोला ७ ॥ शत्रु के साथ, वा क्रुद्ध हुए नाग के साथ बसे, पर अपने शत्रु के सेवी मित्र के साथ न बसे ॥ ८ ॥ एक दूसरे की विपत्तियों में सदा प्रसन्न होने वाले वैरी ढके हुए हृदयवाले ज्ञाति के लोग बड़े भयानक होते हैं ॥ ९ ॥ कहावत है, कि पूर्वकाल पद्मवन में हाथियों ने हाथ में फांस लिये मनुष्यों को देखकर श्लोक गाए थे, उनको सुन ॥ १० ॥

+नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः। घोराःस्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥ ११ ॥ उपायमेते वक्ष्यान्ति ग्रहणे नात्र संशयः। कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयं सुकष्टं विदितं च नः ॥ १२ ॥ विद्यते गोषु संपन्नं विद्यते ज्ञातितो भयम्। विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः ॥ १३ ॥ ततो नेष्टमिदं सौम्य यदहं लोकसत्कृतः। ऐश्वर्यमभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः ॥ १४ ॥ यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दवः। न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम् ॥ १५ ॥ योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर। अस्मिन्मुहूर्ते नभवेत्त्वां तु धिक्कुलपांसन ॥ १६ ॥ इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः। उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥ १७ ॥ अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः सत्वं भ्रान्तोऽसि मे राजन्ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥ १८ ॥ ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो नच धर्मपथे स्थितः। इदं हि परुषं वाक्यं न क्षमाम्यग्रजस्य ते ॥ १९ ॥ सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन। न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः ॥ २० ॥ +सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ २१ ॥ तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता ॥ २२ ॥ आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम्। स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना ॥ २३ ॥ निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा न रोचते ते वचनं निशाचर। परान्तकाले हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥ २४ ॥

टीका—कि हमारे लिये न अग्नि, न दूसरे शस्त्र, न फांसें, भयानक हैं, किन्तु यह घोर, स्वार्थ से प्रेरे हुए ज्ञाति के लोग हमारे लिये भय लाने वाले हैं ॥ ११ ॥ यह हमारे पकड़ने में उपाय बतलाएंगे, इसमें संशय

नहीं, सब भयों से ज्ञाति का भय हमें बड़ा डरावना प्रतीत होता है ॥ १२ ॥ गौओं में बहुत दूध, स्त्रियों में चञ्चलता, ब्राह्मणों में तप सम्भावित है, और ज्ञातियों से भय सम्भावित है ॥ १३ ॥ सो हे सौम्य यह तुझे प्रिय नहीं हुआ है, जो कि मैं लोक में आदृत हूं, ऐश्वर्य से पूर्ण हूं, और शत्रुओं के सिर पर (पाओं रखकर) ठहरा हुआ हूं ॥ १४ ॥ जैसे कमल के पत्तों पर पड़ी जल की बून्दें लगाव को प्राप्त नहीं होती हैं, वैसे अनार्यों में सौहार्द ॥ १५ ॥ हे निशाचर यदि और कोई इस समय ऐसा वाक्य कहता, तो वह जीता न रहता, तुझे तो धिक्कार है हे कुल कलङ्क ॥ १६ ॥ ऐसे कठोर वचन कहा हुआ न्यायवादी विभीषण गदा हाथ में लिये चार राक्षसों सहित उठ खड़ा हुआ ॥ १७ ॥ और क्रुद्ध हुआ विभीषण यह वाक्य बोला, तू भूला हुआ है हे राजन् ! कहो मुझे जो २ कुछ चाहता है ॥ १८ ॥ बड़ा भाई माननीय है, पितृ-तुल्य है, पर धर्म मार्ग पर स्थित नहीं है । मैं तुझ बड़े भाई के भी इतने कठोर वाक्य को नहीं सहसक्ता हूं ॥ १९ ॥ हे रावण हितैषी से उत्तम नीति युक्त कहे वाक्य को काल के वस में हुए अजितेन्द्रिय पुरुष स्वीकार नहीं करते हैं ॥ २० ॥ हे राजन् ! सदा प्रिय बोलने वाले पुरुष सुलभ हैं, अप्रिय पथ्य का कहने वाला और सुनने वाला दोनों दुर्लभ हैं ॥ २१ ॥ आप बड़े हैं, क्षमा कीजिये, जो आपका हित चाहते हुए, मैंने कहा है ॥ २२ ॥ सर्वथा अपनी और राक्षसों समेत इस पुरी की रक्षाकर, आपको स्वस्ति हो, मैं जाउंगा, आप मेरे बिना सुख से रहें ॥ २३ ॥ मैं हितैषी होकर रोकता हूं, हे राक्षस आपको मेरा वचन पसन्द नहीं आता है, दूर हुई आयु वाले पुरुष अन्तकाल के आने पर सुहृदों से कहे हित वाक्य को ग्रहण नहीं करते हैं ॥ २४ ॥

सर्ग ९ (व० १७, १८) विभीषण का रामकी शरण आना।

मूल—इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः। आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ १ ॥ स उवाच महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान्। रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः ॥ २ ॥ तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥ ३ ॥ तेन सीता जनस्थानाद्धृता हत्वा जटायुषम्। रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥ ४ ॥ तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम्। साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः ॥ ५ ॥ स च न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः। उच्यमानं हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम् ॥ ६ ॥ सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः। त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥ ७ ॥ निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने। सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥ ८ ॥ एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः। लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः। चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः ॥ १० ॥ राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः। महर्तुं मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि चानघ ॥ ११ ॥ सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा रामो महाबलः। समीपस्थानुवाचेदं हनूमत्प्रमुखान्कपीन् ॥ १२ ॥ +मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन। दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥ १३ ॥ सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च। ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः ॥ १४ ॥ स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः। ईदृशं व्यसनं प्राप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत् ॥ १५ को नाम स भवेत्तस्य यमेष न परित्यजेत् ॥ १६ ॥

टीका—रावण का छोटा भाई रावण को यह कठोर बचन कहकर बहुत जल्दी वहां आया, जहां लक्ष्मण सहित राम थे ॥ १ ॥ वह

महान् महाप्राज्ञ ऊंचे स्वर से बोला, रावण नाम दुर्वृत्त राक्षस जो राक्षसों का राजा है ॥ २ ॥ मैं उसका छोटा भाई विभीषण हूं ॥ ३ ॥ वह (बड़ा भाई) जनस्थान से जटायु को मारकर सीता को हरलाया है, वह दीन बेबस हुई वहां रुकी है, और राक्षसियों से सुरक्षित है ॥ ४॥ मैंने उसे युक्तियुक्त अनेक वाक्यों से बार २ दर्शाया, कि सीता राम को दे दीजिये यही भला है ॥ ५ ॥ पर काल से प्रेरे रावण ने कहे हुए हित वाक्य को नहीं ग्रहण किया, जैसे निकट मृत्युवाला पुरुष औषध को ॥६॥ उलटा उसने मुझे कठोर कहा, और दास की तरह अपमानित किया, सो मैं स्त्री पुत्रों को छोड़कर राघव की शरण आया हूं ॥ ७ ॥ अब सारे लोगों को शरण देनेवाले महात्मा राघव को जल्दी बतलाओ, कि विभीषण आया है ॥ ८ ॥ यह सुनकर सुग्रीव जल्दी चलता हुआ लक्ष्मण के सामने जोश से भरा वचन राम से बोला ॥९॥ रावण का छोटा भाई विभीषण चार दूसरे राक्षसों सहित आपकी शरण आया है ॥ १० ॥ (मैं जानता हूं) रावण से भेजा हुआ, माया से ढका हुआ, कुटिल बुद्धि से यहां आया है, कि आपके विश्वस्त होने पर आप पर प्रहार करे ॥ ११ ॥ सुग्रीव के उस वाक्य को सुनकर महाबली राम अपने पास स्थित हनुमान् आदि वानरों से बोले ॥ १२ ॥ मित्रभाव से प्राप्त हुए को मैं कभी त्याग नहीं सक्ता यद्यपि उसका दोष हो, पर भलों से यह (शरणागत का त्याग) निन्दित है ॥ १३ ॥ सुग्रीव इस वाक्य को सुन और सोचकर तब शुभतर वाक्य बोला ॥ १४ ॥ चाहे यह निशाचर दुष्ट हो, वा अदुष्ट हो, पर ऐसे दुःख में जो भाई को त्याग सक्ता है ॥ १५ ॥ उसके लिये कौन हो सक्ता है, जिसको यह न त्यागेगा ॥ १६ ॥

सर्ग १० (　) राम का विभीषण को स्वीकार करना ।

मूल०वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य तु । इति होवाच काकुत्स्थो वाक्यं सत्यपराक्रमः ॥ १७ ॥ अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च । न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः ॥ १८ ॥ अस्ति सूक्ष्मतरं किंचिद्यथात्र प्रतिभाति मा । प्रत्यक्षं लौकिकं चापि वर्तते सर्वराजसु ॥ १९ ॥ अमित्रास्तत्कुलीनाश्च प्रातिदेश्याश्च कीर्तिताः । व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्माद्यामिहागतः ॥ २० ॥ यस्तु दोषस्त्वया प्रोक्तो ह्यादानेऽरिबलस्य च । तत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं श्रृणु ॥ २१ ॥ न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकाङ्क्षी च राक्षसः । पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद् ग्राह्यो विभीषणः ॥ २२ ॥ ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमार्षिणा । श्रृणु गाथा पुरा गीता धार्मिष्ठा सत्यवादिना ॥२३॥+बद्ध्वाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् । न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप ॥ २४ ॥ +आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः । अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥२५॥ +एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे । अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥२६॥ +सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ २७ ॥ +आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया । विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणःस्वयम् ॥२८॥ रामस्य तु वचः श्रुत्वा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः । प्रत्यभाषत काकुत्स्थं सौहार्देनाभिपूरितः ॥२९॥ किमत्र चित्रंधर्मज्ञ लोकनाथशिखामणे । यत्त्वमार्यं प्रभाषेथाः सत्त्ववान्सत्पथे स्थितः ॥ ३० ॥ मम चाप्यन्तरात्मायं शुद्धं वेत्ति विभीषणम् । अनुमानाच्च भावाच्च सर्वतः सुपरीक्षितः ॥ ३१ ॥ तस्मात्क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव । विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः ॥ ३२ ॥

टीका--वानराधिपति के वचन को सुनकर, और सब की ओर देखकर सच्चे पराक्रमवाला राम यह वाक्य बोला ॥१७॥ शास्त्रों को पढ़े विना, और वृद्धों का सेवन किये विना, ऐसा नहीं कहा जासक्ता, जो बानरराज ने कहा है ॥१८॥ इसमें एक सूक्ष्म बात है, जैसा कि मुझे प्रतीत होता है, जो लौकिक है, सब राजाओं में प्रत्यक्ष है ॥१९॥ शत्रु उस कुल के और साथ वाले देश के होते हैं, जोकि व्यसनों में प्रहार किया करते हैं, इसलिये यह यहां आया है ॥२०॥ जो दोष आपने शत्रु सेना के ग्रहण करने में कहा है उसमें शास्त्र-नुसार कहता हूं, सुनिये ॥२१॥ हम उसकी कुल के नहीं हैं, और विभीषण राज्याभिलाषी है, यह लोग समझदार होते है (भाई के विनाश में इसे राज्य मिलसक्ता है हमारे विनाश में नहीं) इसलिए विभीषण ग्राह्य है, ॥ २२ ॥ कण्व ऋषि के पुत्र सत्यवादी परमर्षि कण्डु ने पूर्वकाल में एक गाथा गाई है, सो सुन ॥ २३ ॥ दोनों हाथ जोड़े हुए दीन याचना करते हुए शरणागत शत्रु को भी हे परं-तप दयाभाव के लिये कभी न मारे ॥ २४ ॥ चाहे पीड़ित हो, वा दृप्त हो शरणागत हुए शत्रुकी अपने प्राण त्यागकर भी बुद्धिमान्को रक्षा करनी चाहिये ॥२५॥ इसप्रकार शरणागत की रक्षा न करना बड़ा दोष है, स्वर्ग और यश का विरोधी और बल वीर्य का नाशक है ॥२६॥ एकबार ही जो "मैं तेरा हूं" ऐसी याचना करता हुआ शरणागत हुआ है, ऐसे सब लोगों को मैं अभय देता हूं, यह मेरा व्रत है ॥२७॥ इसे लेआ हे बानरश्रेष्ठ मैंने इसे अभय दिया है, विभीषण हो, यदि वा हे सुग्रीव स्वयम् रावण भी हो ॥ २८ ॥ राम के वचन को सुनकर बानरेश्वर सुग्रीव सौहार्द से भरा हुआ राम को उत्तर देता भया ॥ २९ ॥ हे धर्मज्ञ राजा-ओं के चूड़ामणि इस में क्या आश्चर्य है, जो सन्मार्ग में स्थित

शुद्ध हृदय आप आर्य बात कहते हैं ॥३०॥ मेरा भी अन्तरात्मा विभीषण को शुद्ध जानता है अनुमान से और हृदय के भाव से सब तरह सुपरीक्षित है ॥३१॥ इसलिये जल्दी वह महाप्राज्ञ विभीषण हमारे बराबर हो, हमारी मैत्री को प्राप्त हो ॥३२॥

सर्ग ११ (व० २९) विभीषण का शरणागत होना

मूल—राघवेणाभये दत्ते सन्नतो रावणानुजः । पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥ १ ॥ अब्रवीच्च तदा वाक्यं रामं प्रति विभीषणः । अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ॥ २ ॥ भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः । परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ॥३॥ भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥४॥ वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव । आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम् ॥५॥ एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाक्लिष्टकर्मणा । रावणस्य बलं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥६॥ अवध्यः सर्वभूतानां गन्धर्वोरगपक्षिणाम् । राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात्स्वयंभुवः ॥ ७ ॥ रावणानन्तरो भ्राता मम ज्येष्ठश्च वीर्यवान् । कुम्भकर्णो महातेजाः शक्रप्रतिबलो युधि ॥ ८ ॥ राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि ते श्रुतः । कैलासे येन समरे मणिभद्रः पराजितः ॥९॥ संग्रामे सुमहद्व्यूहे तर्पयित्वा हुताशनम् । अन्तर्धानगतः श्रीमानिन्द्रजिद्धन्ति राघव ॥१०॥ महोदरमहापार्श्वौ राक्षसश्चाप्यकम्पनः । अनीकपास्तु तस्यैते लोकपालसमा युधि ॥११॥ विभीषणस्य तु वचस्तच्छ्रुत्वा रघुसत्तमः । अन्वीक्ष्य मनसा सर्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥१२॥ यानि कर्मापदानानि रावणस्य विभीषण । आख्यातानि च तत्त्वेन ह्यवगच्छामि तान्यहम् ॥१३॥+अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम् । राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे

॥१४॥ रसातलं वा प्रविशेत्पातालं वापि रावणः । पितामहसकाशं वा न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥ १५॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । शिरसा वन्द्य धर्मात्मा वक्तुमेवं प्रचक्रमे ॥१६॥ राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे । करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम् ॥ १७ ॥ इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् । अब्रवील्लक्ष्मणं प्रातः समुद्राज्जलमानय ॥१८॥ तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम् । राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् । मध्ये वानरमुख्यानां राजानं राजशासनात् ॥२०॥

टीका—राम से अभय दिये जाने पर झुका हुआ रावण का छोटा भाई चारों राक्षसों समेत पाओं पर आ गिरा ॥१॥ तब विभीषण ने राम के प्रति यह वाक्य कहा, मैं रावण का छोटा भाई हूं उससे अपमानित हुआ हूं ॥२॥ आप जोकि सब लोगों के शरण लेने योग्य हैं, उनकी शरण पड़ा हूं, मैंने लङ्का मित्र और धन सब छोड़ दिये हैं ॥३॥ आपके अधीन मेरा राज्य जीवित और सुख है । उसके इस वचन को सुनकर वाणी से उसको तसल्ली देकर और नेत्रों से मानों पीते हुए राम यह वचन बोले, मुझे राक्षसों का बलाबल ठीक २ कहो ॥४,५॥ सुखदायी कर्मोंवाले राम से ऐसे कहा हुआ वह राक्षस रावण का सारा बल कहने लगा ॥६॥ हे राजपुत्र रावण ब्रह्मा के वरदान से गन्धर्व नाग और पक्षी इन सब लोगों से अवध्य है ॥७॥ रावण से छोटा मेरा बड़ा भाई वीर्यवान् महातेजस्वी कुम्भकर्ण है, जो युद्ध में इन्द्र के प्रतिबल है ॥८॥ हे राम उसका सेनापति प्रहस्त आपने सुना होगा, जिसने कैलाश पर युद्ध में मणिभद्र को पराजित किया था ॥९॥ और हे राघव श्रीमान् इन्द्रजित् बड़े दलोंवाले संग्राम में

अग्नि को (होम से) तृप्त करके अदृश्य होकर (शत्रुओं को) मारा करता है ॥ १० ॥ महोदर, महापार्श्व और अकम्पन राक्षस यह युद्ध में लोकपालों के तुल्य उसके सेनानी हैं ॥ ११ ॥ विभीषण के बचन को सुनकर राम मन से सब सोचकर यह बचन बोले ॥ १२ ॥ हे विभीषण रावण की जो कर्म्म शक्तियां आपने बतलाई हैं, उनको मैं ठीक २ जानता हूं ॥ १३ ॥ मैं पुत्र समेत रावण को और प्रहस्त को मारकर तुझे राजा बनाऊंगा, यह मेरा सत्य सुनिये ॥ १४ ॥ रावण रसातल वा पाताल में प्रवेश कर जाए, अथवा ब्रह्मा के पास चला जाए,पर अब मुझ से वह जीता नहीं छूटेगा ॥ १५ ॥ सुखदायी कर्मोंवाले राम के बचन को सुन कर वह धर्मात्मा सिर से बन्दना करके फिर कहने लगा ॥ १६ ॥ राक्षसों के बध में और लङ्का के धर्षण में मैं अपने प्राणोंके अनुसार सहायता करूंगा, और सेना में प्रविष्ट हूंगा ॥ १७ ॥ ऐसे कहते हुए विभीषण को गले लगाकर प्रसन्न हुए राम लक्ष्मण से बोले, समुद्र से जल लाओ ॥१८॥ उस से हे मान के देनेवाले मेरी प्रसन्नता में इस महाप्राज्ञ विभीषण को राक्षसों के राजा होने के लिये जल्दी अभिषेक दो ॥१९॥ ऐसे कहे हुए लक्ष्मण ने वानर श्रेष्ठों के मध्य में राजाज्ञा से विभीषण को अभिषेक दिया

सर्ग १२ [व०२२] समुद्र पर पुल बांधना

मूल-ततो विसृष्टा रामेण सर्वतो हरिपुङ्गवाः । उत्पेतुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः ॥१॥ ते नगान्नगसंकाशाःशाखामृगगणर्षभाः । बभञ्जुः पादपांस्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम् ॥ २ ॥ हस्तिमात्रान्महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः । पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥ ३ ॥ प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धृतम् । समुत्ससर्प चाकाशमवासर्पत्ततः पुनः ॥ ४ ॥ शिलानां क्षिप्यमाणानां

शैलानां तत्र पात्यताम् । बभूव तुमलः शब्दस्तदा तस्मिन्महोदधौ ॥ ५ ॥ स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये । शुशुभे शुभगः श्रीमान्स्वातीपथ इवाम्बरे ॥६॥ दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् । ददृशुर्देवगन्धर्वा नलसेतुं सुदुष्करम् ॥ ७ ॥ तमचिन्त्यमसह्यं च ह्यद्भुतं लोमहर्षणम् । ददृशुः सर्वभूतानि सागरे सेतुबन्धनम् ॥ ८ ॥ विशालः सुकृतः श्रीमान्सुभूमिः सुसमाहितः । अशोभत माहान्सेतुः सीमन्त इव सागरे ॥ ९ ॥ अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान्रामः सलक्ष्मणः । जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः ॥ १० ॥ घोषेण महता घोषं सागरस्य समुच्छ्रितम् । भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती हरिवाहिनी ॥११॥ वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना । तीरे निविविशे राज्ञा बहुमूलफलोदके ॥ १२ ॥ तदद्भुतम् राघवकर्म दुष्करं समीक्ष्य देवाः सह सिद्धचारणैः । उपेत्य रामं सहसा महर्षिभिस्तमभ्यषिञ्चन्सुशुभैर्जलैः पृथक् ॥ १३ ॥ जयस्व शत्रून्नरदेव मेदिनीं ससागरां पालय शाश्वतीः समाः । इतीव रामं नरदेवसत्कृतं शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥ १४ ॥

टीका—तब राम से आज्ञा दिये हुए, सहस्रों वानरश्रेष्ठ प्रसन्न हुए सब ओर बड़े जङ्गल में गये ॥१॥ वह पर्वततुल्य वानरश्रेष्ठ पर्वतों से वृक्षों को तोड़कर समुद्र की ओर खींच लाये ॥ २ ॥ और वह महाबली महाकाय वानर हाथी जितने बड़े २ पत्थरों को और पर्वतों को यन्त्रों से उखाड़कर ढोते भए ॥ ३ ॥ फैंके जाते हुए पर्वतों से जल वेग से उठकर आकाश की ओर ऊंचा चढ़जाता और फिर नीचे आता ॥ ४ ॥ फैंकी जाती हुई शिलाओं और गिरते हुए पर्वतों का उस महासागर में तुमल शब्द होता था ॥५॥ इसप्रकार नल से बनाया, मगरों के घर समुद्र पर वह पुल आकाश में स्वातीपथ की तरह सुन्दर सुहावना शोभा पाता भया ॥ ६ ॥

दस योजन चौड़ा सौ योजन लम्बा बड़ा दुष्कर नल सेतु देव गन्धर्वों ने देखा ॥ ७ ॥ उस अचिन्त्य, असह्य, रोंगटे खड़े करनेवाले अद्भुत सेतु बन्ध को सब भूतों ने देखा ॥ ८ ॥ विशाल, सुन्दर बना हुआ शोभावाला, सुन्दर भूमिवाला, एक जैसा वह महान् सेतु सागर के सीमन्त (सेंधे) की तरह शोभायमान होता था ॥ ९ ॥ अब धर्मात्मा श्रीमान् राम धनुष धारे हुए लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ उस सेना के आगे २ चले ॥ १० ॥ समुद्र से पार उतरती हुई बानर सेना महा ध्वनि से समुद्र की गम्भीर भयङ्कर ध्वनि को ढांप लेती भयी ॥ ११ ॥ वानरों की वह सेना नलसेतु से पार हुई, बहुत मूल फल और जलवाले तीर पर राजा ने छावनी डाली ॥ १२ ॥ राम के उस अद्भुत दुष्कर कर्म को देख सिद्ध और चारणों सहित देवता और महर्षि राम के पास आ शुभजलों से उसे अलग २ अभिषेक करते भये ॥ १३ ॥ हे नरदेव सागर समेत सारी पृथिवी को जीत, और अनेक वर्ष उसे पालन कर, इसप्रकार वह विविध शुभवचनों से मनुष्य और देवताओं से सत्कृत राम को पूजते भये ॥ १४ ॥

सर्ग १३ [व०२५] रावणका शुकसारण के द्वारा रामसेनाका पता लगाना

मूल-सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे । अमात्यौ रावणः श्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ ॥ १ ॥ समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम् । अभूतपूर्वं रामेण सागरं सेतुबन्धनम् ॥ २ ॥ भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ । परिमाणं च वीर्यं च ये च मुख्याः प्लवङ्गमाः ॥ ३ ॥ ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवङ्गमाः । निवेशं च यथा तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥ ४ ॥ रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च । लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथः

॥ ५ ॥ इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ।हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम् ॥ ६ ॥ निविष्टं निविशच्चैव भीमनादं महाबलम् । तद्बलार्णवमक्षोभ्यं ददृशाते निशाचरौ ॥ ७ ॥ तौ ददर्श महातेजाः प्रतिच्छन्नौ विभीषणः आचचक्षे स रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ ॥ ८ ॥ तस्यैतौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुकसारणौ । लङ्कायां समनुप्राप्तौ चारौ परपुरञ्जय ॥ ९ ॥ तौ दृष्ट्वा व्यथितौ रामं निराशौ जीविते तथा । कृताञ्जलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः ॥ १० ॥ आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहितावुभौ । परिज्ञातुं बलं सर्वं तादिदं रघुनन्दन ॥ ११ ॥ तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः । अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सर्वभूतहिते रतः ॥ १२ ॥ यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमाहिताः । यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम् ॥१३॥अथ किञ्चिददृष्टं वा भूयस्तद्द्रष्टुमर्हथः । विभीषणो वा कात्स्न्र्येन पुनः संदर्शयिष्यति ॥ १४ ॥ न चेदं ग्रहणं प्राप्य भेतव्यं जीवितं प्रति ।न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ च न दूतौ वधमर्हतः ॥ १५ ॥ प्रविश्य महतीं लङ्कां भवद्भ्यां धनदानुजः । वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम ॥१६॥यद्बलं त्वं समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि । तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यश्च सबान्धवः ॥ १७ ॥ श्वः काल्ये नगरीं लङ्कां सप्रकारां सतोरणाम् । रक्षसां च बलंपश्य शरैर्विध्वंसितं मया॥१८॥इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ । जयेति प्रतिनन्द्यैनं राघवं धर्मवत्सलम् ॥ १९ ॥ आगम्य नगरीं लङ्कामब्रूतां राक्षसाधिपम् । विभीषणगृहीतौ तु वधार्थं राक्षसेश्वर ॥२०॥दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामिततेजसा ॥ २१ ॥ प्रहृष्टयोधा ध्वजिनी महात्मनां वनौकसां संप्रति योद्धुमिच्छताम् । अलं विरोधेन शमो विधीयतां प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ २२ ॥

टीका-दशरथसुत राम जब सेना समेत समुद्र पार हुए, तो रावण ने

शुक सारण इन दोनों मन्त्रियों को कहा ॥ १ ॥ वानरसेना सारे दुस्तर सागर से पार होगई है, राम ने सागर पर अभूतपूर्व पुल बान्ध लिया है ॥ २ ॥ तुम दोनों बेमालूम वानरों की सेना में प्रवेश करके सेना का परिमाण और मुख्य २ वानर–॥ ३ ॥ जो युद्ध में आगे लगने वाले हैं, और जो दूसरे शूरवीर वानर हैं, और जैसे उन महात्मा वानरों का निवेश (तरतीब) है ॥ ४ ॥ और राम का और वीर लक्ष्मण का व्यवसाय शक्ति और शस्त्र ठीक २ जानने योग्य हो ॥ ५ ॥ ऐसे आज्ञा दिये हुए शुक और सारण राक्षस वीर वानरों का रूप धारणकर वानरों की सेना में प्रविष्ट हुए ॥६॥ भयङ्कर गर्जती हुई बड़ी सेना कुछ व्यूह (सफ) बांध चुकी और कुछ बांध रही थी, जब कि उन दोनों राक्षसों ने उस अक्षोभ्य सेना के सागर को देखा ॥ ७ ॥ ढके हुए उन दोनों शुक सारण को विभीषण ने देख लिया, और राम को बतलाया ॥ ८ ॥ हे शत्रुओं के किलों को जीतने वाले ! यह राक्षसेन्द्र के मन्त्री शुक और सारण गुप्तचर होकर लङ्का से आए हैं ॥९॥ वह दोनों राम को देखकर दुःखित हो, और जीवित में निराश हो, हाथ बांधे डरते हुए यह वचन बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य रघुनन्दन हम दोनों रावण से भेजे हुए इस सारे बल को जानने के लिये आए हैं ॥ ११ ॥ उनके वचन को सुनकर सब लोगों के हित में रत दशरथसुत राम हंसकर यह वाक्य बोले ॥ १२ ॥ यदि सारा बल और हमारी स्थिति को देख लिया है, यथोक्त कर लिया है, तो यथेच्छ जाइए ॥ १३ ॥ और यदि कुछ देखना रहगया हो, तो वह सारा देखलो, अथवा विभीषण ही तुम्हें सब कुछ दिखला देगा ॥ १४ ॥ पकड़ा जाने पर तुम्हें अपने जीवन के विषय में डर नहीं होना चाहिये, क्योंकि शस्त्र छोड़े हुए दूत बध के योग्य नहीं होते हैं ॥ १५ ॥

लङ्का में प्रवेश करके आपने कुबेर के छोटे भाई राक्षसों के राजा को यह मेरा बचन यथोक्त कहना ॥ १६ ॥ जिस बल का सहारा लेकर तूने मेरी सीता को हरा है, वह बल अब सेना और बान्धवों के साथ मिलकर यथारुचि दिखला ॥ १७ ॥ कल सवेरे कोट और डेवढ़ियों समेत लङ्का और राक्षसों की सेना को मेरे बाणों से नष्ट होता हुआ तू देखेगा ॥ १८ ॥ इस प्रकार सन्देश दिये हुए शुक सारण राक्षस "जय हो" इस प्रकार धर्मप्रिय राघव को प्रतिनन्दन करके ॥१९॥ लङ्का नगरी में आकर राक्षसपति से बोले, हे राक्षसेश्वर विभीषण ने हम दोनों बध के लिये पकड़ लिये ॥ २० ॥ पर देखकर अपरिमित तेजवाले धर्मात्मा राम ने छोड़ दिए ॥२१॥ इस समय युद्ध करना चाहते हुए वानर महात्माओं की सेना के सब योधे बड़े प्रसन्न हैं, विरोध मिटाइये, शान्ति कीजिये, जानकी दशरथसुत राम को दे दीजिये ॥ २२ ॥

सर्ग १४ (घ० २६, २९, ३१) और गुप्तचरों से सेना का पता लगाना

मूल—तद्वचः सत्यमक्लीबं सारणेनाभिभाषितम् । निशम्य रावणो राजा पर्यभाषत सारणम् ॥ १ ॥ यदि मामभियुञ्जीरन्देवगन्धर्वदानवाः । नैव सीतामहं दद्यां सर्वलोकभयादपि ॥ २ ॥ एवमुक्त्वा तु सव्रीडौ तौ दृष्ट्वा शुकसारणौ । रावणं जयशब्देन प्रतिनन्द्याभिनिःसृतौ ॥३॥ अब्रवीच्च दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम् । उपस्थापय मे शीघ्रं चारानिति निशाचरः ॥ ४ ॥ ततश्चाराः सन्त्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात् । तानब्रवीत्ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ५ ॥ चरान्प्रत्यायिकाञ्शूरान्धीरान्विगतसाध्वसान् । इतो गच्छत रामस्य व्यवसायं परीक्षितुम् ॥ ६ ॥ चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् । कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥७॥ ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ । प्रच्छन्ना ददृशु-

गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ ॥ ८ ॥ ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्कायां नृपतेश्चराः । सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥ ९ ॥ ततः स मन्त्रयामास राक्षसैः सचिवैः सह । मन्त्रयित्वा तु दुर्धर्षः क्षमं यत्तदनन्तरम् ॥ १० ॥ विसर्जयित्वा सचिवान्प्रविवेश स्वमालयम् । विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः ॥ ११ ॥ मोहयिष्यावहे सीतां मायया जनकात्मजाम् । शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर ॥ १२ ॥ मां त्वं समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः । एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः ॥ १३ ॥ दर्शयामास तां मायां सुप्रयुक्तां स रावणे । तस्य तुष्टोऽभवद्राजा प्रददौ च विभूषणम् ॥ १४ ॥ अशोकवनिकायां च सीतादर्शनलालसः । नैर्ऋतानामधिपतिः संविवेश महाबलः ॥१६॥ उपसृत्य ततः सीतां प्रहर्षं नाम कीर्तयन् । इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम् ॥ १६ ॥ सान्त्व्यमाना मया भद्रे यमाश्रित्य विमन्यसे । खरहन्ता स ते भर्त्ता राघवः समरे हतः ॥ १७ ॥ शृणु भर्तृवधं सीते घोरं वृत्रवधं यथा । समायातः समुद्रान्तं हन्तुं मां किल राघवः ॥ १८ ॥ वानरेन्द्रप्रणीतेन बलेन महता वृतः । सन्निविष्टः समुद्रस्य पीड्य तीरमथोत्तरम् ॥ १९ ॥ अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम् । सुखसुप्तं समासाद्य चरितं प्रथमं चरैः ॥ २० ॥ तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम । बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ २१ ॥ अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना । असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना ॥२२॥ एवं तव हतो भर्त्ता ससैन्यो मम सेनया । क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतंशिरः ॥ २३ ॥ ततः परमदुर्धर्षो रावणो राक्षसेश्वरः । सीतायामुपशृण्वन्त्यां राक्षसीमिदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ राक्षसं क्रूरकर्माणं विद्युज्जिह्वं समानय । येन तद्राघवाशिरः संग्रामात्स्वयमाहृतम् ॥ २६ ॥ विद्युज्जिह्वस्तदा गृह्य शिरस्तत्स-

शरासनम् । प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ॥ २६ ॥

टीका—सारण से कहे उस निडर सच्चे बचन को सुनकर राजा रावण सारण से बोला ॥ १ ॥ यदि देवता, गन्धर्व, दानव मिलकर भी मुझपर चढ़ाई करें, तौभी मैं सारे लोकों के भय से भी सीता नहीं दूंगा ॥ २ ॥ यह कहकर शुक और सारण को लज्जित हुए और जय शब्द कहकर बाहर चले गये देखकर ॥ ३ रावण राक्षस ने समीप स्थित महोदर को कहा, कि शीघ्र मेरे गुप्तचरों को उपस्थित करो ॥ ४ ॥ तब राजा की आज्ञा से गुप्तचर जल्दी आगए, विश्वासी, शूर, धीर, निडर गुप्तचरों को राक्षसाधिपति रावण ने "कहा" यहां से राम का व्यवसाय परखने के लिये जाओ ॥ ५,६ ॥ वह गुप्तचर तथास्तु कहकर प्रसन्न हुए राक्षसपति को प्रदक्षिणा करके वहां गये जहां राम लक्ष्मण समेत थे ॥ ७ ॥ वह सुवेल पर्वत के पास प्रच्छन्न जाकर राम लक्ष्मण और सुग्रीव और विभीषण को देखते भए ॥८॥ तब वह राजा के गुप्तचर लंका में आकर उसे बतलाते भए, कि राम ने सुवेल पर्वत के पास अ-थाह सेना की छावनी डालदी है ॥ ९ ॥ तब उसने अपने मन्त्री राक्षसों के साथ विचार किया, और उसके पीछे जो उचित है वह विचार कर ॥ १० ॥ मन्त्रियों को विसर्जन करके अपने महल में प्रविष्ट हुआ, और मायावी विद्युज्जिह्व से बोला ॥ ११ ॥ हम दोनों माया से जनकसुता सीता को मोहेंगे, इसलिये हे राक्षस तू राघव का मायामय सिर लेकर ॥ १२ ॥ और बाण समेत बड़ा धनुष लेकर जल्दी मेरे पास आ, ऐसे कहे हुए विद्युज्जिह्व राक्षसने तथास्तु कहा ॥ १३ ॥ और उसने रावण को बहुत अच्छी माया दिखलाई, राजा उसपर प्रसन्न हुआ और उसे भूषण दिया ॥१४॥ तब राक्षसों का अधिपति महाबली सीता के दर्शन की लालसा

से अशोकवानिका में प्रविष्ट हुआ ॥१५॥ तब सीता के पास जाकर हर्ष से अपना नाम बतलाता हुआ जनकसुता से यह ढीठ बचन बोला ॥ १६ ॥ मुझसे तसल्ली देने पर हे भद्रे तू जिसके सहारे से मेरा अपमान करती रही है, वह खरहन्ता तेरा भर्त्ता राघव युद्ध में मारा गया है ॥ १७ ॥ हे सीता वृत्रवध के तुल्य अपने भर्त्ता के बध को सुन, राम वानरपति से प्रेरित बड़ी सेना से घिरा हुआ मुझे मारने के लिए समुद्र के पार तक आपहुंचा, और समुद्र के उत्तरी किनारे को पीड़कर उसने छावनी डाली ॥ १८,१९ ॥ अब मार्ग की थकी हुई आधीरात के समय सुख से सोई हुई उस सेना को पाकर पहले मेरे गुप्तचरों ने काम किया ॥ २० ॥ फिर प्रहस्त से प्रेरी हुई मेरी बड़ी सेना ने रात्रि के समय उसकी सेना को मार दिया, जिसमें राम लक्ष्मण दोनों थे ॥ २१ ॥ उसी समय सोए हुए रामका सिर कृतहस्त प्रबल प्रहस्त ने तलवार से काटा ॥ २२ ॥ इस प्रकार तेरा भर्त्ता मेरी सेना ने मारा है, और रुधिर और धूलि से लिबड़ा हुआ उसका सिर यहां लायागया है ॥२३॥ तब परम दुर्धष राक्षसेश्वर रावण ने सीता के सुनते हुए राक्षसी से यह कहा ॥ २४ ॥ क्रूरकर्मा राक्षस विद्युज्जिह्व को ला, जो राम के सिर को स्वयम् संग्राम से लाया है ॥२५॥ तब विद्युज्जिह्व धनुष समेत उस सिर को लेकर सिर से प्रणाम करके रावण के आगे स्थित हुआ ॥ २६ ॥

सर्ग १५ (व० ३२) सीता का करुणामय विलाप।

मूल–सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम् । नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं मुखम् ॥ १ ॥ केशान्केशान्तदेशं च तं च चूड़ामणिं शुभम् । एतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता ॥ २ ॥ विजगर्हेऽत्र कैकेयीं क्रोशन्तीं कुररी यथा। सकामा भव कैकेयि हतोऽयं

कुलनन्दनः ।३। कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया ॥४॥ एवमुक्ता तु वैदेही वेपमाना तपस्विनी । जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा ॥ ५ ॥ सा मुहूर्तात्समाश्वस्य परिलभ्याथ चेतनाम् तच्छिरः समुपास्थाय विललापायतेक्षणा ॥ ६ ॥ हा हतास्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत । इमां ते पश्चिमावस्थां गतास्मि विधवा कृता ॥ ७ ॥+प्रथमं मरणं नार्या भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते । सुवृत्तः साधुवृत्तायाः संवृत्तस्त्वं ममाग्रतः ॥ ८ ॥ किं मां न प्रेक्षसे राजन्किं वा न प्रतिभाषसे । बालां बालेन संप्राप्तां भार्यां मां सहचारिणीम्॥९॥+संश्रुतं गृह्णता पाणिं चरिष्यामीति यत्त्वया । स्मर तन्नाम काकुत्स्थ नय मामपि दुःखिताम् ॥ १० ॥ कस्मान्मामपहाय त्वं गतो गतिमतां वर। अस्माल्लोकादमुं लोकं त्यक्त्वा मामपि दुःखिताम् ॥ ११ ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः । अग्निहोत्रेण संस्कारं केन त्वं न तु लप्स्यसे ॥ १२ ॥ प्रव्रज्यामुपपन्नानां त्रयाणामेकमागतम् । परिप्रक्ष्यति कौशल्या लक्ष्मणं शोकलालसा ॥१३॥+मम हेतोरनार्याया अनघः पार्थिवात्मजः । रामः सागरमुत्तीर्य वीर्यवान्गोष्पदे हतः ॥ १४ ॥ अहं दाशरथेनोढा मोहात्स्वकुलपांसनी । आर्यपुत्रस्य रामस्य भार्या मृत्युरजायत ॥ १५ ॥+साधु घातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण । समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥ १६ ॥+शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय । रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः ॥ १७ ॥ एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसः । अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः ॥ १८ ॥ विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च । न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ १९ ॥ अमात्यैः सहितः सर्वैः प्रहस्तस्त्वामुपस्थितः । किञ्चिदात्ययिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु ॥ २० ॥ एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम् । अशोकवनिकां

त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ ॥ २१ ॥ अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मुकमुत्तमम्। जगाम रावणस्यैव निर्याणसमनन्तरम् ॥ २२ ॥

टीका-सीता उस सिर, उत्तम धनुष, नेत्र, मुख का रङ्ग, पति के सदृश मुख, बाल, बालों के अन्तस्थान, और उस शुभ चूडामणि को देखकर इन सारे चिन्हों को पहचान कर अतीव दुःखित हुई ॥ १, २ ॥ और कूंज की तरह कुरलाती हुई वह कैकेयी को निन्दती भई ॥ ३ ॥ पूर्ण कामनावाली हो हे कैकेयि ! मारा गया है यह कुलनन्दन, तुझ कलहशीला ने सारा कुल नष्ट कर दिया है ॥ ४ ॥ इतना कहकर कांपती हुई वह तपस्विनी बाला कटे हुए केले की तरह भूमि पर आगिरी ॥ ५ ॥ कुछ देर पीछे होश में आ, उस सिर के पासही वह विशालनेत्रा विलाप करने लगी ॥ ६ ॥ हा मैं मारी गई, हे महाबाहो, हे वीरव्रत के अनुकूल चलनेवाले, मैं विधवा हुई इस तेरी अन्तिम अवस्था को देखती हूं ॥ ७ ॥ भर्त्ता का स्त्री से पहले मरना विगुण कहा जाता है, सो तू अच्छे आचरणवाला, अच्छे आचरणवाली मुझ से पहले मरा है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! क्यों तू अब मुझ सहचारिणी भार्या को जिस बाला को बाल होते हुए विवाहा था, न देखता है न बात करता है ॥ ९ ॥ मेरा हाथ पकड़ते हुए जो तूने प्रतिज्ञा की थी कि तेरे साथ विचरूंगा, हे काकुत्स्थ इसको स्मरण कर, मुझ दुःखिया को भी साथ लेचल ॥ १० ॥ कैसे तू हे गतिवालों में श्रेष्ठ मुझे छोड़कर इस लोक से उस लोक को गया है मुझ दुःखिया को त्यागकर ॥ ११ ॥ पूरी दक्षिणावाले अग्निष्टोमादि यज्ञों से आपने यजन किया है, ऐसा तू क्यों अब अग्निहोत्र से संस्कार नहीं पाएगा ॥ १२ ॥ वनवासको गए तीन में से अकेला आए लक्ष्मण को शोक से भरी हुई कौशल्या पूछेगी ॥ १३ ॥

हाय ! मुझ अनार्या की खातिर निष्पाप शक्तिमान् राजपुत्र राम सागर पार होकर गोष्पद (गौ के खुर) में मारा गया ॥ १४ ॥ राघव ने भूल से मुझ कुलनाशनी को विवाह लिया, आर्यपुत्र राम की भार्या उसकी मृत्यु बनी ॥ १५ ॥ हे रावण मुझे भले ही राम के ऊपर मार डाल, पत्नी को पति के साथ मिला उत्तम कल्याणकर ॥ १६ ॥ इसके सिर के साथ मेरे सिर को और धड़ के साथ धड़ को जोड़ दे, हे रावण मैं महात्मा भर्त्ता की गति की अनुगामिनी हूंगी ॥१७॥ इस प्रकार वहां सीता के विलपते हुए एक सैनिक राक्षस हाथ जोड़े हुए रावण के पास आया ॥१८॥ जय हो हे आर्यपुत्र ! इसप्रकार वह अभिवादन करके और प्रसन्न करके सेनापति प्रहस्त का आना बतलाता गया ॥ १९ ॥ मन्त्रियों सहित प्रहस्त आपके पास आया है, कुछ अत्यावश्यक कार्य है, उनको दर्शन दीजिये ॥२०॥ राक्षस से कहे इस वचन को सुन कर रावण अशोकवनिका को त्यागकर मन्त्रियों को जा मिला ॥२१॥ वह सिर और वह उत्तम धनुष रावण के निकल जाने के साथ ही छिप गया ॥२२॥

सर्ग १६ (व० ३३) सरमा का सीता को तसल्ली देना

मूल—सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी । आससादाथ वैदेहीं प्रियां प्रणयिनी सखी ॥ १ ॥ सा हि तत्र कृता मित्रं सीतया रक्ष्यमाणया । रक्षन्ती रावणादिष्टा सानुक्रोशा दृढव्रता ॥२॥ तां समाश्वासयामास सखी स्नेहेन सुव्रताम् । तव हेतोर्विशालाक्षि नहि मे रावणाद्भयम् ॥३॥ स संभ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसेश्वरः । तत्र मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥४॥ न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः ॥ ५ ॥+विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च । न हतो राघवः श्रीमान्सीते शत्रु-

निवर्हणः ॥६॥ अयुक्त बुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधना । एवं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविना त्वयि ॥७॥ शोकस्ते विगतः सर्वकल्याणं त्वामुपास्थितम् । ध्रुवं त्वां भजते लक्ष्मीः प्रियं ते भवति शृणु ॥ ८ ॥ उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया । संनिविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥९॥ स तां श्रुत्वा विशालाक्षि प्रवृत्तिं राक्षसाधिपः । एष मन्त्रयते सर्वैः सचिवैः सह रावणः ॥१०॥ सभाजिता त्वं रामेण मोदिष्यसि महात्मना । सुवर्षेण समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी ॥ ११ ॥

टीका—सीता को मोहित देखकर सरमा नाम राक्षसी सीता की प्यारी सखी अपनी प्यारी सीता के पास पहुंची ॥ १ ॥ उस से रक्षा की जाती हुई सीता ने उसे अपनी सहेली बना लिया था, वह बड़ी दयावाली, दृढ़व्रत वाली रावण से आज्ञा दी हुई उस की रक्षा कर रही थी ॥२॥ सहेली के स्नेह से उसने उस सुव्रता को तसल्ली दी, तेरे अर्थ है विशालनेत्रे मुझे रावण से भय नहीं ॥३॥ वह राक्षसपति घबराकर जिसलिये यहां से निकला है, और निकलकर जहां गया है हे मैथिलि मुझे सब विदित है ॥४॥ राम जो अपने आपको जानते हैं उनको सोए हुए को मारना नहीं होसक्ता है ॥५॥ वह विक्रमवाला नित्य अपनी और दूसरों की रक्षा करनेवाला, शत्रुओं को मारनेवाला, राम हे सीते मारा नहीं गया है ॥६॥ यह तो अयुक्त बुद्धि, और अयुक्त कार्योंवाले सब लोगों के विरोधी इस मायावी ने तेरे लिये माया प्रयोग की है ॥७॥ तेरा तो सारा शोक अब दूर होचुका, सारा कल्याण तुझे प्राप्त हुआ, तुझे लक्ष्मी अटल सेवन करेगी, हे भली अपना कल्याण सुन ॥८॥ राम वानरसेना के साथ सागर पार हो समुद्र के दक्षिण तीर पर छावनी डाले हुए हैं ॥ ९ ॥ हे विशाता

नेत्र राक्षसों का पति यह समाचार सुनकर सारे मन्त्रियों के साथ विचार कर रहा है ॥ १० ॥ अब तू महात्मा राम से आहृत हुई जल्दी आनन्द मनाएगी, जैसे अच्छी वृष्टि से सुन्दर खेती के साथ पृथिवी ॥११॥

सर्ग १७ [व० ४१] राम का लंका को चारों द्वारों से रोकना और अंगद को भेजना

मूल—स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति । लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥१॥ विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम् । सुवेलं साधुशैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम् ॥२॥ अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम् । लङ्कां चालोकयिष्यामो निलयं तस्य रक्षसः ॥ ३ ॥ ते त्वदीर्घेण कालेन गिरिमारुह्य सर्वतः । लङ्कां राक्षससंपूर्णां ददृशुर्हरियूथपाः ॥ ४ ॥ तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरियूथपाः । लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च ॥ ५ ॥ अवतीर्य तु धर्मात्मा तस्माच्छैलात्स राघवः । परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः ॥ ६ ॥ तौ त्वदीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदतुररिन्दमौ ॥ ७ ॥ तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्यप्रचोदिताः । यथानिर्देशं संपीड्य न्यविशन्त वनौकसः ॥ ८ ॥ लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् । रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च ॥ ९ ॥ नान्यो रामाद्धि तद्द्वारं समर्थः परिरक्षितुम् । रावणाधिष्ठितं भीमं वरुणेनेव सागरम् ॥ १० ॥ पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः । अतिष्ठत्सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान् ॥११॥ अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः । ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च ॥१२॥ हनूमान्पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान्कपिः । प्रजङ्घतरसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च सङ्गतः ॥ १३ ॥ रक्ष्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत । सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैःसुवर्ण-

पवनोपमैः ॥ १४ ॥ पश्चिमेन तु रामस्य सुषेणः सहजाम्बवान् । अदूरान्मध्यमे गुल्मे तस्थौ बहुबलानुगः ॥ १५ ॥ राघवः संनिवेश्यैव स्वसैन्यं रक्षसां वधे । संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं निश्चित्य च पुनःपुनः ॥ १६ ॥ विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन् । अङ्गदं बालितनयं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ १७ ॥ गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात्कपे ॥ १८ ॥ बलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम । मामतिक्रामयित्वा त्वं हृतवांस्तन्निदर्शय ॥ १९ ॥ अराक्षसमिमं लोकं कर्त्तास्मि निशितैः शरैः । न चेच्छरणमभ्येषि तामादाय तु मैथिलीम् ॥ २० ॥ नहि राज्यमधर्मेण भोक्तुं क्षणमपि त्वया । ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदेहिकम् ॥ २१ ॥ इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा । सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमद्रावणमन्दिरम् ॥ २२ ॥ तद्रामवचनं सर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् । सामात्यं श्रावयामास निवेद्यात्मानमात्मना ॥ २३ ॥ ततः स रोषमापन्नः शशास सचिवांस्तदा । गृह्यतामिति दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत् ॥ २४ ॥ व्यथयन्राक्षसान्सर्वान्हर्षयंश्चापि वानरान् । स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः ॥ २५ ॥ रामस्तु बहुभिर्हृष्टैर्विनदद्भिः प्लवङ्गमैः । वृतो रिपुवधाकाङ्क्षी युद्धायैवाभिवर्तत ॥ २६ ॥

टीका—इधर लक्ष्मण सहित राम सुवेल पर चढ़ने का निश्चय करके सुग्रीव और धर्मज्ञ अनुरक्त विभीषण से यह बोले, अनेक धातुओं से भरे इस सुवेल पर्वत पर हम सब चढ़ें, यह रात यहां रहेंगे और लङ्का को देखेंगे जो उस राक्षस का निवास है ॥ १,२,३ ॥ तब वह थोड़े काल में सब ओर से सुवेल पर चढ़कर राक्षसों से पूर्ण लङ्का को देखते भए ॥ ४ ॥ वह रात उस सुवेल पर्वत पर वास करके वानर यूथपति लङ्का में बन उपबनों को देखते भए ॥ ५ ॥ वह धर्मात्मा राम उस पर्वत से उतरकर शत्रुओं से परम दुर्धर्ष अपने बल को देखता

भया॥६॥तदनन्तर शत्रुओं के दमन करनेवाले दोनों भाई रामलक्ष्मण थोड़ेकाल में रावण की पुरी लङ्का में पहुंचे ॥ ७ ॥ राम की आज्ञा से भेरे हुए वानर देवताओं से भी दुर्धर्ष उस पुरी को पीडित करके डेरे जमा देते भए ॥ ८ ॥ पर्वत शिखर की तरह ऊंचे लङ्का के उत्तर द्वार को छोटे भाई सहित धनुर्धारी राम रक्षा करते भए और रोकते भए ॥ ९ ॥ क्योंकि और कोई वरुण से सागर की तरह रावण से अधिष्ठित उस द्वार की रक्षा में समर्थ नहीं होसक्ता था ॥ १० ॥ पूर्व द्वार पर पहुंचकर वीर्यवान् वानर सेनापति नील, द्विविद और मैन्द खड़ा हुआ ॥ ११ ॥ महाबली अङ्गद ने ऋषभ, गवाक्ष, गज, और गवय के साथ दक्षिण द्वार को ग्रहण किया ॥ १२ ॥ बलवान् हनुमान् प्रजंघ तरस और दूसरे वीरों के साथ पश्चिम द्वार की रक्षा करता भया ॥ १३ ॥ मध्य के गुल्म (मोरचे) पर स्वयं सुग्रीव गरुड और पवन तुल्य सारे वानर श्रेष्ठों के साथ खड़ा हुआ ॥ १४ ॥ राम के पश्चिम की ओर निकट ही बहुत सेना से युक्त जाम्बवान् समेत सुषेण मध्यम गुल्म में खड़ा हुआ ॥ १५ ॥ इसप्रकार राम राक्षसों के वध में अपनी सेना को लगाकर मन्त्रियों के साथ विचार करके और फिर २ निश्चय करके ॥ १६ ॥ विभीषण की अनुमति में राजधर्म का स्मरण करता हुआ बालिपुत्र अङ्गद को बुलाकर बोला ॥१७ ॥ हे सौम्य वानर मेरे वचन से जाकर रावण को कहो ॥१८॥ हे राक्षसाधम! तू जिस बल के सहारे माया से मुझे दूर ले जाकर सीता को हरलाया है, वह अब दिखला ॥१९॥ मैं इस लोक को तीक्षण तीरों से बिना राक्षसों के कर दूंगा, यदि तू उस मैथिली को लेकर शरण नहीं आता है ॥ २० ॥ अधर्म से तू राज्य को क्षण भी नहीं भोग सक्ता है, तुझे हित वाक्य कहता हूं अपना परलोक सुधारले ॥ २१ ॥ कोमल कर्मोंवाले राम से ऐसे

कहा हुआ वह तारा का पुत्र श्रीमान् जल्दी रावण के मन्दिर में पहुंचकर ॥ २२ ॥ पहले अपना आप बतलाकर फिर राम का वह उत्तम सन्देश मन्त्रियों समेत को अन्यूनाधिक सुनाता भया ॥ २३ ॥ तब रावण क्रोधवश हुआ मन्त्रियों को आज्ञा देता भया कि इसको पकड लो और बधकरो ॥ २४ ॥ पर वह सब राक्षसों को पीडा देताहुआ और सब वानरों को हर्षित करताहुआ वानरों के मध्य में राम के पास आया ॥ २५ ॥ राम भी बहुत से गर्जते हुए हृष्ट वानरों से घिरा हुआ, शत्रु का वध चाहता हुआ युद्ध के लिए ही तय्यार हुआ ॥ २६ ॥

सर्ग १८ (व० ४२) वानरों और राक्षसों की सेनाओं में युद्ध के बाजों का बजना और युद्ध का आरम्भ ।

मूल-निपीड्यमानां धर्मात्मा वैदेहीमनुचिन्तयन् । क्षिप्रमाज्ञापयद्रामो वानरान्द्विषतां बधे ॥ १ ॥ ते ताम्रवक्त्रा हेमाभा रामार्थे सक्तजीविताः । प्रकाराग्राण्यसंख्यानि ममन्थुस्तोरणानि च ॥ २ ॥ परिखान्पूरयन्तश्च प्रसन्नसलिलाशयान् । पांसुभिः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैश्च वानराः ॥ ३ ॥ आप्लुवन्तः प्लुवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः । लङ्कां तामभिधावन्ति महावारणसंनिभाः ॥ ४ ॥ जयत्युरुबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥५॥ इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः । अभ्यधावन्त लङ्कायाः प्राकारं कामरूपिणः ॥६॥ ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः । निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥ ७ ॥ ततः प्रबोधिता भेर्यश्चन्द्रपाण्डुरपुष्कराः । हेमकोणैरभिहता राक्षसानां समंततः ॥८॥ विनेदुश्च महाघोषाः शङ्खाः शतसहस्रशः । राक्षसानां सुघोराणां मुखमारुतपूरिताः ॥ ९ ॥ ततो वानरसैन्येन मुक्तो नादः समन्ततः । मलयः पूरितो येन ससानुप्रस्थकन्दरः ॥ १० ॥ शङ्ख

दुन्दुभिनिर्घोषः सिंहनादस्तरस्विनाम् । पृथ्वीं चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यनादयत् ॥ ११ ॥ गजानां बृंहितैः सार्धं हयानां हेषितैरपि । रथानां नेमिनिर्घोषैः रक्षसां पदनिःस्वनैः ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे घोरः संग्रामः समपद्यत । रक्षसां वानराणां च यथा देवासुरे पुरा ॥ १३ ॥ स संप्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः । रक्षसां वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥ १४ ॥

टीका—पीडित हुई सीता को चिन्तन करते हुए उस धर्मात्मा राम ने बानरों को जल्दी शत्रुओं के मारने की आज्ञा दी ॥१॥ वह ताम्बे के मुखोंवाले सोने की आभावाले राम के अर्थ जीवन को त्यागने वाले (वानर) कोटों के अनेक किङ्गरों और डेवाढ़ियों को तोड़ देते भए ॥२॥ और निर्मल जलोंवाली खाइयों को धूल पत्थर तिनके और गेलियों से भर देते भए ॥३॥ कूदते फांदते और गर्जते हुए महाहाथियों के तुल्य वानर लंका के अभिमुख दौडते हैं ॥ ४ ॥ बड़े बलवाले रामकी जय हो, महाबली लक्ष्मण की जय हो, राम से पालित राजा सुग्रीव की जय हो, ॥५॥ इस प्रकार जय ध्वनि करते हुए और गर्जते हुए कामरूपी बानर लंका के कोट की ओर दौडने लगे ॥ ६ ॥ तब कोप से भरे मनवाले राक्षसपति रावण ने जल्दी सारी सेनाओं को चढाई की आज्ञा दी ॥ ७ ॥ तब सोने के दण्ड से ताडना की हुई चन्द्र तुल्य श्वेत पुष्करवाली राक्षसों की भेरियें चारों ओर बजने लगीं ॥ ८ ॥ और घोर राक्षसों के मुख वायु से पूरे हुए बड़ी ध्वनिवाले सैंकडों सहस्रों शङ्ख बजे ॥ ९ ॥ तब चारों ओर से बानरों की सेना ने सिंहनाद किया, जिस से मलय पर्वत भी चोटी प्रस्थ और कन्दराओं सहित भर गया ॥ १० ॥ शङ्ख और दुन्दुभियों की ध्वनि, शूरवीरों के सिंहनाद हाथियों की चिंघाडों घोडों की हिनहिनाहटों, रथों की नेमिकी

ध्वनियों और राक्षसों की पदध्वनियों से पृथिवी अन्तरिक्ष और सागर गूंज उठा ॥ ११, १२ ॥ इस अन्तर में राक्षसों और वानरों का घोर संग्राम हुआ जैसा पहले देव दैत्यों में हुआ था ॥१३॥ वानर राक्षसों का वह युद्ध मांस लहू के कीचड़ से अद्भुत उपमा वाला घमसान का हुआ ॥ १४ ॥

सर्ग १९ [व० ४३] घोर द्वन्द्व युद्ध और रात्रि युद्ध और अंगद से इंद्रजित् का पराजय

मूल—एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिधावताम् । रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ॥१॥ युद्धयमानेव तेषां तु तदा वानररक्षसाम् । रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी ॥ २ ॥ अन्योन्यं बद्ध-वैराणां घोराणां जयमिच्छताम् । संप्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानर-रक्षसाम् ॥ ३ ॥ राक्षसोऽसीति हरयो वानरोऽसीति राक्षसाः । अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ ४ ॥ हत दारय चेहीति कथं विद्रवसीति च । एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिन्सैन्ये तु शुश्रुवे ॥ ५ ॥ कालाः काञ्चनसंनाहास्तस्मिंस्तमसि राक्षसाः । संप्रदृश्यन्त शैलेन्द्रा दीप्तौषधिवना इव ॥६॥ तस्मिंस्तमसि दुष्पारे राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः । परिपेतुर्महावेगा भक्षयन्तः प्लवङ्गमान् ॥ ७ ॥ वानरा बलिनो युद्धेऽक्षोभयन्राक्षसीं चमूम् । कुञ्जरान्कु-ञ्जरारोहान्पताकाध्वजिनो रथान् ॥ ८ ॥ लक्ष्मणश्चापि रामश्च शरैराशीविषोपमैः । दृश्यादृश्यानि रक्षांसि प्रवराणि निजघ्नतुः॥९॥ तुरङ्गखुरविध्वस्तं रथनेमिसमुत्थितम् । रुरोध कर्णनेत्राणि युध्यतां धरणीरजः ॥ १० ॥ वर्तमाने तथा घोरे संग्रामे लोमहर्षण । रुधि-रौघा महाघोरा नद्यस्तत्र विसस्रवुः ॥ ११ ॥ ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे । राममेवाभ्यवर्तन्त संहृष्टाःशरवृष्टिभिः ॥१२॥ ते तु रामेण बाणौघैः सर्वमर्मसु ताडिताः । युद्धादपसृतास्तत्र साव-

शेषायुषोऽभवन् ॥ १३ ॥ निमेषान्तरमात्रेण घोरैरग्निशिखोपमैः । दिशश्चकार विमलाःप्रदिशश्च महारथः॥१४॥ ये त्वन्ये राक्षसावीरा रामस्याभिमुखे स्थिताः। तेऽपि नष्टाः समासाद्य पतङ्गा इव पावकम् ॥ १५ ॥ राक्षसानां च निनदैर्भेरीणां चैव निःस्वनैः । सा बभूव निशा घोरा भूयो घोरतराभवत् ॥ १६ ॥ इन्द्राजित्तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः । अङ्गदेन महायस्तस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७ ॥ ततः प्रहृष्टाः कपयः ससुग्रीवाविभीषणाः । साधुसाध्विति नेदुश्च दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ॥ १८ ॥

टीका–इस अवसर में एक दूसरे की ओर दौड़ते हुए उन वानर और राक्षसों का द्वन्द्व युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ १ ॥ वानर और राक्षसों के युद्ध करतेही सूर्य अस्त को प्राप्त हुआ और प्राणहारिणी रात्रि प्रवृत्त हुई ॥ २ ॥ आपस में वैर बान्धे हुए जय चाहते हुए उन भयंकर वानर राक्षसों का रात्रियुद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ ३ ॥ उस भयावने अन्धेरे में "तू राक्षस है" ऐसा कहकर वानर "और तू वानर है" ऐसा कहकर राक्षस युद्ध में परस्पर मारते थे ॥ ४ ॥ उस सेना में मारो चीरं डाल इधर आ कैसे भागा जाता है,इसप्रकार तुमुल शब्द सुनाई देता था ॥ ५ ॥ उस अन्धेरे में काले सुनहरी कवचोंवाले राक्षस जलते हुए ओषधियों के बनोंवाले पर्वतों की तरह दीखते थे ॥ ६ ॥ उस अपार अन्धेरे में राक्षस क्रोध से मूर्च्छित हुए बड़े वेग के साथ वानरों पर हमला करके मानों उन को भक्षण किये जाते थे॥७॥और महाबली वानर युद्ध में राक्षसी सेना को, हाथियों हाथीसवारों और झण्डियां झण्डोंवाले रथों को क्षुब्ध करते भए ॥ ८ ॥ लक्ष्मण और राम भी नाग तुल्य बाणों से दृश्य अदृश्य चुने हुए राक्षसों को मारते भए ॥ ९ ॥ घोड़ों के खुरों से पिसी हुई और रथ की नेमियों से उड़ी पृथिवी की धूल

युद्ध करनेवालों के कान और नेत्रों को रोकती भई ॥ १० ॥ इसप्रकार रोंगटे खड़े करनेवाले घोर संग्राम के प्रवृत्त होने पर लहू के प्रवाहवाली नदियें बहने लगीं ॥ ११ ॥ तब वह राक्षस उस दारुण अन्धेरे में हर्षित हुए बाणों की वर्षा करते हुए राम की ओर झुके ॥ १२ ॥ राम ने बाणसमूहों से सारे मर्मों में उनको ऐसा ताड़न किया, कि युद्ध से भागकर उन्होंने अपनी आयु बचाई ॥१३॥ उस महारथी ने अग्नि ज्वाला जैसे बाणों से थोड़े ही समय में दिशाओं और प्रदिशाओं को विमल बना दिया ॥ १४ ॥ जो और राक्षस वीर राम के अभिमुख डटे रहे, वह आग में पतङ्गों की तरह वहीं नष्ट हुए ॥ १५ ॥ राक्षसों के सिंहनादों से और भेरियों की ध्वनियों से वह घोर निशा घोरतर बन गई ॥ १६ ॥ इधर अङ्गद ने इन्द्रजित् के घोड़े मार डाले, सारथि मारडाला, तब वह बड़ा क्रोधित हुआ रथ को त्यागकर वहीं छिपगया ॥१७॥ तब शत्रु को पराजित हुआ देखकर सुग्रीव विभीषण सहित सभी वानर प्रसन्न हुए साधु २ की ध्वनि करते भए ॥ १८ ॥

सर्ग २० (व० ४४) इन्द्रजित् का राम लक्ष्मण को नाग फांस में फांसना और वानर सेना में घबराहट ।

मूल—इन्द्रजित्तु तदानेन निर्जितो भीमकर्मणा। संयुगे वालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम् ॥ १ ॥ रामं च लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः। बिभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवौ ॥ २ ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः। बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥३॥ राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमान्वितौ। बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सविभीषणाः ॥४॥ इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च। उवाच परमप्रीतो हर्षयन्सर्वराक्षसान् ॥५॥ दूषणस्य च हन्तारौ खरस्य च महाबलौ। सादितौ मामकैर्बाणैर्भ्रातरौ राम

लक्ष्मणौ ॥६॥ नेमौ मोक्षयितुं शक्यावेतस्मादिषुबन्धनात् । सर्वैरपि समागम्य सर्षिसङ्घैः सुरासुरैः ॥ ७ ॥ कृत्स्नं यत्कृते लंका नदी वर्षास्विवाकुला । सोऽयं मूलहरोऽनर्थः सर्वेषां शमितो मया ॥८॥ हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्राजित्समितिञ्जयः । प्रविवेश पुरीं लंकां हर्षयन्सर्वनैर्ऋतान् ॥ ९ ॥ रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते । सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत् ॥१०॥ तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः । अलं त्रासेन सुग्रीव वाष्पवेगो निगृह्यताम् ॥ ११ नैतत्किञ्चन रामस्य न च रामो मुमूर्षति । नह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषम् ॥१२॥ तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम् । यावत्सैन्यानि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम् ॥ १३ ॥ इन्द्राजित्तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः । विवेश नगरीं लंकां पितरं चाभ्युपागमत् ॥ १४ ॥ तत्र रावणमासाद्य अभिवाद्य कृताञ्जलिः । आचचक्षे प्रियं पित्रे निहितौ रामलक्ष्मणौ ॥ १५ ॥ उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे । रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ॥ १६ ॥ उपाघ्राय च तं मूर्ध्नि पप्रच्छ प्रीतमानसः । पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे तस्मै न्यवेदयत् ॥ १७ ॥ यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ ॥ १८ ॥

टीका—पर युद्ध में भीमकर्मा वालिपुत्र अङ्गद से जीते हुए इन्द्राजित् ने बड़ा दारुण क्रोध किया ॥ १ ॥ युद्ध में क्रुद्ध हुआ वह भयङ्कर नागमय वाणों (बेहोश करनेवाले वाणों) से राम लक्ष्मण को सारे अङ्गों में भेदता भया ॥ २ ॥ सब लोगों से अदृश्य कूटयोधी राक्षस ने राम लक्ष्मण दोनों भाइयों को वाण फांस से फांस लिया ॥ ३ ॥ वाण समूह से युक्त दोनों राघवों को गिरा हुआ देखकर विभीषण समेत वानर सारे बड़े दुःखी हुए ॥४॥ इन्द्राजित् तो अपने कर्म को, और उन दोनों को लटा हुआ देखकर परम

प्रसन्न हुआ सब राक्षसों को हर्षित करता हुआ बोला ॥ ५ ॥ खर और दूषण के मारने वाले दोनों भाई राम लक्ष्मण मेरे बाणों से पीड़ित हुए हैं ॥६॥ अब इनको इस बाणबन्धन से देव दैत्य और ऋषि समूह भी नहीं छुड़ा सकेंगे ॥७॥ जिसके निमित्त यह सारी लंका वर्षा में नदी की तरह आकुल थी, वह यह सब का मूल-हारी अनर्थ मैंने शान्त कर दिया है ॥८॥ इस प्रकार हर्ष से भरा हुआ युद्धों के जीतनेवाला इन्द्रजित सारे राक्षसों को प्रहर्षित करता हुआ लंकापुरी में प्रविष्ट हुआ ॥९॥ इधर राम लक्ष्मण के शरीर को और सारे अङ्ग उपाङ्गों को बाणों से भरा हुआ देखकर सुग्रीव को भय प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ उस डरे हुए वानरेन्द्र से विभीषण बोला, भय मतकर हे सुग्रीव आंसुओं के वेग को रोक ॥११॥ यह राम के लिये कुछ नहीं, राम मरनेवाले नहीं हैं, लक्ष्मी (शरीर की कान्ति) इनको नहीं त्याग रही, जोकि निकट मृत्युवालों के दुर्लभ होती है ॥ १२ ॥ सो अपने आपको और अपनी सेना को तसल्ली दे, जब तक कि मैं फिर सारी सेनाओं को अपने २ स्थान पर स्थापन करता हूं ॥१३॥ महामायावी इन्द्रजित् तो सारी सेनाओं से युक्त हुआ लंका नगरी में प्रविष्ट हुआ, और पिता के पास आया ॥१४॥ वहां रावण के पास हाथ जोड़ प्रणाम करके पिता को प्रिय बतलाता भया कि राम लक्ष्मण मार दिए गए हैं ॥१५॥ सुन करके रावण राक्षसों के मध्य में प्रसन्न हुआ उठा और पुत्र को गले लगाया ॥१६॥ उसका सिर चूमकर प्रसन्न मन से पूछता भया पूछते हुए पिता को उसने यथावृत्त बतलाया ॥१७॥ कि शरबन्ध से बांधकर उनको चेष्टाशून्य और प्रभासे शून्य करदिया है ॥१८॥

सर्ग २१ (व० ४७-४८) सीता को रण में मूर्छित राम लक्ष्मण का दिखलाना

मूल-रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम् । आजुहाव ततः सीतारक्षिणी राक्षसीस्तदा ॥१॥ राक्षस्यस्त्रिजटा चापि शासनात्समुपस्थिताः । ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः ॥ २ ॥ हताविन्द्रजिताख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ । पुष्पकं तत्समारोप्य दर्शयध्वं रणे हतौ ॥ ३ ॥ राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्यत्र पुष्पकम् । सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा ॥ ४ ॥ ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पगौ । लक्ष्मणं चैव रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥५॥ शरतल्पगतौ वीरौ तथाभूतौ नरर्षभौ । दुःखार्ता करुणं सीता सुभृशं विललाप ह ॥६॥ परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत् । मा विषादं कृथा देवि भर्त्तायं तव जीवति ॥ ७ ॥ इदं तु सुमुहाश्चित्रं शरैः पश्यस्व मैथिलि । विसंज्ञा पतितावेतौ नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥८॥ सज शोकं च दुःखं च मोहं च जनकात्मजे । रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम् ॥ ९ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा । कृताञ्जलिरुवाचेमामेवमस्त्विति मैथिली ॥१०॥ विमानं पुष्पकं तत्तु सन्निवर्त्य मनोजवम् । दीना त्रिजटया सीता लंकामेव प्रवेशिता ॥११॥

टीका-रावण ने भी प्रसन्न हो पुत्र इन्द्रजित् को विसर्जन करके सीता की रखवाली राक्षसियों को बुलवाया ॥१॥ उसकी आज्ञा से त्रिजटा और सब राक्षसियें उपस्थित हुई, तब प्रसन्न हुआ राक्षसाधिपति उन राक्षसियों से बोला ॥२॥ सीता को जाकर बतलाओ कि राम लक्ष्मण मारे गये हैं, और उसे पुष्पक विमान पर चढ़ाकर रण में मरे हुए दिखलाओ ॥३॥ राक्षसियें तथास्तु कहकर वहां गईं, जहां पुष्पक था, और वहां उन्होंने सीता को पुष्पकविमान पर

चढ़ाया ॥४॥ तब सीता ने राम लक्ष्मण दोनों को तीरों से पीड़ित और तीरों की शय्या पर मूर्छित लेटे हुए देखा ॥५॥ वहां वैसी अवस्था में उन दोनों नरश्रेष्ठ भाइयों को देखकर सीता दुःख से पीड़ित हुई अतीव विलाप करती भई ॥६॥विलाप करती हुई सीता से त्रिजटा राक्षसी बोली, हे देवि ! विषाद मतकर, यह तेरा भर्त्ता जीता है॥७॥हे मैथिलि यह बहुत बड़ा आश्चर्य देख,बाणों से बेहोश पड़े हुओं को भी लक्ष्मी नहीं छोड़ती है ॥ ८ ॥ हे जनकनान्दिनी दुःख शोक मोह को त्याग, राम लक्ष्मण के अर्थ आज अपना जीना मत त्याग ॥ ९ ॥ उसके वचन को सुनकर देवकन्यातुल्य सीता हाथ जोड़कर उसे कहती भई ऐसेही हो ॥ १० ॥ और मन तुल्य वेगवाले पुष्पक विमान को लौटाकर दीना हुई सीता को त्रिजटा ने फिर लङ्का में प्रवेश कराया ॥ ११ ॥

सर्ग २२ (व० ४९-५०) राम लक्ष्मण का स्वस्थ होना

मूल—ततः सर्वाण्यनीकानि स्थापयित्वा विभीषणः । आजगाम गदापाणिस्त्वरितं यत्र राघवः ॥ १ ॥ ततो मुहूर्ताद्गरुडं वैनतेयं महाबलम् । वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तामिव पावकम् ॥ २ ॥ वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः । सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥ ३ ॥ तावुत्थाप्य महातेजा गरुडो वासवोपमौ । उभौ च सस्वजे हृष्टो रामश्चैनमुवाच ह ॥ ४ ॥ भवत्प्रसादाद् व्यसनं रावणिप्रभवं महत् । उपायेन व्यतिक्रान्तो शीघ्रं च बलिनौ कृतौ ॥५॥ यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम् । तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ॥ ६ ॥ तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः । अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ॥ ७ ॥ असुरा वा महावीर्या वानरा वा महाबलाः । नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् ॥ ८ ॥ इमं श्रुत्वा तु विक्रान्तस्त्वरमाणोऽहमागतः । सहसै-

वाक्योः स्नेहात्साखित्वमनुपालयन् ॥ ९ ॥ मोक्षितौ च महाघोरा-
दस्मात्मायकबन्धनात् । अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि
॥ १० ॥+प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः । शूराणां शुद्ध-
भावानां भवतामार्जवं बलम् ॥ ११ ॥ तन्न विश्वसनीयं वो राक्ष-
सानां रणाजिरे । एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥१२॥
नीरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः । सिंहनादं तदानेदुर्मृद-
ङ्गाश्चाप्यवादयन् ॥ १३ ॥

टीका-तब सारी सेनाओं को स्थापन करके बिभीषण हाथ में गदा
लिए जल्दी वहां आया, जहां राम थे ॥१॥ तब थोड़ी देर के पीछे
उन्होंने जलते अग्नि की तरह तेजस्वी महाबली विनता के पुत्र गरुड
(नागफासों के विष को हटानेवाले) को देखा ॥ २ ॥ गरुड
से छुए हुए उन दोनों के सारे व्रण मिलगए, और जल्दी उन
दोनों के शरीर सुन्दर रङ्गवाले और स्नेहवाले होगये ॥ ३ ॥
महातेजस्वी गरुड़ ने उन दोनों इन्द्र तुल्यों को उठाकर दोनों को
गले लगाया, और प्रसन्न हुए राम उससे यह बोले ॥ ४ ॥ आपके
प्रसाद से इन्द्रजित् से उत्पन्न किया बड़ा दुःखउपाय से मिटाया गया
और हम बड़ी जल्दी बलवान् होगये हैं ॥ ५ ॥ जैसे पिता दशरथ
और पितामह अज को इसी प्रकार आपको पाकर मेरा हृदय प्रसन्न
होता है ॥ ६ ॥ इसके उत्तर में महातेजस्वी महाबली वैनतेय बोला
हे काकुत्स्थ मैं आपका प्यारा मित्र बाहर विचरने वाला प्राण हूं
॥ ७ ॥ बड़े वीर राक्षस वा महाबली वानर इस अतीव दारुण
शरबन्ध (नागफांस) को छुड़ा नहीं सक्ते थे ॥ ८ ॥ मैं इस
शरबन्ध को सुनकर मित्रता का पालन करता हुआ आपके स्नेह
से एकदम यहां आया हूं ॥ ९ ॥ इस घोर शरबन्ध से मैंने तुम्हें
छुड़ा दिया है आगे को तुम दोनों सदा अप्रमत्त होकर रहो ॥१०॥

राक्षस सभी युद्ध में प्रकृति से कूटयोधी हैं, और आप जो शुद्ध भावना वाले शूरवीर हैं, आपका बल सरलता है ॥११॥ सो रणक्षेत्र में आपको राक्षसों का विश्वास नहीं करना चाहिये, इसी दृष्टान्त से राक्षसों को सदा कुटिल समझो ॥१२॥ वानर यूथपति राघवों को स्वस्थ देखकर सिंहनाद करतेभए, और मृदङ्ग बजातेभए ॥ १३ ॥

सर्ग २३ (व० ५१) रावण का धूम्राक्ष को युद्ध के लिये भेजना

मूल—तेषां तु तुमुलं शब्दं वानराणां महौजसाम् । नर्दतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः ॥१॥ तौ तु बद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । अयं च सुमुहान्नादः शङ्कां जनयतीव मे ॥२॥ एवं च वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः । उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः ॥३॥ ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां च वनौकसाम् । शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम् ॥ ४ ॥ तथोक्तास्ते सुसंभ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य च । ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना ॥५॥ तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ । समुत्थितौ महाभागौ विषेदुः सर्वराक्षसाः ॥६॥ तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य च राक्षसाः । कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः । चिन्तारोषसमाक्रान्तो विवर्णवदनोऽभवत् ॥८॥ अब्रवीद्राक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम् ॥९॥ बलेन महता युक्तो राक्षसैर्भीमविक्रमः । त्वं वधायाशु निर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥१०॥ स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः । हसन्वै पश्चिमद्वाराद्धनूमान्यत्र तिष्ठति ॥११॥

टीका—राक्षसों सहित रावण ने उन गर्जते हुए महापराक्रमी वानरों के तुमुल शब्द को सुना ॥१॥ वह दोनों भाई राम लक्ष्मण तीक्ष्ण तीरों से बन्धे हुए हैं, और यह सुमहान् नाद मुझे शङ्का सी उत्पन्न करता है ॥२॥ यह वचन मन्त्रियों को कहकर वह राक्षसेश्वर

दूसरे पासवर्ती राक्षसों से बोला ॥३॥ जल्दी मालूम करो उन सारे वानरों के शोककाल में क्या हर्ष का कारण हुआ है ॥४॥ वैसे आज्ञा दिये हुए वह जल्दी से कोट पर चढ़कर महात्मा सुग्रीव से पालित सेना को देखते भए ॥५॥ और उन महाभाग राघवों को शरबन्ध से विमुक्त हो उठे हुए देखकर सारे राक्षस खिन्न होगए ॥ ६ ॥ वाक्यनिपुण वह राक्षस दीन मुख हुए वह सारा अप्रिय यथावत् निवेदन करते भए ॥ ७ ॥ उस बचन को सुनकर महाबली राक्षसेन्द्र चिन्ता और रोष से भरगया, और उसका मुख फीका होगया ॥८॥ वह राक्षसों के मध्य में धूम्राक्ष राक्षस से बोला ॥ ९ ॥ तू बड़ी सेना से और घोर पराक्रमवाले राक्षसों से युक्त हुआ वानरों को मारने के लिये जल्दी चढ़ाई कर ॥ १० ॥ वह महावीर्य धूम्राक्ष राक्षसों से घिरा हुआ हंसता हुआ पश्चिमद्वार से बाहर निकला, जिधर हनुमान् स्थित था ॥११॥

सर्ग २४ (व० ५२) हनुमान् का रण में धूम्राक्ष को मारना

मूल—धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम् । विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः ॥१॥ तेषां सुतुमुलं युद्धं संजज्ञे कपिरक्षसाम् ॥ २ ॥ राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धा वानरान्निशितैः शरैः । विव्यधुर्घोरसंकाशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ३ ॥ ते भीमवेगा हरयो नर्दमानास्ततस्ततः । ममन्थू राक्षसान्वीरान्नामानि च बभाषिरे ॥४॥ राक्षसा मथिताः केचिद्वानरैर्जितकाशिभिः । प्रवेमू रुधिरं केचिन्मुखै रुधिरभोजनाः ॥५॥ केचिद्विनिहता भूमौ रुधिरार्द्रा वनौकसः । विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदान्त्रैर्विनिःसृताः ॥ १६ ॥ तत्सुभीमं महद्युद्धं हरिराक्षससंकुलम् । प्रबभौ शस्त्रबहुलं शिलापादपसंकुलम् ॥७ ॥ धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरान्रणमूर्धनि । हसन्विद्रावया-

मास दिशस्ताञ्छरदृष्टिभिः ॥ ८ ॥ धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं प्रेक्ष्य मारुतिः । अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥ ९ ॥ क्रोधाद्द्विगुणताम्राक्षः पितुस्तुल्यपराक्रमः । शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥ १० ॥ आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य संभ्रमात् । रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥ ११ ॥ सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि ॥१२॥ स सक्त्वा तुरथं तस्य हनूमान्मारुतात्मजः । विद्राव्य राक्षसं सैन्यं धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥१३॥ तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान् । विनर्दमानः सहसा हनूमन्तमभिद्रवत् ॥ १४ ॥ तस्य क्रुद्धस्य रोषेण गदां तां बहुकण्टकाम् । पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽथ हनूमतः ॥ १५ ॥ स कपि र्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् । धूम्राक्षस्य शिरोमध्ये गिरिशृङ्गमपातयत् ॥ १६ ॥ स विस्फारितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेणताड़ितः । पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः ॥ १७ ॥ धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषाः निशाचराः । त्रस्ता प्रविविशुर्लंकां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥ १८ ॥

टीका—भीमविक्रमवाले धूम्राक्ष राक्षस को निकलता हुआ देखकर सारे वानर युद्ध चाहते हुए प्रहर्षित हो नाद करते भए ॥ १ ॥ फिर उन वानर राक्षसों का तुमुल युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ २ ॥ राक्षस क्रुद्ध हुए भयानक कङ्कपत्रों वाले सीधा जाने वाले तीक्ष्ण तीरों से वानरों को वींधते भए ॥ ३ ॥ और भयङ्कर वेगोंवाले वानर गर्जते हुए वहां २ राक्षस वीरों को पीस डालते भए, और अपने नाम भाषण करते भए ॥ ४ ॥ जीतने से सोहते हुए वानरों से कई राक्षस पीस डालेगए पहले वह मुखों से रुधिर की कैं करते भए जोकि (दूसरों का) रुधिर पीने वाले थे ॥ ५ ॥ इधर वानर कई रुधिर से भीगे हुए भूमि पर गिरे, कई त्रिशूलों से वींधे हुए अन्ताड़ियों

से अलग होगये ॥ ६ ॥ वानर और राक्षसों की भीड़वाले उस बड़े भयङ्कर महद् युद्ध में शस्त्र ही शस्त्र चमकते थे, और शिला और वृक्ष भरे पड़े थे, (जो बड़े २ बलवान् अपने २ प्रति द्वन्द्वी पर फैंकते थे) ॥७॥ धूम्राक्ष तो रणके मस्तक पर हंसता हुआ हाथ में धनुष लिये तीरों की वृष्टि से वानरों को दिशाओं में भगाने लगा ॥ ८ ॥ धूम्राक्ष से पीडित हुई सेना को दुःखित देख कर क्रुद्ध हुआ हनुमान् भारी शिला उठाकर सामने आया ॥९॥ क्रोधसे उसके नेत्र दुगने लाल होगए, और उस पिता तुल्य पराक्रमवाले ने उस शिला को धूम्राक्ष के रथपर फैंका ॥ १० ॥ वह उस आती हुई शिला को देखकर जल्दी गदा उठाकर वेग से रथसे उछलकर भूमि पर जाठहरा ॥ ११ ॥ वह शिला उसके रथ को चूर २ करके पृथ्वी पर गिरी ॥ १२ ॥ तब वायुपुत्र हनुमान् उसके रथ को त्यागकर राक्षसों की सेना को भगाकर फिर धूम्राक्ष की ओर दौडा ॥ १३ ॥ वीर्यवान् धूम्राक्ष गदा उठाकर गर्जता हुआ आते हुए हनुमान् की ओर दौडा ॥ १४ ॥ क्रोध से उस अनेक कांटोंवाली गदा को धूम्राक्ष ने क्रुद्ध हुए हनुमान् के सिर परमारा ॥१५॥ वायु के तुल्य बलवाला वह वानर उस प्रहार की परवाह न करके धूम्राक्ष के सिरपर बडा पत्थर फैंकता भया ॥ १६ ॥ शिला से ताडित हुए के सारे अङ्ग पिसगए, और वह टूटे हुए पर्वत की तरह सहसा भूमि पर गिरा ॥ १७ ॥ धूम्राक्ष को हत हुआ देखकर हत शेष राक्षस डरे हुए, वानरों से मारे जाते हुए लंका में प्रविष्ट हुए ॥ १८ ॥

सर्ग २५ (५३-५४) वज्रदंष्ट्री की चढाई और अंगद से उसका माराजाना ।

मूल–धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः । अब्रवीद्राक्षसं क्रूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम् ॥ १ ॥ गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवा-

रितः। जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह ॥ २ ॥ तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः। निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः ॥ ३ ॥ निःसृतो दक्षिणद्वारादङ्गदो यत्र यूथपः। ततः प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह ॥ ४ ॥ रुधिरौघेण संछन्ना भूमिर्भयकरी तदा। हारकेयूरवस्त्रैश्च छत्रैश्च समलंकृता ॥ ५ ॥ कबन्धानि समुत्पेतुर्भीरूणां भीषणाणि वै। भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्च भूतले ॥ ६ ॥ ततो वानरसैन्येन हन्यमानं निशाचरम्। प्राभज्यत बलं सर्वं वज्रदंष्ट्रस्य पश्यतः ॥ ७ ॥ राक्षसान्भयवित्रस्तान्हन्यमानान्प्लवङ्गमैः। दृष्ट्वा स रोषताम्राक्षो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥ ८ ॥ प्रविवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन्हरिवाहिनीम्। शरैर्विदारयामास कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ९ ॥ ततो हरिगणान्भग्नान्दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा। क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत ॥ १० ॥ वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ योयुध्येते परस्परम्। चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव ॥ ११ ॥ जघ्नतुश्च तदान्योन्यं नर्दन्तौ जयकांक्षिणौ। व्रणैः समुत्थैः शोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १२ ॥ निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्यमहाच्छिरः। जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः ॥ १३ ॥ वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः। त्रस्ता ह्यभ्यद्रवंल्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥ १४ ॥

टीका—धूम्राक्ष को हत हुआ सुनकर राक्षसेन्द्र रावण ने क्रूर राक्षस महाबली वज्रदंष्ट्र को कहा ॥ १ ॥ जा तू हे वीर राक्षसों से घिरा हुआ बाहर निकल और दशरथसुत राम को और वानरों सहित सुग्रीव को मार ॥ २ ॥ तथास्तु कहकर मायावी राक्षसेश्वर बहुत से दल बल सहित बाहर निकला ॥ ३ ॥ वह दक्षिण द्वार से निकले जिधर अङ्गद यूथपति था, तब वानरों का राक्षसों के साथ तुमुल युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥४॥ तब रुधिर के प्रवाह से ढकी हुई और हार बाहु-

बन्द और वस्त्र और छत्रों से अलंकृत हुई वह भूमि भयावनी होगई ॥ ५ ॥ भीरुओं को डरानेवाले कबन्ध*प्रहार करने लगे, सैनिकों के भुजा हाथ सिर धड़ कट २ कर गिरने लगे ॥ ६ ॥ तब वानरों की सेना से मारी जाती हुई सारी राक्षस सेना वज्रदंष्ट्र के देखते देखते भागने लगी ॥ ७ ॥ वानरों से मारे जाते हुए और भय से डरे हुए राक्षसों को देखकर क्रोध से लाल नेत्रोंवाला प्रतापी वज्रदंष्ट्र ॥ ८ ॥ हाथ में धनुष लिये वानरों की सेना में प्रविष्ट हुआ, और कङ्कपत्रोंवाले सीधा जाने वाले बाणों से (वानरोंको) घायल करने लगा ॥९॥ तब वानरों को भागता हुआ देखकर वालि पुत्र (अङ्गद) देखते हुए वज्रदंष्ट्र को क्रोध से देखता भया ॥ १० ॥ वज्रदंष्ट्र और अङ्गद आपस में दोनों युद्ध में जुटे, और परम क्रुद्ध हुए शेर और मत्तगज की तरह विचरने लगे ॥ ११ ॥ जयाभिलाषी गर्जते हुए परस्पर प्रहार करते भए और उठे हुए ज़ख्मों से फूले हुए केसुओं की तरह प्रतीत होते थे ॥ १२ ॥ तब वालिपुत्र ने निर्मल धोई हुई तलवार से वज्रदंष्ट्र के बड़े सिर को काट डाला ॥ १३ ॥ वज्रदंष्ट्र को हतहुआ देखकर भय से मोहित और वानरों से ताड़े जाते हुए राक्षस लङ्का को भाग गए ॥ १४ ॥

सर्ग २६ (व० ५५-५६) सेनापति अकम्पन का युद्ध और हनुमान् से उसका माराजाना ।

मूल–वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा वालीपुत्रेण रावणः । बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ १ ॥ शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः । अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥२॥ राक्षसैः संवृतो घोरैस्तदा निर्यात्यकम्पनः । नहि कम्पयितुं शक्यः सुरैरपि

---

*कबन्ध = सिरकटे धड़, जो सिर के कट जाने पर पहले वेग से कुछ देर लड़ते जाते हैं ।

महामृधे ॥३॥ तेषां युद्धं महारौद्रं संजज्ञे कपिरक्षसाम् । रामरावण योरर्थे समभित्यक्तदेहिनः ॥ ४ ॥ रजश्चारुणवर्णाभं सुभीममभवद्भृशम् । उद्धूतं हरिरक्षोभिः संरुरोध दिशो दश ॥ ५ ॥ न ध्वजो न पताका वा चर्म वा तुरगोपिवा । आयुधं स्यन्दनो वापि ददृशे तेन रेणुना ॥ ६ ॥ शब्दश्च सुमहांस्तेषां नर्दतामभिधावताम् श्रूयते तुमुलो युद्धे न रूपाणि चकाशिरे ॥ ७ ॥ ततस्तु रुधिरौघेण सिक्तं ह्यपगतं रजः । शरीरशवसंकीर्णा बभूव च वसुन्धरा ॥८॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः । मैन्दश्च परमक्रुद्धश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया हरिपुङ्गवाः । ममन्थू राक्षसान्सर्वे नानाप्रहरणैर्भृशम् ॥१०॥ तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म कृतं वानरसत्तमैः । दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥ तत्रैव ताव-त्त्वरितो रथं प्रापय सारथे । एते च बलिनो घ्नन्ति सुबहून्राक्षसान्रणे ॥१२॥ एते च बलवन्तो वा भीमकोपाश्च वानराः । एतान्निहन्तु-मिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम् ॥ १३ ॥ ततः प्रचलिताश्वेन रथेन रथिनां वरः । हरीनभ्यपतद्दूराच्छरजालैरकम्पनः ॥ १४ ॥ अक-म्पनशरैर्भग्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः ॥ १५ ॥ तान्मृत्युवशमापन्नान-कम्पनशरानुगान् । समीक्ष्य हनुमाञ्ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः ॥१६॥ व्यवस्थितं हनूमन्तं ते दृष्ट्वा प्लवगर्षभाः । बभूवुर्बलवन्तो हि बलव-न्तमुपाश्रिताः ॥ १७ ॥ अकम्पनस्तु शैलाभं हनुमन्तमवस्थितम् । महेन्द्र इव धाराभि शरैरभिववर्ष ह ॥ १८ ॥ अचिन्तयित्वा बाणौ-घञ्शरीरे पातितान्कपिः । अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः ॥ १९ ॥ स प्रहस्य महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः । अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ २० ॥ तस्याथ नर्दमानस्य दीप्य-मानस्य तेजसा । बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥ २१ ॥ तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् । ददर्श कम्पनो वीरश्चु-

क्षोभ च ननाद च ॥ २२ ॥ स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना । राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ॥२३॥ तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसास्ते पराजिताः । लङ्कामभिययुस्त्रासाद्वानरैस्तैरभिद्रुताः॥२४॥

टीका—वज्रदंष्ट्र को बालिपुत्र से हत हुआ सुनकर रावण हाथ जोड़ कर सामने खड़े हुए सेनाध्यक्ष से बोला ॥ १ ॥ भयङ्कर पराक्रम वाले दुर्धर्ष राक्षस सब शस्त्र अस्त्रों के जानने वाले अकम्पन को आगे करके शीघ्र चढ़ाई करें ॥ २ ॥ तब घोर राक्षसों से घिरा हुआ अकम्पन चढ़ा, जिसको महायुद्ध में देवता भी कम्पा नहीं सक्ते हैं ॥ ३ ॥ उन वानर और राक्षसों का महारौद्र युद्ध प्रवृत्त हुआ, जो राम और रावण के अर्थ अपने देहों को त्यागे हुए थे ॥ ४ ॥ वानर और राक्षसों से उठाई धूल अतीव भयावनी होगई और उसने दशों दिशाओं को ढक लिया ॥ ५ ॥ उस धूल में ध्वजा पताका ढाल घोड़ा शस्त्र वा रथ नहीं दीखते थे ॥ ६ ॥ गर्ज २ कर दौड़ते हुए योद्धाओं का महान् तुमुल शब्द सुनाई देता था, रूप नहीं दीखते थे ॥ ७ ॥ तिस पीछे रुधिर के प्रवाह से सेचन की हुई धूल बैठ गई, और पृथिवी मृतक शरीरों से भर गई ॥ ८ ॥ इस अवसर में वीर वानर कुमुद नल और मैन्द परम क्रुद्ध हुए अत्यन्त वेग करते भए ॥ ९ ॥ उन वानरश्रेष्ठों ने बहुत विनाश किया, अनेक शस्त्रों से राक्षसों को बहुत पीस डाला॥१०॥ युद्ध में इस बड़े भारी तीव्र कर्म को देख कर अकम्पन क्रोध से मूर्छित हुआ सारथि से यह वाक्य बोला ॥ ११ ॥ हे सारथे वहीं मेरे रथ को जल्दी स्थापन कर, यह बलवान् वानर रण में सारे राक्षसों को मार रहे हैं ॥ १२ ॥ यह बल वाले भङ्कर कोपवाले वानर हैं, इन को मैं मारना चाहता हूं, जो युद्ध में श्लघा वाले हैं ॥ १३ ॥ तब वह रथिवर अकम्पन दौड़ते हुए घोड़ों वाले रथ पर

दूर से बाणसमुह फेंकता हुआ बानरों पर आपड़ा ॥ १४ ॥ अकम्पन के बाणों से भगाए हुए सभी भाग निकले ॥ १५ ॥ अकम्पन के बाणों के साथ मृत्युवश को प्राप्त होते हुए उन ज्ञातियों को देखकर महाबली हनुमान् आ डटा ॥ १६ ॥ हनुमान् को आखड़ा हुआ देखकर वह वानरश्रेष्ठ बलवान् का सहारा पाकर फिर प्रबल होगए ॥१७॥ अकम्पन तो पर्वत तुल्य हनुमान् को खड़ा हुआ देखकर महेन्द्र पर्वत पर मेंह की धाराओं के तुल्य उस पर तीरों की धारा बरसाता भया ॥ १८ ॥ पर वह महाबली वानर शरीर पर गिरते हुए बाणों की परवाह न करके अकम्पन के बध में दृढ मन करता भया ॥ १९ ॥ वह महातेजस्वी पवनपुत्र हंस कर पृथ्वी को कम्पाता हुआ उस राक्षस की ओर दौड़ा ॥२०॥ तेज से चमकते हुए और गर्जते हुए उस का रूप जलते हुए अग्नि की तरह दुर्धर्ष होगया ॥ २१ ॥ राक्षसों के भयलाने वाले उसको क्रुद्ध हो आता हुआ देखकर अकम्पन बड़ा क्षुब्ध हुआ और गर्जा ॥ २२ ॥ पर वह उस महात्मा बानरेन्द्र से क्रोध के साथ वृक्ष से हत हुआ राक्षसेन्द्र गिरपड़ा और मरगया ॥ २३ ॥ उस को भूमि पर मरा देखकर पराजित हुए वह राक्षस उन वानरों से भगाए हुए डर से लंका को भाग गए ॥ २४ ॥

सर्ग२७(व०५७-५८) प्रहस्त का घोर संग्राम और नील से उसका वध

मूल—अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वा राक्षसेश्वरः । उवाचात्महितं काले प्रहस्तं युद्धकोविदम् ॥ १ ॥ पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य ह । नान्ययुद्धात्प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारदाः ॥ २ ॥ अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम । इन्द्रजिद्वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥३॥ स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च । विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ॥ ४ ॥ रावणेनैवमुक्तस्तु

प्रहस्तो वाहिनीपतिः । राक्षसेन्द्रमुवाचेदमसुरेन्द्रमिवोशनाः ॥ ५ ॥ नहि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि च । त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि ॥ ६ ॥ आरुरोह रथं युक्तः प्रहस्तः सज्जकल्पितम् । लंकाया निर्ययौ तूर्णं बलेन महता वृतः ॥ ७ ॥ ततः प्रहस्तं निर्यान्तं दृष्ट्वा रणकृतोद्यमम् । उवाच सस्मितं रामो विभीषण मरिन्दमः ॥८॥ क एष सुमहाकायो बलेन महता वृतः । आगच्छति महावेगः किंरूपबलपौरुषः ॥ ९ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः । एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षसः ॥ १० ॥ लंकायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः । वीर्यवानस्त्रविच्छूरः सुप्रख्यातपराक्रमः ॥११॥ ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम् । ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम् ॥ १२ ॥ तेषामन्योन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ बहवो राक्षसा युद्धे बहून्वानरपुङ्गवान् । वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥ १४ ॥ नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः । एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः ॥ १५ ॥ तेषां निपततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान् । द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम् ॥१६॥ दुर्मुखः पुनरुत्थाय कपिः सविपुलद्रुमम् । राक्षसं विप्रहस्तं तु समुन्नतमपोथयत् ॥१७॥

टीका-अकम्पन के वध को सुनकर क्रुद्ध हुआ राक्षसेश्वर राजा युद्ध निपुण प्रहस्त से अपना हित वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे युद्ध निपुण यह पुर जिस के निकट शत्रु छावनी डाले हुए तंगकर रहा है इसका बचाव किसी दूसरे के युद्ध से नहीं देखता हूं ॥२॥ मैं वा कुम्भकर्ण, वा तू मेरा सेनापति वा इन्द्रजित्, वा निकुम्भ ऐसे भार को उठा सक्ते हैं ॥ ३ ॥ सो तू यहां से अपने अधीन सेना लेकर विजय के लिये चढ़ाई कर जहां सारे वानर हैं ॥४॥ रावण से ऐसे कहे हुए सेनापति प्रहस्त ने देवेन्द्र को बृहस्पति के

तुल्य राक्षसेन्द्र को यह कहा ॥५॥ मुझे जीवन वा पुत्र स्त्री और धन रक्षणीय नहीं हैं, युद्ध में तेरे लिये अपने जीवन को होम करता हुआ देख ॥६॥ तब सावधान हुआ प्रहस्त शस्त्रों से सजे हुए रथ पर आरूढ हुआ और जल्दी महती सेना से घिरा हुआ लंका से बाहर निकला ॥७॥ तब रण में किये उद्यम वाले प्रहस्त को बाहर निकलता हुआ देखकर शत्रुओं का दबाने वाला राम मुसकराकर विभीषण से बोला ॥ ८ ॥ कौन यह बहुत बड़े डील डौल वाला बड़े वेग वाला बड़ी सेना से युक्त हुआ आ रहा है इस का रूप बल पौरुष क्या है ॥ ९ ॥ राघव के वचन को सुन कर विभीषण बोला, यह प्रहस्त नाम राक्षस उस का सेनापति है ॥ १० ॥ लंका में राक्षसेन्द्र की तीन भाग सेना का अध्यक्ष है, वीर्यवान्, अस्त्रवेत्ता, शूर,प्रसिद्ध पराक्रम वाला है ॥ ११ ॥ महाबली वानरों की महती सेना ने राक्षसों की बड़ी सेना से घिरे हुए प्रहस्त को निकलते हुए देखा ॥ १२ ॥ उन का एक दूसरे के निकट आकर बहुत बड़ा संग्राम मचा ॥ १३ ॥ युद्ध में बहुत से राक्षसों ने बहुत से वानरों को और बहुत से वानरों ने बहुतसे राक्षसों को मार गिराया ॥ १४ ॥ नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत यह सारे प्रहस्त के मन्त्री वानरों को मारते भए ॥१५॥ वह जब झपट कर जल्दी वानरों को मार रहे थे, तो उन में से एक नरान्तक को द्विविद ने बड़ी शिला से मार गिराया ॥१६॥ फिर दुर्मुख वानर आगे बढ़ा और उस ने फुर्तीले समुन्नत राक्षस को विपुल वृक्ष से चूर २ कर दिया ॥१७॥

मूल—जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम् । पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि ॥ १८ ॥ अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान् । वृक्षेण महता सद्यः प्राणान्संत्याजयद्रणे ॥१९॥

अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमाश्रितः । चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥२०॥ प्रहस्तो हि शरौघेण राक्षसो रणदुर्मदः । अर्दयामास संक्रुद्धो वानरान्परमाहवे ॥२१॥ वानराणां शरीरैस्तु राक्षसानां च मेदिनी । बभूवातिचिता घोरैः पर्वतैरिव संवृता ॥२२॥ सा मही रुधिरौघेण प्रच्छन्ना संप्रकाशते । संछन्ना माधवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः ॥२३॥ ततः सृजन्तं बाणौघान्प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम् । ददर्श तरसा नीलो विधमन्तं प्लवङ्गमान् ॥ २४ ॥ समीक्ष्याभिद्रुतं युद्धे नीलमेवाभिदुद्रुव । नीलाय व्यसृजद्बाणान्प्रहस्तो वाहिनीपतिः॥२५॥ ततो रोषपरीतात्मा धनुस्तस्य दुरात्मनः । बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः ॥ २६ ॥ विधनुः स कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः । प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुप्लुवे ॥२७॥ आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः । प्रहस्तः परमायत्तस्ततः सुस्राव शोणितम् ॥२८॥ प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत् । बिभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा ॥२९॥ स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः । पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥ ३० ॥ हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महाबलम् । राक्षसानामहृष्टानां लंकामभिजगाम ह ॥३१॥

टीका—फिर क्रुद्ध हुए तेजस्वी जाम्बवान्‌ने महती शिला उठाकर महानाद की छाती पर दे मारी ॥१८॥ इसके अनन्तर तारने पहुँचकर वीर्यवान् कुम्भहनु के महावृक्ष से रण में प्राण छुड़ा दिये ॥१९॥ इस कर्म को न सहारता हुआ रथ पर चढ़ा हुआ प्रहस्त हाथ में धनुष लिये वानरों का घोर विनाश करता भया ॥ २० ॥ क्रुद्ध हुए रणदुर्मद उस राक्षस ने बड़े बाणसमूह से परम युद्ध में वानरों का बहुत तंग कर दिया ॥ २१॥ पृथिवी पर वानरों और राक्षसों के शरीर के ढेर लग गए, जैसेकि पृथिवी पर्वतों

से ढकी हो ॥२२॥ रुधिर के प्रवाह से ढकी हुई वह पृथिवी वैशाख मास में फूले हुए केसुओं से ढकी की तरह प्रतीत होती थी ॥ २३ ॥ तब नील ने रथ पर स्थित प्रहस्त को बाणों का प्रवाह छोड़ते हुए और वानरों को जल्दी मारते हुए देखा ॥२४॥ देखकर युद्ध में सामने आते हुए नील की तरफ ही प्रहस्त सेनापति दौड़ा और नील पर बाण छोड़ता भया ॥ २५ ॥ तब क्रोध से भरे हुए मन वाले नील ने उस दुरात्मा के धनुष को तोड़ दिया और बार २ सिंहनाद किया ॥ २६ ॥ इस प्रकार जब उस ने सेनापति प्रहस्त को धनुष रहित करदिया, तो वह घोर मूसल पकड़कर रथ से कूदा ॥ २७ ॥ उस मूसल से प्रहस्त ने बड़े उद्योग के साथ नील के सिर पर प्रहार किया उस से लहू बह निकला ॥२८॥ पर नील ने झटपट प्रहस्त के सिर पर घोर शिला दे मारी, जिसने प्रहस्त के सिर के अनेक टुकड़े कर दिये ॥ २९ ॥ उसके प्राण शोभा शक्ति इन्द्रिय सब नष्ट होगए और वह कटे मूलवाले वृक्ष की तरह सहसा पृथिवी पर आगिरा ॥ ३० ॥ नील द्वारा प्रहस्त के मारा जाने पर अप्रसन्न हुए राक्षसों की वह अकम्प्य बड़ी सेना लङ्का को भाग गई ॥ ३१ ॥

सर्ग २८ (व० ५९) रावण की स्वयं युद्ध के लिये चढ़ाई

मूल—संख्ये प्रहस्तं निहतं निशम्य क्रोधार्दितः शोकपरीतचेताः । उवाच तान्राक्षसयूथमुख्यानिन्द्रो यथा निर्जरयूथमुख्यान् ॥ १ ॥ सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन् । स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षतदद्भुतम् ॥ २ ॥ अद्यतद्वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम् । निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ॥ ३॥ स शंखभेरीपणवप्रणादैरास्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादैः । पुण्यैः स्तवैश्चापि सुपूज्यमानस्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः ॥ ४ ॥ तद्राक्षसानीकमतिप्रचण्ड-

मालोक्य रामो भुजगेन्द्रबाहुः । विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठमुवाच सेनानुगतः पृथुश्रीः ॥ ५ ॥ नानापताकाध्वजछत्रजुष्टं प्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् । कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टं सैन्यं महेन्द्रोपमनागजुष्टम् ॥ ६ ॥ ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यं विभीषणः शक्रसमानवीर्यः । शशंस रामस्य बलप्रवेकं महात्मनां राक्षसपुङ्गवानाम् ॥७॥ यत्रैतदिन्दुप्रतिमं विभाति च्छत्रं सितं सूक्ष्मशलाकयन्त्रम् । अत्रैव रक्षोधिपतिर्महात्मा भूतैर्वृतो रुद्र इवाभवाति ॥८॥ प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमरिन्दमः । अहो दीप्तमहातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ९ ॥ आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिभिर्भाति रावणः । न व्यक्तं लक्ष्यते ह्यस्य रूपं तेजःसमावृतम् ॥ १० ॥ सर्वे पर्वतसंकाशाः सर्वे पर्वतयोधिनः । सर्वे दीप्तायुधधरा योधास्तस्य महात्मनः ॥ ११ ॥ दिष्ट्यायमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः । अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसंभवम् ॥ १२॥ एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान् । लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम् ॥ १३ ॥

टीका—युद्ध में प्रहस्त को सुन कर क्रोध से पीडित और शोक से भरे चित्तवाला रावण देवसमूहों के मुखियों से इन्द्र की तरह राक्षस समूहों के मुखियों से बोला ॥ १ ॥ सो मैं शत्रु के विनाश और अपने विजय के लिये कोई विचार न करता हुआ स्वयमेव उस अद्भुत रण के मस्तक पर जाऊंगा ॥ २ ॥ आज उस वानरसेना को और रामलक्ष्मण को जलती हुई अग्नियों से बन की तरह बाण समूहों से दग्ध करूंगा ॥ ३ ॥ शंख भेरी नगारों की ध्वनियों से योद्धाओं के रानों और भुजाओं की ध्वनियों और सिंहनादों से और पवित्र स्तुतियों से पूजित हुआ वह राक्षसराज गया ॥ ४ ॥ उस अति प्रचण्ड राक्षससेना को देखकर भुजगेन्द्र तुल्य भुजाओं वाला सेना का साथी बड़ी शोभावाला राम

शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण से बोला ॥ ५ ॥ नाना झण्डे झण्डियों और छत्र से सेवित, भाला, तलवार, शूल, शस्त्र, अस्त्र से सेवित, महेन्द्र पर्वत तुल्य हाथियों से युक्त, शूरवीरों से सेवित, यह किस का अथाह बल है ॥ ६ ॥ तब राम के वाक्य को सुनकर इन्द्र-तुल्य वीर्यवाला राक्षस महात्मा राक्षसवरों के बल का भेद कहता भया ॥ ७ ॥ जहां यह सूक्ष्म शलाकाओं वाला चन्द्रतुल्य श्वेत उत्तम छत्र प्रतीत होता है, यही वह महात्मा राक्षसपति रावण गणों से युक्त रुद्र की तरह चमक रहा है ॥ ८ ॥ तब शत्रुओं के दमन करने वाले रामने विभीषण से प्रतिवचन कहा, अहो राक्षसेश्वर रावण जलते हुए बड़े तेज वाला है ॥ ९ ॥ रश्मियों से युक्त सूर्य के तुल्य रावण का तेज नहीं सहारा जाता है, तेज से ढकी हुई इसकी सूक्ष्म बनावट देखी नहीं जासक्ती है ॥ १० ॥ इस महात्मा के योधे सभी पर्वतों जैसे, पर्वतों से युद्ध करने वाले और चमकते हुए शस्त्रों को धारण किये हुए हैं ॥ ११ ॥ भाग्य से आज यह पापात्मा मेरे दृष्टिपथ हुआ है, आज इस पर सीताहरण से उत्पन्न हुए क्रोध को छोडूंगा ॥ १२ ॥ यह कहकर वीर्यवान् राम धनुष पकड़कर और उत्तम बाण निकालकर लक्ष्मण के साथ तय्यार हो ठहरा ॥ १३ ॥

सर्ग २९ (व० ५९) रावण और लक्ष्मण का युद्ध और लक्ष्मण की मूर्छा

मूल—तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य दुद्राव रक्षोधिपतिःहरीशः। महाहि-कल्पं शरमन्तकाभं समादधे राक्षसलोकनाथः ॥ १ ॥ बाणं महेन्द्रा-शनितुल्यवेगं चिक्षेप सुग्रीववधाय रुष्टः । स सायकार्तो विपरीत-चेताः कूजन्पृथिव्यां निपपात वीरः ॥ २ ॥ तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥ ३ ॥ ततो महात्मा स धनु-

र्धनुष्मानादाय रामः सहसा जगाम । तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्युपेत्य उवाच रामं परमार्थयुक्तम् ॥ ४ ॥ काममार्य सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः । विधमिष्याम्यहं चैतमनुजानीहि मां विभो ॥ ५ ॥ तमब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः । गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण संयुगे ॥६॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा संपरिष्वज्य पूज्य च । अभिवाद्य च रामाय ययौ सौमित्रिराहवे ॥ ७ ॥ स रावणं वारणहस्तबाहुं ददर्श भीमोद्यतदीप्तचापम् । प्रच्छादयन्तं शरवृष्टिजालैस्तान्वानरान्भिन्नविकीर्णदेहान् ॥ ८ ॥ तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो विस्फारयन्तं धनुरप्रमेयम् । अवेहि मामद्य निशाचरेन्द्र न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हसि ॥ ९ ॥ स तस्य वाक्यं प्रतिपूर्णघोषं ज्याशब्दमुग्रं च निशम्य राजा । आसाद्य सौमित्रिमुपस्थितं तं रोषान्वितं वाचमुवाच रक्षः ॥ १० ॥ दिष्ट्यासि मे राघव दृष्टिमार्गं प्राप्तोऽन्तगामी विपरीतबुद्धिः । अस्मिन्क्षणे यास्यसि मृत्युलोकं संसाद्यमानो मम बाणजालैः ॥ ११ ॥ तमाह सौमित्रिरविस्मयानो विकत्थसे पापकृतां वरिष्ठ ॥ १२ ॥ जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र बलं प्रतापं च पराक्रमं च । अवस्थितोऽहं शरचापपाणिरागच्छ किं मोघविकत्थनेन ॥ १३ ॥ स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज रक्षोधिपः सप्त शरान्सुपुङ्खान् । तांल्लक्ष्मणः काञ्चनचित्रपुङ्खैश्चिच्छेद बाणैर्निशिताग्रधारैः ॥१४॥ तान्प्रेक्षमाणः सहसा निकृत्तान्निकृत्तभोगानिव पन्नगेन्द्रान् । लङ्केश्वरः क्रोधवशं जगाम ससर्ज चान्यान्निशितान्पृषत्कान् ॥१५॥ स बाणवर्षं तु ववर्ष तीव्रं रामानुजः कार्मुकसंप्रयुक्तम् । क्षुरार्धचन्द्रोत्तमकर्णभल्लैः शरांश्च चिच्छेद न चुक्षुभे च ॥ १६ ॥ स बाणजालान्यपि तानि तानि मोघानि पश्यंस्त्रिदशारिराजः । विसिस्मिये लक्ष्मणलाघवेन पुनश्च बाणान्निशितान्मुमोच ॥ १७ ॥ स लक्ष्मणो रावणसायकार्तश्चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य । पुनश्च

संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्राच्चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः ॥ १८ ॥ निकृत्तचापं त्रिभिराजघान बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रैः । स सायकार्तो विचचाल राजा कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद ॥ १९ ॥ जग्राह शक्तिं स्वयमुग्रशक्तिः स्वयंभुदत्तां युधि देवशत्रुः । चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः ॥ २० ॥ तामापतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रैर्जघान बाणैश्च हुताग्निकल्पैः । तथापि सा तस्य विवेश शक्तिर्भुजान्तरं दाशरथेर्विशालम् ॥ २१ ॥ स शक्तिमाञ्शक्तिसमाहतः सञ्जज्वाल भूमौ स रघुप्रवीरः । तं विह्वलन्तं सहसाभ्युपेत्य जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम् ॥ २२ ॥ ततः क्रुद्धो वायुसुतो रावणं समभिद्रवत् । आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ २३ ॥ तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः । जानुभ्यामगमद्भूमौ चचाल च पपात च ॥ २४ ॥ हनूमानथ तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम् । आनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् २५

टीका—उस राक्षसपति को सहसा आता हुआ देखकर सुग्रीव उस की ओर दौड़ा, और राक्षसलोक के स्वामी ने महानाग के तुल्य यम रूप एक बाण छोड़ा ॥ १ ॥ और महेन्द्र के वज्र तुल्य वेगवाले उस बाण को सुग्रीव के बध के लिये फैंका, उस बाण से पीड़ित हुआ वह वीर पुकारता हुआ बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥ २ ॥ उसको भूमि पर बेहोश गिरा हुआ देखकर राक्षस प्रहर्षित हुए युद्ध में गर्जते भए ॥ ३ ॥ तब धनुर्धारी महात्मा राम धनुष लेकर जल्दी उधर गये, पर लक्ष्मण राम से हाथ जोड़ यह उत्तम वचन बोला ॥ ४ ॥ बेशक इस दुरात्मा के मारने को आप सुपर्याप्त हैं, पर इसको मैं मारूंगा, हे विभो मुझे आज्ञा दीजिये॥५॥ महातेजस्वी सच्चे पराक्रमवाले राम ने उसे कहा, हे लक्ष्मण जा और युद्ध में यत्नपरायण हो ॥ ६ ॥ राम के बचन को सुनकर

गले लगकर पूजकर और अभिवादन करके लक्ष्मण युद्ध पर चढ़ा ॥ ७ ॥ उसने हाथी के सूंड तुल्य भुजावाले भयङ्कर तय्यार चमकते हुए धनुषवाले रावण को, बाणों की वर्षा से वानरों को ढांपता हुआ, और उनकी देहों को फोड़ता और बिखेरता हुआ, देखा ॥८॥ अप्रमेय धनुष को घुमाते हुए उससे उदार हृदय लक्ष्मण बोला मेरी ओर आ हे राक्षसेन्द्र तू वानरों से प्रतियुद्ध के योग्य नहीं है ॥ ९ ॥ वह राजा उसके पूर्ण ध्वनिवाले वाक्य को और ज्या शब्द को सुनकर और उस लक्ष्मण को सामने आया देखकर क्रोध से युक्त वचन बोला ॥ १० ॥ भाग्य से तू हे राघव मेरे दृष्टि मार्ग में आया है तू अब मरने लगा है और इसीलिये विपरीत-बुद्धि हुआ है, मेरे बाण समूहों से पीड़ित हुआ तू इसी क्षण मृत्यु लोक को प्राप्त होगा ॥ ११ ॥ लक्ष्मण हैरान न होता हुआ उससे बोला, हे पाप के करनेवालों में बढे हुए तू अपनी आप प्रशंसा करता है ॥ १२ ॥ हे राक्षसेन्द्र मैं तेरे वीर्य बल प्रताप और पराक्रम को जानता हूं, आजा, मैं हाथ में धनुष बाण लिये खडा हूं, व्यर्थ श्लाघा से क्या ॥ १३ ॥ ऐसे कहे हुए राक्षसपति ने कुपित होकर तेज नोकोंवाले सात बाण छोडे, पर लक्ष्मण ने सुनहरी विचित्र नोकों वाले तीक्ष्ण अग्र धारावाले बाणों से उनको काट दिया ॥ १४ ॥ जब लङ्केश ने उनको कटे हुए फणों वाले नागों की तरह सहसा कटते हुए देखा, तो वह क्रोध में आया, और उसने और तीक्ष्ण बाण छोडे ॥ १५ ॥ इधर लक्ष्मण ने अपने धनुष से तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की, और छुरे, अर्धचन्द्र, उत्तमकर्ण और भालों से उसके बाणों को काट दिया और घबराया नहीं ॥ १६ ॥ वह राक्षसराज उन २ बाण समूहों को व्यर्थ होता देखकर लक्ष्मण के लाघव से बडा हैरान हुआ और फिर तेज़ बाण छोडता भया ॥ १७ ॥

रावण के बाणों से पीड़ित हुआ लक्ष्मण कांप गया और उसके हाथ से धनुष ढीला होगया, फिर बड़ी कठिनता से होश में आ उस ने राक्षसराज के बाण को काट दिया ॥ १८ ॥ उस के धनुष को काटकर लक्ष्मण तीक्ष्ण अग्रवाले तीव्र बाणों से उसे ताड़ता भया, बाणों से पीड़ित हुआ वह राजा विचल गया और बड़ी कठिनता से फिर होश में आया ॥ १९ ॥ अब युद्ध में स्वयं उग्र शक्तिवाले राक्षस ने ब्रह्मा से दी हुई शक्ति पकड़ी और राक्षस-राज्य के स्वामी ने जलती हुई वह शक्ति वेग से लक्ष्मण पर फेंकी ॥ २० ॥ उस आती हुई शक्ति को लक्ष्मण ने प्रज्वलित अग्नि तुल्य बाणों से ताडना किया, तथापि वह शक्ति लक्ष्मण की विशाल छाती में अन्दर प्रविष्ट होगई ॥ २१ ॥ वह शक्तिमान् शक्ति से ताडना किया हुआ रघुवीर भूमि पर गिरा उस व्याकुल को झट आकर राजा ने वेग से दोनों भुजाओं से उठा लिया ॥२२॥ उसी समय क्रुद्ध हुआ हनुमान् रावण की ओर दौड़ा, और क्रुद्ध होकर अपना वज्रतुल्य मुक्का उसकी छाती पर मारा ॥ २३ ॥ उस मुक्के के प्रहार से राक्षसेश्वर रावण कांपा और गोड़ों से भूमि पर गिरा ॥२४॥ इतने में तेजस्वी हनुमान् रावण से पीडित लक्ष्मण को दोनों भुजाओं से लेकर रामके पास लेआया ॥ २५ ॥

सर्ग ३० (व० ५९) राम से रावण का पराजय

रावणोऽपि महातेजाः प्राप्य संज्ञां महाहवे । आददेनिशितान्बाणाञ्जग्राह च महद्धनुः ॥१॥ आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः ॥ २ ॥ निपातितमहावीरां वानराणां महाचमूम् । राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत् ॥ ३ ॥ तस्याभिसंक्रम्य रथं सचक्रं साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् । ससारथिं साशनिशूलखड्गं रामः प्रचिच्छेद शितैः शराग्रैः ॥ ४ ॥ अथेन्द्रशत्रु स्तरसा जघान

बाणेन वज्राशनिसंनिभेन । भुजान्तरे व्यूढसुजातरूपे वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्रः ॥ ५ ॥ यो वज्रपाताशनिसंनिपातान्न चुक्षुभ नापि चचाल राजा । स रामबाणाभिहतो भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥ ६ ॥ तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः समाददे दीप्तमथार्धचन्द्रम् । तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा ॥७॥ गतश्रियं कृत्तकिरीटकूटमुवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥ ८ ॥ कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमं हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम् । तस्मात्परिश्रान्त इति व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥ ९ ॥ प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम् । आश्वस्य निर्याहि रथी सधन्वी तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः ॥ १० ॥ स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो निकृत्तचापः स हताश्वसूतः । शरार्दितो भग्नमहाकिरीटो विवेश लङ्कां सहसा स्म राजा ॥ ११ ॥

टीका—वह महातेजस्वी उस बड़े युद्ध में फिर होश में आकर बडे धनुष और तीक्ष्ण बाणों को पकडता भया ॥१॥ उधर कुछ आराम पाकर शत्रुसूदन लक्ष्मण भी शल्यरहित हुआ ॥ २ ॥ तब राम रण में बानर सेना के बडे २ वीरों को गिरा हुआ देखकर रावण की ओर दौडे ॥ ३ ॥ और हमला करके उसके रथ उसके पहिये घोडे छत्र ध्वजा और झण्डा सारथि वज्र शूल और खड्ग को तीक्ष्ण बाणों से काट दिया ॥ ४ ॥ तब रामने वज्र और बिजली तुल्य बाण से रावण की सोने के भूषणवाली विशाल भुजा पर ताडना किया, जैसे भगवान् इन्द्र ने वज्र से मेरु को ॥ ५ ॥ वह वीर राजा (रावण) जो वज्रपात वा बिजली के पात से क्षुब्ध नहीं हुआ था, न हिला था, वह राम के बाण से अभिहत हुआ अत्यन्त पीडित होकर हिल गया, और उस के हाथ से धनुष छूट गया ॥६॥ उसको व्याकुल देख राम ने चमकता हुआ अर्धचन्द्र पकडा, उस

से उस महात्मा ने राक्षसपति के सूर्यतुल्य चमकवाले मुकुट को झट काट दिया ॥ ७ ॥ तब कटे हुए मुकुटसमूहवाले दूर हुई शोभावाले राक्षसेन्द्र से राम युद्ध में बोले ॥ ८ ॥ तूने बहुत बड़ा भयङ्कर कर्म किया है, तूने मेरे वीरों को मारा है, इसलिये थका हुआ जानकर बाणों से तुझे मृत्यु के वश नहीं लेजाता हूं ॥ ९ ॥ जो मैं जानता हूं तू रण से पीड़ित है, सो हे राक्षसराज लंका में प्रवेश करके तसल्ली पाकर रथ और धनुष के साथ फिर बाहर निकल, तब रथ पर स्थित हुआ तू मेरा बल देखेगा ॥ १० ॥ ऐसे कहा हुआ राजा जिसका दर्प और हर्ष दूर होगया है, धनुष टूट गया है, घोड़े और सारथि मारे गये हैं, बाणों से पीड़ित है, महा मुकुट टूट गया है, वह सहसा लङ्का में प्रविष्ट हुआ ॥ ११ ॥

सर्ग ३१ (व० ६०-६२) कुम्भकर्ण को जगाकर रण के लिये उत्साहित करना

मूल—समरे जितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम् । ज्ञात्वा रक्षो भीमबलमादिदेश महाबलः ॥ १ ॥ द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम् । निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ॥ २ ॥ सुप्तमुत्थाप्य भीमाक्षं भीमरूपपराक्रमम् । कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचू रावणचोदिताः ॥ ३ ॥ द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा सर्वराक्षसपुङ्गवः । गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं संप्रहर्षय ॥ ४ ॥ कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम् । तथेत्युक्त्वा महावीर्यः शयनादुत्पपात ह ॥ ५ ॥ भ्रातुः स भवनं गच्छन्रक्षोबलसमन्वितः । कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ६ ॥ सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च । ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम् ॥ ७ ॥ अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम् । तूर्णमुत्थाय संहृष्टः सन्निकर्षमुपानयत् ॥ ८ ॥ स भ्रात्रा संपरिष्वक्तो यथावच्चाभिनन्दितः । कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् ॥ ९ ॥

स तदासनमाश्रित्य रावणं वाक्यमब्रवीत् । किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन्प्रबोधितः ॥१०॥ भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम् । रोषेण परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥ ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि । वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कथञ्चन ॥ १२ ॥ तदेतद्भयमुत्पन्नं त्रायस्वेह महाबल । नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान् ॥ १३ ॥ भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम् । त्वय्यस्ति मम च स्नेहः परा सम्भावना च मे ॥१४॥ कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तमं यथाप्रियं रणप्रिय बान्धवप्रिय । स्वतेजसा व्यथय सपत्नवाहिनीं शरदूघनं पवनइवोदितो महान् ॥१५॥

टीका—युद्ध में अपने आपको हारा हुआ, और प्रहस्त को मारा गया जानकर महाबली (रावण) ने भीमबल वाले एक राक्षस को आज्ञा दी ॥ १ ॥ द्वारों पर पूरा यत्न करो, और कोटों के ऊपर चढ़जाओ, और निद्रावश में पड़े कुम्भकर्ण को जगाओ ॥ १ ॥ रावण से प्रेरे हुए वह उस भीम नेत्रोंवाले भीमरूप और पराक्रम वाले कुम्भकर्ण को उठाकर यह वाक्य बोले ॥ ३ ॥ सब राक्षसों में श्रेष्ठ राजा आपके दर्शन चाहते हैं, सो चलने में बुद्धि कीजिये और भाई को प्रहर्षित कीजिये ॥ ४ ॥ महावीर्य दुर्धर्ष कुम्भकर्ण भाई की आज्ञा जानकर तथास्तु कहकर शयन से उठा ॥ ५ ॥ राक्षससेना से युक्त हो भाई के भवन को जाता हुआ वह अपने पाओं के रखने से पृथ्वी को कम्पा देताभया ॥६॥ वह भाई के घर पहुंचकर सारी डेवढ़ियों को लंघकर पुष्पक विमान पर बैठे हुए गुरु (बड़ेभाई) को उदास देखताभया ॥७॥ तब रावण कुम्भकर्ण को आया देखकर प्रसन्न हुआ जल्दी उठकर पास ले आया ॥८॥ वह कुम्भकर्ण भाई से गले लगाकर पूरा २ आनन्दित किया हुआ दिव्य शुभ बरासन को स्वीकार करता भया ॥९॥ वह उस

आसन पर बैठकर रावण से यह वाक्य बोला, हे राजन् किसलिये बड़े आदर से मुझे जगाया है ॥ १० ॥ रावण पास स्थित क्रोध में भरे हुए क्रोध से बदले हुए नेत्रों से युक्त भाई कुम्भकर्ण से यह वाक्य बोला ॥ ११ ॥ जो मुख्यतम राक्षस थे, वह वानरों ने युद्ध में मार डाले हैं, और वानरों का क्षय युद्ध में किसी तरह नहीं देखता हूं ॥ १२ ॥ सो यह भय उत्पन्न हुआ है, इस में हे महाबल रक्षा कर इनको अब तू मार इसलिये तुझे जगाया है ॥१३॥ भाई के अर्थ हे महाबाहो यह बड़ा दुष्कर कार्य कर, तुझ में मेरा स्नेह है, और बड़ी संभावना है ॥ १४ ॥ हे रण के प्यारे हे बन्धुओं के हितैषी अपनी प्रीति अनुसार यह प्रियहित कार्य कर, अपने तेज से शत्रु सेना को पीड़ित कर, जैसे बढ़ा हुआ महान् पवन मेघ को ॥ १५ ॥

सर्ग ३२ (व० ६२-६५) कुम्भकर्ण की युद्ध पर चढ़ाई

मूल–तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम् । कुम्भकर्णो बभाषेदं वचनं प्रजहास च ॥ १ ॥ दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये । हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया ॥ २ ॥ प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम् । केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः ॥ ३ ॥+यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः । पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ ४ ॥ अलं राक्षसराजेन्द्र सन्तापमुपपद्यते । रोषं च संपरित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥ ५ ॥ अवश्यं च हितं वाच्यं सर्वावस्थागतं मया । बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ॥ ६ ॥ सदृशं यच्च कालेऽस्मिन्कर्तुं स्नेहेन बन्धुना । शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणंमया रणे ॥ ७ ॥ अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबलान् । यदि शक्रो यदि यमो यदि पावकमारुतौ ॥ ८ ॥ चिन्तया तप्यसे राजन्किमर्थं मयि तिष्ठति ।

मुञ्च रामाद्भयं घोरं निहनिष्यामि संयुगे ॥ ९ ॥ एष निर्याम्यहं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये । इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः ॥ १० ॥ आददे निशितं शूलं वेगाच्छत्रुनिबर्हणः । सर्वं कालायसं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ॥ ११ ॥ अथासनात्समुत्पत्य स्रजं मणिकृतान्तराम् । आबबन्ध महातेजाः कुम्भकर्णस्य रावणः ॥ १२ ॥ भ्रातरं संपरिष्वज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । प्रणम्य शिरसा तस्मै प्रतस्थे स महाबलः ॥ १३ ॥ पदातयश्च बहवो महासारा महाबलाः । अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षाः शस्त्रपाणयः ॥ १४ ॥

टीका—उस राक्षसराज के रोने को सुनकर कुम्भकर्ण यह वचन बोला और हंसा ॥ १ ॥ मन्त्र निर्णय में पहले जो दोष हमने देखा था, अपने हितवादियों (हम) पर विश्वास न करनेवाले आपको वह आ प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥ पहले ही यह काम हे महाराज बिन सोचे केवल वीर्य के दर्प से किया गया है, भाविफल नहीं विचारा गया॥३॥जो अपने ऐश्वर्य के सहारे पर पहले कामों को पीछे और पिछलों को पहले करता है, वह नीति अनीति को नहीं जानता है ॥ ४ ॥ तथापि हे राक्षसराजेन्द्र अब सन्ताप मतकर क्रोध को त्यागकर तू स्वस्थ होने योग्य है ॥ ५ ॥ सब अवस्थाओं में मुझे हित कहना उचित है, सो बन्धुभाव से और भ्रातृ स्नेह से हे पार्थिव मैंने कहा है ॥ ६ ॥ किन्तु इस समय जो एक बन्धु के लिये स्नेह करना उचित है, सो आप देखें रण में मैं शत्रुओं का नाश करता हूं ॥ ७ ॥ मैं तेरे महाबली शत्रुओं को उखाडूंगा, चाहे इन्द्र, यम, अग्नि वा मारुत भी हों ॥८॥ मेरे जीते जी हे राजन् तू क्यों परितप्त होता है, राम से घोर भय को त्याग मैं उसे युद्ध में मारूंगा ॥ ९ ॥ यह मैं शत्रु के जीतने में तय्यार होकर युद्ध के लिये निकलता हूं, यह कहकर वह महाबली हर्षित

हुआ बाहर निकला ॥ १० ॥ उस शत्रुओं के मारने वाले ने तीक्ष्ण शूल हाथ में पकड़ा, जो सारा चमकता हुआ काले लाहे का तपे हुए सोने के भूषणों वाला था ॥ ११ ॥ तब आसन से उठकर महातेजस्वी रावण ने मध्य २ में मणियों वाली (सोने की) माला कुम्भकर्ण को बांधी ॥ १२ ॥ वह महाबली भाई के गले मिलकर प्रदक्षिणा करके और सिर से प्रणाम करके प्रस्थित हुआ ॥ १३॥ महाबली चुने हुए बहुत से भयङ्कर भीम नेत्रों वाले प्यादे राक्षस हाथों में शस्त्र लिये उसके साथ गये ॥ १४ ॥

सर्ग ३३ (व० ६६-६७) कुम्भकर्ण का भयानक युद्ध

मूल—स लङ्घयित्वा प्राकारं गिरिकूटोपमो महान् । निर्ययौ नगराचूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥१॥ ननाद च महानादं समुद्रमभिनादयन् । वृक्षान्गृहीत्वा हरयः संप्रतस्थू रणाजिरे ॥२॥ निर्जघ्नुः परमक्रुद्धाः समदा इव कुञ्जराः । प्रांशुभिर्गिरिशृङ्गैश्च शिलाभिश्च महाबलाः ॥ ३ ॥ तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्ते बहवः शिलाः । पादपाः पुष्पिताग्राश्च भग्नाः पेतुर्महीतले ॥ ४ ॥ सोऽपि सैन्यानि संक्रुद्धो वानराणां महौजसाम् । ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ ५ ॥ लोहितार्द्रास्तु बहवः शेरते वानरर्षभाः । निरस्ताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥ ६ ॥ तस्मिन्काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः । चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरञ्जयः ॥ ७॥ स कुम्भकर्णस्य शराञ्शरीरे सप्त वीर्यवान् । निचखानाददे चान्यान्विससर्ज च लक्ष्मणः ॥ ८ ॥ अथास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनदमयं शुभम् । प्रच्छादयामास शरैः संध्याभ्रमिव मारुतः ॥ ९ ॥ ततः स राक्षसो भीमः सुमित्रानन्दवर्धनम् । सावज्ञमेव प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिःस्वनः ॥ १० ॥ प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिव महामृधे । तिष्ठन्नप्यग्रतः पूज्यः किमु युद्धप्रदायकः ॥ ११ ॥ अद्य त्वयाहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमैः । तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनु-

ज्ञाप्य राघवम् ॥१२॥ रामे मयात्र निहते येऽन्ये स्थास्यन्ति संयुगे । तानहं योधयिष्यामि स्वबलेन प्रमाथिना ॥ १३ ॥ इत्युक्तवाक्यं तद्रक्षः प्रोवाच प्रहसन्निव । एष दाशरथी रामास्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः ॥ १४ ॥ इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मणं च निशाचरः । राममेवाभिदुद्राव कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १५ ॥

टीका—पर्वत के शिखर तुल्य महान् महाबली कुम्भकर्ण कोटको लंघ कर जल्दी नगर से बाहर आया ॥१॥ समुद्र को गुंजाते हुए उसने महानाद किया, और वानर वृक्षों को लेकर रण के मैदान में आडटे ॥ २ ॥ और मदमत्त हाथियों की तरह परम क्रूर हुए वह महाबली ऊंचे पर्वत शिखरों से और शिलाओं से (कुम्भकर्ण को) ताड़ते भए ॥३॥ पर उसके अङ्गोंपर पड़ी बहुतसी शिलाएं टूट जाती हैं, और फूले हुए अङ्गों वाले वृक्ष टुकड़े होकर पृथिवी पर गिर पड़ते हैं ॥ ४ ॥ वह भी क्रुद्ध हुआ महापराक्रमी वानरों की सेना को पूरे वेग से मथन करता भया जैसे उत्पन्न हुआ अग्नि बनों को ॥ ५ ॥ लहू से भीगे हुए बहुत से वानर लेट गए, कटकर लाल फूलोंवाले वृक्षों के तुल्य पृथिवी पर गिरे ॥ ६ ॥ उस समय शत्रुओं की सेना को पीड़नेवाला, शत्रुओं के किलों को जीतने वाला, सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण क्रुद्ध हुआ युद्ध करने लगा ॥७॥ उस वीर्यवान् लक्ष्मण ने कुम्भकर्ण के शरीर में सात बाण गाड़ दिये और फिर और लिये और छोड़े ॥८॥ और उसके चमकते हुए सुनहरी सुन्दर कवच को बाणों से ढांप दिया, जैसे सन्ध्या के मेघ को वायु ॥९॥ तब मेघघटा की सी ध्वनिवाला वह भीम राक्षस सुमित्रा के आनन्द बढ़ाने वाले (लक्ष्मण) से अनादर सहित वाक्य बोला ॥१०॥ महायुद्ध में जब मैं शस्त्र उठाकर खड़ा होजाऊं, तो मेरे सामने खड़ा होनेवाला भी पूजा के योग्य है, क्या फिर

युद्ध देनेवाला ॥ ११ ॥ आज तूने हे सौमित्रे ! बालक ने भी अपने पराक्रमों से मुझे सन्तुष्ट किया है, किन्तु तुझसे अनुज्ञा लेकर राम की ओर जाना चाहता हूं ॥ १२ ॥ जब मैं यहां युद्ध में राम को मार लूंगा, तो जो और सामने खड़े होंगे, उनको भी मथ डालने वाले अपने बल से युद्ध कराऊंगा ॥ १३ ॥ ऐसा वाक्य कह चुके उस राक्षस को (लक्ष्मण) मुस्कराकर बोला, यह दशरथसुत राम पर्वत की तरह अचल खड़ा है ॥ १४ ॥ यह सुनकर वह निशाचर लक्ष्मण का अनादर करके (पाओं से) मानों पृथिवी को कम्पाता हुआ रामकी ही ओर दौड़ा ॥१५॥

सर्ग ३४ (व० ६७) कुम्भकर्ण का राम से बध

मूल—अथ शृङ्गं समाविध्य भीमं भीमपराक्रमः । चिच्छेद राम मुद्दिश्य बलवानन्तकोपमः ॥ १ ॥ अप्राप्तमन्तरा रामः सप्तभिस्तमजिह्मगैः । शरैः काञ्चनचित्राङ्गैश्चिच्छेद भरताग्रजः ॥ २ ॥ प्रहस्य विकृतं भीमं स मेघस्तनितोपमम् । कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्य मब्रवीत् ॥ ३ ॥ नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च । न बाली न च मारीचः कुम्भकर्णः समागतः ॥ ४ ॥ पश्य मे मुद्गरं भीमं सर्वं कालायसं महत् । अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च पुरा मया ॥ ५ ॥ यैः सायकैः सालवरा निकृत्ता बाली हतो वानरपुङ्गवश्च । ते कुम्भकर्णस्य तदा शरीरं वज्रोपमानं व्यथायांप्रचक्रुः ॥ ६ ॥ स वारिधारा इव सायकांस्तान्पिबञ्शरीरेण महेन्द्रशत्रुः । जघान रामस्य शरप्रवेगं व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगं ॥ ७ ॥ वायव्यमादाय ततोऽपरास्त्रं रामः प्रचिक्षेप निशाचराय । समुद्गरं तेन जहार बाहुं स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद ॥ ८ ॥ तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः समापतन्तं सहसा नदन्तम् । द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य ॥ ९ ॥

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं सब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम्। अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं रामः शरं मारुततुल्यवेगम् ॥ १० ॥ स सायको-राघवबाहुचोदितो दिशः स्वभासा दश संप्रकाशयन्। चकर्त रक्षो धिपतेः शिरस्तदा यथैव वृत्रस्य पुरा पुरन्दरः ॥ ११ ॥ प्रहर्षमी-युर्बहवश्च वानराः प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः। अपूजयन्राघवमिष्ट-भागिनं हते रिपौ भीमबले नृपात्मजम् ॥ २१ ॥ स कुम्भकर्णं सुरसैन्यमर्दनं महत्सु युद्धेषु कदाचनाजितम्। ननन्द हत्वा भरता ग्रजो रणे महासुरं वृत्रमिवामराधिपः ॥ १३ ॥

टीका—तब भीमपराक्रमवाले,बलवान् यम तुल्य उस (कुम्भकर्ण) ने शृङ्ग घुमाकर राम की ओर फैंका ॥ १ ॥ भरत के बडे भाई राम ने सुनहरी चित्र अङ्गोंवाले, सीधा जानेवाले सात बाणों से उसको पहुंचने से पहिले मध्य में ही टुकड़े कर दिया ॥ २ ॥ तब महातेजस्वी कुम्भकर्ण मेघ की कड़क के तुल्य भयानक विकृत हंसकर राघव से यह वाक्य बोला ॥ ३ ॥ मुझे विराध न जानना, न कबन्ध, न खर, न बाली, न मारीच. मैं कुम्भकर्ण आया हूं ॥ ४ ॥ मेरे इस भयङ्कर बडे मुद्गर को देख, जो सारा लोहमय है, इससे मैंने पहले देवता और दानव जीते हैं ॥५॥ उसी समय कुम्भकर्ण के वज्र जैसे शरीर को (रामके) वह बाण बींधने लगे, जिनसे साल वृक्ष छेदे गये थे और वानरश्रेष्ठ वाली मारा गया था ॥ ६ ॥ वह इन्द्रशत्रु जलधाराओं की तरह उन बाणों को शरीर से पीता हुआ उस उग्र वेगवाले मुद्गर को घुमाकर राम के बाणों के वेग को तोड डालता भया ॥ ७ ॥ तब राम ने और वायव्य अस्त्र लेकर निशाचर की ओर फैंका. उस से मुद्गर सहित उसकी भुजा को उड़ा दिया, भुजा के कट जाने से वह तुमुल गर्जा ॥ ८ ॥ कटी हुई भुजावाले सहसा झपटते हुए और

गर्जते हुए उसको देखकर रामने दो तीक्ष्ण अर्धचन्द्र (बाण) लेकर युद्ध में उसके दोनों पाओं काट डाले ॥ ९ ॥ तब राम ने सूर्य की किरणों के तुल्य ब्रह्मदण्ड और यम के सदृश, वायुतुल्य वेगवाला शत्रुओं का अशुभ दनेवाला अच्छी नोकवाला तीक्ष्ण ऐन्द्र बाण लिया ॥ १० ॥ वह बाण राम की भुजा से प्रेरा हुआ अपने प्रकाश से दसों दिशाओं को चमकाता हुआ राक्षसपति के सिर को इसतरह काट देता भया जैसे पहले इन्द्र ने वृत्र के सिर को काटा था ॥ ११ ॥ भीम बल वाले शत्रु के मरने पर बानर सभी हर्ष को प्राप्त हुए। उनके मुख पद्मों की तरह खिल गये और वह अभीष्ट लाभ किये हुए नृपसुत राम की पूजा करते भए ॥ १२ ॥ देवताओं की सेना मारनेवाले, बड़े रणों में पहले कभी न जीते गये उस महाराक्षस कुम्भकर्ण को मारकर भरत का बड़ा भाई आनन्दित हुआ जैसे वृत्र को मारकर इन्द्र ॥ १३ ॥

सर्ग ३५ (व० ६८) कुम्भकर्ण की मृत्यु पर लंका में शोक।

मूल—कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना। राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ १ ॥ श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम्। रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च ॥ २ ॥ पितृव्यं निहतं श्रुत्वा देवान्तकनरान्तकौ। त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीड़िताः ॥ ३ ॥ भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा। महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः ॥ ४ ॥ ततः कृच्छ्रात्समासाद्य संज्ञां राक्षसपुङ्गवः। कुम्भकर्णवधादीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ५ ॥ हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल। त्वं मां विहाय वै दैवाद्यातोऽसि यमसादनम् ॥६॥ मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल। शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः क्व मां संत्यज्य गच्छसि ॥ ७ ॥ इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे पतितो भुजः। दक्षिणोयं समाश्रित्य

न बिभेमि सुरासुरान् ॥८॥ यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद्व्यसनं सदा । स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोऽसि महीतले ॥ ९ ॥ राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया । कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे मतिः ॥ १० यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम् । ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम् ॥ ११ ॥

टीका—महात्मा राम से कुम्भकर्ण को मारा गया देखकर राक्षस राक्षसेन्द्र रावण को बतलाते भये ॥ १ ॥ युद्ध में महाबली कुम्भकर्ण को मरा सुनकर रावण शोक से संतप्त हुआ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥ २ ॥ चचा को मरा सुनकर देवान्तक, नरान्तक त्रिशिरा और अतिकाय (यह रावण के पुत्र थे) शोक से पीड़ित हुए रोते भए ॥ ३ ॥ शुभ कर्मोंवाले राम से भाई को मरा सुनकर महोदर और महापार्श्व (कुम्भकर्ण के विमातृज भाइयों) को बड़ा शोक हुआ ॥ ४ ॥ तिस पीछे बड़ी कठिनता से चेतनता को पाकर वह राक्षसवर कुम्भकर्ण के बध से दीन हुआ आकुलेन्द्रिय हो विलाप करने लगा ॥ ५ ॥ हा वीर शत्रुओं के दर्प को तोड़ने वाले महाबली कुम्भकर्ण तू मुझे छोड़कर दैव से यम के घर गया है ॥ ६ ॥ मेरे और बान्धवों के शल्य को निकाले बिना हे महाबल शत्रु सेना को तपाकर मुझे त्यागकर अकेला कहां जाता है ॥ ७ ॥ अब मैं नहीं हूं, जिसकी दाईं भुजा गिर गई, जिसके सहारे से मैं देव दैत्यों से नहीं डरता था ॥ ८ ॥ जिस तुझको वज्र की चोट भी दुःख नहीं देती थी, वह कैसे राम के बाणों से पीड़ित हुआ पृथ्वी पर सोरहा है ॥ ९ ॥ मुझे राज्य से कार्य नहीं, सीता से मैं क्या करूंगा, कुम्भकर्ण से हीन हुए की मेरी जीने में मति ही नहीं ॥१०॥ यदि भाई के मारनेवाले राम को युद्ध में न मारूं, तो मरना ठीक है, न कि यह व्यर्थ जीना ॥ ११ ॥

सर्ग ३६ (व० ६९) नरान्तक आदि की चढ़ाई

मूल—एवं विलपमानस्य रावणस्य दुरात्मनः । श्रुत्वा शोकाभिभूतस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत ॥ १ ॥ कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्यहं रणे । उद्धरिष्यामि ते शत्रून्गरुडः पन्नगानिव ॥ २ ॥ श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ । अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥३ ॥ ततोऽहमहमित्येव गर्जन्तो नैर्ऋतर्षभाः । रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ ४ ॥ सर्वे सुबलसम्पन्नाः सर्वे विस्तीर्णकीर्तयः । सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते स्म निर्जिताः ॥ ५ ॥ स पुत्रान्संपरिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः । आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास वै रणे ॥ ६ ॥ युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः । रक्षणार्थं कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे ॥ ७ ॥ तेऽभिवाद्य महात्मानं रावणं लोकरावणम् । कृत्वा प्रदक्षिणं चैव महाकायाः प्रतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान्गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चाम्बुदनिःस्वनैः । अनूत्पेतुर्महात्मानो राक्षसाः प्रवरायुधाः ॥ ९ ॥ मरणं वापि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम् । इति कृत्वा मतिं वीराः संजग्मुः संयुगार्थिनः ॥ १० ॥ शूलमुद्गरखड्गैश्च जघ्नुः प्रासैश्च शक्तिभिः । अन्योन्यं पातयामासुः परस्परजयैषिणः ॥ ११ ॥ ते वानरा गर्वितहृष्टचेष्टाः संग्राममासाद्य भयं विमुच्य । युद्धं स्म सर्वे सह राक्षसैस्ते नानायुधाश्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥ १२ ॥ ततो हयं मारुततुल्यवेगमारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य । नरान्तको वानरसैन्यमुग्रं महार्णवं मीन इवाविवेश ॥ १३ ॥ स तस्य ददृशे मार्गो मांसशोणितकर्दमः । पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥ १४ ॥ यावद्विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुङ्गवाः । तावदेतानतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः ॥१५॥ न शेकुर्धर्षितुं वीरा न स्थातुं स्पन्दितुं कुतः । उत्पतन्तं स्थितं यान्तं सर्वान्निव्याध वीर्यवान् ॥ १६ ॥ वज्रनिष्पेषसदृशं प्रास-

स्याभिनिपातनम् । न शेकुर्वानराः सोढुं ते विनेदुर्महास्वनम् ॥१७॥

टीका—इसप्रकार विलपते हुए शोक से दबे हुए दुरात्मा रावण को त्रिशिरा बोला ॥ १ ॥ आप ठहरें हे राजन् मैं रण में निकलूंगा सांपों को गरुड़ की तरह तेरे शत्रुओं को विनाश करूंगा ॥ २ ॥ त्रिशिरा के वाक्य को सुनकर देवान्तक नरान्तक और तेजस्वी अतिकाय भी युद्ध के लिये हर्षित हुए ॥३ ॥ तब वह इन्द्रतुल्य पराक्रमवाले वीर रावणसुत राक्षसवर "मैं मारूंगा,मैं मारूंगा" इस प्रकार गर्जते हुए ॥ ४ ॥ सभी सुबल से सम्पन्न, सभी फैले हुए यशवाले,सभी युद्ध में पहुंचकर कभी न हारेहुए निकले॥५॥रावण पुत्रों को गले लगाकर भूषणों से भूषित करके और उत्तम आशीर्वादों से युक्त करके रण में भेजता भया ॥६॥ और उन कुमारों की रक्षा के लिये युद्ध में उन्मत्त (महोदर) और सदामस्त (महापार्श्व) इन दोनों भाइयों को साथ भेजता भया ॥ ७ वह बड़े डील वाले लोकों के रुलानेवाले महात्मा रावण को अभिवादन करके, और प्रदक्षिणा करके प्रस्थित हुए ॥ ८ ॥ उनके पीछे और बहुत से महात्मा राक्षस उत्तम शस्त्र लिय हाथी, घोड़े और मेघ की ध्वनिवाले रथों से चले ॥ ९ ॥ मरना वा शत्रु की पराजय निश्चय करके युद्धार्थी वह वीर गये ॥१०॥ शूल,मुद्गर, तलवार भाले और बर्छियों से एक दूसरे को गिराने लगे ॥११॥ अभिमानी प्रसन्न चेष्टावाले अदीन हृदय वह वानर संग्राम को पाकर भय को छोड़कर नाना शस्त्र लिये राक्षसों से युद्ध करने लगे॥१२॥ तब वायुतुल्य वेगवाले घोड़े पर चढ़कर और तीक्ष्ण बर्छी पकड़कर नरान्तक महासागर में मीन की तरह उग्र वानरसेना में प्रविष्ट हुआ ॥१३॥ उसका वह मार्ग मांस और लहू के कीचड़वाला गिरे हुए पर्वताकार वानरों से घिरा हुआ दीखने लगा ॥ २४ ॥ वानरश्रेष्ठ जब तक अपना विक्रम दिखलाने की

प्रति करते हैं, इतने में उनपर आक्रमण करके नरान्तक उनको टुकड़े २ कर देता है ॥ १५ ॥ वीर उसके सामने न बोल सके न खड़े होसके, लड़ना तो कहां, उस वीर्यवान् ने दौड़ते खड़े चलते सब को बींध दिया ॥ १६ ॥ वज्र से पीस डालने के तुल्य भाले की चोट को वानर न सहसके, वह जोर से चिल्लाए ॥ १७ ॥

सर्ग ३७ (व०६९) अंगद और नरान्तक का युद्ध और नरान्तक का बध

मूल—प्रेक्षमाणः स सुग्रीवो ददृशे हरिवाहिनीम् । नरान्तक भयत्रस्तां विद्रवन्तीं यतस्ततः ॥ १ ॥ विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम् । गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ॥२॥ दृष्ट्वोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः । कुमारमङ्गदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥३॥ गच्छैनं राक्षसं वीरं योऽसौ तुरगमास्थितः । भक्षयन्तं परबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय ॥४॥ स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पपाताङ्गदस्तदा । अनीकान्मेघसंकाशादंशुमानिव वीर्यवान् ॥५॥ नरान्तकमभिक्रम्य वालिपुत्रोऽब्रवीद्वचः । तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि ॥ ६ ॥ अस्मिन्वज्रसमस्पर्शं प्रासं क्षिप ममोरसि । अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः ॥७॥ स प्रासमाविध्य तदाङ्गदाय समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज । स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ ॥ ८ ॥ तलं समुद्यम्य स वालिपुत्रस्तुरङ्गमस्याभिजघान मूर्ध्नि । स तस्य वाजी निपपात भूमौ तलप्रहारेण विकीर्णमूर्धा ॥९॥ नरान्तकः क्रोधवशं जगाम हतं तुरङ्गं पतितं समीक्ष्य । स मुष्टिमुद्यम्य महाप्रभावो जघान शीर्षे युधि वालिपुत्रम् ॥१०॥ अथाङ्गदो मृत्युसमानवेगं संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम् । निपातयामास तदा महात्मा नरान्तकस्योरसि वालिपुत्रः ॥११॥ स मुष्टिनिर्भिन्ननिमग्नवक्षा ज्वाला वमञ्शोणितदिग्धगात्रः । नरान्तको भूमितले पपात यथाचलो वज्रनिपातभग्नः ॥ १२ ॥ अथाङ्गदो राम-

मनःप्रहर्षणं सुदुष्करं तं कृतवान्हि विक्रमम् । विसिस्मिये सोऽप्यथ भीमकर्मा पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः ॥ १३ ॥

टीका—सुग्रीव ने दृष्टि डालकर वानरसेना को देखा, कि नरांतक के भय से डरी हुई इधर उधर भाग रही है ॥१॥ सेना को भागता हुआ देखकर उसने हाथ में भाला लिये घोड़े की पीठ पर सवार नरान्तक को आते देखा ॥२॥ देखकर महातेजस्वी वानराधिपति सुग्रीव इन्द्रतुल्य पराक्रमवाले वीर कुमार अङ्गद से बोला ॥ ३ ॥ यह जो घोड़े पर स्थित राक्षसवीर हमारी सेना को दबाए जाता है, इसकी ओर जा, और जल्दी प्राणों से वियुक्तकर ॥४॥ स्वामी के वचन को सुनकर वीर्यवान् अङ्गद मेघ के मध्य से सूर्य की तरह सेना के मध्य से निकला ॥५॥ नरान्तक के पास जाकर बालिपुत्र यह वचन बोला, ठहर, इन साधारण बानरों से तू क्या करेगा ॥ ६ ॥ इस मेरी छाती पर वज्रतुल्य स्पर्शवाले भाले को फैंक, अङ्गद के इस बचन को सुनकर नरान्तक बडे क्रोध में आया ॥७॥ उसने चमकते हुए भाले को घुमाकर वेग से अङ्गद की ओर फैंका वह वज्र जैसी बालिपुत्र की छाती पर टुकड़े २ होगया और भूमि पर गिर पड़ा ॥८॥ तब बालिपुत्र ने तली जोडकर घोडे के सिर पर मारी, तली की चोट से वह उसका घोडा सिर फैंककर भूमि पर गिर पड़ा ॥९॥ नरान्तक घोडे को हत हुआ और गिरा हुआ देखकर क्रोधवश हुआ, और उस महाप्रभाव ने मुक्का जोडकर बाली-पुत्र अङ्गद के सिर पर मारा ॥ १० ॥ तब अङ्गद ने मृत्युतुल्य वेगवाला पर्वतशृङ्ग तुल्य मुक्का जोड़ कर नरान्तक की छाती पर मारा ॥ ११ ॥ मुक्के से उसकी छाती टूट गई, और अन्दर धस गई, (चोट के हेतु) ज्वाला निकली, और रुधिर से उसका शरीर भरगया, और वह वज्र की चोट से टूटे पर्वत की तरह भूमितल

पर गिरपड़ा ॥१२॥ अङ्गद ने राम के मन को हर्षित करनेवाला यह बड़ा दुष्कर विक्रम का काम किया, राम भी उससे आश्चर्य हुआ, और भीमकर्मा अङ्गद फिर युद्ध के लिये तय्यार हुआ ॥१३॥

सर्ग ३८ (व० ७०) देवान्तक, महोदर त्रिशिरा और महापार्श्व का बध

मूल—नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः। देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः ॥१॥ आरूढो मेघसंकाशं वारणेन्द्रं महोदरः। वालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वेगवान् ॥ २ ॥ भ्रातृव्यसनसंतप्तस्तदा देवान्तको बली। आदाय परिघं घोरमङ्गदं समभिद्रवत् ॥ ३ ॥ स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत्समभिद्रुतः। न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ ५॥ ततोऽङ्गदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुङ्गवैः। हनूमानथ विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः ॥ ६ ॥ स विजृम्भितमालोक्य हर्षाद् देवान्तको बली। परिघेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे ॥७॥ तमापतन्तमुत्पत्य हनूमान्कपिकुञ्जरः। आजघान तदा मूर्ध्नि वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ ८ ॥ स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नमूर्धा निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः। देवान्तको राक्षसराजसूनुर्गतासुरुर्व्यां सहसा पपात ॥ ९ ॥ महोदरस्तु संक्रुद्धः नीलस्योपर्यपातयत्। गिरौ वर्षं तडिच्चक्रं स गर्जन्निव तोयदः ॥ १० ॥ ततः स शैलाभिनिपातभग्नो महोदरस्तेन महाद्रिपेन। व्यामोहितो भूमितले गतासुः पपात वज्राभिहतो यथाद्रिः ॥ ११ ॥ पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे। हनूमन्तं च संक्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः ॥ १२ ॥ अथ शक्तिं समासाद्य कालरात्रिमिवान्तकः। चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः ॥ १३ ॥ दिवः क्षिप्तामिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्तामसङ्गताम् गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च ॥ १४ ॥ ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः। निचखान तदा खड्गं वानरेन्द्रस्य वक्षसि ॥ १५ ॥ खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान्मारुतात्मजः। आजघान त्रिमूर्धानं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ १६ ॥ स

तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्ताम्बरो भुवि । निपपात महातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥ १७ ॥ हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा युद्धोन्मत्तं तथैव च । हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥ १८ ॥ चुकोप परमामर्षी मत्तो राक्षसपुङ्गवः । जग्राहार्चिष्मतीं चापि गदां सर्वायसीं तदा ॥ १९ ॥ गदामादाय संक्रुद्धो मत्तो राक्षसपुङ्गवः । हरीन्समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ २० ॥ अथर्षभः समुत्पत्य वानरो रावणानुजम् । मत्तानीकमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥२१॥ अभिदुद्राव वेगेन गदां तस्य महात्मनः । तां गृहीत्वा गदां भीमामाविध्य च पुनः पुनः ॥ २२ ॥ मत्तानीकं महात्मा स जघान रणमूर्धनि । स स्वया गदया भग्नो विशीर्णदशनेक्षणः ॥ २३ ॥ निपपात तदा मत्तो वज्राहत इवाचलः ॥ २४ ॥

टीका--नरान्तकको मरा देखकर राक्षसश्रेष्ठ देवान्तक, त्रिशिरा और पौलस्त्य महोदर पुकार उठे ॥ १ ॥ महोदर मेघतुल्य हस्तिराज पर सवार हो वेग से महावीर्य बालीपुत्र की ओर दौड़ा ॥ २ ॥ और भाई के दुःख से तपा हुआ बलवान् देवान्तक भी घोर परिघ लेकर अङ्गद की ओर दौड़ा ॥ ३ ॥ उत्तम घोड़ों से युक्त सूर्य तुल्य चमकवाले रथ पर चढ़कर त्रिशिरा वीर बालिपुत्र अङ्गद की ओर दौड़ा ॥ ४ ॥ इन तीन राक्षस श्रेष्ठों से एक साथ हमला किया हुआ महातेजस्वी प्रतापी बालिपुत्र व्यथित नहीं हुआ ॥ ५ ॥ पर इन तीन राक्षसवरों से अङ्गद को घिरा हुआ जानकर हनूमान् और नील आगे बढ़े ॥ ६ ॥ बली देवान्तक युद्ध में हनूमान् को तय्यार देख परिघ लेकर उसकी ओर दौड़ा ॥ ७ ॥ उस आते हुए को वानरश्रेष्ठ हनुमान् ने वज्रतुल्य मुक्के से सिर पर प्रहार किया ॥८॥ मुक्के की चोट से उसका सिर टूट गया, दान्त आंखें और लम्बी जिह्वा बाहर निकल आई, राक्षसराज का पुत्र देवान्तक

निष्प्राण होकर वेग से भूमि पर गिर पड़ा ॥९॥ महोदर क्रुद्ध हुआ नील के ऊपर बिजलियों के चमकवाली बाणों की बर्षा बरसाता भया जैसे कि गर्जता हुआ मेघ पर्वत पर बरसाता है ॥१०॥ तिस पीछे शैल की चोट से तोड़ा हुआ महोदर मूर्छित हो निष्प्राण हो हाथी से भूमितल पर गिरा, जैसे वज्र से तोड़ा हुआ पर्वत गिरता है ॥११॥ चचा को मरा देख त्रिशिरा ने धनुष लिया और क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाणों से हनुमान् को बींध दिया ॥ १२ ॥ और यम की कालरात्रि की तरह बर्छी लेकर रावणसुत त्रिशिरा ने हनुमान् पर फैंकी ॥ १३ ॥ आकाश से निकली उल्का की तरह बेरोक आती हुई उस शक्ति को पकड़कर उसे वानरवर ने टुकड़े कर दिया और गर्जा ॥ १४ ॥ तब राक्षसोत्तम त्रिशिरा ने खड्ग उठाकर वानरेन्द्र की छाती पर घोंपा ॥ १५ ॥ खड्ग के प्रहार से अभिहत हुए वीर्यवान् पवनपुत्र हनुमान् ने त्रिशिरा की छाती पर तली मारी ॥ १६ ॥ तली से ताड़ना किया हुआ वह महा तेजस्वी बेहोश हो भूमि पर गिर पड़ा ॥ १७ ॥ त्रिशिरा, महोदर, दुर्धर्ष नरान्तक और देवान्तक को मरा देखकर ॥ १८ ॥ महा क्रोधी राक्षसवर महापार्श्व कुपित हुआ और उसने चमकती हुई लोहमयी गदा ली ॥ १९ ॥ गदा को लेकर जलते हुए प्रलयाग्नि के तुल्य क्रुद्ध हुआ राक्षसवर महापार्श्व वानरों की ओर दौड़ा ॥२०॥ तब बली वानर ऋषभ रावण के छोटे भाई महापार्श्व की सेना में आ उसके सामने आडटा ॥ २१ ॥ और वेग से दौड़ा और उस महात्मा की उस गदा को लेकर बार २ घुमाकर ॥२२॥ रण के मैदान में महापार्श्व को ताडता भया। वह अपनी गदा से ही मारा हुआ फूटे हुए दांतों आखोंवाला महापार्श्व वज्राहत पर्वत की तरह नीचे गिरा ॥ २३, २४ ॥

सर्ग ३९ (व० ७०) अतिकाय का लक्ष्मण से वध ॥

मूल—भ्रातॄंश्च निहतान्दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् । पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे संनिपातितौ ॥१॥ अतिकायोऽद्रिसंकाशो अभिदुद्राव वानरान् । नाम संश्रावयामास ननाद च महास्वनम् ॥ २ ॥ ततोऽतिकायो बलवान्प्रविश्य हरिवाहिनीम् । विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुनः पुनः ॥३॥ स राक्षसेन्द्रो हरियूथमध्ये नायुध्यमानं निजघान कश्चित् । उत्पत्य रामं सधनुःकलापी सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे ॥४॥ रथे स्थितोऽहं शरचापपाणिर्न प्राकृतं कञ्चन योधयामि । यस्यास्ति शक्तिर्व्यवसाययुक्तो ददातु मे शीघ्रमिहाद्य युद्धम् ॥ ५ ॥ तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता । अमृष्यमाणश्च समुत्पपात उवाच वाक्यं च ततो बृहच्छ्रीः ॥६॥ कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि । पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥ ७ ॥ सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः । शरैर्वा यदि वाप्यस्त्रैर्दर्शयस्व पराक्रमम् ॥ ८ ॥ ततोऽतिकायः कुपितश्चापमारोप्य सायकम् । लक्ष्मणाय प्रचिक्षेप संक्षिपन्निव चाम्बरम् ॥९॥ समापतन्तं निशितं शरमाशीविषोपमम् । अर्धचन्द्रेण चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा ॥ १० ॥ एवं त्रीन्पञ्च सप्तेति सायकान्राक्षसर्षभः । आददे संदधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च ॥११॥ ततस्तान्राक्षसोत्सृष्टाञ्शरौघान्राघवानुजः । असंभ्रान्तः प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः ॥१२॥ आग्नेयेन तदास्त्रेण योजयामास सायकम् । अतिकायाय चिक्षेप कालदण्डमिवान्तकः ॥ १३ ॥ आग्नेयास्त्राभिसंयुक्तं दृष्ट्वा बाणं निशाचरः । उत्ससर्ज तदा बाणं रौद्रं सूर्यास्त्रयोजितम् ॥ १४ ॥ तावुभावम्बरे बाणावन्योन्यमभिजघ्नतुः । तावन्योन्यं विनिर्दह्य पेततुः पृथिवीतले ॥१५॥ ततोऽतिकायः संक्रुद्धस्त्वाष्ट्रमैषीकमुत्सृजत् । ततश्चिच्छेद

सौमित्रिरस्त्रमैन्द्रेण वीर्यवान् ॥ १६ ॥ याम्येनास्त्रेण संक्रुद्धो योजयामास सायकम् । वायव्येन तदस्त्रेण निजघान स लक्ष्मणः ॥१७॥ तं ब्रह्मणोऽस्त्रेण नियुज्य चापे शरं सपुङ्खं यमदूतकल्पम् । सौमित्रिरिन्द्रारिसुतस्य तस्य ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम् ॥ १८ ॥ तं प्रेक्षमाणः सहसातिकायो जघान बाणैर्निशितैरनेकैः । स सायकस्तस्य सुपर्णवेगस्तथातिवेगेन जगाम पार्श्वम् ॥ १९ ॥ तमागतं प्रेक्ष्य तदातिकायो बाणं प्रदीप्तान्तककालकल्पम् । जघान शक्त्यृष्टिगदा कुठारैः शूलैः शरैश्चाप्यविपन्नचेष्टः ॥ २० ॥ तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि मोघानि कृत्वा स शरोऽग्निदीप्तः । प्रगृह्य तस्यैव किरीटजुष्टं तदातिकायस्य शिरो जहार ॥ २० ॥ तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषुप्रमर्दितम् । पपात सहसा भूमौ शृङ्गं हिमवतो यथा ॥ २२ ॥

टीका—इन्द्र तुल्य पराक्रमवाले तीनों भाइयों को मरा देखकर और युद्ध में दोनों चचों को गिरा देखकर ॥१॥ पर्वत तुल्य अतिकाय वानरों की ओर दौड़ा, उसने अपना नाम सुनाया और बड़ा ऊंचा गर्जा ॥ २ ॥ तब बलवान् अतिकाय ने वानरसेना में प्रविष्ट होकर धनुष घुमाया और घोर सिंहनाद किया ॥ ३ ॥ वह राक्षसेन्द्र वानरयूथ के मध्य में अपने साथ युद्ध न करते हुए किसी को नहीं मारता भया और धनुषधारे हुए उछलकर राम के पास आ यह सगर्व वाक्य बोला ॥ ४ ॥ धनुषबाण हाथ में लेकर रथ पर स्थित हुआ, मैं साधारण के साथ युद्ध नहीं करता हूं, जिसकी शक्ति हो, वह दृढ़ होकर मुझे आज युद्ध देवे ॥ ५ ॥ उसके वाक्य को सुनकर शत्रुओं के मारनेवाला लक्ष्मण क्रुद्ध हुआ, वह न सहारता हुआ उछला और वह बड़ा शोभावाला वाक्य बोला ॥ ६ ॥ कर्म से अपना आप दिखला, अपनी श्लाघा नहीं करनी चाहिये, जो पौरुष से युक्त है, वह शूर माना गया है ॥ ७ ॥ सारे शस्त्रों से युक्त हुआ

धनुष धारे हुए तू रथ पर स्थित है, बाणों से वा अस्त्रों से अपना पराक्रम दिखला ॥ ८ ॥ तब कुपित हुआ अतिकाय धनुष में बाण जोड़कर लक्ष्मण की ओर फैंकता भया, मानों (बाण के वेग से मध्य के) आकाश को समेटता हुआ ॥ ९ ॥ अग्नितुल्य आते हुए उस तीक्ष्ण बाण को शत्रु वीरों के मारनेवाले लक्ष्मण ने अर्धचन्द्र से काट दिया ॥ १० ॥ तब राक्षसश्रेष्ठ ने एक, तीन, पांच और सात बाण क्रमशः लिये जोड़े खींचे और छोड़े ॥ ११ ॥ राक्षस से छोड़े उन बाणसमूहों को राम के छोटे भाई ने बिना घबराए तीक्ष्ण बाणों से काट दिया ॥ १२ ॥ तब लक्ष्मण ने बाण जोड़ कर आग्नेय अस्त्र से अतिकाय की ओर फैंका, जैसे यम काल-दण्ड को ॥ १३ ॥ तब राक्षस आग्नेयास्त्र से जुड़े बाण को देखकर सूर्यास्त्र में जोड़कर रौद्र बाण को छोड़ता भया ॥ १४ ॥ वह दोनों बाण आकाश में आपस में टकराए, और एक दूसरे को दग्ध करके पृथिवी तल पर गिरे ॥ १५ ॥ तब क्रुद्ध हुए अतिकाय ने त्वाष्ट्रबाण छोड़ा, उस अस्त्र को वीर्यवान् लक्ष्मण ने ऐन्द्र से काट दिया ॥ १६ ॥ और उसने क्रुद्ध होकर याम्य अस्त्र से बाण को जोड़ा, लक्ष्मण ने उसे वायव्य अस्त्र से काट दिया ॥ १७ ॥ अब लक्ष्मण ने यमदूत के तुल्य नोकवाला बाण ब्रह्मअस्त्र के साथ धनुष में जोड़ा, और वह वज्रतुल्य बाण अतिकाय की ओर छोड़ा ॥ १८ ॥ उसको देखते हुए अतिकाय ने अनेक तीक्ष्ण बाणों से ताड़ना किया, तथापि वह गरुड़ तुल्य वेगवाला बाण अति वेग से उसके पास पहुंचा ॥ १९ ॥ प्रचण्ड यम और काल के तुल्य उस बाण को आया देखकर फुर्तीले अतिकाय ने शक्ति, ऋष्टि, गदा, कुठार, शूल और तीरों से ताड़ना किया ॥२०॥ उन सब अद्भुत आकृति वाले शस्त्रों को व्यर्थ करके अग्नि से दीप्त वह

बाण अतिकाय के सिर को उड़ा ले गया ॥ २१ ॥ लक्ष्मण के बाण से उड़ाया हुआ उसका सिर टोप समेत हिमालय की चोटी तुल्य सहसा भूमि पर गिरपड़ा ॥ २२ ॥

सर्ग ४० (व० ७२-७६) कम्पन प्रजंघ शोणिताक्ष का अंगदादि से युद्ध में बध ॥

मूल—ततो हतान्राक्षसपुङ्गवांस्तान्देवान्तकादित्रिशिरोऽतिकायान् । रक्षोगणास्तत्र हतावशिष्टास्ते रावणाय त्वरिताः शशंसुः ॥ १ ॥ स कुम्भं च निकुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ । प्रेषयामास संक्रुद्धो राक्षसैर्बहुभिः सह ॥ २ ॥ यूपाक्षः शोणिताक्षश्च प्रजङ्घः कम्पनस्तथा । निर्ययौ कौम्भकर्णाभ्यां सह रावणशासनात् ॥ ३ ॥ तद्दृष्ट्वा बलमायान्तं राक्षसानां दुरासदम् । संचचाल प्लवङ्गानां बलमुच्चैर्ननाद च ॥४॥ प्रवृत्ते संकुले तस्मिन्वीरे घोरजनक्षये । अङ्गदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः ॥ ५ ॥ आहूय सोऽङ्गदं कोपात्ताडयामास वेगितः । गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः ॥ ६ ॥ स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखिरं गिरेः । अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि ॥ ७ ॥ ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे । रथेनाभ्यपतत्क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत् ॥ ८ ॥ सोऽङ्गदं निशितैर्बाणैस्तदा विव्याध वेगितः । क्षुरक्षुरप्रनाराचैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ॥९॥ कर्णिशल्यविपाठैश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ॥ १० ॥ अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रः प्रतापवान् । धनुरुग्रं रथं बाणान् ममर्द तरसाबली ॥ ११ ॥ शोणिताक्षस्ततः क्षिप्रमसिचर्म समाददे । तं क्षिप्रतरमाप्लुत्य परामृश्याङ्गदो बली । करेण तस्य तं खड्गं समाच्छिद्य ननाद च ॥ १२ ॥ तं प्रगृह्य महाखड्गं विनद्य च पुनः पुनः । वालिपुत्रोऽभिदुद्राव रणशीर्षे परानरीन् ॥ १३ ॥ आयसीं तु गदां गृह्य स वीरः कान-

काङ्गदः। शोणिताक्षः समाश्वस्य तमेवानुपपात ह ॥ १४ ॥ प्रजङ्घस्तु महावीरो यूपाक्षसहितो बली। गदयाभिययौ क्रुद्धो बालिपुत्रं महाबलम् ॥ १५ ॥ अङ्गदं परिरक्षन्तौ मैन्दो द्विविद एव च। तस्य तस्थतुरभ्याशे परस्परादृदृक्षया ॥ १६ ॥ त्रयाणां वानरेन्द्राणां त्रिभी राक्षसपुङ्गवैः। संसक्तानां महद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥ १७ ॥ उद्यम्य विपुलं खड्गं परमर्मविदारणम्। प्रजङ्घो बालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगितः ॥ १८ ॥ तमभ्याशगतं दृष्ट्वा वानरेन्द्रो महाबलः। बाहुं चास्य सनिस्त्रिंशमाजघान स मुष्टिना ॥ १९ ॥ बालिपुत्रस्य घ तेन स पपात क्षितावसिः ॥ २० ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ खड्गं मुसलसन्निभम्। मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥ २१ ॥ स ललाटे महावीर्यमङ्गदं वानरर्षभम्। आजघान महातेजाः स मुहूर्तं चचाल ह ॥ २२ ॥ स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी बालिपुत्रः प्रतापवान्। प्रजङ्घस्य शिरः कायात्पातयामास मुष्टिना ॥ २३ ॥ स यूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षः पितृव्ये निहते रणे। अवरुह्य रथात्क्षिप्रं क्षीणेषुः खड्गमाददे ॥ २४ ॥ द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे। निष्पिपेष स वीर्येण क्षितावाविध्य वीर्यवान् ॥२५॥ यूपाक्षमभिसंक्रुद्धो मैन्दो वानरपुङ्गवः। पीडयामास बाहुभ्यां पपात स हतः क्षितौ ॥२६॥

टीका—राजा (रावण) ने जब उनका मरना सुना, तो उनके नेत्र आंसुओं से डबडबाने लगे, और पुत्र और भाइयों के भयङ्कर नाश को सोचकर वह गहरी सोच में पड़ा ॥ १ ॥ उसने क्रुद्ध होकर कुम्भकर्ण के दोनों पुत्र कुम्भ और निकुम्भ को बहुत से राक्षसों के साथ भेजा ॥ २ ॥ तथा रावण की आज्ञा से कुम्भकर्ण के पुत्रों के साथ यूपाक्ष, शोणिताक्ष प्रजङ्घ और कम्पन निकले ॥३॥ राक्षसों के उस दुर्धर्ष बल को आता देखकर वानरों की सेना ऊंचा गर्जती हुई चली ॥४॥ भयङ्कर जनक्षय करनेवाले उस संग्राम के

प्रवृत्त होने पर रणोत्साही अङ्गद वीर कम्पन के सम्मुख गया ॥ ५ ॥ कम्पन ने भी अङ्गद को आह्वान (चैलंज) दिया, और कोप में वेग से उसे गदा से ताड़ना किया, अङ्गद उस प्रबल चोट से उखड़ गया ॥ ६ ॥ पर उस तेजस्वी ने जल्दी होश सम्भालकर पर्वत शिखर फैंका, कम्पन उस प्रहार से पीड़ित होकर पृथ्वी तल पर गिर पड़ा ॥ ७ ॥ तब कम्पन को रण में मरा देखकर शोणिताक्ष जल्दी अभीतवत् अङ्गद पर जा झपटा॥८॥ उसने वेगसे अङ्गद को तीक्ष्ण बाणों क्षुर, क्षुरप्र, नराच, वत्सदन्त शिलीमुख, कर्ण, शल्य, विपाठ इन बहुत से बाणों से बींध दिया ॥ ९, १० ॥ वह बींधे हुए अङ्गोंवाला बली प्रतापी बालिपुत्र अङ्गद उसके उग्र धनुष रथ और बाणों को बल से नष्ट करता भया ॥११॥ तब शोणिताक्ष ने हाथ में झटपट तलवार ली, पर बली अङ्गद ने बहुत तेज़ी से उछलकर और उसे आगे धरकर उसके हाथ से तलवार छीन ली और गर्जा ॥ १२ ॥ उस बड़ी तलवार को पकड़कर और बार २ गर्जकर बालिपुत्र रण के मैदान में शत्रुओं की ओर दौड़ा ॥ १३ ॥ तब शोणिताक्ष होश सम्भालकर लोहे की गदा लेकर उसी के पीछे गया ॥ १४ ॥ और महावीर बली प्रजङ्घ और यूपाक्ष भी गदा लेकर क्रुद्ध हुए महाबली बालिपुत्र अङ्गद की ओर गए ॥ १५ ॥ अङ्गद की रक्षा करते हुए मैन्द और द्विविद भी अपना प्रतिद्वन्द्वी चाहते हुए अङ्गद के निकट खड़े होगये ॥ १६ ॥ तीन राक्षस श्रेष्ठों से जुटे हुए तीन वानरों का रोंगटे खड़े करनेवाला भारी युद्ध हुआ ॥१७॥ शत्रु के मर्म पीड़नेवाले विशाल खड्ग को उठाकर प्रजङ्घ वेग से बालिपुत्र की ओर दौड़ा ॥ १८ ॥ उसको निकट आया देखकर महाबली वानरेन्द्र ने तलवारवाली उसकी भुजा पर मुक्के की चोट

दी ॥ १९ ॥ वालिपुत्र की चोट से वह तलवार भूमि पर गिर पड़ी ॥२०॥ मुसलतुल्य उस खड्ग को भूमि पर गिरा हुआ देख कर उस महाबली ने वज्रतुल्य मुक्का बनाया ॥ २१ ॥ और उससे उस महातेजस्वी महाबली वानरश्रेष्ठ अङ्गद को ताड़नाकिया, वह थोड़ी देर घबराया ॥ २२ ॥ पर होश सम्भालकर तेजस्वी प्रतापी बालीपुत्र ने मुक्के से प्रजंघ का सिर उसके शरीर से गिरा दिया ॥ २३ ॥ रण में चचा के मरने पर आंसुओं से भरे नेत्रोंवाला यूपाक्ष रथ से उतरा, और बाणों के समाप्त होजाने से उसने खड्ग लिया ॥ २४ ॥ इधर द्विविद्ने शोणिताक्ष के मुख को नखों से फाड़कर,उस वीर्यवान् ने अपने बल से उसे भूमि पर फैंककर पीस डाला ॥ २५ ॥ और यूपाक्ष को क्रुद्ध हुए मैन्द ने दोनों भुजाओं से ऐसा पीड़ा कि वह मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २६ ॥

सर्ग ४१ (व०७६, ७७) कुम्भ का सुग्रीव से और निकुम्भ का हनुमान् से वध ॥

मूल–हतप्रवीरा व्यथिता राक्षसेन्द्रचमूस्तथा । जगामाभिमुखी सा तु कुम्भकर्णात्मजो यतः ॥ १ ॥ निपातितमहावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं तदा । कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम् ॥ २ ॥ तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणाञ्शरदृष्टिभिरर्दितान् । अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भ-कर्णात्मजं रणे ॥३॥ ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमभिपात्य च । आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ ४ ॥ स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः । स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥ ५ ॥ स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशपीड़ितः । निपपात तदा कुम्भो गतार्चिरिव पावकः ॥ ६ ॥ निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् । प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमुदैक्षत ॥ ७ ॥ आददे परिघं धीरो महेन्द्रशिखरोपमम् । यमदण्डोपमं भीमं रक्षसां भय-

नाशनम् ॥ ८ ॥ राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पन्दितुं भयात् । हनूमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥ ९ ॥ हनूमानुन्ममाथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः । निक्षिप्य परमायत्तो निकुम्भं निष्पिपेष च ॥ १० ॥ परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम् । उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत् ॥ ११ ॥

टीका—उन वीरों के मरने से दुःखित हुई राक्षससेना उस ओर गई जहां कुम्भकर्ण का पुत्र था ॥ १ ॥ जिस में से महावीर गिर चुके हैं, ऐसी राक्षससेना को देखकर तेजस्वी कुम्भ ने रण में बड़ा दुष्कर कर्म आरम्भ किया ॥ २ ॥ उन वानरसमूहों को बाणों से पीड़ित देखकर सुग्रीव रण में कुम्भकर्ण के पुत्र की ओर दौड़ा ॥ ३ ॥ तब कुम्भ कूदा और उसने क्रुद्ध हो सुग्रीव को गिराकर वज्रतुल्य मुक्के से उसकी छाती पर प्रहार किया ॥ ४ ॥ उससे प्रहार किये हुए वानरश्रेष्ठ वीर्यवान् सुग्रीव ने कुम्भ की छाती पर मुक्का मारा ॥ ५ ॥ उस प्रहार से व्याकुल हुआ अतीव पीड़ित हुआ कुम्भ दूर हुई लाटवाले अग्नि की तरह (निस्तेज) होकर गिर पड़ा ॥ ६ ॥ भाई को सुग्रीव से गिराया देखकर क्रोध से मानों दग्ध करते हुए निकुम्भ ने वानरेन्द्र की ओर देखा ॥ ७ ॥ उस वीर ने महेन्द्र की चोटी तुल्य, यमदण्ड के तुल्य, भयानक और राक्षसों के भय का नाशक परिघ लिया ॥ ८ ॥ मारे भय के राक्षस और वानर फर्क नहीं सके, किन्तु बली हनुमान् छाती आगे करके सामने खड़ा हुआ ॥ ९ ॥ पवनपुत्र हनुमान् ने निकुम्भ को मथ डाला, और नीचे फैंककर निकुम्भ को पीस डाला ॥ १० ॥ दोनों भुजाओं को पकड़कर और उसकी गर्दन मरोड़कर भयानक गर्जते हुए के सिर को तोड़ दिया ॥ ११ ॥

सर्ग ४२ (व०७८-७९) खरपुत्र मकराक्षका युद्ध और राम से बध

मूल—निकुम्भं निहतं दृष्ट्वा कुम्भं च विनिपातितम्। रावणः परमामर्षी प्रजज्वालानलो यथा ॥१॥ नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्छितः। खरपुत्रं विशालाक्षं मकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छ पुत्र मयाज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः। राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तौ सवनौकसौ ॥ ३ ॥ सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्। निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञया बली ॥ ४ ॥ निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरपुङ्गवाः। आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥ तद्युद्धमभवत्तत्र समेत्यान्योन्यमोजसा। खरराक्षसपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च ॥ ६ ॥ रामपुक्तांस्तु बाणौघान्राक्षसस्त्वाच्छिनद्रणे। रक्षोमुक्तांस्तु रामो वै नैकधा प्रच्छिनच्छरैः ॥ ७ ॥ ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद संयुगे। अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः ॥ ८ ॥ भित्वा रथं शरै रामो हत्वा अश्वानपातयत्। विरथो वसुधास्थः स शूलं जग्राह पाणिना ॥ ९ ॥ स क्रोधात्प्राहिणोत्तस्मै राघवाय महात्मने। बाणैश्चतुर्भिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः ॥ १० ॥ तच्छूलं निहतं दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः। मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ स तं दृष्ट्वापतन्तं तु प्रहस्य रघुनन्दनः। पावकास्त्रं ततो रामः संदधे तु शरासने ॥ १२ ॥ तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे। संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा ते राक्षसाः सर्वे मकराक्षस्य पातनम्। लङ्कामेव प्रधावन्त रामबाणभयार्दिताः ॥१४ ॥

टीका—निकुम्भ और कुम्भ को मारा गया सुनकर परम क्रोधी रावण अग्नि की तरह जल उठा ॥१॥ क्रोध और शोक से मूर्छित हुए उस राक्षस ने विशाल नेत्रोंवाले खर के पुत्र मकराक्ष को प्रेरा ॥ २ ॥ जा हे पुत्र ! मुझ से आज्ञा दिया हुआ तू सेना समेत जाकर वानरों

समेत राम और लक्ष्मण को मार ॥ ३ ॥ वह बली रावण को अभिवादन और प्रदक्षिणा करके रावण की आज्ञा से शुभ्रग्रह से निकला ॥ ४ ॥ मकराक्ष को निकला देखकर वानरवर सभी उछलकर युद्ध के लिये सर्फें बांधकर तैयार होगए ॥ ५ ॥ आपस में मिलकर खर राक्षस के पुत्र और दशरथ के पुत्र का प्रबल युद्ध हुआ ॥ ६ ॥ राम से छोड़े बाणसमूहों को राक्षस काट देता भया, और राक्षस से छोड़े बाणों को राम अपने बाणों से नाना प्रकार से काट देते भए ॥ ७ ॥ तब क्रुद्ध हुए महाबाहु राम ने आठ बाणों से युद्ध में उसके धनुष को काट दिया, और सारथि को बींध दिया ॥८॥ राम ने बाणों से रथ को फोड़ दिया, घोड़ों को गिरा दिया, तब प्यादा होकर उस राक्षस ने त्रिशूल पकड़ा ॥ ९ ॥ क्रोध से उसने वह त्रिशूल राम की ओर फैंका, राम ने उस त्रिशूल को आकाश में चार बाणों से टुकड़े कर दिया ॥ १० ॥ शूल को टूटा देखकर मकराक्ष निशाचर मुक्का ऊंचा करके "ठहर ठहर" कहता हुआ राम की ओर दौड़ा ॥ ११ ॥ उसको आता देखकर राम ने हंसकर बाण में आग्नेयास्त्र जोड़ा ॥ १२ ॥ उस अस्त्र से राम से मारा हुआ वह छिन्नहृदय होकर गिर पड़ा, और मर गया ॥ १३ ॥ राक्षस मारे मकराक्ष को गिरता देखकर राम के बाणों के भय से पीड़ित हुए लङ्का को ही भाग गये ॥ १४ ॥

सर्ग ४३ (व० ८०-८१) इन्द्रजित् का रण में आना और मायामयी सीता को मारना

मूल—मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिञ्जयः । आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम् ॥ १ ॥ जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः ॥ २ ॥

त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे। किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यसि संयुगे ॥ ३ ॥ तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः । यज्ञभूमौ स विधिवत्पावकं जुहवेन्द्राजित् ॥ ४ ॥ क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगामाथ रावणिः। स पश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ राक्षसैर्वृतः ॥ ५ ॥ इन्द्राजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं तदा। मोहनार्थं तु सर्वेषां वानराभिमुखो ययौ ॥ ६ ॥ तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामासराक्षसः। क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥ ७ ॥ गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनूमान् मारुतात्मजः । अब्रवीत्परुषं वाक्यं क्रोधाद्रक्षोधिपात्मजम्॥८॥ दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे परामृशः। धिक्त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी ॥ ९ ॥ नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्र पापपराक्रम। अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण ॥ १० ॥ सीतां हत्वा तु न चिरं जीविष्यासि कथञ्चन । वधार्हकर्मणा तेन मम हस्तगतो ह्यसि ॥ ११ ॥ ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्यैश्च कुत्सिताः।इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान्प्रति लप्स्यसे ॥ १२ ॥ इति ब्रुवाणो हनुमान्सायुधैर्हरिभिर्वृतः । अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ १३ ॥ आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम्। रक्षसां भीमकोपानामनीकेनन्यवारयत् ॥१४॥ हनूमन्तं हरिश्रेष्ठमिन्द्रजित्प्रत्युवाच ह ॥ १५ ॥ सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः । तां वधिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः ॥ १६ ॥ इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर। सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम् ॥ १७ ॥ न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम । पीडाकरममित्राणां यच्च कर्तव्यमेव तत् ॥ १८ ॥ तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम्। शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम् ॥ १९ ॥ ततः खड्गेन महता हत्वा तामिन्द्रजित्स्वयम्। हृष्टः स रथमास्थाय ननाद च महास्वनम् ॥२०॥

टीका—मकराक्ष को हत हुआ सुनकर युद्धों के जीतनेवाले रावण ने क्रुद्ध होकर अपने पुत्र इन्द्रजित को रण के लिये आज्ञा दी ॥ १ ॥ हे वीर उन महावीर्य दोनों भाई राम लक्ष्मण को, अदृश्य होकर वा दृश्यमान हुआ मार, सर्वथा तू बल में अधिक है ॥ २ ॥ तू अतुल्य कर्मोंवाले इन्द्र को युद्ध में जीत सक्ता है, क्या फिर उन दोनों मनुष्यों को देखकर युद्ध में नहीं मारेगा ॥ ३ ॥ राक्षसेन्द्र से ऐसे कहा हुआ पिता की आज्ञा को स्वीकारकर इन्द्रजित युद्धभूमि में गया, और उसने यथाविधि अग्नि में होम किया ॥ ४ ॥ क्रोध से लाल नेत्रोंवाला शूर रावणपुत्र राक्षसों से घिरा हुआ पश्चिम द्वार से बाहर निकला ॥ ५ ॥ वह इन्द्रजित् मयामयी सीता को रथ पर स्थापन करके सब को धोखा देने के लिये वानरों के अभिमुख गया ॥ ६ ॥ माया से रथ पर जोड़ी हुई राम राम पुकारती हुई उस स्त्री को उनके देखते हुए राक्षस ने ताड़ना किया ॥ ७ ॥ बालों से पकड़ी को देखकर पवनपुत्र हनुमान् क्रोध से राक्षसपति के पुत्र को यह कठोर वाक्य बोला ॥ ८ ॥ हे दुरात्मन् तू अपने नाश के लिये इसके बालों को छूता है, धिक्कार तुझ पापाचार वाले को जिसकी मति ऐसी है ॥ ९ ॥ हे नृशंस, हे अनार्य, हे दुर्वृत्त, हे क्षुद्र, हे पाप पराक्रमवाले, ऐसा कर्म अनार्य का होता है, हे निर्दय तुझे दया नहीं है ॥ १० ॥ सीता को मारकर इस कर्म से हे वध योग्य ! तू मेरे हाथ में पड़ा हुआ देर तक जीता नहीं रहेगा ॥ ११ ॥ जो स्त्रीघातियों के लोक हैं, जो लोक वध्यों (चोरादि) से भी निन्दित हैं, तू यहां जीवन छोडकर मरकर उनको प्राप्त होगा ॥ १२ ॥ यह कहता हुआ हनुमान् क्रुद्ध हुआ हाथों में शस्त्र धारे वानरों से घिरा हुआ राक्षसेन्द्र के पुत्र की ओर दौड़ा ॥ १३ ॥ आती हुई वानरों की

उस बड़ी शक्तिवाली सेना को इन्द्राजित् ने भयङ्कर क्रोधवाले राक्षसों की सेना से रोका और वानरश्रेष्ठ हनुमान् को उत्तर दिया ॥ १४, १५ ॥ सुग्रीव तू और राम जिस निमित्त यहां आए हो, उस वैदेही को आज तेरे सामने मारूंगा ॥ १६ ॥ इसको मार कर हे वानर फिर राम लक्ष्मण को तुझको सुग्रीव को और उस अनार्य विभिषण को मारूंगा ॥ १७ ॥ स्त्री मारने योग्य नहीं, यह जो तु कहता है हे वानर! सो जो शत्रुओं को दुःखदायी हो, वह करनाही चाहिये ॥ १८ ॥ यह कहकर रोती हुई उस मायामयी सीता को इन्द्राजित् ने स्वयं तीक्ष्णधारा वाले खड्ग से काट दिया ॥ १९ ॥ स्वयं बड़े खड़ग से उसे मारकर प्रसन्न हुआ इन्द्राजित् रथ पर खड़ा होकर बड़ी ध्वनि से गर्जा ॥ २० ॥

सर्ग ७४ (व० ८२-८४) सीता का वध सुनकर राम का शोक और विभीषण का उस के असली भेद को खोलना

मूल—अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान्वानरर्षभाः। परिवार्य हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे ॥ १ ॥ स तैर्वानरमुख्यैस्तु हनूमान्सर्वतो वृतः। हुताशन इवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ २ ॥ स सैन्यमभिवीक्ष्याथ वानरार्दितमिन्द्राजित्। प्रगृहीतायुधः क्रुद्धः परानभिमुखो ययौ ॥ ३ ॥ स शरौघानवसृजन्स्वसैन्येनाभिसंवृतः। जघान कपिशार्दूलान्सुबहून्दृढविक्रमः ॥ ४॥ हनूमान्कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम्। सन्निवार्य परानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः ॥ ५ ॥ त्यक्त्वा प्राणान्विचेष्टन्तो रामप्रियचिकीर्षवः। यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा ॥ ६ ॥ इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च। तौ यत्प्रतिविधास्येते तत्करिष्यामहे वयम् ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन्सर्ववानरान्। शनैः शनैरसंत्रस्तः सबलः संन्यवर्तत ॥ ८ ॥ ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं तत्र राघवम्। स होतुकामो दुष्टात्मा

गतश्चैस निकुम्भिलाम् ॥ ९ ॥ राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम् । श्रुत्वा संग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥ १० ॥ सौम्य नूनं हनुमता कृतं कर्म सुदुष्करम् । श्रूयते च यथा भीमः सुमहानायुधस्वनः ॥ ११ ॥ तद्गच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः ॥ १२ ॥ ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वा स्वेनानीकेन संवृतः । आगच्छत्पश्चिमं द्वारं हनूमान्यत्र वानरः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृक्षबलमुद्यतम् । नीलमेघनिभं भीमं सन्निवार्य न्यवर्तत ॥ १४ ॥ स तेन सह सैन्येन सन्निकर्षं महायशाः । शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥ समरे युध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां च सः । जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥ १६ ॥ उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिन्दम । तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः ॥ १७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्छितः । निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ १८ ॥ राममाश्वासमाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले । निक्षिप्य गुल्मान्स्वस्थाने तत्रागच्छद्विभीषणः ॥ १९ ॥ व्रीडितं शोकसंतप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः । पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसंज्ञं राममब्रवीत् ॥ २० ॥ वानरान्मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः । मायामयीं महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम् ॥ २१ ॥ चैत्यं निकुम्भिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यति । हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः ॥ २२ ॥ दुराधर्षो भवत्येष संग्रामे रावणात्मजः ॥ २३ ॥ तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता । विघ्नमन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे ॥ २४ ॥ ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते । त्यजैनं नरशार्दूल मिथ्यासन्तापमागतम् ॥ २५ ॥ इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्त्वसमुच्छ्रितः । लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः ॥ २६ ॥ एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः । त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो बध्यो भविष्यति ॥ २७ ॥

टीका–तब उस महायुद्ध में वानरश्रेष्ठ गर्जतेहुए हनुमान् के साथ राक्षसों के ऊपर टूट पड़े ॥ १ ॥ उन वानर मुख्यों से सब ओर घिरा हुआ वह हनुमान् लाटोंवाली अग्नि की तरह शत्रु सेना को दग्ध करता भया ॥ २ ॥ इधर इन्द्रजीत वानरों से पीड़ित सेना को देखकर शस्त्र पकड़कर क्रोध से भरा हुआ शत्रुओं के अभिमुख गया ॥ ३ ॥ अपनी सेना के साथ मिलकर उसने बाणों के समूह छोड़े, उस दृढ़ विक्रमवाले ने बहुत से वानरश्रेष्ठों को मार डाला ॥४॥ हनुमान् ने तो उन भीमकर्मा राक्षसों का विनाश करके उस शत्रुसेना को पीछे हटा दिया, और फिर उन वानरों से बोला ॥५॥ हम राम का प्रिय करना चाहते हुए प्राणों को छोड़कर लड़ रहे हैं, पर जिसके निमित्त हम लड़ रहे हैं, वह जनकसुता मारी गई है ॥ ६ ॥ यह बात राम और सुग्रीव को जितलाकर फिर जो कुछ वह प्रतिकार करेंगे वह हम करेंगे ॥ ७ ॥ यह कहकर वानरश्रेष्ठ सारे वानरों को हटाकर धीरे २ निर्भय सेना समेत लौटा ॥ ८ ॥ हनुमान् को राम की ओर आता देखकर वह दुष्टात्मा होम की इच्छासे निकुम्भिलाचैत्य (पूजा स्थान) को गया ॥९॥ उधर राघव ने राक्षस और वानरों की उस विपुल संग्रामध्वनि को सुनकर जाम्बवान् को कहा ॥१०॥ हे सौम्य हनुमान् ने निःसंदेह बड़ा दुष्कर कर्म किया है, जैसा कि शस्त्रों की बहुत बड़ी भयङ्कर ध्वनि सुनाई दे रही है ॥ ११ ॥ सो तू अपनी सेना के साथ जा उसकी सहायता कर ॥ १२ ॥ ऋक्षराज तथास्तु कहकर अपनी सेना समेत पश्चिम द्वार की ओर आया, जहां हनुमान् वानर था ॥ १३ ॥ मार्ग में हनुमान् नील मेघ तुल्य भयानक उद्यत हुई उस सेना को देखकर उसे भी साथ लौटा लाया ॥ १४ ॥ वह महायशस्वी उस सेना के साथ जल्दी राम के पास आ दुःखित हुआ उसे यह वाक्य बोला

॥ १५ ॥ संग्राम में युद्ध करते हुए रावणसुत इन्द्रजित् ने हमारे देखते हुए रोती हुई सीता को मारडाला है ॥ १६॥ उसको देखकर घबराए हुए मनवाला उदास हुआ मैं हे शत्रुदमन यह वृत्तान्त आपको बतलाने के लिये आया हूं ॥ १७ ॥ उसके वचन को सुन कर राम शोक से मूर्छित हुआ कटी जड़ वाले वृक्ष की तरह भूमि पर गिरपड़ा ॥१८॥ उससमय भ्रातृ-वत्सल लक्ष्मण के राम को तसल्ली देते हुए विभीषण अपने२ स्थान पर मोर्चे लगाकर वहां आया ॥१९॥ लज्जित हुए और शोक से तपे हुए राम को देखकर विभीषण घबराए हुए रामसे गम्भीर तात्पर्यवाला यह वाक्य बोला ॥ २० ॥ वानरों को धोखा देकर वह राक्षस वापिस चला गया है, हे राघव उस सीता को तू मायामयी जान २१ ॥ वह अब निकुम्भिला चैत्य में जाकर होम करेगा, होम करके आया हुआ वह रावणसुत संग्राम में इन्द्रसहित देवताओं से भी दुराधर्ष होजाता है ॥ २२, २३ ॥ इसलिए धोखा देते हुए उसने यह माया की है, जिससे कि वानरों के पराक्रम में विघ्न पड़े ॥ २४ ॥ हम सेना सहित वहां जाते हैं, जब तक कि वह (हवन) समाप्त नहीं होता है, हे नरश्रेष्ठ तू इस मिथ्या आए सन्ताप को त्याग ॥ २५ ॥ यहां आप स्वस्थ हृदय होकर दिलेरी से ठहरे रहें, और लक्ष्मण को सेना सहित हमारे साथ भेजिये ॥ २६ ॥ हे नरशार्दूल यह उस रावणसुत से तीक्ष्ण तीरों द्वारा वह कर्म छुड़वा देगा, तब वह वध्य होगा ॥ २७ ॥

सर्ग ४५ (व० ८५) लक्ष्मण की मेघनाथ पर चढ़ाई ॥

मूल—ततो धैर्य्यमवष्टभ्य रामः परपुरञ्जयः । विभीषणमुपासीन-मुवाच कपिसन्निधौ ॥ १ ॥ नैर्ऋताधिपते वाक्यं यदुक्तं ते विभी-षण । भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ २ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा बभाषेऽथ विभीषणः । यथाज्ञप्तं महाबाहो त्वया गुल्म-

निवेशनम् ॥ ३ ॥ तत्तथानुष्ठितं वीर त्वद्वाक्यसमनन्तरम् । तान्यनीकानि सर्वाणि विभक्तानि समन्ततः ॥ ४ ॥ विन्यस्ता यूथपाश्चैव यथान्यायं विभागशः । भूयस्तु मम विज्ञाप्यं तच्छृणुष्व महाप्रभो ॥ ५ ॥ त्यज राजन्निमं शोकं मिथ्यासन्तापमागतम् । यदियं त्यज्यतां चिन्ता शत्रुहर्षविवर्धिनी ॥ ६ ॥ उद्यमः क्रियतां वीर हर्षः समुपसेव्यताम् । प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्याश्च निशाचराः ॥ ७ ॥ साध्वयं यातु सौमित्रिर्बलेन महता वृतः । निकुम्भिलायां संप्राप्य हन्तुं रावणिमाहवे ॥ ८ ॥ स एष किल सैन्येन प्राप्तः किल निकुम्भिलाम् । यद्युत्तिष्ठेत्कृतं कर्म हतान्सर्वांश्च विद्धि नः ॥ ९ ॥ वधायेन्द्रजितो राम संदिशस्व महाबलम् । हते तस्मिन्हतं विद्धि रावणं ससुहृद्गणम् ॥१०॥ राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः । लक्ष्मणं कीर्तिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ ११ हनूमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मण । जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः ॥१२॥ जहि तं राक्षससुतं मायाबलसमन्वितम् । अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः ॥ १३ ॥ अभिज्ञस्तस्य मायानां पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ॥ १४ ॥ सोऽभिवाद्य गुरोः पादौ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । निकुम्भिलामभिययौ चैत्यं रावणिपालितम् ॥ १५ ॥

टीका—तब धैर्य धारकर शत्रुओं के किले जीतनेवाले रामने हनुमान् के सामने पास बैठे विभीषण से कहा ॥ १ ॥ हे राक्षसाधिपते विभीषण जो वाक्य तूने कहा है, वह मैं फिर सुनना चाहता हूं, कहो जो तुझे अभीष्ट है ॥ २ ॥ राघव के वचन को सुनकर विभीषण बोला, हे महाबाहो जैसे आपने मोर्चाबन्दी की आज्ञा दी थी ॥ ३ ॥ हे वीर वह आपके वाक्य के अनन्तर ही वैसे कर दी गई है, सारी सेनाएं चारों ओर बांट दी गई हैं ॥ ४ ॥ और यूथपति भी अलग २ अपनी २ जगह लगा दिये गये हैं, किन्तु

यह मेरी और विनति है महाप्रभो सुनिये ॥ ५ ॥ हे राजन् इस शोक को त्यागिये जो कि मिथ्या सन्ताप आया है, शत्रुओं के हर्ष को बढ़ाने वाली यह चिन्ता छोड़ दीजिये ॥ ६ ॥ हे वीर यदि सीता को पाना है और राक्षसों को मारना है, तो उद्यम कीजिये और हर्ष में रहिये ॥ ७ ॥ यह लक्ष्मण बड़ी सेना से युक्त हो, निकुम्भिला में पहुंच, रावणसुत को युद्ध में मारने के लिये चढ़ाई कर ॥ ८ ॥ क्योंकि वह सेना समेत निकुम्भिला को गया है, यदि कर्म (अभिचार होम) पूरा करके उठा, तो हम सब को मरा जानिये ॥९॥ सो (अभिचार होम पूरा होने से पहिले ही) इन्द्रजित् को मारने के लिये हे राम महाबली (लक्ष्मण) को आज्ञा दीजिये, उसके मारने पर रावण को सुहृद्गणों समेत मरा जानिये ॥ १० ॥ तब राघव दुरात्मा शत्रु के मायावीर्य को जानकर कीर्तिसम्पन्न लक्ष्मण से यह वचन बोला ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण हनुमान् आदि यूथपतियों के सहित और सेना समेत ऋक्षपति जाम्बवान् के साथ जाकर ॥१२॥ माया बल से युक्त उस राक्षस सुत को मार, और यह महात्मा राक्षस जो उसकी माया का जाननेवाला है, यह अपने मन्त्रियों सहित तेरे पीछे जाएगा ॥१३॥ (यह आज्ञा पाकर लक्ष्मण) गुरु के पाओं को प्रणाम कर और प्रदक्षिणा करके रावणसुत से पालित निकुम्भिला चैत्य को गया ॥ १४ ॥

सर्ग ४६ (वा० ८६) इन्द्रजित् और हनुमान् का युद्ध

मूल—अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः । परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत् ॥ १ ॥ यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते । तस्यानीकस्य महतो भेदने यत लक्ष्मण ॥ २ ॥ राक्षसेंद्रसुतोऽप्यत्र भिन्ने दृश्यो भविष्यति । अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥ ३ ॥ विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः । ववर्ष

शरवर्षेण राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ ४ ॥ ऋक्षाः शाखामृगाश्चैव द्रुमप्रवरयोधिनः । । अभ्यधावन्त सहितास्तदनीकमवस्थितम् ॥ ५ ॥ ऋक्षवानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः । रक्षसां युध्यमानानां महद्भयमजायत ॥ ६ ॥ स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम् । उदतिष्ठत दुर्धर्षः स कर्मण्यननुष्ठिते ॥ ७ ॥ वृक्षान्धकारान्निर्गम्य जातक्रोधः स रावणिः । आरुरोह रथं सज्जं पूर्वयुक्तं सुसंयतम् ॥ ८ ॥ स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित् । सूदमानमसन्त्रस्तमामित्रान् पवनात्मजम् ॥ ९ ॥ स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष वानरः । क्षयमेव हि नः कुर्याद्राक्षसानामुपेक्षितः ॥ १० ॥ इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स मारुतिः । वहन्परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रणे ॥ ११ ॥ सोऽभ्युपेत्य शरान्खड्गान्पट्टिशासिपरश्वधान् । अभ्यवर्षत दुर्धर्षःकपिमूर्धनि राक्षसः ॥ १२ ॥ तानि शस्त्राणि घोराणि प्रतिगृह्य स मारुतिः । रोषेण महताविष्टो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १३ ॥ युध्यस्व यदि शूरोऽसि रावणात्मज दुर्मते । । वायुपुत्रं समासाद्य न जीवन्प्रतियास्यसि ॥ १४ ॥ बाहुभ्यां संप्रयुध्यस्व यदि मे द्वन्द्वमाहवे । वेगं सहस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं रक्षसां वरः ॥ १५ ॥ हनूमन्तं जिघांसन्तं समुद्यतशरासनम् । रावणात्मजमाचष्टे लक्ष्मणाय विभीषणः ॥ १६ ॥ यः स वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसम्भवः । स एष रथमास्थाय हनूमन्तं जिघांसति ॥ १७ ॥ तमप्रतिमसंस्थानैः शरैः शत्रुनिवारणैः । जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि ॥ १८ ॥

टीका--अब उस अवस्था में रावण के छोटे भाई ने शत्रुओं का अहित और अपना अर्थ साधक वाक्य लक्ष्मण को कहा ॥ १ ॥ जो यह मेघसमान काली राक्षस सेना दीखती है, इस बड़ी सेना के दल तोड़ने में हे लक्ष्मण यत्न कर ॥२॥ राक्षसेन्द्र का पुत्र भी इसके टूटने पर यहां दिखलाई देगा, तेजी से धावा करो, जब तक कि

यह कर्म समाप्त नहीं होता है ॥ ३ ॥ विभीषण के वचन को सुनकर शुभ लक्षणोंवाले लक्ष्मण ने राक्षसेन्द्र के पुत्र की ओर तीरों की वर्षा आरम्भ की ॥४॥ बड़े वृक्षों से युद्ध करनेवाले ऋक्ष और वानर भी सामने खड़ी उस सेना पर मिलकर धावा करते भए ॥५॥ बड़े शरीरों वाले बड़े बली ऋक्ष और वानरों से युद्ध करते हुए राक्षसों को बड़ा भय उत्पन्न हुआ ॥६॥ अपनी सेना को शत्रुओं से पीड़ित और विनाश सुनकर वह दुर्धर्ष (इन्द्रजित) कर्म को पूरा किये बिना उठ खड़ा हुआ ॥ ७ ॥ वृक्षों के अन्धकार से निकलकर उत्पन्न हुए क्रोधवाला वह रावणसुत पहले ही जोड़े हुए अच्छी तरह सजे हुए रथ पर आरूढ़ हुआ ॥ ८॥ उस इन्द्रजित ने पर्वतसमान (देहवाले),निडर होकर शत्रुओं को मारते हुए वानरश्रेष्ठ पवनसुत को देखा ॥ ९ ॥ उसने सारथि से कहा, चलो जहां यह वानर है, यह उपेक्षा किया हुआ राक्षसों को क्षय ही कर डालेगा ॥ १० ॥ ऐसे कहा हुआ सारथि रथ पर स्थित परम दुर्धर्ष इन्द्रजित को लिये वहां पहुंचा, जहां पवनपुत्र था ॥ ११ ॥ सामने होकर वह दुर्धर्ष राक्षस वानर के माथे पर बाण, खड्ग, पट्टिश, तलवार और कुल्हाड़ों की वर्षा करता भया ॥ १२ ॥ उन भयङ्कर शस्त्रों को रोककर वह पवनपुत्र बड़े क्रोध से भरा हुआ यह वाक्य बोला ॥१३॥ हे रावणसुत हे दुर्मते युद्धकर यदि तू सूरमा है, पवन पुत्र को मिलकर अब तू जीता नहीं लौटेगा ॥१४॥ यदि रण में भुजाओं से मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करे और मेरे वेग को सहारे, तब तू राक्षसों में श्रेष्ठ है ॥१५॥ तब धनुष उठाकर हनुमान् को मारना चाहते हुए रावणसुत को देखकर विभीषण ने लक्ष्मण को कहा ॥ १६ ॥ जो इन्द्र के जीतनेवाला रावणसुत है, वह यह रथ पर चढ़कर हनुमान् को मारना चाहता है॥१७॥उस रावणसुत को तू हे

लक्ष्मण शत्रुओं के रोकनेवाले, जीवन का अन्त करनेवाले अनुपम बाणों से मार ॥ १८ ॥

सर्ग ४७ (व० ८७) इन्द्रजित् और विभीषण की बातचीत

मूल—एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं जातहर्षो विभीषणः। धनुष्पाणिं तमादाय त्वरमाणो जगाम सः ॥ १ ॥ अविदूरं ततो गत्वा प्रविश्य तु महद्वनम् । अदर्शयत तत्कर्म लक्ष्मणाय विभीषणः ॥ २ ॥ नीलजीमूतसंकाशं न्यग्रोधं भीमदर्शनम् । तेजस्वी रावणभ्राता लक्ष्मणाय न्यवेदयत ॥ ३ ॥ इहोपहारं भूतानां बलवान्रावणात्मजः । उपहृत्य ततः पश्चात्संग्राममभिवर्तते ॥ ४ ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां ततो भवति राक्षसः । निहन्ति समरे शत्रून्बध्नाति च शरोत्तमैः ॥५॥ तमप्रविष्टं न्यग्रोधं बलिनं रावणात्मजम् । विध्वंसय शरैर्दीप्तैः सरथं साश्वसारथिम् ॥ ६ ॥ तथेत्युक्त्वा महातेजाः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः । बभूवावस्थितस्तत्र चित्रं विस्फारयन्धनुः ॥ ७ ॥ स रथेनाग्निवर्णेन बलवान्रावणात्मजः । इन्द्रजित्कवची खड्गी सध्वजः प्रत्यदृश्यत ॥ ८ ॥ तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम् । समाह्वये त्वां समरे सम्यग्युद्धं प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥ एवमुक्तो महातेजः मनस्वी रावणात्मजः । अब्रवीत्परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ॥१०॥ इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद्भ्राता पितुर्मम । कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥ ११ ॥ न जातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते । प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण॥१२॥+शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः । यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥१३॥+नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम् । क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीचपराश्रयः ॥१४॥ +गुणवान्वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा । निर्गुणः स्वजनः श्रेयान्यः परः पर एव सः ॥१५॥+यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते । स स्वपक्षे क्षयं

याते पश्चात्तेनैव हन्यते ॥ १६ ॥ इत्युक्तः भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः । अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे ॥१७॥+ धर्मात्प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम् । त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ॥१८॥+परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम् । त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा ॥ १९ ॥+परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् । सुहृदामातिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥ २० ॥ महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः । अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता ॥ २१ ॥ एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः ॥ २२ ॥ दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव । नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता ॥ २३ ॥ अतिमानश्च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस । बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥ २४ ॥ प्रवेष्टुं न त्वया शक्यं न्यग्रोधं राक्षसाधम । धर्षयित्वा च काकुत्स्थ न शक्यं जीवितुं त्वया ॥ २५ ॥

टीका—यह कहकर उत्पन्न हुए हर्षवाला विभीषण धनुष हाथ में लिए लक्ष्मण को लेकर जल्दी करता हुआ उधर गया ॥१॥ थोड़ी दूर जाकर बड़े वनमें प्रविष्ट होकर विभीषण ने लक्ष्मण को वह कर्म दिखलाया ॥ २ ॥ तेजस्वी रावणभ्राता ने भयङ्कर दर्शन वाला नील मेघतुल्य एक बड़ लक्ष्मण को बतलाया ॥ ३ ॥ कि यहां बलवान् रावणसुत भूतबलि करके पीछे संग्राम पर चढ़ता है ॥४॥ तब यह राक्षस सब लोगों के अदृश्य होकर युद्ध में शत्रुओं को उत्तम बाणों से मारता है और बांधता है ॥५॥ इस बड़ से दूर ही स्थित उस बली रावणसुत को जलते हुए बाणों से रथ सारथि और घोड़ों समेत विध्वंस कर ॥६॥ तथास्तु कहकर मित्रों का आनन्द बढ़ानेवाला लक्ष्मण विचित्र धनुष को टङ्कारता हुआ वहीं (बड़ के द्वार पर) डट गया ॥७॥ तब बलवान् रावणसुत इन्द्रजित कवच पहने और खड्ग

धारे हुए ध्वजा समेत अग्निबाण के साथ देखा गया (लक्ष्मण के धनुष की ध्वनि सुनकर पीछे लौटा) ॥८॥ महातेजस्वी (लक्ष्मण) पहले कभी न हारे हुए उस राक्षस से बोला, मैं तुझे युद्ध में आव्हान करता हूं. मुझे भली भांति युद्ध दे ॥ ९ ॥ ऐसे कहा हुआ महा-तेजस्वी मनस्वी रावणसुत वहां विभीषण को देखकर कठोर वाक्य बोला ॥ १० ॥ यहां तू जन्म लेकर बढ़ा हुआ मेरे पिता का सा-क्षात् भ्राता मेरा चचा होकर हे राक्षस तू कैसे द्रोह करता है ॥ ११ ॥ न जन्म न सौहार्द न जात्यभिमान हे दुर्मते तुझे प्रमाण है, न सगा भाई होना न धर्म हे धर्मदूषण ॥ १२ ॥ हे दुर्बुद्धे तू शोचनीय और साधुओं से निन्दनीय है, जो तू अपने जन को छोड़कर शत्रु का भृत्य बना है ॥ १३ ॥ तू अपनी दुर्बल बुद्धि से इस बड़े भेद को नहीं देखता है, कहां अपने जनों में वास और कहां नीच पराश्रय ॥ १४ ॥ परजन गुणवान् और स्वजन निर्गुण भी हो तो निर्गुण अपना जन अच्छा है, जो बेगाना है वह बेगाना ही है ॥ १५ ॥ जो अपने पक्ष को छोड़कर परपक्ष का सेवन करता है, वह अपने पक्ष के क्षय होने पर पीछे उन्हीं से मारा जाता है ॥१६॥ भ्रातृपुत्र से ऐसा कहा हुआ विभीषण उत्तर देता भया, मेरे शील को न जानते हुए की तरह हे राक्षस क्या तू अपनी श्लाघा करता है ॥१७॥ धर्म से गिरे हुए शीलवाले पाप निश्चय वाले पुरुष को त्यागकर सुख को प्राप्त होता है जैसे हाथ से सांप को ॥ १८ ॥ परधन के हरने में तय्यार, परस्त्री को दबानेवाले, दुरात्मा को आग लगे घर की तरह त्याज्य कहते हैं ॥ १९ ॥ परधन को हरना, परस्त्री को दबाना, और सुहृदों की अति शङ्का यह तीनों दोष क्षय लानेवाले हैं ॥ २० ॥ महर्षियों का वध, सब देवताओं से लडाई, अभिमान, क्रोध, वैर, और सदा

उलटा चलना ॥ २१ ॥ यह दोष मेरे भाई के जीवन और ऐश्वर्य के नाशक हैं ॥ २२ ॥ इन दोषों से मैंने तेरा पिता अपना भाई त्यागा है, न यह पुरी लङ्का है, न तू है, न तेरा पिता है ॥२३॥ अति बाल दुर्विनीत हे राक्षस! तू कालपाश से बन्धा हुआ कहो जो २ चाहता है ॥२४॥ हे राक्षसाधम! अब तू इस बड़ के नीचे नहीं प्रवेश कर सक्ता ॥ २५ ॥

सर्ग ४८ (व० ८८–९०) मेघनाद का लक्ष्मण से वध

मूल—विभीषणवचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः । ससर्ज निशितान्बाणानिन्द्रजित्समितिञ्जयः ॥ १ ॥ स बभूव महाभीमो नरराक्षससिंहयोः । विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परजयैषिणोः ॥२॥ उभौ परमदुर्जेयावतुल्यबलतेजसौ । युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव ॥ ३ ॥ बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौघानवस्थितौ । नरराक्षसमुख्यौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ॥४॥ तयोरथ महान्कालो व्यतीयाद्युध्यमानयोः । न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं चाप्यभिजग्मतुः ॥५॥नह्यादानं न संधानं धनुषो न परिग्रहः । न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः ॥ ६॥ न मुष्टिप्रतिसन्धानं न लक्ष्यप्रतिपादनम् । अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात् ॥७॥ ताभ्यामुभाभ्यां तरसा प्रसृष्टैर्विशिखैः शितैः । निरन्तरमिवाकाशं बभूव तमसा वृतम् ॥ ८ ॥ अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान्कनकभूषणान् । शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान् ॥ ९ ॥ ततोऽपरेण भल्लेन सूतस्य विचरिष्यतः । लाघवाद्राघवः श्रीमाञ्शरः कायादपाहरत् ॥ १० ॥ स हताश्वो महातेजा भूमौ तिष्ठन्निशाचरः । इन्द्रजित्परमक्रुद्धः संप्रजज्वाल तेजसा ॥ ११ ॥ पातयामास बाणौघैः शतशोऽथ सहस्रशः । स मण्डलीकृतधनू रावणिः समितिञ्जयः ॥ १२ ॥ ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः । चिच्छेद कार्मुकं

तस्य दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ १३ ॥ सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्जं चक्रे त्वरन्निव । तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणोनिरकृन्तत ॥१४॥ ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित्समितिंजयः । आग्नेयं संदधे दीप्तं सलोकं संक्षिपन्निव ॥ १५ ॥ सौर्येणास्त्रेण तं वीरो लक्ष्मणः पर्यवारयत् । अस्त्रं निवारितं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ॥ १६ ॥ आददे निशितं बाणमासुरं शत्रुदारणम् । माहेश्वरेण द्युतिमांस्तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥१७॥ अथैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् । शरश्रेष्ठं धनुः श्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ॥ १८॥ धर्मात्मा सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यदि । पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम् ॥१९॥ इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् । लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्राजितं प्रति ॥ २० ॥ तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् । प्रमथ्येन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले ॥ २१ ॥ दुद्रुवुर्बहुधा भीता राक्षसाः शतशो दिशः । त्यक्त्वा प्रहरणान्सर्वे पट्टिशासिपरश्वधान् ॥२२॥ यथास्तं गत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः । तथा तस्मिन्निपतिते राक्षसास्ते गता दिशः ॥ २३ ॥ विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः । विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम् ॥ २४ ॥

टीका--विभीषण के बचन को सुनकर क्रोध से मूर्छित हुआ युद्धों का जीतनेवाला रावणसुत इन्द्रजित तीक्षण बाण छोड़ता भया ॥१॥ युद्ध में परस्पर जीतने की इच्छावाले नरसिंह और राक्षससिंह का वह बड़ा भयङ्कर तुमुल संघर्ष हुआ ॥ २ ॥ दोनों परम दुर्जेय अतुल्य बल तेजवाले महान् आत्मा बबर शेरों की तरह युद्ध कर रहे थे ॥३॥ खड़े होकर बहुत से बाण समूहों को छोड़ते हुए वह नर मुख्य और राक्षस मुखिया बड़े हर्ष से युद्ध करते भए ॥४॥ युद्ध करते हुए उन्हें बहुत काल बीत गया, न युद्ध से विमुख होते

हैं, न थकते हैं ॥ ५ ॥ वहां युद्ध करते हुए उन दोनों की हाथ की फुर्ती से न बाणों का लेना न जोड़ना, न धनुष का बदलना, न बाणों का छोड़ना, न खींचना, न अलग२ करना, न मुट्ठी का जोड़ना, न लक्ष्य को भेदना दीखता है ॥ ६, ७ ॥ किन्तु बल से छोड़े हुए उन दोनों के तीक्ष्ण तीरों से अन्धकार से ढके की तरह आकाश निरवकाश प्रतीत होता है ॥ ८ ॥ अन्ततः लक्ष्मण ने चार बाणा से सोने के भूषणोंवाले काले राक्षससिंह के चारों घोड़े वींध दिये ॥ ९ ॥ तब दूसरे भाले से विचरते हुए सारथि का तेज़ी से उसके शरीर से सिर उड़ा दिया ॥ १० ॥ मरे घोड़ोंवाला महातेजस्वी राक्षस इन्द्रजित भूमि पर स्थित हुआ परम क्रुद्ध हुआ तेज से जलने लगा ॥ ११ ॥ वह युद्धों का जीतने वाला रावणसुत क्रुद्ध हुआ धनुष को गोल खींचकर बड़ी तेजी के साथ वानरों को मारने लगा ॥ १२ ॥ तब युद्ध के कोप से जलते हुए लक्ष्मण ने हाथ की तेजी दिखलाते हुए उसका धनुष तोड़ डाला ॥ १३ ॥ उसने बड़ी तेजी से दूसरा तय्यार धनुष पकड़ लिया, लक्ष्मण ने वह भी उसका तीन बाणों से तोड़ डाला ॥ १४ ॥ तब युद्ध के जीतनेवाले महातेजस्वी इन्द्राजित ने मानों सारे लोक को संहार करते हुए जलता हुआ आग्नेय अस्त्र जोड़ा ॥ १५ ॥ वीर लक्ष्मण ने उसको सौर्य अस्त्र से हटा दिया, उस अस्त्र को हटाया देखकर क्रोध से मूर्छित हुए रावणसुत ने शत्रुओं के फोड़ने वाला तीक्ष्ण आसुर बाण लिया, तेजस्वी लक्ष्मण ने उसको माहेश्वर अस्त्र से रोक दिया ॥ १६, १७ ॥ अब लक्ष्मण युद्ध में अपराजित बाण श्रेष्ठ ऐन्द्र अस्त्र को धनुष श्रेष्ठ में खींचकर यह बोला ॥ १८ ॥ दशरथसुत राम यदि धर्ममूर्त्ति, सच्ची प्रतिज्ञा वाला और युद्ध में अप्रतिद्वन्द्व है, तब तू इस रावणसुतको मार ॥ १९ ॥ यह कहकर उस सीधा जाने वाले बाण को कान तक खींचकर

वीर लक्ष्मण ने युद्ध में इन्द्राजित् के प्रति छोड़ा ॥२०॥ वह बाण चमकते हुए कुण्डलों वाले शोभावाले उसके सिर को टोप समेत इन्द्राजित् के शरीर से उड़ाकर भूतल पर गिरा देता भया ॥२१॥ राक्षस सभी भयभीत हुए अपने पट्टिश तलवार और कुल्हाड़ों को छोड़कर दिशाओं को भाग गए ॥२२॥ जैसे सूर्य के अस्त होने पर रश्मियें नहीं ठहरती हैं वैसे उसके गिरने पर राक्षस दिशाओं को चले गये ॥२३॥ विभीषण, हनुमान्, और ऋक्षयूथपति जाम्बवान् विजय से आनन्दित होते हुए लक्ष्मण की स्तुति करते भये ॥२४॥

सर्ग४९ (व०९१) इन्द्राजित को जीतकर लक्ष्मणका राम के पास जाना

मूल–रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः। बभूव हृष्टस्तं हत्वा शत्रुजेतारमाहवे ॥ १ ॥ आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुग्रीवराघवौ। विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥ २ ॥ रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना। न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः ॥३॥ उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम्। भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत ॥४॥ मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन्। उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः ॥ ५ ॥ कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा। अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युद्धि ॥ ६ ॥ छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः। विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद्रणे ॥ ७ ॥ बलव्यूहेन महता निर्यास्यति हि रावणः। बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥ ८ ॥ तं पुत्रवधसन्तप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम्। बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम् ॥ ९ ॥ स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः। रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत ॥ १० ॥ विशल्योऽयं महाप्राज्ञः सौमित्रिर्मित्रवत्सलः। यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं समुदाचर ॥११॥ एवमुक्तः स रामेण महात्मा हरियूथपः। लक्ष्मणाय

ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम् ॥ १२ ॥ स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत । तदाऽनिर्वेदनश्चैव संरुद्धप्राण एव च ॥ १३ ॥ विभीषणमुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया । सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सामकरोत्तदा ॥ १४ ॥

टीका—रुधिर से लिबड़े अङ्गोंवाला शुभलक्षण लक्ष्मण उस शत्रुओं के जीतनेवाले को युद्ध में मारकर प्रसन्न हुआ ॥ १ ॥ विभीषण और लक्ष्मण को साथ लिए लक्ष्मण जल्दी वहां आया, जहां राम और सुग्रीव थे ॥ २ ॥ तब प्रसन्न हुए विभीषण ने महात्मा लक्ष्मण से काटा हुआ रावणसुत का सिर राम को निवेदन किया ॥३॥ राम उस को गोदी में लेकर और दृढ़ आलिङ्गन करके उस प्यारे भाई लक्ष्मण को बार २ देखता भया ॥ ४ ॥ माथे पर उसे चूमकर और फिर आलिङ्गन करके उसे तसल्ली देते हुए राम यह वाक्य बोले ॥ ५ ॥ बड़ा दुष्कर काम करते हुए तूने परम कल्याण का काम किया है, पुत्र के मारा जाने पर अब मैं मानता हूं, रावण युद्धमें मारा गया है ॥६॥ उसकी दाईं भुजा तूने काट डाली है, क्योंकि यह उसका बड़ा सहारा था, विभीषण और हनुमान् ने भी रण में बड़ा काम किया है ॥७॥ अब बड़े सेना समूह सहित पुत्र को मरा सुनकर रावण सेना समूह के साथ युद्ध के लिए निकलेगा ॥८॥ पुत्रवध से तपे हुए बड़ी सेना के साथ बाहर निकले उस दुर्जय राक्षसपति को अब मैं मारूंगा ॥ ९ ॥ इस प्रकार राम भाई को तसल्ली देकर और गले लगाकर प्रसन्न हुआ सुषेण को सम्बोधनकर यह बोला ॥ १० ॥ मित्रों के प्यारे महाप्राज्ञ लक्ष्मण को शल्यरहित कीजिये, जैसे यह पूरा स्वस्थ हो, वैसा काम कीजिये ॥११॥ महात्मा राम से ऐसे कहा हुआ वानर यूथपति सुषेण लक्ष्मण की नासिका में परम औषध देता भया ॥ १२ ॥ वह उसके गन्ध को सूंघकर

विशल्य हुआ, पीड़ा से रहित हुआ और उस का बल स्थिर हुआ ॥ १३ ॥ और राम की आज्ञा से अपने सुहृद विभीषण और दूसरे सारे मुख्य वानरों की चिकित्सा करता भया ॥ १४ ॥

सर्ग १० (व० ९२) इन्द्रजित् के वध को सुनकर रावण का असीम क्रोध

मूल—ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितो वधम् । आचचक्षु र-भिज्ञाय दशग्रीवाय सत्वराः ॥ १ ॥ स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम् । घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं प्राविशन्महत् ॥२॥ उपलभ्य चिरात्संज्ञां राजा राक्षसपुङ्गवः । पुत्रशोकाकुलो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ३ ॥ प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः । दीप्तं संदीपयामासुर्घर्मेऽर्कमिव रश्मयः॥४॥तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनाऽपि च । रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ ५ ॥ स पुत्रवधसंतप्तः क्रूरः क्रोधवशं गतः । समीक्ष्य रावणो बुद्धया सीतां हन्तुं व्यवस्यत ॥ ६ ॥ प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो घोर-दर्शनः । दीनो दीनस्वरान्सर्वांस्तानुवाच निशाचरान् ॥ ७ ॥ मायया मम वत्सेन वञ्चनार्थं वनौकसाम् । किञ्चिदेव हतं तत्र सी-तेयमिति दर्शितम् ॥ ८ ॥ तादिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः । वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम्॥९॥इत्येवमुक्त्वा सचिवान्ख-ड्गमाशु परामृशत् । निष्पपात स वेगेन सहसा यत्र मैथिली ॥१०॥ मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरनिन्दिता । ददर्श राक्षसं क्रुद्धं निस्त्रिंशवरधारिणम्॥११॥सीता दुःखसमाविष्टा विलपन्तीदमब्रवीत् । यथायं मामभिक्रुद्धः समभिद्रवति स्वयम् ॥ १२ ॥ वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः । एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यः शील-वाञ्छुचिः ॥ १३ ॥ सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं रक्षसां वरम् । निवार्यमाणः सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥ कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज । हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य च

॥ १५ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतस्तथा । स्त्रियः कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर ॥ १६ ॥ मैथिलीं रूपसम्पन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव । तस्मिन्नेव सहास्माभिराहवे क्रोधमुत्सृज ॥ १७ ॥ अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशी । कृत्वा निर्याह्यावास्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥ १८ ॥ हत्वा दाशरथिं रामं भवान्प्राप्स्यति मैथिलीम् । ॥ १९ ॥ स तद् दुरात्मा सुहृदा निवेदितं वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः । गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान्पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥ २० ॥

टीका--तब रावण के दूत इन्द्राजित के वध को सुनकर और पता लगाकर रावण को बतलाते भए ॥ १ ॥ युद्ध में पुत्र इन्द्राजित के घोर वधरूप प्रतिभय को सुनकर उसे बड़ा शोक उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ देर के पीछे होश सम्भालकर राक्षसश्रेष्ठ राजा पुत्र के शोक से घबराया हुआ व्याकुल इन्द्रियोंवाला, दीन हो विलाप करने लगा ॥ ३ ॥ प्रकृति से ही क्रोधी इस रावण को पुत्र पीड़ाएं चमके हुए को चमकाती भईं, जैसे गर्मी में सूर्य की किरणें ॥४॥ स्वभाव से ही रावण के लाल नेत्र क्रोध की अग्नि से और भी लाल हुए महाभयङ्कर हो जलने लगे ॥५॥ वह पुत्र के वध से संतप्त हुआ क्रोध के अधीन हुआ क्रूर रावण बुद्धि से सोचकर सीता के मारने का इरादा करता भया ॥ ६ ॥ वह लाल नेत्रोंवाला घोर दृष्टिवाला महाघोर दीन हुआ, दीन स्वर वाले उन राक्षसों को देखकर बोला ॥ ७ ॥ मेरे बेटे ने वानरों को धोखा देने के लिये 'यह सीता है' ऐसे दिखलाते हुए वहां कुछ मारा है ॥८॥ सो मैं सच कर दिखलाऊंगा' यही मुझे प्रिय है, सीता को मार डालूंगा, जो उस क्षत्रबन्धु राम के अनुव्रता है ॥ ९ ॥ मन्त्रियों को ऐसा कहकर उसने जल्दी तलवार हाथ में ली और वेग से निकल वहां आया, जहां

सीता थी ॥ १० ॥ राक्षसियों से रक्षा की हुई अनिन्दता सीताने उत्तम तलवार लिये क्रुद्ध हुए उस राक्षसको देखा॥११॥दुःखसेभरी हुई सीता विलाप करती हुई यह बोली, जैसे यह क्रुद्ध हुआ स्वयं मेरी ओर दौड़ा आरहा है ॥ १२ ॥यह दुर्मति मुझ सनाथा को अनाथा की तरह मारेगा । इसी अवसर में उसका मन्त्री शीलवान् शुचि बुद्धिमान् सुपार्श्व दूसरे मन्त्रियों से रोका हुआ भी राक्षसवर रावण को यह वचन बोला ॥ १३, १४ ॥ कैसे हे रावण कुबेर के साक्षात् भाई होकर क्रोध से धर्म छोड़कर सीता को मारना चाहते हो ॥ १५ ॥ वेदविद्या और व्रत में स्नात अपने कर्म में रत आप हे वीर राक्षसेश्वर कैसे स्त्री का वध पसन्द करते हैं ॥१६॥ हे राजन् रूपसम्पन्ना मैथिली की रखवाली कर, और हमारे साथ युद्ध में उसी (राघव) पर क्रोध छोड़ ॥ १७ ॥ आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है, आज ही तय्यारी करके कल अमावस्या में सेना समेत विजय के लिये चढ़ाई कर ॥१८॥ आप भयङ्कर राम को मारकर सीता को प्राप्त होंगे ॥ १९ ॥ वह दुरात्मा रावण सुहृद से बतलाए धर्मयुक्त वचन को स्वीकार कर घर गया, उस के पीछे सुहृदों समेत सभा में गया ॥ २० ॥

सर्ग ५१ (व० ९३—१००) रावण का घोर युद्ध उसके शक्ति वाण से लक्ष्मण की मूर्छा

मूल—स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः । निषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन् ॥ १ ॥ अब्रवीच्च स तान्सर्वान्बल मुख्यान्महाबलः । सर्वे भवन्तः सर्वेण हस्त्यश्वेन समावृताः ॥ २ ॥ निर्यात रथसङ्घैश्च प्रावृट्काल इवाम्बुदाः । भवद्भिः श्वो निहन्तास्मि रामं लोकस्य पश्यतः ॥ ३ ॥ प्रतिपूज्य यथान्यायं रावणं ते महारथाः । तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणः ॥ ४ ॥ ततः प्रजविताश्वेन रथेन स महारथः । द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ

रामलक्ष्मणौ ॥ ५ ॥ वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत । अन्योन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानांजयमिच्छताम् ॥६॥ ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः । वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत् ॥७॥ निकृत्तशिरसः केचिद्रावणेन वलीमुखाः । केचिद्विच्छिन्नहृदयाः केचित्पार्श्वेषु दारिताः ॥ ८ ॥ तथा तैः कृत्तगात्रैस्तु दशग्रीवेण मार्गणैः । बभूव वसुधा तत्र प्रकीर्णा हरिभिस्तदा ॥ ९ ॥ प्लवङ्गानामनीकानि महाभ्राणीव मारुतः । संययौ समरे तस्मिन्विधमन्रावणः शरैः ॥ १० ॥ ततो राक्षसशार्दूलो विद्राव्य हरिवाहिनीम् । स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम् ॥ ११ ॥ स राघवं समासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः । व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राक्षसेश्वरः ॥ १२ ॥ शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्च्युताः । दृष्ट्वैवापतिताः शीघ्रं भल्लाञ्जग्राह सत्वरम् ॥ १३ ॥ ताञ्छरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः । दीप्यमानान्महाघोराञ्छरानाशीविषोपमान् ॥ १४ ॥ राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तथा । अन्योन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरवर्षैर्ववर्षतुः ॥ १५ ॥ चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम् । बाणवेगात्समुत्क्षिप्तावन्योन्यमपराजितौ ॥ १६ ॥

टीका—वह राजा दीन परम दुःखित हुआ, सभा में प्रवेश करके क्रुद्ध हुए शेर की तरह सांस लेता हुआ मुख्य आसन के ऊपर बैठ गया ॥१॥ और वह महाबली उन सारे सेनापतियों से बोला, सब सम्पूर्ण हाथी घोड़ों और रथ समूहों से युक्त होकर (युद्ध पर) चढ़ो जैसे बरसात में मेघ, कल तुम्हारे साथ मैं दुनिया के देखते हुए राम को मारूंगा ॥२,३॥ तिस पर वह महारथी रावण को यथायोग्य पूजकर मालिक का विजय चाहते हुए सब हाथ बान्धकर खड़े होगये ॥४॥ फिर वेगवाले घोड़ों से युक्त रथ से वह महारथी उस द्वार से निकला जिधर राम लक्ष्मण थे ॥५॥ उधर से भी एक दूसरे को आव्हान देते हुए

क्रुद्ध हुए जय चाहते हुए वानरों की सेना भी युद्ध के लिये ही तय्यार हुई ॥ ६ ॥ तब क्रुद्ध हुआ रावण सोने के भूषणोंवाले बाणों से बानरों की सेना में बड़ा विनाश करता भया ॥ ७ ॥ रावण ने कई वानरों के सिर काट दिये, कइयों के हृदय तोड़ दिए और कइयों की पसलियें फोड़ दीं ॥ ८ ॥ रावण से बाणों द्वारा कटे शरीरोंवाले उन वानरों से वहां पृथ्वी भर गई ॥ ९ ॥ जैसे पवन मेघों को उड़ाता है, इस तरह वानरों की सेनाओं को तीरों से उड़ाता हुआ रावण बढ़ता गया ॥ १० ॥ तब राक्षसेश्वर ने वानरसेना को भगा करके कभी न पराजित हुए राम को खड़ा देखा ॥ ११ ॥ राम के पास आकर क्रोध से लाल नेत्रोंवाला राक्षसेश्वर रावण बाणों की वर्षा छोड़ता भया ॥ १२ ॥ रावण के धनुष से निकलीं बाण धाराओं को आता देखकर राम ने जल्दी भाले पकड़ लिये ॥ १३ ॥ उन बाणसमूहों को राम ने तीक्ष्ण भालों से काट दिया, जोकि विषले सर्प के तुल्य बड़े भयङ्कर चमकते आरहे थे ॥ १४ ॥ राम रावण पर और रावण राम पर अनेक तीक्ष्ण बाणों की झड़ी बांध देते भए ॥ १५ ॥ न हारने वाले वह दोनों बाण के वेग से एक दूसरे को परे हटाते हुए देर तक दाएं बाएं के विचित्र मण्डलों से विचरते भए ॥ १६ ॥

मूल—गवाक्षितमिवाकाशं बभूव शरवृष्टिभिः । महावेगैः सुतीक्ष्णाग्रैर्गृध्रपत्रैः सुवाजितैः ॥१७॥ उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोर्मयः । ऊर्मयो वायुना विद्धा जग्मुःसागरयोरिव॥१८॥ एतास्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली । लक्ष्मणः सायकान्सप्त जग्राह परवीरहा ॥१९॥ तैः सायकैर्महावेगैः रावणस्य महाद्युतिः । ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा ॥ २० ॥ सारथेश्चापि बाणेन शिरोज्वलितकुण्डलम् । जहार लक्ष्मणः श्रीमान्नैर्ऋतस्य महाबलः ॥ २१ ॥

नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान्पर्वतोपमान् । जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः ॥ २२ ॥ हताश्वात्तु तदा वेगादवप्लुत्य महारथात् । कोपमाहारयत्तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः ॥ २३ ॥ ततः शक्तिं महाशक्तिः प्रदीप्तामशनिमिव । विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ २४ ॥ अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः । सम्पपात त्रिधा छिन्ना शक्तिः काञ्चन मालिनी॥२५॥ततः सम्भावितरां कालेनापि दुरासदाम् । जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥ २६ ॥ सा वेगिता बलवता रावणेन दुरात्मना । जज्वाल सुमहातेजा दीप्ताशनिसमप्रभा ॥ २७ ॥एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम् । प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत ॥ २८ ॥ तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः । रावणं शक्तिहस्तं वै शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २९ ॥ कीर्यमाणः शरौघेण विसृष्टेन महात्मना॥ स प्रहर्तुं मनश्चक्रे विमुखीकृतविक्रमः ॥ ३० ॥ मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः । लक्ष्मणाभिमुखास्तिष्ठन्निदं वचनमुब्रवीत् ॥ ३१ ॥ मोक्षितस्ते बलश्लाघिन्यस्मादेवं विभाषणः । विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते ॥ ३२ ॥ इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिममोघां शत्रुघातिनीम् । लक्ष्मणाय समुद्दिश्य चिक्षेप च नानद च ३२

टीका—बड़े वेगवाले सुतीक्ष्ण अग्रों वाले सुवेग के उत्पादक गृध्रपत्रों वाले बाणों की वर्षा से आकाश झरोखों वाला सा होगया ॥१७॥ दोनों जिस २ (मण्डलचार) से चलते हैं, उस २ से बाणों की लहरें वायुसे चलाई दो सागरोंकी लहरोंकी तरह चलती हैं ॥१८॥ इस अवसर में क्रुद्ध हुए राम के छोटे भाई शत्रुवीरों के हन्ता बलवान् लक्ष्मण ने सात बाण लिये ॥ १९ ॥ बड़े वेगवाले उन बाणों से उस महातेजस्वी ने मनुष्य के सिरवाले उसके झण्डे को अनेक टुकरे कर डाला ॥ २० ॥ और राक्षस के, जलती

हुई कुण्डलोंवाले सारथि, के सिर को भी श्रीमान् महाबली लक्ष्मण ने हरलिया ॥ २१ ॥ और विभीषण ने उछलकर गदा से रावण के पर्वत तुल्य नीले मेघ जैसे उत्तम घोड़ों को मार डाला ॥ २२ ॥ तब वह हत हुए घोड़ोंवाले महारथ से वेग से उछलकर भाई के प्रति तीव्र क्रोध लाता भया ॥ २३ ॥ उस बड़ी शक्तिवाले प्रतापी राक्षसेन्द्र ने विभीषण पर जलती हुई बिजली की तरह बरछी फैंकी ॥ २४ ॥ लक्ष्मण ने पहुंचने से पहिले ही उसे तीन बाणों से काट दिया,तब सोने की मालावाली वह शक्ति तीन टुकड़े होकर गिरी ॥ २५ ॥ तब उसने बड़ी आदर वाली, काल से भी दुःसह, अपने तेज से जलती हुई एक और बड़ी शक्ति पकड़ी ॥ २६ ॥ बलवान् दुरात्मा रावण ने जब उसे वेग से घुमाया, तो वह जलती बिजली के तुल्य चमकवाली, बड़े तेजवाली हो जल उठी ॥ २७ ॥ इस अवसर में वीर लक्ष्मण प्राण संशय में पड़े विभीषण की जल्दी रक्षा करता भया ॥ २८ ॥ उसको छुड़वाने के लिये वीर लक्ष्मण ने धनुष उठाकर हाथ में शक्ति लिये रावण पर बाणों की वर्षा आरम्भ की ॥२९॥महात्मा से छोड़े बाणसमूह की बूछाड़ से रावण का (भाई को मारने का) पराक्रम कुण्ठित होगया और उसने (लक्ष्मण पर)-प्रहार करने का मन किया ॥ ३० ॥ रावण ने जब देखा कि उसके भाई को लक्ष्मण ने छुड़ा लिया है, तो वह लक्ष्मण के ही अभिमुख खड़ा होकर यह वचन बोला ॥ ३१ ॥ हे बल से सराहनीय जिस से तूने विभीषण को छुड़ाया है, इस से विभीषण को छोड़कर अब यह बरछी तुझ पर ही गिराई जाती है ॥३२॥ यह कहकर उसने उस शत्रु घातिनी अमोघ शक्ति को लक्ष्मण को लक्ष्य करके फैंका, और गर्जा

मूल—सा क्षिप्ता भीमवेगेन वज्राशनिसमस्वना । शक्तिरभ्य-

पतद्वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि ॥ ३६ ॥ न्यपतत्सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि। जिह्वेवोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युतिः ॥ ३५ ॥ ततो रावणवेगेन सुदूरमवगाढया । शक्त्या विभिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः ३६ ॥ तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम् । बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवान्विचकर्ष च ॥ ३७ ॥ तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा । शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः ॥ ३८ ॥ अचिन्तयित्वा तान्बाणान्समाश्लिष्य च लक्ष्मणम् । अब्र-बीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं च महाकपिम् ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणं परिवार्यैव तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः । पराक्रमस्य कालोऽयं संप्राप्तो मे चिरेप्सितः ॥ ४० ॥ पापात्मायं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः । कांक्षितं चातकस्येव घर्मान्ते मेघदर्शनम् ॥ ४१ ॥ अस्मिन्मुहूर्ते न चिरात्सत्यं प्रतिशृणोमि वः । अरावणमरामं वा जगद्द्रक्ष्यथ वानराः ॥ ७२ ॥ अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः। सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥४३॥ एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः। आजघान रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥ ४४ ॥ तथा प्रविद्धैर्नाराचैर्मुसलैश्चापि रावणः। अभ्यवर्षत्तदा रामं धाराभिरिव तोयदः ॥ ४५ ॥ रामरावणमुक्तानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् । वराणां च शराणां च बभूव तुमलः स्वनः ॥ ४६ ॥ विकीर्यमाणः शरजालवृष्टिर्महात्मना दीप्तधनुष्मतार्दितः । भयात्प्रदुद्राव समेत्य रावणो यथानिलेनाभिहतो बलाहकः ॥ ४७ ॥

टीका—भयानक वेगवाले से फैंकी हुई वज्र और विजली के तुल्य ध्वनिवाली वह शक्ति रण के मस्तक पर वेग से लक्ष्मण पर आगिरी ॥ ३४ ॥ वह बड़े वेगवाली नागराज की जिह्वा के तुल्य चमकती हुई बड़े तेजवाली (शक्ति) लक्ष्मण की विशाल छाती में खुभ गई ॥ ३५ ॥ तव रावण के वेग से कारी लगी उस

शक्ति से फूटे हृदयवाला लक्ष्मण भूमि पर गिर पड़ा ॥ ३६ ॥ क्रुद्ध हुए बलवान् राम ने उस भयावह शक्ति को दोनों हाथों से पकड़कर खींच लिया और तोड़ डाला ॥ ३७ ॥ जब वह शक्ति को खींच रहा था, तो महाबली रावण ने राम के सारे अङ्गों पर मर्म भेदी बाण छोड़े ॥ ३८ ॥ उन बाणों की परवाह न कर और लक्ष्मण को गले लगाकर राम हनुमान् और सुग्रीव से बोले ॥ ३९ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! लक्ष्मण को इसीतरह घेरकर खड़े रहो, मेरा यह चिर से चाहा हुआ पराक्रम का समय आया है ॥४०॥ यह पापात्मा पाप निश्चयवाला, रावण वध को प्राप्त हो, गर्मी के अन्त में पपीहे को मेघ दर्शन की तरह इसका दर्शन मुझे चिर से वाञ्छित है ॥ ४१ ॥ इससमय सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं हे वानरो ! जगत् को रावण के वा राम के विना देखोगे ॥ ४२ ॥ आज वह कार्य करूंगा, जिसको चर अचर समेत और देवताओं समेत सभी लोक कहा करेंगे, जब तक भूमि रहेगी॥४॥यह कहकर सावधान हो तपे हुए सोने के भूषणोंवाले तीक्ष्णवाणों से राम ने रावण पर प्रहार किये ॥४४॥ तथा रावण भी प्रबल वींधने वाले बाणों और मूसलों से, धाराओं से मेघ की तरह, राम पर वर्षा करता भया ॥ ४५ ॥ राम और रावण से छोड़े हुए, एक दूसरे को काटते हुए उत्तम वाणों की तुमल ध्वनि होती हुई ॥ ४६ ॥ पर अन्ततः चमकते हुए धनुषवाले महात्मा राम के बाणसमूह की बर्षा से बिखरा हुआ, पीडित हुआ, रावण भय से पवन से चलाए मेघ की तरह भाग निकला ॥ ४७ ॥

सर्ग ५२ (व० १०१) हनुमान् का ओषधि पर्वत को लाना और सुषेण की चिकित्सा से लक्ष्मण की मूर्च्छा का छूटना

मूल—शक्त्या निपातितं दृष्ट्वा रावणेन बलीयसा । लक्ष्मणं समरे शूरं

शोणितौघपरिप्लुतम् ॥१॥ विसृजन्नेव बाणौघान्सुषेणमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ एष रावणवीर्येण लक्ष्मणः पतितो भुवि । सर्पवच्चेष्टते वीरो मम शोकमुदीरयन् ॥३॥ शोणितार्द्रमिमं वीरं प्राणैः प्रियतरं मम । पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः ॥ ४ ॥ अयं स समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः । यदि पञ्चत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन वा ॥ ५ ॥ लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद्धनुः । सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता ॥ ६ ॥ + किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते । यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः ॥ ७ ॥ + यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः । अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥ ८ ॥+देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः । तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥९॥ किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम् । भरतं किं नु वक्ष्यामि शत्रुघ्नं च महाबलम् ॥ १० ॥ +सह तेन वनं यातो विना तेनागतः कथम् । इहैव मरणं श्रेयो न तु बन्धुविगर्हणम् ॥ ११ ॥ +किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि । येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः ॥ १२ ॥ हा भ्रातर्मनुजश्रेष्ठ शूराणां प्रवर प्रभो । एकाकी किं नु मां त्यक्त्वा परलोकाय गच्छसि ॥ १३ ॥ विलपन्तं च मां भ्रातः किमर्थं नावभाषसे । उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे दीनं मां पश्य चक्षुषा ॥ १४ ॥ शोकार्तस्य प्रमत्तस्य पर्वतेषु वनेषु च । विषण्णस्य महाबाहो समाश्वासयिता मम ॥ १५ ॥ राममेवं ब्रुवाणं तु शोकव्याकुलितेन्द्रियम् । आश्वासयन्नुवाचेदं सुषेणः परमं वचः ॥ १६ ॥ त्यजेमां नरशार्दूल बुद्धिं वैक्लव्यकारिणीम् । नैव पञ्चत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धन ॥ १७ ॥ नह्यस्य विकृतं वक्त्रं न च श्यामत्वमागतम् । सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्य निरीक्ष्यताम्

टीका—महाबली राम संग्राम में शूर लक्ष्मण को शक्ति से गिराया

हुआ, और रुधिर प्रवाह से भीगा हुआ, देखकर ॥ १ ॥ बाण समूहों को छोड़ता हुआ ही राम सुषेण से बोला ॥ २ ॥ यह वीर लक्ष्मण रावण के वीर्य से भूमि पर गिरा हुआ, सर्पवत् लोटता हुआ मेरे शोक को बढ़ा रहा है ॥३॥ मेरे प्राणों से अधिक प्यारे इस वीर को लहू से भीगा हुआ देखकर मेरा मन घबराता है मैं क्या युद्ध कर सक्ता हूं ॥ ४ ॥ युद्ध में सराहनीय शुभलक्षणों वाला यह मेरा भाई यदि मृत्यु को प्राप्त हुआ, तो मुझे प्राणों से वा सुख से क्या ॥ ५ ॥ मेरी शक्ति मानों लज्जित होरही है, मेरे हाथ से धनुष फिसल रहा है, बाण उदास होरहे हैं, और दृष्टि आंसुओं से भरी है ॥ ६ ॥ मुझे युद्ध से क्या और प्राणों से क्या, अब युद्ध का फल नहीं है, जब कि यह लक्ष्मण रण के मस्तक पर हत हुआ पड़ा है ॥७॥ जैसे यह महातेजस्वी बन को चलते समय मेरे साथ चला है, वैसे ही मैं भी यम के घर इसके साथ जाऊंगा ॥ ८ ॥ देश २ में स्त्रियें हैं, और देश २ में बन्धु होते हैं, किन्तु उस देश को नहीं देखता हूं, जहां सहोदर भाई हो ॥ ९ ॥ क्या मैं माता कौशल्या को कहूंगा, क्या कैकेयी को कहूंगा, भरत तथा महाबली शत्रुघ्न को क्या कहूंगा ॥१०॥ उसके साथ बन को गया अब विना उसके कैसे आया, यहां ही मरना अच्छा है, पर बन्धुओं से निन्दा अच्छी नहीं ॥ ११ ॥ क्या मैंने अन्य जन्म में दुष्कृत कर्म किया है, जिससे मेरा धार्मिक भाई मरा हुआ आगे पड़ा है ॥ १२ ॥ हा भ्राता, हा मनुष्यवर, हा शूरों में श्रेष्ठ क्यों मुझे छोड़कर तू अकेला परलोक को जाता है ॥ १३ ॥ उठ देख क्यों लेटा है, आंख खोलकर मुझ दीन को देख ॥ १४ ॥ पर्वतों और बनों में शोक से पीडित हुए पागल हुए उदास हुए मुझको हे महाबाहो तू तसल्ली देता रहा है ॥ १५ ॥ शोक से व्याकुल

इन्द्रियोंवाले राम के ऐसा कहते हुए सुषेण तसल्ली देता हुआ यह परम वाक्य बोला ॥ १६ ॥ हे नरशार्दूल घबराहट करनेवाली इस बुद्धि को त्याग, लक्ष्मी के बढ़ानेवाला लक्ष्मण मृत्यु को नहीं प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥ इसका मुख विकृत नहीं हुआ न श्याम हुआ है, इसका अच्छी कान्तिवाला प्रसन्न मुख देखिये ॥ १८ ॥

मूल—पद्मपत्रतलौ हस्तौ सुप्रसन्ने च लोचने । नेदृशं दृश्यते रूपं गतासूनां विशांपते ॥ १९ ॥ सोच्छ्वासं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः ॥ २० ॥ एवमुक्त्वा महाप्राज्ञः सुषेणो राघवं वचः । समीपस्थमुवाचेदं हनूमन्तं महाकपिम् ॥ २१ ॥ सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् । दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय ॥२२॥ विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा । सञ्जीवकरणीं वीर सन्धानीं च महौषधीम् ॥२३॥ इत्येवमुक्तो हनुमान् गत्वा चौषधिपर्वतम् । चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानंस्ता महौषधीः ॥ २४ ॥ तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः । इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरेः ॥ २५ ॥ अस्मिंस्तु शिखरे जातामोषधिं तां सुखावहाम् । प्रतर्केणावगच्छामि सुषेणो ह्येवमब्रवीत् ॥ २६ ॥ अगृह्य यदि गच्छामि विशल्यकरणीमहम् । कालात्ययेन दोषः स्याद्वैक्लव्यं च महद्भवेत् ॥२७॥इति संचिन्त्य हनुमान् त्रिः प्रकम्प्य गिरेस्तटम् । गृहीत्वा हरिशार्दूलो हस्ताभ्यां समतोलयत् ॥ २८ ॥ समागम्य महावेगः संन्यस्य शिखरं गिरेः । विश्रम्य किञ्चिद्धनुमान्सुषेणमिदमब्रवीत् ॥२९॥ ओषधीर्नावगच्छामि ता अहं हरिपुङ्गव । तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया ॥३०॥ एवं कथयमानं तु प्रशस्य पवनात्मजम् । सुषेणो वानरश्रेष्ठो जग्राहोत्पाट्य चौषधीः ॥ ३१ ॥ ततः संक्षोदयित्वा तामोषधिं वानरोत्तमः । लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः ॥ ३२ ॥ सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः पर-

वीरहा । विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥ ३३ ॥ तमुत्थितं तु हरयो भूतलात्प्रेक्ष्य लक्ष्मणम् । साधु साध्विति सुप्रीता लक्ष्मणं प्रत्यपूजयन् ॥३४॥ एह्येहीत्यब्रवीद्रामो लक्ष्मणं परवीरहा। सस्वजे गाढमालिङ्ग्य बाष्पपर्याकुलेक्षणः॥३५॥अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा। दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात्पुनरागतम् ३६ नहि मे जीवितेनार्थः सीतया च जयेन वा । को हि मे जीवितेनार्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते ॥ ३७ ॥ इत्येवं ब्रुवतस्तस्य राघवस्य महात्मनः । खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३८ ॥ तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम । लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३९ ॥ नहि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिनः । लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥ ४० ॥ नैराश्यमुपगन्तुं च नालं ते मत्कृतेऽनघ । वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय ॥ ४१ ॥

टीका—पद्मपत्र के तुल्य (रक्त) इसके हस्ततल हैं, और नेत्र बडे निर्मल हैं, हे प्रजाओं के मालिक, मरे हुए का ऐसा रूप नहीं दीखता है ॥ १ ॥ और हे वीर बार २ कांपता हुआ इसका हृदय उच्छ्वास सहित है ॥ २० ॥ महाप्रज्ञ सुषेण राम को यह वचन कहकर समीप स्थित महावानर हनुमान् से यह बोला ॥ २१ ॥ हे सौम्य ? शीघ्र यहां से महोदय पर्वत को जाकर दक्षिण शिखर पर उत्पन्न हुई विशल्य करणी (हृदय के शल्य को दूर करनेवाली) सावर्ण्य करणी (पहले जैसा रङ्ग लानेवाली) सञ्जीवकरणी (जीवन देने वाली) और सन्धानी (टूटी हड्डियों को जोडनेवाली) महौषधियों को यहां ला ॥ २२,२३ ॥ ऐसे कहा हुआ श्रीमान् हनुमान् महौषधि पर्वत पर जाकर उन महौषधियों को न जानता हुआ सोच में पडा ॥ २४ ॥ उस अमित पराक्रमवाले पवनपुत्र को यह

बुद्धि उत्पन्न हुई, कि पर्वत के इस शिखर को ही लेजाऊंगा ॥२५॥ सुषेण ने जैसा कि कहा था, उससे निश्चय करता हूं, कि वह सुख लानेवाली ओषधि इसी पर्वतशिखर पर होसक्ती है ॥ २६ ॥ यदि विशल्यकरणी को लिये बिना चला जाऊं, तो यूं ही समय टलजाने से दोष होगा, और बड़ी घबराहट होगी ॥ २७ ॥ यह सोचकर हनुमान् ने तीन बार पर्वत के शिखर को हिलाकर दोनों हाथों से तोला ॥ २८ ॥ हनुमान् पर्वत के शिखर को लेकर उड़ा और वह बड़े वेगवाला आकर सुषेण से यह बोला ॥ २९ ॥ हे वानरश्रेष्ठ मैं उन ओषधियों को नहीं पहचानता हूं, इसलिये यह उस पर्वत का सारा शिखर लेआया हूं ॥ ३० ॥ ऐसा कहते हुए पवनपुत्र की प्रशंसा करके वानरश्रेष्ठ सुषेण ने ओषधियों को उखाड़ लिया ॥ ३१ ॥ तब उस औषधि को पीसकर महातेजस्वी वानरोत्तम सुषेण ने लक्ष्मण को नसवार दी ॥३२॥ शत्रु वीरों का मारनेवाला वह लक्ष्मण इसके सूंघने से पूर्व शल्यवाला था, सूंघकर शल्य रहित, पीड़ा रहित हुआ भूमि तल से शीघ्र उठ खड़ा हुआ ॥ ३३ ॥ भूमि तल से उठे लक्ष्मण को देखकर वानर बड़े प्रसन्न हो साधु साधु कहकर लक्ष्मण को आदर करते भए ॥३४॥ शत्रु वीरों के मारनेवाले राम ने "आ आ" यह कहकर लक्ष्मण को गाढ़ आलिङ्गन किया और उसके नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगी ॥ ३५ ॥ लक्ष्मण को आलिङ्गन करके राम बोले, भाग्य से हे वीर तुझे मरने से फिर आया देखता हूं ॥ ३६ ॥ मुझे जीने से, वा सीता से, वा विजय से प्रयोजन नहीं, मुझे जीने से क्या प्रयोजन, यदि तू मृत्यु को प्राप्त हो ॥३७॥ महात्मा राम के ऐसा कहते हुए दुर्बल लक्ष्मण शिथिल बाणी से यह वाक्य बोला ॥३८॥ हे सच्चे पराक्रमवाले पहले वह (रावण वध की) प्रतिज्ञा करके अब आप किसी हलके

निःसत्व पुरुष की तरह ऐसा कहने योग्य नहीं है ॥३९॥ सत्यवादी झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते हैं, प्रतिज्ञा का पालन महत्त्व का लक्षण है ॥४०॥ हे निष्पाप ! मेरे अर्थ आपको निराश नहीं होना चाहिये, रावण के बध से आज उस प्रतिज्ञा को पालन करो ॥ ४१ ॥

सर्ग ५३ (व० १०२,१०३) घोर युद्ध और रावण की मूर्छा

मूल—लक्ष्मणेन तु तद्वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः । सन्दधे परवीरघ्नो धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १ ॥ अथान्यं रथमास्थाय रावणो राक्षसाधिपः । अभ्यधावत काकुत्स्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ २ ॥ दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः । आजघान महाशैलं धाराभिरिव तोयदः ॥ ३ ॥ दीप्तपावकसंकाशैः शरैः काञ्चनभूषणैः । अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥ ४ ॥ स तु तेन तदा क्रोधात्काकुत्स्थेनार्दितो भृशम् । रावणः समरश्लाघी महाक्रोधमुपागमत् ॥ ५ ॥ स दीप्तनयनोऽमर्षाच्चापमुद्यम्य वीर्यवान् । अभ्यर्दयत्सुसंक्रुद्धो राघवं परमाहवे ॥ ६ ॥ बाणधारासहस्रैस्तु सतोयद इवाम्बरात् । राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयन् ॥ ७ ॥ स शोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः । दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान्किंशुकद्रुमः ॥८॥ शराभिघातसंरब्धः सोऽभिजग्राह सायकान् । काकुत्स्थः सुमहातेजा युगान्तादित्यवर्चसः ॥ ९ ॥ ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः । उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः ॥ १० ॥ शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च । श्लाघनीयं महत्कर्म यशस्यं च कृतं त्वया ॥ ११ ॥ यदि मत्सन्निधौ सीता धर्षिता स्यात्त्वया बलात् । भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा मत्सायकैर्हतः ॥ १२ ॥ दिष्ट्यासि मम मन्दात्मंश्चक्षुर्विषयमागतः । अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ १३ ॥ इत्येवं स वदन्वीरो रामः शत्रुनिबर्हणः । राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १४ ॥

बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्च संयुगे। रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकाङ्क्षिणः ॥ १५ ॥प्रादुर्बभूवुरस्त्राणि सर्वाणि विदितात्मनः। प्रहर्षाच्च महातेजाः शीघ्रहस्ततरोऽभवत् ॥ १६ ॥ शुभान्येतानि चिह्नानि विज्ञायात्मगतानि सः। भूय एवार्दयद्रामो रावणं राक्षसान्तकृत् ॥ १७ ॥ हरीणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात्। हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत् ॥ १८ ॥ यदा च शस्त्रं नारेभे न चकर्ष शरासनम्। नास्य प्रत्यकरोद्वीर्यं विक्लवेनान्तरात्मना ॥ १९ ॥ सूतस्तु रथनेताऽस्य तदवस्थं निरीक्ष्य तम्। शनैर्युद्धादसम्भ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत् ॥ २० ॥

टीका—लक्ष्मण से कहे इस वाक्य को सुनकर शत्रु वीरों के मारने वाले वीर्यवान् राम ने धनुष लेकर तीर जोड़ा ॥ १ ॥ उसी समय दूसरे रथ पर चढ़कर राक्षसाधिपति रावण राम की ओर दौड़ा, जैसे राहु सूर्य की ओर ॥ २ ॥ रावण रथ पर बैठकर वज्र तुल्य बाणों से राम पर ताड़ना करता भया, जैसे मेघ धाराओं से महा पर्वत को ताड़ता है ॥ ३ ॥ राम भी सावधान होकर सोने के भूषणोंवाले जलते हुए अग्नि के तुल्य बाणों से रावण पर वर्षा करते भये ॥ ४ ॥ उस समय क्रोध में आए राम से अतीव पीड़ित हुआ, युद्धश्लाघी रावण महाक्रोध को प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ क्रोध से उसके नेत्रों से अग्नि बरसने लगी, अतीव क्रुद्ध हुए उस वीर्यवान् ने धनुष उठाकर उस परम युद्ध में राम को पीड़ित किया ॥ ६ ॥ जिस तरह मेघ आकाश से जल की धाराओं से तालाब को भर देता है, इस तरह रावण ने बाणों की सहस्र धाराओं से राम को भर दिया ॥ ७ ॥ युद्ध में रुधिर से लिबड़ा हुआ लक्ष्मण का वह बड़ा भाई बन में फूले हुए बड़े केसू की तरह दीखता था ॥ ८ ॥ बाणों की चोट से जोश में आए हुए महातेजस्वी राम ने प्रलयकाल

के सूर्य तुल्य कान्तिवाले बाण पकड़े ॥ ९ ॥ तब क्रोध से भरे हुए दशरथसुत वीर राम ने हंसकर रावण को यह कठोर वचन कहा ॥ १० ॥ तू जो कुबेर का भाई शूरमा और सेनाओं से युक्त है, तूने बड़ा सराहनीय और यश के देनेवाला भारी काम किया है ॥ ११ ॥ यदि मेरे सामने तू बल से सीता को दबाता, तब मेरे बाणों से हत हुआ तू अपने भाई खर को देखता ॥ १२ ॥ भाग्य से हे मन्दात्मन् तू मेरे नेत्रों के सामने आया है, आज तुझे तीक्ष्ण बाणों से यम के घर पहुंचाता हूं ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहते हुए शत्रुओं के मारनेवाले वीर राम ने निकट पहुंचे रावण पर बाणों की झड़ी बांध दी ॥ १४ ॥ शत्रु को मारना चाहते हुए राम का युद्ध में वीर्य बल हर्ष और अस्त्रबल दुगना होगया ॥ १५ ॥ उस विदितात्मा को सारे अस्त्र प्रकट होगये, और प्रहर्ष से उस महातेजस्वी का हाथ बड़ा ही शीघ्र होगया ॥ १६ ॥ राक्षसों का अन्त करनेवाले राम ने इन शुभ चिन्हों को आत्मा में देखकर रावण को बहुत ही पीड़ित किया ॥ १७ ॥ वानरों की पत्थरों की वर्षा से, और राम के बाणों की वर्षा से ताड़ित हुआ रावण बेकल हृदय होगया ॥ १८ ॥ जब वह बेकल हृदय से शस्त्र न पकड़ सका न धनुष उठा सका, न राम के बल का सामना कर सका ॥ १९ ॥ तब इसके रथ का नेता सारथि उसे इस अवस्था में देखकर बिना घबराए चुपचाप उसके रथ को युद्ध से निकाल लेगया ॥ २० ॥

सर्ग ९४ (व० १०४) मूर्च्छा से उठकर रावण के वीर योग्य वचन

मूल—स तु मोहात्संक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः । क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत् ॥ १ ॥ किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च । त्वया शत्रुसमक्षं मे रथोऽयमपवाहितः ॥२॥ +त्वयाद्य हि ममानार्य चिरकालमुपार्जितम् । यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः

॥ ३ ॥+शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रञ्जनीयस्य विक्रमैः। पश्यतो युद्ध-लुब्धोऽहं कृतः कापुरुषस्त्वया ॥ ४ ॥+नहि तद्विद्यते कर्म सुहृदो हितकाङ्क्षिणः। रिपूणां सदृशं त्वेतद्यत्त्वयैतदनुष्ठितम् ॥ ५ ॥+नि-वर्तय रथं शीघ्रं यावन्नापैति मे रिपुः। यदि वाप्युषितोऽसि त्वं स्मर्यते यदि मे गुणः ॥ ६॥ एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना। अब्रवीद्रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः ॥ ७ ॥ न भीतोऽस्मि न मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः। न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मृता न च सत्क्रिया ॥ ८ ॥ मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता। स्नेहप्रसन्नमनसा हितमित्यप्रियं कृतम् ॥ ९ ॥ नास्मिन्नर्थे महाराज त्वं मां प्रियहिते रतम्। कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि ॥ १० ॥ श्रूयतां प्रतिदास्यामि यन्निमित्तं मया रथः। नदीवेग इवाम्भोभिः संयुगे विनिवर्तितः ॥११॥ श्रमं तवावगच्छामि महता रणकर्मणा। नहि ते वीर्यसौमुख्यं प्रकर्षं नोपधारये ॥ १२ ॥ रथोद्वहनखिन्नाश्च भग्ना मे रथवाजिनः। दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव ॥ १३ ॥ तव विश्रामहेतोस्तु तथैषां रथवाजिनाम्। रौद्रं वर्जयता खेदं क्षमं कृतमिदं मया ॥१४॥ आज्ञापय यथातत्त्वं वक्ष्यस्यरिनिषूदन। तत्करिष्याम्यहं वीर गतानृण्येन चेतसा ॥ १५ ॥ सन्तुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः। प्रशस्यैनं बहु-विधं युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम् ॥ १६ ॥+रथं शीघ्रमिमं सूत राघवा-भिमुखं नय। नाहत्वा समरे शत्रून्निवर्तिष्यति रावणः ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा रथस्थस्य रावणो राक्षसेश्वरः। ददौ तस्य शुभं ह्येकं ह-स्ताभरणमुत्तमम् ॥ १८ ॥ ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः प्रचोद-यामास हयान्स सारथिः। स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत् ॥ १९ ॥

टीका—मूर्छा से युक्त हुआ क्रुद्ध हुआ यम के बल से प्रेरा हुआ

रावण क्रोध से नेत्र लाल करके सूत से बोला ॥ १ ॥ किसलिये तू मेरी अवज्ञा करके मेरे अभिप्राय को न जानकर शत्रु के सामने से मेरे रथ को ले आया है ॥ २ ॥ तूने आज हे अनार्य ! चिर-काल से उपार्जित मेरा यश, वीर्य, तेज और विश्वास विनाश कर दिया है ॥ ३ ॥ प्रख्यात वीर्यवाले, पराक्रमों से प्रसन्न करनेवाले शत्रु के सामने तूने मुझ युद्ध के लोभी को कायर बना दिया है ॥४॥ हित चाहनेवाले सुहृद का यह काम नहीं होसक्ता है, यह तो शत्रुओं के सदृश है, जो तूने किया है ॥ ५ ॥ मेरे रथ को जल्दी लौटा, जब तक कि मेरा शत्रु पीछे नहीं हट जाता, यदि तू मेरे पास देर से रहा है, वा मेरा उपकार स्मरण है ॥ ६ ॥ इसप्रकार उस अबुद्धि से कठोर कहा हुआ वह हितबुद्धि सूत रावण से नम्रता सहित हित वचन बोला ॥ ७ ॥ न मैं डराहुआ हूं, न मूढ़ हूं, न शत्रुओं से फोड़ा गया हूं, न प्रमत्त हूं, न स्नेह रहित हूं, न आप के उप-कार मुझे भूले हुए हैं ॥ ८ ॥ मैंने तो स्नेह से आर्तहृदय होकर यश की रक्षा करते हुए हित की कामना से हित जानकर यह आप का अप्रिय किया है ॥ ९ ॥ इस विषय में हे महाराज आपके प्रिय हित में रत मुझको आप किसी नीच अनार्य की तरह दोषवाला न समझें ॥ १० ॥ सुनिये जिस निमित्त मैंने युद्ध में रथ को वापिस लौटाया है, जैसे (ज्वार भाटा के समय) समुद्र के जलों से नदी का वेग उलटा चलाया जाता है ॥ ११ ॥ इस बड़े युद्ध में आपको थका हुआ जाना, और आपके बल की वृद्धि और प्रकर्ष नहीं देखा ॥ १२ ॥ और मेरे रथ के घोड़े भी रथ के उठाने से थके टूटे और गर्मी से घबराये हुए वर्षा से तङ्ग की हुई गौओं की तरह दीन हारहे थे ॥ १३ ॥ आपके तथा इन रथ के घोड़ों के विश्राम के निमित्त क्रूर थकावट को मिटाते हुए मैंने यह कर्म किया है

॥१४॥ आज्ञा दीजिये, हे शत्रुओं के मारनेवाले जैसा आप कहेंगे वैसा कृतज्ञ मनसे करूंगा ॥ १५ ॥ सारथि के इस वाक्य से प्रसन्न हुआ युद्ध लोभी रावण बहुविध उसकी प्रशंसा करके यह बोला ॥ १६ ॥ हे सूत शीघ्र इस रथ को राम के सम्मुख ले चल, रावण युद्ध में शत्रुओं को मारे बिना नहीं लौटेगा ॥ १७ ॥ यह कहकर रावण ने सारथि को एक उत्तम हस्तभूषण दिया ॥१८॥ तब जल्दी रावण के वाक्य से प्रेरे हुए सारथि ने घोड़ों को हांका, और वह राक्षसेन्द्र का महारथ क्षण में रामकेसम्मुख आखड़ा हुआ ॥

सर्ग ५५ (व० १०६,१०७) राम रावण का लगातार घोर युद्ध ॥

मूल—तदुपोढं महद्युद्ध मन्योन्यवधकांक्षिणोः । परस्पराभिमुखयोर्दृप्तयोरिव सिंहयोः ॥ १ ॥ ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्बलम् । प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समवर्तत ॥ २ ॥ सम्प्रयुद्धौ तु तौ दृष्ट्वा बलवन्नरराक्षसौ । व्याक्षिप्तहृदयाः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥ ३ ॥ रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम् । पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ ॥ ४ ॥ जेतव्यमिति काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः । धृतौ स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा ॥५॥ रामश्चिक्षेप तेजस्वी केतुमुद्दिश्य सायकम् । जगाम स महीं भित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः ॥ ६ ॥ ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः स महाबलः । संप्रदीप्तोऽभवत्क्रोधादमर्षात्प्रदहन्निव ॥ ७ ॥ स रोषवशमापन्नः शरवर्षं ववर्ष ह । तद्वर्षमभवद्युद्धे नैकशस्त्रमयं महत् ॥ ८ ॥ प्रहसन्निव काकुत्स्थः सन्दधे निशिताञ्छरान् । स मुमोच ततो बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ९ ॥ प्रायुध्येतामविच्छिन्नमस्यन्तौ सव्यदक्षिणम् । चक्रतुश्च शरैर्घोरैर्निरुच्छ्वासमिवाम्बरम् ॥ १० ॥ +सागरं सागराकारं गगनं गगनोपमम् । रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव॥११॥एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्युद्धं रामरावणम्॥१२॥देवदा-

नवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम्। पश्यतां तन्महद्युद्धं सर्वरात्रमवर्तत॥

टीका—एक दूसरे के सम्मुख हुए एक दूसरे का बध चाहते हुए उन दोनों का दृप्त शेरों की तरह महत युद्ध प्रवृत्त हुआ॥१॥राक्षसों की सेना और वानरों की बहुत बड़ी सेना शस्त्र पकड़े हुए भी निश्चेष्ट खड़ी रही ॥२॥उन दोनों बलवान् नर और राक्षस को प्रबल युद्ध में लगे देख कर सबके हृदय उधर खिच गये और परम विस्मय को प्राप्त हुए॥३॥ राक्षसों की सेना रावण को और वानरों की सेना राम को विस्मित आंखों से देखती हुई चित्रवत् प्रतीत होती थी ॥ ४ ॥ जीतना है यह राम और मरना है यह रावण निश्चय किये हुए युद्ध में अपने वीर्य का सर्वस्व दिखलाते भये ॥ ५ ॥ तेजस्वी राम ने रावण के झण्डे का उद्देश्य करके बाण फेंका, वह बाण रावण की ध्वजा को काटकर पृथ्वी पर गिरा ॥६॥ ध्वजा का कटना देखकर महाबली रावण क्रोध और अमर्ष से मानों दाह करता हुआ चमक उठा ॥ ७ ॥ क्रोध के वश हुआ वह बाणों की वर्षा बरसाता भया, वह वर्षा युद्ध में अनेक शस्त्रों से भरी हुई बड़ी भारी हुई ॥ ८ ॥ हंसते हुए राम ने भी तीक्ष्ण बाणों को जोड़ा और अनेकानेक बाण छोड़े ॥ ९ ॥ दाएं बाएं दोनों ओर बाणों को फैंकते हुए वह प्रबल युद्ध करने लगे, और घोर बाणों से उन्होंने आकाश को निरवकाश बना दिया ॥ १० ॥ आकाश आकाश के तुल्य है और सागर सागर के तुल्य है, राम और रावण का युद्ध राम और रावण के तुल्य है ॥ ११ ॥ ऐसा कहते हुए लोग राम और रावण के युद्ध को देखते भए ॥ ॥ १२ ॥ देव, दानव, यक्ष, राक्षस, पिशाच और नागों के देखते हुए वह भारी युद्ध सब दिन इसी तरह होता रहा ॥ १३ ॥

सर्ग ५६ (व० १०८) अगस्त्य बाण से रावण का बध

मूल—यं तस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः । ब्रह्मदत्तं महद्बाणममोघं युधि वीर्यवान् ॥ १ ॥ ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा । दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकांक्षिणः ॥ २ ॥ अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः । वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली ॥ ३ ॥ स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् । चिक्षेप परमायत्तः शरं मर्मविदारणम् ॥ ४ ॥ स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः । कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥ ५ ॥ स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः परः । बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ ६ ॥ रुधिराक्तः स वेगेन शरीरान्तकरः शरः । रावणस्य हरन्प्राणान्विवेश धरणीतलम् ॥ ७ ॥ तस्य हस्ताद्धतस्याशु कार्मुकं चापि सायकम् । निपपात सह प्राणैर्भ्रश्यमानश्च जीवितात् ॥ ८ ॥ गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः । पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः । हतनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः संप्रदुद्रुवुः ॥१०॥ ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः । वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्वधम् ॥११॥ ततस्तु सुग्रीवविभीषणाङ्गदाः सुहृद्विशिष्टा सहलक्ष्मणास्तदा । समेत्य हृष्टा विजयेन राघवं रणेऽभिरामं विधिनाभ्य पूजयन् ॥१२॥ स तु निहतरिपुः स्थिरप्रतिज्ञः स्वजनबलाभिवृतो रणे बभूव । रघुकुलनृपनन्दनो महौजास्त्रिदशगणैरभिसंवृतो महेन्द्रः ॥ १३ ॥

अर्थ—अब ब्रह्मा से दिया वह अमोघ महाबाण जिसे अपरिमित पराक्रमवाले ब्रह्मा ने पहले इन्द्र के लिये रचा, और त्रिलोकी को जीतना चाहते इन्द्र को दिया था, और जो कि भगवान् अगस्त्य ने पहले राम को दिया था ॥ १, २ ॥ महाबली राम ने उस महाबाण

को अभिमन्त्रण करके धनुर्वेद में कही विधि से उस धनुष में जोड़ा ॥३॥ अब धनुष को ज़ोर से खींचकर क्रुद्ध हुए राम ने परम प्रयत्न के साथ मर्म तोड़नेवाला वह बाण रावण की ओर फैंका ॥४॥ इन्द्र से छोड़े वज्र की तरह वह दुर्धर्ष यम की तरह न रोका जाने वाला बाण रावण की छाती में जा खुभा ॥५॥ उस महावेगवाले शरीर का अन्त करनेवाले छोड़े हुए उत्तम बाण ने दुरात्मा रावण का हृदय फोड़ दिया ॥ ६ ॥ रुधिर से लिबड़ा हुआ शरीर का अन्त करनेवाला वह बाण रावण के प्राणों को हरकर वेग से पृथिवी-तल में प्रविष्ट हुआ ॥ ७ ॥ हत हुए रावण के हाथ से प्राणों के साथ उसका धनुष और बाण गिरा और वह जीवन से अलग हुआ ॥ ८ ॥ दूर हुए प्राणोंवाला भीमवेग महातेजस्वी वह राक्षसेन्द्र वज्र से हत हुए वृक्ष की तरह रथ से भूमि पर गिर पड़ा ॥९॥ उसको भूमि पर गिरा देखकर हतशेष राक्षस मालिक के मरने से भय से डरे हुए सब ओर भाग गये ॥१०॥ तब जय से प्रकाशने वाले वानर प्रसन्न हुए राघव का जय और रावण का क्षय कहते हुए गर्जते भए ॥ ११ ॥ तब सुहृदों समेत सुग्रीव विभीषण अङ्गद और लक्ष्मण प्रसन्न हुए मिल करके रण में विजय से सुहावने राम को विधि से पूजते भए ॥१२ ॥ वह रघुकुल का राजकुमार शत्रु को मारकर स्थिर प्रतिज्ञावाला रण में अपने जनों से घिरा हुआ देवगणों से घिरे हुए महेन्द्र की तरह हुआ ॥ १३ ॥

सर्ग ५७ (व० १०९) विभीषण का शोक और राम का तसल्ली देना

मूल—भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं निर्जितं रणे । शोकवेगपरीतात्मा विललाप विभीषणः ॥ १ । +आदिसाः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः । चित्रभानुः प्रशान्तार्चिर्व्यवसायो निरुद्यमः ॥ २ ॥ अस्मिन्निपतिते वीरे भूमौ शस्त्रभृतां वरे । किं शेषमिह लोकस्य

गतसत्त्वस्य सम्प्रति ॥ ३ ॥ वदन्तं हेतुमद्वाक्यं परिदृष्टार्थनिश्चयम् । रामः शोकसमाविष्टमित्युवाच विभीषणम् ॥ ४ ॥+नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः । अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः॥ ५ ॥ नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्मव्यवस्थिताः । वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे ॥ ६ ॥+नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन । परैर्वा हन्यते वीरः परान्वा हन्ति संयुगे ॥७॥ +इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्रियसम्मता । क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः ॥ ८ ॥ तदेवं निश्चयं दृष्ट्वा तत्त्वमास्थाय विज्वरः । यदिहानन्तरं कार्यं कल्प्यं तदनुचिन्तय ॥ ९ ॥ तमुक्तवाक्यं विक्रान्तं राजपुत्रं विभीषणः । उवाच शोकसंतप्तो भ्रातुर्हितमनन्तरम् ॥ १० ॥+अनेन दत्तानि वनीपकेषु भुक्ताश्च भोगा निभृताश्च भृत्याः । धनानि मित्रेषु समर्पितानि वैराण्यमित्रेषु निपातितानि ॥ ११ ॥+एषोऽहिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तगः कर्मसु चाग्र्यशूरः । एतस्य यत्प्रेतगतस्य कृत्यं तत्कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात् ॥ १२ ॥ स तस्य वाक्यैः करुणैर्महात्मा सम्बोधितः साधु विभीषणेन । आज्ञापयामास नरेन्द्रसूनुः स्वर्गीयमाधानमदीनसत्त्वः ॥ १३ ॥+मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम् । क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥ १४ ॥

टीका—भाई को रण में पराजित हो लेटा हुआ मरा हुआ देखकर शोक के वेग से भरे मन वाला विभीषण विलाप करता भया ॥१॥ सूर्य भूमि पर गिरा है, चन्द्रमा अन्धकार में डूबा है, अग्नि की ज्वाला ठण्डी होगई है, कारोबार उद्यम हीन हुआ है ॥२॥ जब कि शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ यह वीर भूमि पर पड़ा है, अब सारहीन हुए इस लोक का शेष क्या रहा ॥३॥ ऐसा यथार्थ युक्तियुक्त वाक्य कहते हुए शोक से भरे हुए विभीषण को राम बोले ॥ ४ ॥ यह

युद्ध में प्रचण्ड विक्रमवाला निश्चेष्ट होकर नहीं मरा है, अपितु बहुत बड़े उन्नत उत्साहवाला निडर लड़ता हुआ (दैव से) गिरा है ॥५॥ इसप्रकार मरे हुए जो क्षात्रधर्म में स्थित होकर अपना जय चाहते हुए रण के मैदान में गिरते हैं, वह शोक के योग्य नहीं होते हैं ॥ ६ ॥ युद्ध में नियत विजय कभी किसी का नहीं हुआ है, युद्ध में वीर पुरुष या शत्रुओं से मारा जाता है, वा शत्रुओं को मार लेता है ॥ ७ ॥ यह गति (जो इसने पाई है) बड़ों की कही हुई क्षत्रियों में पूजित है, युद्ध में मरा हुआ क्षत्रिय शोक के योग्य नहीं होता, यह निश्चय है ॥ ८ ॥ सो इस प्रकार निश्चय जानकर दृढ़ होकर शोकरहित हुआ जो अनन्तर कार्य करना है उसका विचार कर ॥ ९ ॥ विक्रमी राजपुत्र (राम) के ऐसा कहने पर शोक से तपा हुआ विभीषण भाई का आगे करने योग्य हित कहता भया ॥ १० ॥ इसने पात्रों में दान दिये हैं, भोग भोगे हैं, पालने योग्यों का पालन किया है, मित्रों में धन बांटे हैं, शत्रुओं से वैर चुकाए हैं ॥ ११ ॥ यह आहिताग्नि महा तपस्वी वेदान्त का जाननेवाला, कर्म में निपुण था, अब इस मरे हुए का जो कर्तव्य है, वह आप की कृपा से करना चाहता हूं ॥ १२ ॥ विभीषण ने जब करुण वाक्यों से उस महात्मा को यह जितलाया, तो अदीन हृदय वह राजपुत्र (राम) स्वर्ग के योग्य विधि की आज्ञा देता भया ॥ १३ ॥ वैर मरण तक होते हैं, हमारा प्रयोजन होचुका, इसका संस्कार कीजिये, मेरा भी यह वैसा है, जैसा तेरा है

सर्ग ५८ (व० ११०,१११) रावण की स्त्रियों का विलाप

मूल–रावणं निहतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना । अन्तःपुराद्विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः ॥ १ ॥ उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः । प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं पतिम् ॥ २ ॥

ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु । निपेतुस्तस्य गात्रेषु छिन्ना वनलता इव ॥ ३ ॥ बहुमानात्परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह । चरणौ काचिदालम्ब्य काचित्कण्ठेऽवलम्ब्य च ॥ ४ ॥ उत्क्षिप्य च भुजौ काचिद्भूमौ सुपरिवर्तते । हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोहमुपागमत् ॥ ५ ॥ काचिदङ्के शिरः कृत्वा रुरोद मुख-मीक्षती । स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पङ्कजम् ॥ ६ ॥ दश-ग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा । पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥ ७ ॥ ननु नाम महाबाहो तव वैश्रवणानुज । क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरन्दरः ॥ ८ ॥ ऋषयश्च महान्तोऽपि गन्धर्वाश्च यशस्विनः । ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ॥ ९ ॥ स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः । न व्यपत्रपसे राजन्किमिदं राक्षसेश्वर ॥ १० ॥+विनाशस्तव रामेण संयुगे नोप-पद्यते । सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्षणम् ॥११॥ +अप्राप्य तं चैव कामं मैथिलीसङ्गमे कृतम् । पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥ १२ ॥ तदैव यन्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम् । देवा बिभ्यति ते सर्वे सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ १३ ॥ मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति । अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे ॥ १४ ॥ कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने । देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया ॥ १५ ॥ विमानेनानुरूपेण यायाम्यतुलया श्रिया । पश्यन्ती विविधान्देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा ॥ १६ ॥ भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीर वधात्तव । सैवान्येवास्मि संवृत्ता धिग्राज्ञां चञ्चलां श्रियम् ॥ १७ ॥ पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः । पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यहं गर्विता भृशम् ॥ १८ ॥ दृप्तारिमथनाः क्रूराः प्रख्यातबलपौरुषाः । अकुतश्चिद्भया नाथा ममेत्यासीन्मतिर्ध्रुवा ॥१९॥ तेषामेवंप्रभावाणां युष्माकं राक्षसर्षभाः ।

कथं भयमसंबद्धं मानुषादिदमागतम् ॥ २० ॥ यास्त्वया विधवा राजन्कृता नैकाः कुलस्त्रियः । पतिव्रताधर्मरता गुरुशुश्रूषणे रताः ॥ २१ ॥ ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशं गतः । त्वया विप्रकृताभिश्च तदा शप्तं तदागतम् ॥२२॥+प्रवादः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप । पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले ॥ २३ ॥ नीलजीमूतसंकाश पीताम्बर शुभाङ्गद । स्वगात्राणि विनिक्षिप्य किं शेषे रुधिरावृतः ॥ २४ ॥ यातुधानस्य दौहित्रीं किं मां न प्रतिभाषसे । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे नवे परिभवे कृते ॥ २५ ॥ धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा । त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम् ॥ २६ ॥ इत्येवं विलपन्ती सा बाष्पपर्याकुलेक्षणा । स्नेहोपस्कन्नहृदया तदा मोहमुपागमत् ॥२७॥ तथागतां समुत्थाप्य सपत्न्यस्तां भृशातुराः । पर्यवस्थापयामासू रुदत्यो रुदतीं भृशम् ॥२८

टीका—महात्मा राघव से रावण को मरा देखकर शोक से दुर्बल राक्षसियें अन्तःपुर से निकलीं ॥ १ ॥ राक्षसों के साथ उत्तर द्वार से निकलकर भयानक रण में प्रवेश करके मरे पति को ढूंढती भईं ॥ २ ॥ वह रण की धूल में लेटे हुए पति को सहसा देखकर कटी हुई बनलता की तरह उसके अङ्गों पर गिर पड़ीं ॥ ३ ॥ कोई इसे बहुमान से आलिङ्गन करके रोने लगी, कोई पांओं पकड़कर, और कोई गले लगकर ॥४॥ कोई भुजायें फैंककर भूमि पर लौटती है, कोई मरे के मुख को देखकर मूर्छित होगई है ॥५॥ कोई गोद में उसका सिर करके मुख को देखती हुई ओस से कमल की तरह आंसुओं से उसके मुख को स्नान कराती हुई रोरही है ॥ ६ ॥ अचिन्त्य कर्मोंवाले राम से रावण को मरा देखकर (उसकी ज्येष्ठ पत्नी) मन्दोदरी वहां विलाप करती भई ॥ ७ ॥ हे कुबेर के छोटे भाई हे महाबाहो क्रुद्ध हुए तेरे सामने खड़ा

होने में इन्द्र भी डरता था ॥ ८ ॥ बड़े २ ऋषि और यशस्वी गन्धर्व और चारण भी तेरे डर से दिशाओं को भागते थे ॥ ९ ॥ सो तू मानुषमात्र से जीता हुआ हे राजन् नहीं लजाता है, हे राक्षसेश्वर यह क्या ॥ १० ॥ सेना के अग्र में सारी शक्तियों से युक्त तुझ को दबाना यह राम का काम हो मैं नहीं विश्वास करती ॥ ११ ॥ हे मेरे स्वामी तू सीता के समागम की कामनाको बिना प्राप्त किये निःसन्देह उस पतिव्रता के तप से दग्ध किया गया है ॥१२॥ उस सूक्ष्म कमरवाली को दबाता हुआ जो उसीसमय तू दग्ध नहीं किया गया है, (यह उस माहात्म्य से, कि जिससे) इन्द्र और अग्नि समेत देवता भी तुझ से डरते हैं ॥ १३ ॥ सीता शोक रहित हुई राम के साथ आनन्द मनाएगी, किन्तु मैं मन्दभाग्या शोक-सागर में डूबी हूं ॥ १४ ॥ कैलास मन्दर मेरु चैत्ररथ बन और देवताओं के सब बगीचों में जो अतुल शोभा से विचित्र माला वस्त्र पहने हुए विविध देशों को देखती हुई सुन्दर विमान पर तेरे साथ घूमती थी ॥ १५,१६ ॥ वही मैं हे वीर तेरे बध से सारे कामभोगों से भ्रष्ट हुई हूं, वही मैं अब मानो और सी होगई हूं, राजाओं की चञ्चल लक्ष्मी को धिक्कार है ॥ १७ ॥ मुझे यह बड़ा गर्व था, मेरा पिता दानवों का राजा है, भर्त्ता राक्षसों का मालिक है, और पुत्र इन्द्र का जीतने वाला है ॥१८॥ मेरी यह अटल मति थी, कि मेरे नाथ दृप्त शत्रुओं के मारनेवाले बड़े उग्र प्रसिद्ध बल पौरुषवाले किसी से न डरनेवाले हैं ॥ १९ ॥ ऐसे प्रभाववालों को हे राक्षसश्रेष्ठो ! कैसे तुम्हें मनुष्य से यह अचानक भय प्राप्त हुआ ॥२०॥ हे राजन् जो तूने अनेक कुलीन स्त्रियें विधवा की हैं, जो पतिव्रता धर्मरत, और बड़ों की सेवा में तत्पर थीं ॥२१॥ उन शोक से तपी हुइयों ने जो तुझे शाप दिया इससे तू शत्रु के वश पड़ा है

॥ २२ ॥ हे नृप ! यह कहावत जो प्रायः लोक में प्रसिद्ध है, तेरे विषय में सत्य निकली है, कि पतिव्रताओं के आंसू पृथ्वी पर बिना अनर्थ लाये नहीं गिरते ॥ २३ ॥ हे नीलमेघ के सदृश हे पीत वस्त्रोंवाले, हे सुन्दर बाहुबन्द वाले, क्यों तू अपने अङ्गों को फैंककर रुधिर से लिबड़ा हुआ लेट रहा है ॥२४॥ मुझ यातुधान (सुमाली) की दोहती से क्यों नहीं बोलता है, उठ २ इस नये अनादर के होने पर क्यों लेट रहा है ॥ २५ ॥ धिक्कार है मेरे हृदय को जो तेरे मरने पर शोक से पीड़ित होकर अनेक टुकड़े नहीं होजाता है ॥ २६ ॥ इस प्रकार विलपती हुई आंसुओं से व्याकुल नेत्रोंवाली स्नेह से दबे हृदयवाली वह मूर्छित होगई ॥२७॥ ऐसी अवस्था से उठाकर अतीव पीड़ित हुई उसकी सपत्नियें रोती हुई उस अत्यन्त रोती हुई को तसल्ली देती भई ॥ २८ ॥

सर्ग ५९ (व० १११) रावण का दाह संस्कार ॥

मूल—एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह । संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणः परिसान्त्व्यताम् ॥ १ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः । संस्कारयितुमारेभे भ्रातरं रावणं हतम् ॥२॥ स प्रविश्य पुरीं लङ्कां राक्षसेन्द्रो विभीषणः । रावणस्याग्निहोत्रं तु निर्यापयति सत्वरम् ॥ ३ ॥ शकटान्दारुरूपाणि अग्नीन्वै याजकांस्तथा । तथा चन्दनकाष्ठानि काष्ठानि विविधानि च ॥ ४ ॥ अगुरूणि सुगन्धीनि गन्धांश्च सुरभींस्तथा । ततो माल्यवता सार्धं क्रियामेव चकार सः ॥ ५ ॥ सौवर्णीं शिविकां दिव्यामारोप्य क्षौमवाससम् । रावणं राक्षसाधीशमश्रुपूर्णमुखा द्विजाः ॥ ६ ॥ उत्क्षिप्य शिविकां तां तु विभीषणपुरोगमाः । दक्षिणाभिमुखाः सर्वे गृह्य काष्ठानि भेजिरे ॥७॥ अग्नयो दीप्यमानास्ते तदाध्वर्युसमीरिताः शरणाभिगताः सर्वे पुरस्तात्तस्य ते ययुः ॥ ८ ॥ अन्तःपुराणि

सर्वाणि रुदमानानि सत्वरम् । पृष्ठतोऽनुययुस्तानि प्लवमानानि सर्वतः ॥ ९ ॥ रावणं प्रयते देशे स्थाप्य ते भृशदुःखिताः । चितां चन्दनकाष्ठैश्च पद्मकोशीरचन्दनैः ॥१०॥ ब्राह्म्या संवर्तयामासू राङ्कवास्तरणावृताम् । प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुत्तमम् ॥११॥ स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः । स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भविमिश्रितान् ॥१२॥ उदकेन च संमिश्रान्प्रदाय विधिपूर्वकम् । ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ॥ १३ ॥ गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं ततः ॥ १४ ॥ प्रविष्टासु पुरीं स्त्रीषु राक्षसेन्द्रो विभीषणः । रामपार्श्वमुपागम्य समतिष्ठद्विनीतवत्

टीका—इस अवसर में राम ने विभीषण को कहा, भाई का संस्कार करो और स्त्रीगण को तसल्ली दो ॥ १ ॥ राघव के वचन को सुनकर जल्दी करता हुआ विभीषण मरे भाई रावण के संस्कार करने की तय्यारी करता भया ॥ २ ॥ राक्षसेन्द्र विभीषण लङ्कापुरी में प्रवेश करके जल्दी रावण के अग्निहोत्र को बाहर लाया ॥ ३ ॥ छकड़े, उज्ज्वल समिधाएं, अग्नियें, याजक, चन्दन की लकड़ियें और भिन्न लकड़ियें ॥ ४ ॥ सुगन्धित अगर और सुगन्धित वस्तुएं (लेकर आया) और माल्यवान् के साथ कर्म किया ॥ ५ ॥ सोने की दिव्य पालकी पर रेशमी वस्त्र युक्त राक्षसपति रावण को चढ़ाकर आंसुओं से पूर्ण मुखवाले ब्राह्मण (ले गये) ॥ ६ ॥ पालकी को उठाकर विभीषण आदि सब लकड़ियें लेकर दक्षिणाभिमुख गए ॥ ७ ॥ अध्वर्यु से दीप्यमान अग्नियों को कुंडों समेत उसके आगे २ ले जारहे थे ॥ ८ ॥ और स्त्रियें सब रोती हुई सब ओर से उसके पीछे २ गईं ॥ ९ ॥ रावण को शुद्ध स्थान पर स्थापन करके अतीव दुःखित हुए वह चन्दन की लकड़ियों से पद्मक और उशीर चन्दन से नीचे मशान बिछाकर

वेद मार्गानुसार चिता बनाते भए और राक्षसेन्द्र की उत्तम अन्त्येष्टि करते भए ॥ १०, ११ ॥ विभीषण ने विधि पूर्वक उसे अग्नि दी और स्नान करके गीले वस्त्र से विधि पूर्वक जल और दर्भ से मिश्रित तिल (तिलाञ्जलि) देकर स्त्रियों को तसल्ली दी, वार २ उनको तसल्ली देकर "आप अब जाएं" विभीषण के ऐसा कहने पर वह नगर में प्रविष्ट हुई ॥१२,१३,१४॥ स्त्रियों के नगर में प्रविष्ट होने पर राक्षसेन्द्र विभीषण रामके पास जाकर विनीतवत् स्थित हुआ

सर्ग ६० (व० ११२) विभीषण का लंका में राज्याभिषेक

मूल—अथोवाच स काकुत्स्थः समीपपरिवर्तिनम् । सौमित्रिं मित्रसम्पन्नं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १ ॥ विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामाभिषेचय । अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम् ॥ २ ॥ एष मे परमः कामो यदिमं रावणानुजम् । लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम् ॥ ३ ॥ एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना । तथेत्युक्त्वा सुसंहृष्टः सौवर्णं घटमाददे ॥ ४ ॥ तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान् । व्यादिदेश महासत्त्वः समुद्रसलिलं तदा ॥ ५ ॥ अतिशीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते मनोजवाः । आगतास्तु जलं गृह्य समुद्राद्वानरोत्तमाः ॥ ६ ॥ ततस्त्वेकं घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने । घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ॥ ७ ॥ अभ्यषिञ्चंस्तदा सर्वे राक्षसा वानरास्तदा । प्रहर्षमतुलं गत्वा तुष्टुवू राममेव हि ॥ ८ ॥ दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् । राघवः परमां प्रीतिं जगाम सहलक्ष्मणः ॥ ९ ॥ सान्त्वयित्वा प्रकृतयस्ततो राममुपागमत् ॥ १० ॥ ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं प्रणतं स्थितम् । उवाचेदं वचो रामो हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥ ११ ॥ अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम् । प्रविश्य नगरीं लङ्कां कौशलं ब्रूहि मैथिलीम् ॥ १ ॥ वैदेह्या मां च कुशलं सुग्रीवं च

सहलक्ष्मणम्। आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ रावणं च हतं रणे ॥ १३ ॥ प्रियमेतदिहाख्याहि वैदेह्यास्त्वं हरीश्वर। प्रतिगृह्य तु सन्देशमुपावर्तितुमर्हसि ॥ १४ ॥

टीका—तब राम समीपवर्ती, मित्रोंवाले, शुभलक्षणों वाले सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण से बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य! इस मेरे अनुरक्त भक्त पूर्वोपकारी विभीषण को लङ्का में जाकर अभिषेक दो ॥ २ ॥ यह मेरी परम कामना है, कि हे सौम्य! रावण के छोटे भाई विभीषण को लङ्का में अभिषिक्त हुआ देखूं ॥३॥ महात्मा राम से ऐसे कहा हुआ लक्ष्मण तथास्तु कहकर प्रसन्न हो सोने का घड़ा लेता भया ॥ ४ ॥ उस घड़े को उस महा हृदयवाले ने वानरेन्द्रों के हाथ में देकर मन तुल्य वेगवाले उन बानरों को समुद्र का जल लाने की आज्ञा दी ॥ ५ ॥ वह मन तुल्य वेगवाले वानरोत्तम अति शीघ्र जाकर समुद्र का जल ले आये ॥ ६ ॥ तब लक्ष्मण ने एक घड़ा लेकर विभीषण को सिंहासन पर बिठलाकर उस घट से अभिषिक्त किया ॥ ७ ॥ तब सारे राक्षसों ने और वानरों ने उसे अभिषेक दिया, और सब अतुल हर्ष को प्राप्त होकर राम की प्रशंसा करते भए ॥८॥ राक्षसेन्द्र विभीषण को लङ्का में अभिषिक्त देखकर राम लक्ष्मण समेत परमप्रीति को प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ और विभीषण प्रकृतियों को तसल्ली देकर फिर राम के पास आया ॥ १० ॥ तब हाथ जोड़कर झुककर खड़े हुए पर्वत जैसे वीर हनुमान् वानर को राम यह वचन बोले ॥ ११ ॥ हे सौम्य महाराज विभीषण से अनुज्ञा लेकर लङ्का नगरी में प्रवेश करके सीता को कुशल कहो ॥ १२ ॥ हे कहनेवालों में श्रेष्ठ पहले सीता का कुशल पूछकर फिर मेरा लक्ष्मण का और सुग्रीव का कुशल और रावण का मरना कहो ॥ १३ ॥ हे वानरेश्वर यह प्रिय जाकर सीताको कहो, और उससे सन्देश लेकर वापिस आ ॥१४॥

सर्ग ६१ (व० ११३) हनुमान् का सीता को विजयका संदेश देना

मूल—इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान्मारुतात्मजः । प्रविवेश पुरीं लङ्कामनुज्ञाप्य विभीषणम् ॥ १ ॥ ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो हनूमान्वृक्षवाटिकाम् । संप्रविश्य यथान्यायं सीताया विदितो हरिः ॥ २ ॥ ददर्श मृजया हीनां राक्षसीभिः परीवृताम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा समागतं देवी हनूमन्तं महाबलम् । तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा हृष्टाभवत्तदा ॥ ४ ॥ सौम्यं तस्या मुखं दृष्ट्वा हनूमान्प्लवगोत्तमः । रामस्य वचनं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥ वैदेहि कुशली रामः सुग्रीवः सहलक्ष्मणः । कुशलं त्वाह सिद्धार्थो हतशत्रुरमित्रजित् ॥ ६ ॥ विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह । निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च वीर्यवान् ॥ ७ ॥ प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभाजये । तव प्रभावाद्धर्मज्ञे महान्रामेण संयुगे ॥ ८ ॥ लब्धोऽयं विजयः सीते स्वस्था भव गतज्वरा । रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चैव वशीकृता ॥ ९ ॥ मया ह्यलब्धनिद्रेण धृतेन तव निर्जये । प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ ॥ १० ॥ संभ्रमश्च न कर्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये । विभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम् ॥ ११ तदाश्वसिहि विस्रब्धं स्वगृहे परिवर्तसे । अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ॥ १२ ॥ एवमुक्ता तु सा देवी सीता शशिनिभानना । प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥ १३ ॥ ततोऽब्रवीद्धरिवरः सीतामप्रतिजल्पतीम् । किं त्वं चिन्तयसे देवि किं च मां नाभिभाषसे ॥ १४ ॥ एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मपथे स्थिता । अब्रवीत्परमप्रीता बाष्पगद्गदया गिरा ॥ १५ ॥ प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम् । प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्यास्मि क्षणान्तरम् ॥१६॥+न च पश्यामि सदृशं पृथिव्यां तव किञ्चन । सदृशं मत्प्रियाख्याने तव दत्त्वा भवेत्सुखम् ॥ १७ ॥ हिरण्यं वा सुवर्णं

वा रत्नानि विविधानि च । राज्यं वा त्रिषु लोकेषु एतन्नार्हति भाषितम् ॥ १८ ॥ एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवंगमः । प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात्सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥१९॥ भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकांक्षिणि । स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हस्यनन्दिते ॥ २० ॥ अथोवाच पुनः सीतामसंभ्रान्तो विनीतवत् ॥ २१ ॥ इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे । हन्तुमिच्छामि ता सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा ॥२२॥ इत्युक्ता सा हनुमता कृपणा दीनवत्सला । हनुमन्तमुवाचेदं चिन्तयित्वा विमृश्य च ॥२३॥+राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया । विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम ॥२४॥+भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च । मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥२५॥+प्राप्तव्यं तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम् । दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥

टीका—ऐसे आज्ञा दिया हुआ पवनपुत्र हनुमान् विभीषण से अनुज्ञा लेकर लङ्का में प्रविष्ट हुआ ॥१॥ तब उस से आज्ञा दिया हुआ, सीता का पहचाना हुआ हनुमान् वानर विनीतवत वृक्षवाटिका में प्रविष्ट हो, शृङ्गार से शून्य राक्षसियों से परिवारित सीता को देखता भया ॥ २, ३ ॥ महाबली हनुमान् को आया देखकर वह देवी चुप रही और देखकर और स्मरण करके बड़ी प्रसन्न हुई ॥ ४॥ उसके मुख को सौम्य देखकर वानरोत्तम हनुमान् राम का सारा वचन कहने लगा ॥ ५ ॥ हे सीता राम लक्ष्मण और सुग्रीव कुशली हैं, शत्रुओं के जीतनेवाले ने शत्रुओं को मारकर कृतकार्य होकर मुझे कुशल कहा है ॥६॥ विभीषण की सहायता से वानरों के और लक्ष्मण के साथ मिलकर हे देवि राम ने वीर्यवान् रावण को मारा है ॥७॥ तुझे प्रिय कहता हूं, हे देवि बढ़कर तेरी पूजा करता हूं, तेरे प्रभाव से हे धर्म के जाननेवाली राम ने यह युद्ध

में विजय पाया है, अब सन्ताप को त्यागकर स्वस्थ हो, रावण जो शत्रु था, वह मारा गया है और लङ्का वश में की गई है ॥ ८,९ ॥ तेरे वापिस जीतने में निश्चय किये हुए मैंने बिन निद्रा पाए महा सागर पर पुल बांधकर यह प्रतिज्ञा पूरी की है ॥१०॥ रावण के घर में रहती हुई तू अब मत घबराए, यह लङ्का का ऐश्वर्य अब विभीषण के अधीन किया गया है ॥ ११ ॥ सो विश्वस्त होकर तसल्ली कर, तू अपने घर में है, यह प्रसन्न हुआ (विभीषण) तेरे दर्शन को आरहा है ॥ १२ ॥ ऐसे कही हुई चन्द्रमुखी देवी सीता प्रहर्ष से रुकी हुई कुछ कह न सकी ॥ १३ ॥ तब वह वानरवर प्रति वचन न देती हुई सीता से बोला, हे देवि तू किस सोच में है, क्यों मेरे साथ नहीं बोलती है ॥ १४ ॥ धर्मपथ में स्थित सीता हनुमान् से ऐसे कही हुई परम प्रसन्न हुई (प्रेमकी) आंसुओं से गद्गद बाणी से बोली ॥ १५ ॥ यह प्रिय जो मेरे भर्त्ता के विजय से सम्बद्ध है, इसे सुनकर प्रहर्ष के वश हुई मैं थोड़ी देर निर्वाक्य हुई हूं ॥ १६ ॥ और न मैं सारी पृथिवी में इस प्रिय कहने के तुल्य वस्तु देखती हूं, जो तुझे देकर सुखी होऊं ॥ ७ ॥ सोना वा भूषण वा विध रत्न वा तीनों लोक का राज्य भी इस कथन के योग्य नहीं ॥१८॥ सीता से ऐसे कहा हुआ वानर हाथ जोड़ कर सीता के सन्मुख खड़ा हुआ हर्ष से उत्तर देता भया ॥ १९ ॥ हे भर्ता के प्रिय हित में युक्त, हे भर्ता का प्रिय चाहनेवाली ऐसा स्नेह से भरा हुआ वाक हे अनिन्दिते तूही कहने योग्य है ॥ २० ॥ इतना कहकर असंभ्रान्त विनीतवत् फिर सीता से बोला ॥२२॥ यदि आप स्वीकार करें, तो इन राक्षसियों को जो तुझे झिडका करती थीं जरा ताडना करदूं ॥२२॥ ऐसे कही हुई कृपणा दीनों की प्यारी सोच विचारकर हनुमान् से यह बोली ॥२३॥ राजा

के आश्रय से उसके वश में पड़ी हुई दूसरे की आज्ञा से सब कुछ करती हुई पराधीनदासियों पर हे वानरोत्तम कौन क्रोधकरे ॥२४॥ भाग्य की विषमता से अपने पूर्वले किसी पाप से मैंने यह सब पाया है, क्योंकि अपना किया ही भोगा जाता है ॥२५॥ दशा के योग से मैंने यह पाना ही था, यह निश्चित है, सो मैं (जो पहले) दुर्बल (थी अब) रावण की दासियों को क्षमा करती हूं ॥ २६ ॥

मूल—आज्ञप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयन्ति माम्। हते तस्मिन्न कुर्वन्ति तर्जनं मारुतात्मज ॥२७॥+न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्। समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥२८॥ +पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ २९ ॥ एवमुक्तस्तु हनुमान्सीतया वाक्यकोविदः। प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥ ३० ॥ युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी गुणान्विता। प्रतिसंदिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥ ३१ ॥ एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा। साब्रवीद्द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥ ३२ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान्मारुतात्मजः। हर्षयन्मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महामतिः ॥ ३३ ॥ पूर्णचन्द्रमुखं रामं द्रक्ष्यस्यद्य सलक्ष्मणम् । स्थितमित्रं हतामित्रं शचीवेन्द्रं सुरेश्वरम् ॥ ३४ ॥ तामेवमुक्त्वा भ्राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम्। आजगाम महातेजा हनूमान्यत्र राघवः ॥ ३५ ॥

टीका—राक्षस से आज्ञा दी हुई राक्षसियें मुझे झिड़कती थीं, अब राक्षस के मरने पर हे पवनपुत्र नहीं झिड़कती हैं ॥२७॥ दूसरे पापियों के पाप को दूसरा नहीं ले लेता अपना धर्म रखना चाहिये, चारित्र ही भलों का भूषण होता है ॥ २८ ॥ भले हों चाहे बुरे हों अथवा बध के योग्य भी हों, सबपर दया बर्तनी चाहिये, कोई ऐसा नहीं, जो कभी अपराधी न हो ॥२९॥ सीता से ऐसे कहा हुआ वाक्य-

निपुण हनुमान् प्रशस्त रामपत्नी सीता से बोला ॥ ३० ॥ आप ऐसे गुणों से युक्त राम की योग्य धर्मपत्नी हैं, हे देवि! मुझे सन्देश दे. जाऊंगा, जहां राम है, ॥ ३१ ॥ हनुमान् से ऐसे कही हुई जनकसुता सीता बोली, भक्तवत्सल भर्ता को देखना चाहती हूं ॥३२॥ उसके उस बचन को सुनकर महामति पवनपुत्र हनुमान् सीता को हर्षित करता हुआ यह वाक्य बोला ॥ ३३ ॥ पूर्णचन्द्र तुल्य मुखवाले, स्थित मित्रोंवाले और नष्ट हुए शत्रुओंवाले राम को लक्ष्मण समेत आज देखेगी, जैसे इन्द्राणी इन्द्र को ॥ ३४ ॥ साक्षात् लक्ष्मी की तरह चमकती हुई उसको ऐसा कहकर महा-तेजस्वी हनुमान् वहां आया जहां राम थे ॥ ४५ ॥

सर्ग ६२ (व० ११४) विभीषण का सीता को राम के पास लाना

मूल-तमुवाच महाप्राज्ञः सोऽभिवाद्य प्लवङ्गमः । रामं कमलपत्राक्षं वरं सर्वधनुष्मताम् ॥ १ ॥ यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां यः फलोदयः । तां देवीं शोकसंतप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ॥ २ ॥ सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा । मैथिली विजयं श्रुत्वा द्रष्टुं त्वामभिकांक्षति ॥३॥ पूर्वकात्प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया । द्रष्टुमिच्छामि भर्तारमिति पर्याकुलेक्षणा ॥ ४ ॥ एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतांवरः । आगच्छत्सहसा ध्यानमीषद्बाष्पपरिप्लुतः ॥५॥ स दीर्घमभिनिःश्वस्य जगतीमवलोकयन् । उवाच मेघसंकाशं विभीषणमुपस्थितम् ॥६॥ दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम् । इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम् ॥७॥ एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः । प्रविश्यान्तः पुरं सीतां स्त्रीभिः स्वाभि रचोदयत् । ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वोवाच विभीषणः ॥८॥ दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरण भूषिता । यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥९॥ एवमुक्ता तु वैदेहि प्रत्युवाच विभीषणम् । अस्नात्वा

द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर ॥ १० ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः। यथाह रामो भर्ता ते तत्तथा कर्तुमर्हसि ॥११॥

टीका—वह महाप्राज्ञ वानर अभिवादन करके कमलपत्र तुल्य नेत्रों वाले सारे धनुषधारियों में श्रेष्ठ राम से बोला ॥ १ ॥ जिसके निमित्त यह सारा आरम्भ है, जो आप के उद्योगों का फल है, उस शोक संतप्त देवी मैथिली को आप देखने योग्य हैं ॥ २ ॥ वह शोक से भरी हुई आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाली मैथिली आपका विजय सुनकर आपको देखना चाहती है ॥ ३ ॥ पहले विश्वास से विश्वस्त होकर उसने मुझे आंसु भरकर कहा, भर्ता को देखना चाहती हूं ॥ ४ ॥ हनुमान् से ऐसे कहा हुआ धनुर्धारियों में श्रेष्ठ राम कुछ आंसु भरकर सहसा सोच में पड़ गया ॥ ५ ॥ वह लम्बा सांस भरकर पृथिवी की ओर देखकर पास स्थित मेघ सदृश विभीषण से बोला ॥ ६ ॥ दिव्य अंगराग लगाए हुए दिव्य भूषणों से भूषित सीता को सिर स्नान कराकर जल्दी यहां ला ॥ ७ ॥ राम से ऐसे कहा हुआ विभीषण जल्दी अन्तःपुर में प्रविष्ट हो अपनी स्त्रियों से सीता को प्रेरता भया और महाभागा सीता को देखकर उसने कहा ॥ ८ ॥ हे सीता दिव्य अङ्गराग लगा, दिव्य भूषणों से भूषित होकर यान पर चढ, तेरा भला हो भर्ता तुझे देखना चाहता है ॥ ९ ॥ ऐसे कही हुई सीता विभीषण को कहन लगी, हे राक्षसेश्वर विना न्हाए भर्ता को देखना चाहती हूं ॥ १० ॥ उसके वचन को सुनकर विभीषण ने कहा, जैसे तेरे भर्ता राम ने कहा है, वैसा तुझे करना चाहिये ॥ ११ ॥

मूल—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली पतिदेवता। भर्तृभक्त्या वृता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत ॥ १२ ॥ ततः सीतां शिरः स्नातां संयुक्तां प्रतिकर्मणा। महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम् ॥ १३ ॥ आरोप्य

शिबिकां सीतां राक्षसैर्वहनोचितैः । राक्षसैर्बहुभिर्गुप्तामाजहार विभीषणः ॥ १४ ॥ तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम् । रोषं हर्षं च दैन्यं च राघवः प्राप शत्रुहा ॥ १५ ॥ ततो यानगतां सीतां सविमर्शं विचारयन् । विभीषणमिदं वाक्यमहृष्टो राघवोऽब्रवीत् ॥ १६ ॥ राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजये रत । वैदेही सन्निकर्षं मे क्षिप्रं समभिगच्छतु ॥ १७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य विभीषणः । तूर्णमुत्सारणं तत्र कारयामास धर्मवित् ॥ १८ ॥ कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः । उत्सारयन्तस्तान्योधान्समन्तात्परिचक्रमुः ॥ १९ ॥ उत्सार्यमाणान्दृष्ट्वाथ जगत्यां जातसंभ्रमान् । दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च वारयामास राघवः ॥ २० ॥ किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः । निवर्तयैनमुद्वेगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥२१॥+न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रिया । नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियः ॥ २२ ॥+व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयम्वरे । न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियः ॥ २३ ॥ सैषा विपद्गता चैव कृच्छ्रेण च समन्विता । दर्शने नास्ति दोषोऽस्या मत्समीपे विशेषतः ॥ २४ ॥ विसृज्य शिबिकां तस्मात्पद्भ्यामेवापसर्पतु । समीपे मम वैदेहीं पश्यन्त्वेते वनौकसः ॥ २५ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो विभीषणः । रामस्योपानयत्सीतां सन्निकर्षं विनीतवत् ॥ २६ ॥ लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली । विभीषणेनानुगता सीता भर्तारं साभ्यवर्तत ॥२७॥ विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता । उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥ २८ ॥

टीका—उसके वचन को सुनकर पतिदेवता पतिव्रता सीता भर्ता की भक्ति से युक्त हुई "तथास्तु" कहती भई ॥१२॥ तब सिर न्हाई हुई समाधान युक्त बहुमूल्य वस्त्र धारण की हुई सीता को विभीषण

पालकी उठाने वाले बहुत राक्षसों से पालकी पर चढ़वाकर बहुत से राक्षसों से सुरक्षित को लाया ॥१३,१४॥राक्षस के घर में देर तक रहकर उसको आई सुनकर शत्रुओं के मारनेवाला राम रोष, हर्ष, और दीनता को प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ तब सीता के यान पर स्थित हुए ही सोच विचार कर न हर्षित हुए राम ने विभीषण को यह वाक्य कहा ॥ १६ ॥ हे राक्षसाधिपते हे मेरे विजय में रत सौम्य ! सीता जल्दी मेरे पास आवे ॥ १८ ॥ राम के इस वचन को सुनकर मर्यादा का जानने वाला विभीषण जल्दी लोगों को हटाता भया ॥ १८ ॥ झर्झर ध्वनिवाली छड़ियें हाथ में लिये पगड़ियें पहने हुए कञ्चुकीजन उन योधों को हटाते हुए चारों ओर घूमने लगे ॥ १९ ॥ उनको हटाया जाता देखकर जिनमें घबराहट उत्पन्न होरही है, उदारभाव से और इस के न सहारने से राम ने उसे रोक दिया ॥ २० ॥ कि क्यों मुझे अनादर करके इन लोगों को तंग करते हो, इस उद्वेग को दूर करो, यह जन मेरे अपने जन हैं ॥ २१ ॥ न घर न वस्त्र न भित्ति (दीवार) स्त्रियों का परदा हैं, न ऐसे काम (लोगों को परे हटा देना आदि) परदा हैं, यह राजसत्कार है, स्त्री का परदा केवल उसका वृत्त है ॥२२॥ न विपत्ति में, न कष्ट में, न युद्ध में, न स्वयम्वर में, न यज्ञ में, न विवाह में स्त्री का दर्शन दूषित है ॥ २३ ॥ सो यह विपत्ति में है, और कष्ट से युक्त है, अतएव इसके देखने मे दोष नहीं है विशेषतः मेरे पास होने में ॥ २४ ॥ इसलिये पालकी को छोड़कर पैदल ही सीता मेरे पास आवे, और यह वानर देखें ॥ २५ ॥ राम से ऐसे कहा हुआ सोच में पड़ा हुआ विभीषण सीता को विनीतवत् राम के पास लाया ॥ २६ लज्जा से अपने अङ्गों में लीन होती हुई सीता विभीषण से अनुगत हुई भर्ता के पास आई ॥ २७ ॥ पति

जिसके लिये देवता है, वह सौम्यतर मुखवाली सीता विस्मय, हर्ष और स्नेह से पति के सौम्य मुख को देखती भई ॥ २८ ॥

सर्ग ६३ (व० ११५) राम का सीता के स्वीकार से इनकार

मूल–तां तु पार्श्वे स्थितां प्रह्वां रामः संप्रेक्ष्य मैथिलीम् । हृदयान्तर्गतं भावं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे । पौरुषाद्यदनुष्ठेयं ममैतदुपपादितम् ॥ २ ॥ गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता । अवमानश्च शत्रुश्च युगपन्निहतौ मया ॥ ३ ॥ अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः । अद्य तीर्णप्रतिज्ञोऽहं प्रभवाम्यद्य चात्मनः ॥४॥ या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा । दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः ॥५॥+संप्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति । कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताप्यल्पचेतसः ॥ ६ ॥ लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चापि मर्दनम् । सफलं तस्य च श्लाघ्यमद्य कर्म हनूमतः ॥ ७ ॥ युद्धे विक्रमतश्चैव हितं मन्त्रयतस्तथा । सुग्रीवस्य ससैन्यस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥८॥ विभीषणस्य च तथा सफलोऽद्य परिश्रमः । विगुणं भ्रातरं त्यक्त्वा यो मां स्वयमुपस्थितः ॥ ९ ॥ इत्येवं वदतः श्रुत्वा सीता रामस्य तद्वचः । मृगीवोत्फुल्लनयना बभूवाश्रुपरिप्लुता ॥ १० ॥ पश्यतस्तां तु रामस्य समीपे हृदयप्रियाम् । जनवादभयाद्राज्ञो बभूव हृदयं द्विधा ॥ ११ ॥ सीतामुत्पलपत्राक्षीं नीलकुञ्चितमूर्धजाम् । अवदद्वै वरारोहां मध्ये वानररक्षसाम् ॥ १२ ॥ यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां प्रतिमार्जता । तत्कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकांक्षिणा ॥ १३ ॥ निर्जिता जीवलोकस्य तपसा भावितात्मना । अगस्त्येन दुराधर्षा मुनिना दक्षिणेव दिक् ॥ १४ ॥ विदितश्चास्तु भद्रं ते योऽयं रणपरिश्रमः । सुतीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थं मया कृतः ॥ १५ ॥ रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः । प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं

च परिमार्जिता ॥ १६ ॥ प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता । दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा ॥ १७ ॥ कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् । तेजस्वी पुनरादद्यात्सुहृल्लोभेन चेतसा ॥ १८ ॥ रावणाङ्कपरिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा । कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन्महत् ॥ १९ ॥

टीका—अब पास स्थित उस विनीता सीता को देखकर राम हृदय के अन्दर के भाव कहने लगे॥१॥हे भद्रे! यह तू रण के मैदान में शत्रु को मारकर जीती गई है, पौरुष से जो करने योग्य था, वह मैंने कर दिया है ॥ २ ॥ अमर्ष के अन्त पर पहुंच गया हूं, धर्षणा (हतक) मिटा दी है, अपमान और शत्रु दोनों एक साथ गिरा दिए है ॥ ३ ॥ आज मेरा पौरुष प्रतीत हुआ है, आज मेरा श्रम सफल हुआ है, आज मैं प्रतिज्ञा को पूर्ण करके अपने आपका मालिक हुआ हूं ॥ ४ ॥ जो तू मुझसे रहित हुई चलचित्त राक्षस से हरी गई, यह दैवकृत दोष मैंने मनुष्य के पराक्रम से जीत लिया है ॥५॥ प्राप्त हुए अपमान को जो अपने तेज से दूर नहीं करता है, उस लघु चित्त वाले के बड़े भी पौरुष से क्या फल ॥ ६ ॥ समुद्र का लंघना और लङ्का का मर्दन यह हनुमान् का सहरानीय कर्म आज सफल हुआ है ॥ ७ ॥ युद्ध में विक्रम दिखलाते हुए और हित सोचते हुए सुग्रीव का आज परिश्रम सफल हुआ है ॥ ८ ॥ तथा विभीषण का परिश्रम आज सफल हुआ है जो विगुण भाई को त्यागकर स्वयं मुझे उपस्थित हुआ ॥९॥ इस प्रकार कहते हुए राम के वचन को सुनकर मृगी की तरह खिले नेत्रोंवाली (सीता अपने)आंसुओं से भीग गई ॥१०॥ उस हृदय की प्यारी को अपने पास देखकर लोकनिन्दा के भय से राजा का हृदय संदिग्ध हुआ ॥ ११ ॥ कमल तुल्य नेत्रोंवाली काले कुंचे हुए बालोंवाली

वरारोहा सीता को वानर और राक्षसों के मध्य में कहने लगा ॥१२॥ धर्षणा (अपमान) को दूर करते हुए मनुष्य का जो काम होना चाहिये वह मान की रक्षा करते हुए मैंने रावण को मारकर कर दिया है ॥ १३ ॥ सब लोगों की पहुंच से परे दक्षिण दिशा जैसे शुद्धात्मा अगस्त्य मुनिने तप से जीती थी वैसे तू मुझसे जीती गई है ॥१४॥ तुझे विदित हो, तेरा भला हो कि जो यह रण का परिश्रम सुहृदों की शक्ति से मैंने पार किया है, यह तेरे अर्थ नहीं ॥ १५ ॥ किन्तु अपने वृत्त और अपवाद की रक्षा करते हुए और प्रख्यात अपने वंश की नीचता को दूर करते हुए मैंने किया है ॥ १६ ॥ जिसके चरित्र में सन्देह (का अवसर) हुआ है वह मेरे सामने स्थित हुई नेत्र रोगी को दीपक की तरह तू निःसन्देह प्रतिकूल है ॥ १७ ॥ कौन कुलीन तेजस्वी पुरुष परगृह में रही स्त्री को सुहृद् के लोभी चित्त से फिर ग्रहण करे ॥ १८ ॥ रावण के अङ्क से तंग की हुई और दुष्ट दृष्टि से देखी हुई तुझको अपना कुल बड़ा कहता हुआ कैसे फिर ग्रहण करूं ॥ १९ ॥

सर्ग ६४ (व॰ ११६) सीता का परीक्षार्थ अग्नि में प्रवेश

मूल–एवमुक्ता तु वैदेही परुषं रोमहर्षणम् । राघवेण सरोषेण श्रुत्वा प्रव्यथिताभवत् ॥ १ ॥ प्रविशन्तीव गात्राणि स्वानि सा जनकात्मजा । वाक्शरैस्तैः सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥ २ ॥ ततो बाष्पपरिक्लिन्नं प्रमार्जन्ती स्वमाननम् । शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥३॥ किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् । रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ ४ ॥ न तथास्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि । प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे ॥ ५ ॥ यदहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो । कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ ६ ॥ मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि

वर्तते। पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ॥७॥+सह संवृद्ध-भावेन संसर्गेण च मानद। यदि तेऽहं न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥ ८ ॥+न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये मम निपीडितः। मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥ ९ ॥ इति ब्रुवन्ती रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी। उवाच लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरा-णम् ॥ १० ॥ चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम्। मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥११॥ अप्रीतेन गुणैर्भर्त्रा त्यक्ताया जनसंसदि। या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ १२ ॥ एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा। अमर्षवशमापन्नो राघवं समुदैक्षत ॥१३॥ स विज्ञाय मनश्छन्दं रामस्याकारसूचितम्। चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥ १४ ॥ नहि रामं तदा कश्चित्कालान्तकयमोपमम्। अनुनेतुमथो वक्तुं द्रष्टुं वाप्य-शकत्सुहृत् ॥ १५ ॥ अधोमुखं स्थितं रामं ततः कृत्वा प्रदक्षिणम्। उपावर्तत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ॥ १६ ॥ प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली। बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः॥१७॥ +यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्। तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ १८ ॥+ यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः। तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम्। विवेश ज्वलनं दीप्तं निः-शङ्केनान्तरात्मना ॥ २० ॥ जनश्च सुमहांस्तत्र बालवृद्धसमाकुलः। ददर्श मैथिलीं दीप्तां प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ २१ ॥ सा तप्तनव-हेमाभा तप्तकाञ्चनभूषणा। पपात ज्वलनं दीप्तं सर्वलोकस्य सन्निधौ ॥ २२ ॥ ददृशुस्तां महाभागां प्रविशन्तीं हुताशनम्। ऋषयो देव-गन्धर्वा यज्ञे पूर्णाहुतीमिव ॥२३॥ प्रचुक्रुशुः स्त्रियः सर्वास्तां दृष्ट्वा हव्यवाहने। पतन्तीं संस्कृतां मन्त्रैर्वसोर्धारामिवाध्वरे ॥ २४ ॥

तस्यामग्निं विशन्त्यां तु हाहेति विपुलः स्वनः। रक्षसां च वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥ २९ ॥

टीका—इस प्रकार क्रुद्ध हुए राम से रोंगटे खड़े करनेवाला कठोर वाक्य सुनकर सीता बहुत दुःखित हुई ॥ १ ॥ (मारे लज्जा के) अपने अङ्गों में मानों वह लीन होती हुई जनकसुता उन वाणीरूप बाणों से शल्यवाली की तरह बहुत २ आंसुएं बहाती भई ॥ २ ॥ तब आंसुओं से भीगे हुए अपने मुख को पोंछती हुई गद्गदवाणी से धीरे२ भर्ता से यह बोली॥३॥कैसे आप मुझे कानों के लिये कठोर ऐसा असदृश रूखा वाक्य सुनाते हैं, जैसे कोई प्राकृत किसी प्राकृता स्त्री को ॥४॥ हे महाबाहो ! मैं वैसी नहीं हूं, जैसा मुझे आप जानते हैं, मेरे ऊपर विश्वास कर, अपने चरित्र से ही तेरे सामने शपथ करती हूं ॥ ५ ॥ बेबस हुई जो उसके अङ्गस्पर्श को प्राप्त हुई हूं, हे प्रभो इस में मेरी इच्छा का होना नहीं, इस में दैव का अपराध है ॥ ६ ॥ मेरे अधीन जो मेरा हृदय है वह तुझ में बर्तता है, पराधीन अङ्गों में असमर्थ हुई मैं क्या करूं ॥ ७ ॥ एक साथ दोनों का परस्पर प्रेम बढ़ने से और इकठ्ठा रहने से हे मान के देनेवाले यदि तुझे ज्ञात नहीं हुई, तो मैं सदा के लिए मारी गई ॥८॥बालकपन में पकड़े हुए मेरे हाथ को भी आपने प्रमाण नहीं किया, मेरी भक्ति और शील सब कुछ पीछे कर दिया॥९॥ ऐसे कहती हुई रोती हुई आंसुओं से गद्गद बोलती हुई सीता ध्यानपरायण दीन लक्ष्मण से बोली ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण मेरी चिता बना जो इस विपद का औषध है, मिथ्या अपवाद से धब्बा लगाई हुई मैं जीना नहीं चाहती ॥ ११ ॥ गुणों से अप्रसन्न हुए भर्ता से जनसभा में त्यागी हुई की जो उचित गति है, मैं अग्नि में प्रवेश करूंगी ॥ १२ ॥ सीता से ऐसे कहा हुआ शत्रु वीरों का

मारनेवाला लक्ष्मण क्रोधवश हुआ राम की ओर देखता भया ॥ १३ ॥ वह आकार से जितलाए हुए राम के अन्तरीय भाव को जानकर वीर्यवान् लक्ष्मण राम की सम्मति में उसकी चिता बनाता भया ॥ १४ ॥ उस समय काल मृत्यु यम के तुल्य राम को कोई सुहृद न तमल्ली देसका, न कह सका, न देख सका ॥ १५ ॥ तब नीचे मुख करके स्थित राम की प्रदक्षिणा करके सीता प्रदीप्यमान अग्नि के समीप आई ॥ १६ ॥ देवताओं को और ब्राह्मणों को प्रणाम करके सीता हाथ जोड़कर अग्नि के समीप यह बोली ॥ १७ ॥ जैसे मेरा हृदय राम से कभी नहीं फिसला है, वैसे लोक का साक्षी अग्नि मुझे सब ओर से पवित्र कर दिखलाए ॥ १८ ॥ यदि शुद्ध चारित्रवाली मुझको राम दुष्ट जानते हैं, तो लोक का साक्षी अग्नि मुझे सब ओर से पवित्र करे ॥ १९ ॥ ऐसा कहकर वैदेही अग्नि की परिक्रमा करके जलती हुई अग्नि में निःशङ्क मन से प्रविष्ट हुई ॥ २० ॥ वहां बालवृद्ध से युक्त बहुत बड़े जनसमुदाय ने सीता को जलते हुए अग्नि में प्रवेश करते हुए देखा ॥ २१ ॥ वह तपे हुए नए सोने के तुल्य तपे हुए सोने के भूषणोंवाली सब लोगों के सामने जलती हुई अग्नि में गिरी ॥ २२ ॥ यज्ञ में पूर्णाहुति की तरह अग्नि में प्रवेश करती हुई उसको ऋषि देव और गन्धर्वों ने देखा ॥ २३ ॥ सब स्त्रियें यज्ञ में मन्त्रों से संस्कृतवसोर्धारा (लंबी घृत धारा) की तरह अग्नि में गिरती हुई को देख कर चिल्लाईं ॥२४॥ उस के अग्नि में प्रवेश करते हुए राक्षसों और वानरों की विपुल अद्भुत सी ध्वनि हुई २५

सर्ग ६५ (व० ११८) सीता की अग्नि में शुद्धि

मूल—+अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपामनिन्दिताम् । ददौ रामाय वैदेहीमङ्के कृत्वा विभावसुः ॥ १ ॥ अब्रवीत्तु तदा रामं साक्षी

लोकस्य पावकः । एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥ २ ॥ नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा । सुवृत्ता वृत्तशौटीर्य न त्वामसचरच्छुभा ॥३॥ प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली । नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥४॥ विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम् । न किंचिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥५॥ ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वैवं वदतां वरः । दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा हर्षव्याकुललोचनः ॥६॥ एवमुक्तो महातेजा धृतिमानुरुविक्रमः । उवाच त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः ॥ ७ ॥ अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति । दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तः पुरे शुभा ॥८ ॥ बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः । इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्य हि ॥ ९ ॥+अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम् । अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥१०॥ इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा । रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः ॥ ११ ॥ न च शक्तः सदुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम् । प्रधर्षयितुमप्राप्यां दीप्तामग्निशिखामिव ॥१२॥+नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती । अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥१३॥+विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा । न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥१४॥ इत्येवमुक्त्वा विजयी महाबलःप्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा । समेत्य रामः प्रियया महायशा सुखं सुखार्होऽनुबभूव राघवः ॥१५॥

टीका—उसी समय उस चिता को ठंढा करके ज्यों की त्यों उस अनिन्दता वैदेही को गोद में लेकर अग्नि ने राम के समर्पण किया ॥१॥ और वह लोक साक्षी अग्नि राम से बोला,हे राम यह तेरी वैदेही है, इसमें पाप नहीं है ॥ २ ॥ यह अच्छे आचरणवाली भली न बाणी से, न मन से, न बुद्धि से, न नेत्र से वृत्ताभिमानी तुझको उलांघी

है ॥ ३ ॥ भान्ति २ के प्रलोभन दी हुई और धमकियें दी हुई मैथिली ने तुझ में लगे अन्तरात्मा से उस राक्षस की परवाह नहीं की ॥ ४ ॥ शुद्ध भावनावाली निष्पाप मैथिली को स्वीकारकर, इसे कुछ नहीं कहना मैं तुझे आज्ञा देता हूं * ॥ ५ ॥ तब यह सुनकर कहनेवालों में श्रेष्ठ धर्मात्मा राम प्रसन्न मन हुआ हर्ष से व्याकुल नेत्रोंवाला थोड़ी देर ध्यान करता भया ॥ ६ ॥ ऐसे कहा हुआ महातेजस्वी धैर्यवाला बड़े पराक्रमवाला धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम देवश्रेष्ठ (अग्नि) से बोला ॥ ७ ॥ अवश्य सीता लोक में शोधन के योग्य थी, क्योंकि यह भली रावण के अन्तःपुर में दीर्घकाल रही है ॥८॥ क्योंकि बिन शोधे यदि मैं जानकी को स्वीकार करता, तो मुझे लोक कहता, दशरथसुत राम शोक ! कामाधीन मूर्ख है ॥९॥ मैं भी जनकसुता को न दूसरे में हृदय वाली मुझ में चित्त द्वारा (सब दोषों से) अपने आपकी रक्षक जानता हूं ॥ १० ॥ इस विशाल नेत्रोंवाली को भी जो अपने तेज से रक्षित है रावण उलांघ नहीं सक्ता था, जैसे महासागर वेला को ॥ ११ ॥ प्रदीप्त अग्नि शिखा की तरह धर्षण करने को अशक्य मैथिली को वह दुष्टात्मा मन से भी दबा नहीं सक्ता ॥ १२ ॥ यह सती रावण के अन्तःपुर में घबराने योग्य नहीं है, सूर्य की प्रभा की तरह सीता मुझसे भिन्न नहीं है ॥ १३ ॥ तीनों लोक में शुद्ध जनकसुता मैथिली को मैं त्याग नहीं सक्ता, जैसे जितेन्द्रिय पुरुष कीर्त्ति को ॥१४॥ ऐसा कहकर विजयी महाबली महायशस्वी सुख के योग्य राम अपने कर्म से प्रशंसा किया जाता हुआ प्रिया से सङ्गत हुआ सुख अनुभव करता भया ॥ १५ ॥

सर्ग ६६ (व० १२१) राम का अयोध्या जाने का अनुज्ञा मांगना

मूल–तां रात्रिमुषितं रामं सुखोदितमरिन्दमम् । अब्रवीत्प्राञ्जलि-

---

* यह अग्नि का कहना अलङ्कार से है, अग्नि में इस प्रकार की शुद्धि पर देखो बालकाण्ड पृष्ठ १९ की टिप्पनी ॥

वाक्यं जयं पृष्ट्वा विभीषणः ॥१॥+स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्राण्याभरणानि च । चन्दनानि च माल्यानि दिव्यानि विविधानि च ॥ २ ॥ अलंकारविदश्चैता नार्यः पद्मनिभेक्षणाः । उपस्थितास्त्वां विधिवत्स्नापयिष्यन्ति राघव ॥३॥ एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच विभीषणम् । हरीन्सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनोपनिमन्त्रय ॥ ४ ॥ स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः । सुकुमारो महाबाहुर्भरतः सत्यसंश्रयः ॥ ५ ॥ तं विना कैकेयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम् । न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ॥६॥ एतत्पश्य यथाक्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम् । अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥७॥ एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः । अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥८॥ पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसन्निभम् । मम भ्रातुः कुवेरस्य रावणेन बलीयसा ॥९॥ हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम् । त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रम ॥ १० ॥ तदिदं मेघसंकाशं विमानमिह तिष्ठति । येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः ॥११॥ अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान् । वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥ १२ ॥ प्रीतियुक्तस्य विहितां ससैन्यः ससुहृद्गणः । सत्क्रियां राम मे तावद्गृहाण त्वं मयोद्यताम् ॥१३ ॥ एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच विभीषणम् । रक्षसां वानराणां च सर्वेषामेव शृण्वताम् ॥ १४ ॥ पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च । सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहार्देन परेण च ॥ १५ ॥ न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर । तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ॥१६॥ मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः । शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया ॥१७॥ उपस्थापय मे शीघ्रं विमानं राक्षसेश्वर । कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्यादिह सम्मतः ॥ १८ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण राक्षसेन्द्रो विभीषणः । विमानं सूर्यसंकाशमाजुहाव त्वरान्वितः ॥१९॥

टीका—वह रात रहकर सुख से जागे शत्रुओं के दबानेवाले राम को विभीषण जयदेव कहकर हाथ जोड़कर यह वाक्य बोला॥१॥ स्नान के साधन (तैल आदि) अङ्गराग वस्त्र भूषण चन्दन और विविध दिव्य मालाएं ॥ २ ॥ और अलंकार के जाननेवाली पद्म तुल्य नेत्रोंवाली यह स्त्रियें उपस्थित हुई हे राघव आपको विधिवत् स्नान कराएंगी ॥ ३ ॥ ऐसे कहा हुआ राम विभीषण को उत्तर देता भया, सुग्रीव आदि वानरों को तू स्नान का निमन्त्रण दे॥४॥ मेरे हेतु तो वह सुखों के योग्य सुकुमार महाबाहु सच्ची प्रतिज्ञावाला धर्मात्मा भरत दुःखित होरहा है ॥ ५ ॥ उस कैकेयीपुत्र भरत के विना मुझे स्नान वस्त्र और भूषण बहुमत नहीं है ॥६॥ यह देख जिसतरह अब जल्दी यहां से अयोध्यापुरी को जाएं, जाने वाले को यह मार्ग बड़ा दुर्गम है ॥ ७ ॥ ऐसे कहा हुआ विभीषण राम से बोला, एक दिन में हे राजपुत्र ! तुझे अयोध्या में पहुंचाऊंगा ॥ ८ ॥ तेरा भला हो, सूर्य तुल्य पुष्पक नाम विमान मेरे भाई कुबेर से जो बलवान् रावण ने ॥९॥ संग्राम में जीतकर छीना था जो इच्छा से चलनेवाला दिव्य उत्तम है, हे अतुल विक्रमवाले यह तेरे लिये तय्यार खड़ा है ॥ १० ॥ सो यह मेघ तुल्य विमान यहां स्थित है, जिस यान से तू बिना क्लेश के अयोध्यापुरी को जाएगा ॥ ११ ॥ पर मैं यदि आपका अनुग्राह्य हूं यदि मेरे गुणों को आप स्मरण करते हैं, यदि मुझ में सौहार्द है, तो हे प्राज्ञ यहां रहिये ॥ १२ ॥ प्रीतियुक्त मुझसे किये मेरे इस सत्कार को हे राम सेना के और सुहृद्गण के साथ स्वीकार कीजिये ॥ १३ ॥ ऐसे कहा हुआ राम विभीषण को सब राक्षसों और वानरों के सुनते हुए उत्तर देता भया ॥ १४ ॥ हे वीर तेरे परम मन्त्रित्व से और सर्वात्मा से जो तूने युद्ध में काम किये हैं उनसे और परम

सौहार्द से मैं आपसे पूजा गया हूं ॥ १५ ॥ हे राक्षसेश्वर मैं तेरे इस वचन को न मानूं ऐसा न होता, किन्तु भाई भरत को देखने के के लिये मेरा मन जल्दी कराता है ॥ १६ ॥ जो मुझे लौटाने के लिये चित्रकूट आया, और सिर से याचना करते हुए जिसके बचन को मैंने नहीं किया ॥ १७ ॥ सो हे राक्षसेन्द्र शीघ्र मेरे लिए विमान उपस्थित कर, कृतकार्य का मेरा यहां रहना कैसे संमत होसक्ता है ॥ १८ ॥ राम से ऐसे कहे हुए राक्षसेन्द्र विभीषण ने जल्दी सूर्य तुल्य विमान मंगवाया ॥ १९ ॥

सर्ग ६७ (स० १२२) राम का सीता लक्ष्मण और दूसरे साथियों समेत पुष्पक पर चढना ॥

मूल—उपस्थितं तु तं कृत्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् । अविदूरे स्थितो राममित्युवाच विभीषणः ॥ १ ॥ तमब्रवीन्महातेजा इदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥ २ ॥ कृतप्रयत्नकर्माणः सर्व एव वनौकसः । रत्नैरर्थैश्च विविधैः संपूज्यन्तां विभीषण ॥ ३ ॥ सहामीभिस्त्वया लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर । हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः ॥४॥ एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान्विभीषणः । रत्नार्थसंविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत् ॥५॥ ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वा रत्नार्थैर्हरियूथपान् । आरुरोह तदा रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ अंकेनादाय वैदेहीं लज्जमानां मनस्विनीम् । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ॥७॥ अब्रवीत्स विमानस्थः पूजयन्सर्ववानरान् । सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः सविभीषणम् ॥८॥ मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः । अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत ॥ ९ ॥ यत्तु कार्यं वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च । कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवताऽधर्मभीरुणा ॥ १० ॥ किष्किन्धां प्रति याह्याशु स्वसैन्येनाभिसंवृतः । स्वराज्ये वस लंकायां मया दत्ते विभीषण ॥ ११ ॥ अयोध्यां प्रति यास्यामि

राजधानी पितुर्मम । अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वानामन्त्रयामि वः ॥ १२ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण हरीन्द्रा हरयस्तथा । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः ॥ १३ ॥ अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान्नयतु नो भवान् । मुद्युक्ता विचरिष्यामो वनान्युपवनानि च ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्हं कौसल्यामभिवाद्य च । अचिरादागमिष्यामः स्वगृहान्नृपसत्तम ॥ १५ ॥ एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सविभीषणैः । अब्रवीद्वानरान्रामः ससुग्रीवविभीषणान् ॥ १६ ॥ प्रियात्प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः । सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः ॥ १७ ॥ क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं सह वानरैः । त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभिषण ॥ १८ ॥ ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सहवानरैः । आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः ॥ १९ ॥ तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरंपरमासनम् । राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम् ॥ २० ॥ खगतेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता । प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ॥ २१ ॥

टीका—पुष्पों से भूषित उस पुष्पक को उपस्थित करके दोनों हाथ जोड़कर विनीत राक्षसेश्वर जल्दी करता हुआ राम से बोला, क्या करूं । तब उसको महातेजस्वी (राम) ने स्नेह पूर्वक उत्तर दिया ॥ १,२ ॥ जिन्होंने बड़े प्रयत्न के साथ युद्ध किया है, इन सारे वानरों को हे विभीषण विविध रत्नों से और धनों से पूज ॥ ३ ॥ यह जो प्राणों का भय त्यागकर युद्धोत्साह वाले संग्रामों में न लौटने वाले हैं इनके साथ हे राक्षसेश्वर तूने लंका जीती है ॥ ४ ॥ राम से ऐसे कहा हुआ विभीषण उन सभी वानरों को पूजता भया ॥५॥ तब रत्नों से और धनों से उन वानरसेनापतियों को पूजित देखकर राम उस अत्युत्तम विमान पर चढ़ा ॥ ६ ॥ लजाती हुई मनस्विनी सीता को अंक में लेकर और पराक्रमी

धनुषधारी लक्ष्मण भाई के साथ (चढ़ा) ॥ ७ ॥ विमान पर स्थित हुआ राम सारे वानरों से पूजता हुआ महावीर्य सुग्रीव और विभीषण से बोला ॥ ८ ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! आपने यह मित्रकार्य किया है मुझ से अनुज्ञा दिये हुए आप सब यथेष्ट जाइए ॥ ९ ॥ जो एक स्निग्ध हितो मित्र का काम है, वह हे सुग्रीव ! तूने धर्म के भय से पूर्ण किया है ॥ १० ॥ सो अब तू अपनी सेना से युक्त जल्दी किष्किन्धा को जा, और तू हे विभीषण मुझसे दिये अपने राज्य में लंका में बस ॥ ११ ॥ मैं अपने पिताकी राजधानी अयोध्या को लौटूंगा, आपसे अनुज्ञा चाहता हूं, आप सब से पूछता हूं ॥१२॥ राम से ऐसे कहे हुए वह सब वानर और वानरपति और राक्षस विभीषण हाथ जोड़कर बोले ॥ १३ ॥ हम अयोध्या को जाना चाहते हैं, आप हम सबको लेचलें, आनन्द से बन उपवनों में विचरेंगे ॥ १४ ॥ और आपको अभिषेक से भीगा हुआ देखकर और माता कौसल्या को अभिवादन करके हे नृपवर जल्दी अपने घरों को जाएंगे ॥१५॥ विभीषण से और वानरों से ऐसे कहा हुआ वह धर्मात्मा राम सुग्रीव और विभीषण से और सारे वानरों से मुस्करा करके बोला ॥ १६ ॥ यह एक प्रिय से दूसरा अधिक प्रिय मुझे मिला है, जो मैं सुहृद्‌जनों (भरत आदि) के साथ आप सब के सहित पुरी में पहुंचकर प्रीति को प्राप्त हूंगा ॥ १७ ॥ हे सुग्रीव जल्दी वानरों सहित विमान पर आरूढ़ हो, और हे राक्षसेन्द्र विभीषण तू भी मन्त्रियों सहित आरूढ़ हो ॥ १८ ॥ तब आनन्द युक्त हुआ सुग्रीव वानरों सहित और विभीषण मन्त्रियों सहित उस दिव्य पुष्पक पर आरूढ़ हुआ ॥ १९ ॥ उन सब के आरूढ़ होजाने पर वह कुबेर का उत्तम आसन राम से अनुज्ञा दिया हुआ आकाश की ओर उड़ा ॥२०॥

अकाश में चलते हुए चमकते हुए उस हंस युक्त (मुख में हंसों की आकृतिवाले) विमान पर प्रसन्न वदन और प्रसन्न चित्त राम कुबेर तुल्य सोहता भया ॥२१॥

सर्ग ६८ (वा० १२३) राम का विमान पर से सीता को मार्ग के दृश्य दिखलाना

मूल—पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः । अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥ १ ॥ कैलासशिखराकारे त्रिकूट-शिखरे स्थिताम् । लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा॥२॥ एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम् । हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत् ॥ ३ ॥ एष दत्तवरः शेते प्रमाथी राक्षसेश्वरः । कुम्भकर्णोऽथ निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः ॥ ४ ॥ धूम्राक्षश्चात्र निहतो वानरेण हनूमता । लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे ॥ ५ ॥ एतत्तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने । यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम् ॥ ६ ॥ एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणा-र्णवे । तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः ॥ ७ ॥ पश्य सा-गरमक्षोभ्यं वैदेहि वरुणालयम् । अपारमिव गर्जन्तं शङ्खशुक्ति-समाकुलम् ॥ ८ ॥ हिरण्यनाभं शैलेन्द्रं काञ्चनं पश्य मैथिलि । एतत्कुक्षौ समुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशनम् । ९ । अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः । एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥१०॥ सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येनच पूजितम् । अत्रराक्षसराजोऽयमा-जगाम विभीषणः ॥११ एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्र-कानना । सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र बाली मया हतः ॥ १२ ॥ अथ दृष्ट्वा पुरीं सीतां किष्किन्धां बालिपालिताम् । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा ॥१३॥ सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप । गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वया सह ॥ १४ ॥

एवमुक्तोऽथ वैदेह्या प्राप्य संस्थाप्य राघवः । विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १५ ॥ स्त्रीभिः परिवृताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया । प्रविश्यान्तः पुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य सोऽब्रवीत् ॥ १६ ॥ तारया चाभ्यनुज्ञाता सर्वा वानरयोषितः । अध्यारोहन्विमानं तत्सीतादर्शनकांक्षया ॥ १७ ॥ ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः । ऋष्यमूकसमीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥ १८ ॥

टीका—तब रघुकुलनन्दन राम सब ओर दृष्टि डालकर चन्द्र तुल्य मुखवाली मैथिलि सीता से बोले ॥ १ ॥ हे वैदेहि! कैलास शिखर के तुल्य इस त्रिकूट शिखर पर स्थित विश्वकर्मा से निर्मित लङ्का को देख ॥ २ ॥ इस युद्ध स्थान को देख जहां वानरों का और राक्षसों का बड़ा बध हुआ और मांस और लहू का कीचड़ बहा ॥ ३ ॥ यहां वह तंग करनेवाला राक्षसपति सोया है, यहां कुम्भ-कर्ण और प्रहस्त राक्षस मरा है ॥ ४ ॥ यहां हनुमान् वानर ने धूम्राक्ष को मारा है, यहां लक्ष्मण ने रण में रावण के पुत्र इन्द्राजित् को मारा है ॥५॥ हे सुमुखि यह समुद्र का वह घाट दीखता है जहां हम समुद्र से पार उतरकर रात रहे थे ॥ ६ ॥ यह खारी समुद्र पर पुल बंधवाया है, हे विशालाक्षि जो बड़ा दुष्कर नलसेतु है ॥ ७ ॥ हे वैदेहि! वरुण के घर इस अक्षोभ्य समुद्र को देख, और जो अपार सा है शंख और सीपियों से भरा हुआ गर्ज रहा है ॥८॥ हे मैथिलि! समुद्र की कुक्षि में इस चमकते हुए मैनाक पर्वत को देख, यह समुद्र के इस ओर सेना की छावनी का स्थान है ॥ ९ ॥ यहां पहिले विभू महादेव की कृपा हुई यह इस बड़े सागर का वह बड़ा घाट है, जो सेतुबन्ध नाम से ख्यात त्रिलोकी में आदृत होगा, यहां यह राक्षसराज विभीषण आकर मिला ॥ १०,११ ॥ हे सीते यह विचित्र वनोंवाली किष्किन्धा दीखती है, जो रमणीय

सुग्रीव की पुरी है, जहां मैंने बाली को मारा ॥ १२ ॥ तब बाली से पालित किष्किन्धापुरी देखकर सीता प्रेम और डर से राम से विनीत वाक्य बोली ॥१३॥ हे नृप ! तारा आदि सुग्रीव की स्त्रियों के साथ आपके साथ राजधानी अयोध्या को जाना चाहती हूं ॥ १४ ॥ ऐसा हो यह कहकर किष्किन्धा में पहुंचकर विमान को ठहराकर राम सुग्रीव को देखकर यह वाक्य बोले ॥ १५ ॥ आप सब स्त्रियों से युक्त सीता के साथ अयोध्या को चलें, तब वह शीघ्र अन्तःपुर में प्रविष्ट हो तारा को देखकर यह कहता भया ॥ १६ ॥ तारा से आज्ञा दीहुई सब वानर पत्नियें वस्त्र भूषण पहनकर प्रदक्षिणा करके सीता के दर्शन की इच्छा से विमान पर आरूढ़ हुईं ॥ १७ ॥ उनके साथ शीघ्र उठे विमान को देखकर राघव ऋष्यमूक के समीप सीता से फिर बोले ॥ १८ ॥

मूल—दृश्यतेऽसौ महान्सीते सविद्युदिव तोयदः । ऋष्यमूको गिरिवरः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः ॥ १९ ॥ अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः । समयश्च कृतः सीते वधार्थं वालिनो मया ॥ २० ॥ एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना । त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः ॥ २१ ॥ अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारणी । अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया ॥ २२ ॥ दृश्यतेऽसौ जनस्थाने श्रीमान्सीते वनस्पतिः । जटायुश्च महातेजास्तत्र हतो विलासिनि ॥ २३ ॥ रावणेन हतो यत्र पक्षिणां प्रवरो बली ॥ २४ ॥ एतत्तदाश्रमपदमस्माकं वरवर्णिनि । पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शने ॥ २५ ॥ यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात् । एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शुभा ॥ २६ ॥ अगस्त्यस्याश्रमश्चैष दृश्यते कदलीवृतः । दृश्यते चैव वैदेहि शरभङ्गाश्रमो महान् ॥२७॥ एते ते तापसा देवि दृश्यन्ते तनुमध्यमे । अत्रिः कुलपतिर्यत्र

सूर्यवैश्वानरोपमः ॥२८॥ अस्मिन्देशे महाकायो विराधो निहतो मया। अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ॥ २९ ॥ असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते । अत्र मां कैकेयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ॥ ३० ॥ एषा सा यमुना रम्या दृश्यते चित्रकानना । भरद्वाजाश्रमः श्रीमान्दृश्यते चैव मैथिलि ॥ ३१ ॥ इयं च दृश्यते गङ्गा पुण्या त्रिपथगा नदी । शृङ्गवेरपुरं चैतद्गुहो यत्र सखा मम ॥३२॥ एषा सा दृश्यते सीते राजधानी पितुर्मम ॥ ३३ ॥ ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसा सविभीषणाः। उत्पत्योत्पत्य संहृष्टास्तां पुरीं ददृशुस्तदा ३४

अर्थ—हे सीते ! यह जो सुन्दरी धातुओं से युक्त बिजलीवाले मेघ की तरह महान् पर्वत ऋष्यमूक दीखता है ॥ १९ ॥ यहां मैं वानर सुग्रीव के साथ मिला, और बाली के मारने के लिये सङ्केत किया ॥२०॥ यह वह विचित्र बनों वाली पम्पा सरसी है, तुझ से हीन हुआ जहां मैं अतीव दुःखित हो विलाप करता भया ॥२१॥ इसके किनारे पर मैंने धर्मचारिणी भीलनी देखी, यहां मैंने योजनबाहु कबन्ध को मारा ॥२२॥ वह जो हे सीते जनस्थान में शोभावाला वनस्पति दीखता है, यह वह है जहां हे विलासिनि ! तेरे कारण पक्षिप्रवर महातेजस्वी जटायु को रावण ने मारा था ॥२३, २४॥ और हे वरवर्णिनि यह हमारा आश्रमपद है, और हे शुभदर्शने वह विचित्र पर्णशाला दीखती है ॥ २५ ॥ जहां राक्षसेन्द्र रावण ने तुझे बल से हरा, यह सुहावनी निर्मल जलवाली सुंदर गोदावरी है ॥२६॥ यह केलों से ढका हुआ अगस्त्य का आश्रम दीखता है और हे वैदेहि यह शरभङ्ग का महान् आश्रम दीखता है ॥ २७ ॥ हे तनुमध्यमे देवि ! यह वह तपस्वी दीखते हैं, जहां सूर्य और अग्नि तुल्य (तेजस्वी) अत्रि कुलपति है ॥ २८ ॥ इस स्थान पर मैंने महाकाय विराध मारा था, यहां हे सीते तूने धर्मचारिणी तपस्विनी

(अत्रि पत्नी) देखी थी ॥ २९ ॥ हे सुतनु यह पर्वतवर चित्रकूट प्रकाशता है, यहां मुझे कैकेयी का पुत्र प्रसन्न करने के लिये आया था ॥३०॥ यह विचित्र वर्नों वाली रमणीय यमुना दीखती है, और हे वैदेहि ! यह श्रीमान् भरद्वाजाश्रम है ॥३१॥ यह तीन मार्गों वाली पवित्र गङ्गानदी दीखती है, यह शृङ्गवेरपुर है जहां मेरा सखा गुह है ॥३२॥ यह हे सीते मेरे पिता की राजधानी दीखती है ॥ ३३ ॥ तब वह सारे वानर और विभीषण सहित राक्षस प्रसन्न हुए उठ २ कर उस पुरी को देखते भए ॥ ३४ ॥

सर्ग ६९ (व०१२५,१२६) हनुमान् का भरत के पास संदेश लेकर जाना

मूल—अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः । उवाच धीमांस्तेजस्वी हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥ १ ॥ अयोध्यां त्वरितो गत्वा शीघ्रं प्लवगसत्तम । जानीहि कच्चित्कुशली जनो नृपतिमन्दिरे ॥२॥ भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम । सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम् ॥३॥ जित्वा शत्रुगणान्रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः । उपायाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥ ४ ॥ स गत्वा दूरमध्वानं त्वरितः कपिकुञ्जरः । आससाद द्रुमान्फुल्लान्नन्दिग्रामसमीपमगात् ॥५॥ क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् । ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥ ६ ॥ जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम् । फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम ॥ ७ ॥ समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् । नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् ॥ ८ ॥ पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुन्धराम् । चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात् ॥ ९ ॥ उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः । बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥१०॥ नहि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् । परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलाः ॥ ११ ॥ तं धर्ममिव

धर्मज्ञं देहबन्धमिवापरम् । उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः ॥ १२ ॥ वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् । अनुशोचसि काकुत्स्थ स त्वां कौशलमब्रवीत ॥ १३ ॥ प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम् । अस्मिन्मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः ॥१४॥ निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम् । उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥ ५ ॥ लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी । सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण शची यथा ॥ १६ ॥ एवमुक्तो हनुमता भरतः कैकयीसुतः । पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहमुपागमत् ॥ १७ ॥ ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः । हनूमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम् ॥ १८॥ अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिङ्ग्य संभ्रमात् । सिषेच भरतः श्रीमान्विपुलैरश्रुबिन्दुभिः ॥१९॥ देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः । प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥ २० ॥ बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम् । शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥ २१ ॥ कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम् । एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ २२ ॥

टीका—अयोध्या को देखकर राम सोचते भए, और तब वह बुद्धिमान् हनुमान् वानर से बोले ॥ १ ॥ हे वानरश्रेष्ठ शीघ्र अयोध्या में जाकर जान, कि राजा के घर में सब लोग कुशली हैं ॥ २ ॥ भरत को मेरे वचन से कुशल कहना, और उसे लक्ष्मण समेत और भार्या समेत मेरा कृतकार्य होकर आना कहना॥३॥शत्रुगणों को जीत कर और बड़े उत्तम यश को पाकर कृत कृत्य हुआ राम महाबली मित्रों के साथ समीप आगया है ॥ ४ ॥ वह तेज़ वानरवर दूर मार्ग जाकर नन्दिग्राम के समीप फूले हुए वृक्षों में पहुंचा ॥ ५ ॥ अयोध्या से कोस भर परे चीर और काला मृगान धारे हुए

आश्रमवासी दीन दुर्बल भरत को देखता भया ॥ ६ ॥ जटा धारे हुए मल से लिबड़े अङ्गोंवाले भाई को विपद् से दुर्बल फल फूल के खाने वाले दान्त ब्रह्मचारी तपस्वी ॥ ७ ॥ ऊंचे जटा भार वाले बकले और मृगान के वस्त्रोंवाले नियमवाले शुद्धात्मा ब्रह्मर्षि तुल्य तेजवाले ॥ ८ ॥ उन पादुकों को आगे करके पृथिवी का शासन करते हुए चारों वर्णों के सब भयों से रक्षक ॥९॥ पवित्र मन्त्री और पवित्र पुरोहितों और सावधान सेनापतियों से युक्त जोकि सभी काषाय वस्त्र पहने हुए हैं ॥ १० ॥ क्योंकि चीर और काले मृगान के वस्त्रों से युक्त उस राजपुत्र को त्यागकर धर्म के प्यारे पौरजन भोगों को नहीं चाहते थे ॥ ११ ॥ वह जो धर्म का जाननेवाला मानों धर्मरूप है धर्म ही मानों दूसरा देह (मनुष्य देह) धारे हुए है उसे हाथ जोड़कर पवनपुत्र हनुमान् वाक्य बोला ॥१२॥ दण्डकवन में रहते हुए चीर जटाधारी जिस राम के पीछे तू शोक में है, उसने तुझे कुशल कहा है ॥ १३ ॥ हे देव प्रिय कहता हूं, सुदारुण शोक को त्याग, थोड़ी देर में तू भाई राम से मिलेगा ॥ १४ ॥ राम रावण को मारकर और सीता को पाकर सफल हुआ महाबली मित्रों के साथ निकट आया है ॥ १५ ॥ महातेजस्वी लक्ष्मण और यशस्विनी वैदेही सीता राम के साथ सङ्गत है, जैसे इन्द्र के साथ इन्द्राणी ॥ १६ ॥ हनुमान् से ऐसे कहा हुआ कैकेयीसुत भरत सहसा हृष्ट हुआ गिर पड़ा, और हर्ष से मोह को प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ फिर जल्दी भरत उठकर और तसल्ली पाकर प्रियवादी हनुमान् से यह वचन बोला ॥१८॥ श्रीमान् भरत संभ्रम से वानर को आलिङ्गन कर हर्ष से निकले प्रीतिमय विपुल अश्रुबिन्दुओं से हनुमान् को सेचन करता भया ॥ १९ ॥ तू देवता है वा मनुष्य है, मेरे ऊपर

कृपा से यहां आया है, इस प्रिय वार्ता के कहनेवाले को हे सौम्य ! क्या प्रिय दूं (इस प्रिय वार्ता के तुल्य कुछ नहीं देखता हूं) ॥२०॥ उस बड़े बन को गये मेरे नाथ का बहुत वर्ष होगए हैं, आज मैं अपने नाथ का प्रीति उत्पन्न करनेवाला नाम कीर्तन सुनता हूं ॥२१॥ अब यह लौकिक कहावत मुझे कल्याणी प्रतीत होती है, कि जीते मनुष्य को सौ वर्ष के भी पीछे आनन्द प्राप्त होता है॥२२॥

सर्ग ७० (व० १२७) भरत मिलाप ॥

मूल–श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः । हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा ॥ १ ॥ राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनाङ्गनागणाः । ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः ॥ २ ॥ अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम् । ततो यानान्युपारूढा सर्वा दशरथस्त्रियः ॥ ३ ॥ द्विजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः । माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः ॥ ४ ॥ शङ्खभेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिनन्दितः । आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः ॥ ५ ॥ पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम् । शुक्ले च बालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते ॥ ६ ॥ उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः । प्रत्युद्ययौ तदा रामं महात्मा सचिवैःसह ॥७॥ ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत् । स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते ॥८॥ रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महीं गताः । ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे ॥ ९ ॥ ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा । ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥ १० ॥ ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् । हंसयुक्तं महावेगं निपपात महीतलम् ॥ ११ ॥ आरोपितो विमानं तद्भरतः सत्यविक्रमः । राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥ १२ ॥ तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् । अङ्के भरतमारोप्य मुदितः

परिषस्वजे ॥ १३ ॥ ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः । अथाभ्यवादयत्प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥ १४ ॥ सुग्रीवं कैकयीपुत्रं जाम्बवन्तमथाङ्गदम् । मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं चैव सस्वजे ॥१५ ॥ सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् । शरभं पनसं चैव परितः परिषस्वजे ॥ १६ ॥ अथाब्रवीद्राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम् । परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥ १७ ॥ त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पञ्चमः । सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ॥ १८ ॥ विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत् । दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥ १९ ॥ शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् । सीतायाश्चरणौ वीरो विनयादभ्यवादयत् ॥२०॥ रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोककर्शिताम् । जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रहर्षयन् ॥ २१ ॥ अभिवाद्य सुमित्रां च कैकयीं च यशस्विनीम् । स मातॄश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागमत् ॥ २२ ॥ स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन । इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन् ॥ २३ ॥+पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् । चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित् ॥ २४ ॥ अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः । एतत्ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया ॥ २५ ॥+अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः । यत्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम् ॥२६॥ अवेक्षतां भवान्कोशं कोष्ठागारं गृहं बलम् । भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ॥ २७ ॥ तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम् । मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः ॥ २८ ॥ ततः प्रहर्षाद्भरतमङ्कमारोप्य राघवः । ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम् ॥२९॥ भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा । अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले ॥३०॥

टीका—इस परम आनन्द को सुनकर सच्चे पराक्रमवाला शत्रु वीरों का मारनेवाला भरत हृष्ट हुए शत्रुघ्न को आज्ञा देता भया ॥१॥ राजस्त्रियें, मन्त्री, सैनिक, सैनिकों का स्त्रीगण, ब्राह्मण और राज कुमार तथा श्रेणियों (कम्पनियों) के मुखिया लोग ॥ २० ॥ राम का चन्द्र तुल्य मुख देखने के लिये निकलें, तब दशरथ की सब स्त्रियां यानों पर आरूढ़ हुईं ॥३॥ धर्मात्मा भरत ब्राह्मण-मुखियों से, श्रेणी मुखियों से, देशान्तर के व्यापारियों से और माल्य मोदक हाथ में लिये मन्त्रियों से युक्त हुआ ॥ ४ ॥ शङ्ख भेरियों से और स्तुति पाठकों से अभिनन्दित हुआ, आर्य (राम) के खड़ाओं को सिर पर धारण किये वह धर्मनिपुण ॥ ५ ॥ श्वेतमाला से शोभित श्वेत छत्र लेकर और सुवर्ण से भूषित राजयोग्य दो चंवर लेकर ॥ ६ ॥ उपवासों से दुर्बल दीन चीर और काला मृगान धारे हुए वह महात्मा मन्त्रियों के सहित प्रत्युद्गमन करता भया (पेशवाई को गया) ॥ १७ ॥ तब (राम के निकट आने पर) स्त्री, बाल, युवा, और वृद्धों के हर्ष से उठी ध्वनि द्यौ को स्पर्श करती भई, जब "यह राम है" ऐसे कहा गया ॥८॥ तब वह सारे रथों, हाथियों और घोड़ों से उतरकर पृथिवी पर होगये, और विमानस्थ राम को आकाश में चन्द्र की तरह देखते भए ॥९॥ तब मेरु पर स्थित सूर्य की तरह विमान की चोटी पर स्थित भाई राम को भरत झुककर प्रणाम करता भया ॥ १० ॥ उसी समय राम से आज्ञा दिया हंस युक्त बड़े वेगवाला वह विमान महीतल पर उतरा ॥ ११ ॥ विमान पर चढ़ाया हुआ सच्चे पराक्रमवाला भरत राम को पाकर प्रसन्न हुआ फिर प्रणाम करता भया ॥१२॥ देर पीछे दृष्टिपथ में आए भरत को उठाकर गोद में लेकर मुदित हुए राम उसे आलिङ्गन करते भए

॥ १३ ॥ तब लक्ष्मण और सीता के पास शत्रुओं के तपाने वाला भरत प्रसन्न हो अपना नाम उच्चारण करता हुआ प्रणाम करता भया ॥ १४ ॥ तदन्तर वह भरत, सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील, और ऋषभ को गले लगाता भया ॥ १५ ॥ तथा सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ, और पनस को आलिङ्गन करता भया ॥ १६ ॥ फिर वह महा तेजस्वी धर्मीवर भरत वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को आलिङ्गन करके बोला ॥ १७ ॥ हे सुग्रीव तू हमारा पांचवां भाई है, सौहार्द (उपकार) से मित्र होता है और अपकार शत्रु का लक्षण है ॥ १८ ॥ और विभीषण को भरत यह तसल्ली का वाक्य बोला, भाग्य से तुझ साथी (की सहायता) से बड़ा दुष्कर कर्म किया गया है ॥ १९ ॥ तब शत्रुघ्न राम और लक्ष्मण को अभिवादन कर विनय से सीता के चरणों को अभिवादन करता भया ॥ २० ॥ राम विवर्णा शोक से दुर्बल माता के पास आकर झुका हुआ माता के मन को प्रसन्न करता हुआ चरण पकड़ता भया ॥ २१ ॥ सुमित्रा को और यशस्विनी कैकेयी को सारी माताओं को प्रणाम करके पुरोहित के पास आया (आ प्रणाम किया) ॥ २२ ॥ नगर के सभी लोग हाथ जोड़कर "हे महाबाहो कौसल्या के आनन्द के बढ़ाने वाले आप का आना शुभ हो" यह कहते भए ॥ २३ ॥ अब धर्म का जानने वाला भरत स्वयं वह खड़ावें लेकर नरेन्द्र के चरणों से युक्त करता भया ॥ २४ ॥ और हाथ जोड़ कर राम से बोला, यह आप का सारा राज्य अमानत मैंने प्रत्यर्पण किया है ॥ २५ ॥ आज मेरा जन्म कृतार्थ है, मेरा मनोरथ पूरा हुआ, जो तुझ राजा को अयोध्या में फिर आया देखता हूं ॥ २६ ॥ अब आप कोश भण्डार घर, बल (सेना) का निरीक्षण करें आँप के तेज से मैंने सब दश

गुणा कर दिया है ॥ २७ ॥ ऐसा कहते हुए उस भ्रातृवत्सल भरत को देखकर वानरों के और राक्षस विभीषण के प्रेमाश्रु निकल आए ॥ २८ ॥ तब महर्ष से भरत को गोद में लेकर राम भरत के साथ और सेना के साथ भरत के आश्रम को गए ॥२९॥ भरत के आश्रम में पहुंचकर सेनासहित राम विमान के अग्र से उतरकर महीतल पर ठहरे ॥ ३० ॥

सर्ग ७१ (व० १२८) राम का अयोध्या में प्रवेश

मूल—शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकयीनन्दिवर्धनः । बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १ ॥ जगद्द्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु राघव । प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥ २ ॥ भारतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः । तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे ॥ ३ ॥ ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः । सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन् ॥ ४ ॥ पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले । सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥ ५ ॥ विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः । महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥ ६ ॥ प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान् । लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥ ७ ॥ प्रतिकर्म च सीतयाः सर्वा दशरथस्त्रियः । आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ॥ ८ ॥ ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम् । चकार यत्नात्कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ॥९॥ ततः शत्रुघ्नवचनात्सुमन्त्रो नाम सारथिः । योजयित्वाभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम् ॥ १० ॥ अग्न्यर्कामलसंकाशं दिव्यं दृष्ट्वा रथं स्थितम् । आरुरोह महाबाहू रामः परपुरञ्जयः ॥ ११ ॥ सुग्रीवो हनूमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती । स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ ॥ १२ ॥ सर्वाभरणजुष्टाश्च ययुस्ताः शुभकुण्डलाः । सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः

॥ १३ ॥ अयोध्यायां च सचिवा राज्ञो दशरथस्य च । पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत् ॥ १४ ॥ सर्वमेवाभिषेकार्थं महार्हस्य महात्मनः । कर्तुमर्हथ रामस्य यद्यन्मङ्गलपूर्वकम् ॥ १५ ॥ इति ते मन्त्रिणः सर्वे सन्दिश्य च पुरोहितः । नगरान्निर्ययुस्तूर्णं रामदर्शन-बुद्धयः ॥ १६ ॥ हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः । प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥ १७ ॥ जग्राह भरतो रश्मीञ्छ-त्रुघ्नश्छत्रमाददे । लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संवीजयंस्तदा ॥१८॥ श्वेतं च वालव्यजनं जगृहे परितः स्थितः । अपरं चन्द्रसंकाशं रा-क्षसेन्द्रो विभीषणः ॥१९॥ ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम् । विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥ २० ॥ ते वर्धयित्वा का-कुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः । अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परि-वारितम् ॥ २१ ॥ अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः । श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ २२ ॥ सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे । वानराणां च तत्कर्म ह्याचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम् ॥ २३ ॥ श्रुतिमानितद् ख्याय रामो वानरसंयुतः । हृष्टपुष्टजना-कीर्णामयोध्यां प्रविवेश सः ॥ २४ ॥ ततो ह्यभ्युच्छ्रयन्पौराः पता-काश्च गृहेगृहे । ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम् ॥ २५ ॥

टीका—दोनों हाथ सिर पर जोड़े हुए कैकेयी के आनन्द को बढ़ाने वाला भरत सच्चे पराक्रमवाले ज्येष्ठ भाई राम से बोला ॥ १ ॥ जगत् आज आपको हे राघव अभिषिक्त हुआ मध्याह्न में दीप्त तेजवाले सूर्य की तरह तपता हुआ देखे ॥ २ ॥ भरत के वचन को सुनकर शत्रुओं के किलों को जीतनेवाला राम तथास्तु कह कर स्वीकार करता भया, और शुभ आसन पर बैठगया ॥ ३ ॥ तब शत्रुघ्न के कहने से निपुण सुखहस्त और शीघ्रकारी दाढ़ी

बनानेवाले * (नाई) (बाल बनाने और न्हलाने के लिए) राम के चारों ओर बैठगये ॥ ४ ॥ पहले भरत, महाबली लक्ष्मण, वानरेन्द्र सुग्रीव, और राक्षसेन्द्र विभीषण के स्नान करने पर ॥ ५ ॥ राम जटाओं को शोध (कटवा) स्नानकर विचित्र माल्य अनुलेपन लगा, बहुमूल्य वस्त्रों से युक्त हुआ, शोभा से जलता हुआ स्थित हुआ ॥ ६ ॥ वीर्यवान् लक्ष्मीवान् शत्रुघ्न राम का और लक्ष्मण का प्रसाधन (वस्त्र भूषणों से सजावट) करता भया ॥ ७ ॥ सीता का बड़ा मनोहर प्रसाधन दशरथ की स्त्रियां स्वयं करती भईं, (नकि नाइन से करवाती भईं) ॥ ८ ॥ तब पुत्रवत्सला कौसल्या सारी वानरपत्नियों को प्रयत्न से प्रसाधन करती भई ॥ ९ ॥ (यह सब भरत के आश्रम पर हुआ, अब अयोध्या में प्रवेश दिखलाते हैं) तब शत्रुघ्न के वचन से सारथि सुमन्त्र सर्वाङ्ग शोभन रथ को जोड़कर लेआया ॥ १० ॥ अग्नि सूर्य के तुल्य निर्मल प्रकाशवाले इस रथ को स्थित देखकर शत्रुओं के किलों को जीतनेवाला महाबाहु राम आरूढ़ हुआ ॥ ११ ॥ महेन्द्र तुल्य तेजवाले सुग्रीव और हनुमान् स्नान किये हुए दिव्य वस्त्रों से युक्त शुभ कुण्डलों से युक्त साथ चले ॥ १२ ॥ सारे भूषणों से भूषित शुभ कुण्डलोंवाली सुग्रीव की पत्नियां और सीता भी नगर देखने की उत्कण्ठा वाली साथ गईं ॥ १३ ॥ इधर अयोध्या में राजा दशरथ के मन्त्री पुरोहित को मुख्य करके आवश्यक सारा विचार करते भए ॥ १४ ॥ जय के योग्य महात्मा राम के अभिषेक के लिये मङ्गल पूर्वक सब कुछ तय्यार करो ॥१५॥ यह वह मन्त्री और पुरोहित (भृत्यों को) आज्ञा देकर राम के दर्शन की बुद्धि से जल्दी नगर से बाहर निकले ॥ १६ ॥ उधर राम

---

* प्राचीन आर्य्य डाढ़ी मुंडवाते थे ।

रथ पर चढ़कर उत्तम नगर की ओर गया ॥ १७ ॥ भरत ने (घोड़ों की) बागें पकड़ीं, शत्रुघ्न ने छत्र पकड़ा, लक्ष्मण उस के मस्तक पर चँवर करता था ॥ १८ ॥ एक और चन्द्र तुल्य चंवर राक्षसेन्द्र विभीषण ने पकड़ा ॥ १९ ॥ वह (गरवासी) शरीर से शोभा पाते हुए अतिरथी राम को रथ से आता हुआ देखते भए, जिसके आगे सैनिक चल रहे हैं ॥ २० ॥ वह राम को बधाई देकर राम से प्रतिनन्दित हुए भाइयों से परिवारित महात्मा के पीछे २ गये ॥ २१ ॥ मन्त्रियों से ब्राह्मणों से और प्रकृतियों से युक्त हुआ राम नक्षत्रों से चन्द्रमा की तरह शोभा से चमकता भया ॥ २२ ॥ राम मन्त्रियों को सुग्रीव की मित्रता, पवनपुत्र का प्रभाव और वानरों का कर्म कहते भए ॥ २३ ॥ तेजस्वी राम यह कहकर हृष्ट पुष्ट जनों से भरी अयोध्या में प्रविष्ट हुआ ॥ २५ ॥ तब पुर के लोग घर २ में झंडियां खड़ी करते भए, और वह राजपुत्र रमणीय पितृगृह में पहुंचा ॥ २५ ॥

सर्ग ७२ (व० १२८) राम का राज्याभिषेक

मूल—ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह । रामं रत्नमये पीठे ससीतं सन्न्यवेशयत् ॥ १ ॥ वसिष्ठो विजयश्चैव जाबालिरथ काश्यपः । कात्यायनो गौतमश्च वामदेवस्तथैवच ॥२ ॥ अभ्यषिञ्च-न्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना । सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥ ३ ॥ ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा । योधै-श्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते संप्रहृष्टैः सनैगमैः ॥ ४ ॥ ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं किरीटं रत्नशोभितम् । तस्यान्ववाये राजानः क्रमाद्येनाभिषेचिताः ॥ ५ ॥ किरीटेन ततः पश्चाद्वसिष्ठेन महात्मना । ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः ॥ ६ ॥ छत्रं तस्य च जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम् । श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ ७ ॥ अपरं

चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥ ८ ॥ प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः अभिषेके तदर्हस्य तदा रामस्य धीमतः ॥ ९ ॥ सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा । ददौ शतवृषान्पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः ॥ १० ॥ त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः । नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः ॥ ११ ॥ अर्करश्मिप्रतिकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम् । सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजाधिपः ॥ १२ ॥ वैदूर्यमयचित्रे च चन्द्ररश्मिविभूषिते । वालिपुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ ॥ १३ ॥ मणिप्रवरजुष्टं तं मुक्ताहारमनुत्तमम् । सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम् ॥ १५ ॥ अव मुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी । अवैक्षत हरीन्सर्वान्भर्तारं च मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ तामिङ्गितज्ञः संप्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम् । प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि ॥ १६ ॥ अथ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा ॥ १७ ॥ हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः । चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः ॥१८ ॥ सर्वे वानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरोत्तमाः । वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः ॥ १९ ॥ विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा । सर्वे वानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ २० ॥ यथार्हं पूजिताः सर्वे कामैरत्नैश्च पुष्कलैः । प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम्॥२१॥ सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम् । पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत्पुरीम् ॥ २२ ॥ विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह तैर्नैऋतर्षभैः । लब्ध्वा कुलधनं राजा लङ्कां प्रायान्महायशाः ॥२३॥

टीका—तब ब्राह्मणों के साथ शुद्ध वृद्ध वसिष्ठ राम को सीता समेत रत्नमय पीठ पर बिठलाता भया ॥ १ ॥ वसिष्ठ, विजय, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, गौतम और वामदेव ॥ २ ॥ निर्मल सुगन्धित जल से नरश्रेष्ठ का अभिषेक करते भये, जैसे वसु इन्द्र

का ॥३॥ पहले ऋत्विज ब्राह्मणों के साथ फिर कन्याओं, मन्त्रियों योद्धाओं और प्रसन्न मन सौदागरों के साथ वह अभिषेक करते भए ॥ ४ ॥ अब वह रत्न से शोभित मुकुट जो पहले ब्रह्मा ने रचा था, और राम के वंश के राजा क्रमशः जिससे अभिषिक्त हुए थे ॥ ५ ॥ उस मुकुट से महात्मा वसिष्ठ (के हाथों) से राम युक्त किया गया, और ऋत्विजों से भूषणों से युक्त किया गया ॥६॥ शत्रुघ्न ने श्वेत शुभ छत्र पकड़ा और वानरेश्वर सुग्रीव ने कोमल चंवर पकड़ा ॥ ७ ॥ और एक चन्द्र तुल्य चंवर राक्षसेन्द्र विभीषण ने पकड़ा ॥ ८ ॥ अभिषेक के योग्य उस बुद्धिमान् राम के अभिषेक में देव गन्धर्व गाते भए, और अप्सरागण नाचते भए ॥ ९ ॥ एक लाख धेनु और गौ और सौ सांड उस मनुजवर ने ब्राह्मणों को दिये ॥ १० ॥ तीस करोड़ सोने का सिक्का और बहुमूल्य भान्ति २ के भूषण वस्त्र ब्राह्मणों को दिये ॥ ११ ॥ सूर्य की रश्मियों के तूल्य, मणियों से जड़ित सोने की दिव्यमाला उस नरपति ने सुग्रीव को दी ॥ १२ ॥ सब्ज मणि से चित्रित चन्द्र रश्मियों से भूषित दो अङ्गद (बाहुबन्द) उस धृतिमान् ने बालि-पुत्र अङ्गद को दिये ॥१३॥ फिर उत्तम मणियों से जटित चन्द्र किरणों के तुल्य अत्युत्तम मोतियों का हार राम ने सीता को दिया ॥ १४ ॥ जनकनन्दिनी कंठ से हार उतारकर बार २ सारे वानरों की ओर और भर्ता की ओर देखती भई ॥ १५ ॥ तब इङ्गित के जाननेवाले राम उस जनकसुता से बोले, हे सुभगे यह हार उसे दे, जिस पर हे सुन्दरी तूं प्रसन्न है ॥ १६ ॥ तब वह काले नेत्रोंवाली उस हार को पवनपुत्र को देती भई॥१७॥वानरवर हनुमान् उस हार से ऐसे सोहता भया, जैसे चन्द्र किरण के समूह से गौर श्वेत बादल से पर्वत ॥ १८ ॥ सारे वानर वृद्ध और दूसरे

वानरवर वस्त्रों और भूषणों से यथायोग्य पूजे गये ॥ १९ ॥ विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, तथा दूसरे सारे मुख्य वानर शुभकर्मा राम से यथायोग्य प्यारी वस्तुओं से और पुष्कल रत्नों से पूजे गए और सभी प्रसन्नमन हुए अपने २ स्थान को गये ॥२०, २१ ॥ वानरश्रेष्ठ सुग्रीव राम का अभिषेक देखकर राम से पूजित हुआ किष्किन्धा पुरी में प्रविष्ट हुआ ॥ २२ ॥ धर्मात्मा विभीषण भी उन राक्षसवरों के साथ अपने कुल के धर्म (लङ्का के राज्य) को पाकर लङ्का को गया ॥ २३ ॥

सर्ग ७३ (व० १२८) रामका राज्य काल

मूल—सराज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः । राघवः परमोदारः शशास परया मुदा ॥ १ ॥ उवाच लक्ष्मणो रामं धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥ २ ॥ आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन । तुल्यं यथा त्वं पितृभिःपुरस्तात्तैर्यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व ॥ ३ ॥ सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सौमित्रिरुपैति योगम् । नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये ततोऽभ्यषिञ्चद्भरतं महात्ममा ॥ ४ ॥ राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् । ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुतभ्रातृबान्धवः ॥ ५ ॥ न पर्यदेवान्विधवा न च व्यालकृतं भयम् । न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ ६ ॥ निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत् । न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ ७ ॥ सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वो धर्मपरोऽभवत् । राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन्परस्परम् ॥ ८ ॥ नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः । कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥९॥ स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः । आसन्प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः ॥ १० ॥

टीका—अब वह महायशस्वी परम उदार राघव परम मोद के

साथ सारे राज्यका शासन करता हुआ धर्मप्रिय राम धर्मज्ञ लक्ष्मण से बोला ॥ १,२ ॥ हे धर्मज्ञ पूर्व राजों से बल से जीती हुई इस पृथिवी को मेरे साथ शासन कर पूर्व कालीन अपने पितरों के तुल्य यौवराज्य की धुरा को उठा ॥३॥ पूरे बल से प्रेरा हुआ भी जब लक्ष्मण यौवराज्य नहीं चाहता है, तब वह महात्मा यौवराज्य में भरत को अभिषिक्त करता भया ॥ ३ ॥धर्मात्मा राम भी इस अत्युत्तम राज्य को पाकर सुत भाई और बांधवों समेत अनेक प्रकार के यज्ञ करता भया ॥ ५ ॥ राम के राज्य शासन करते हुए न कहीं विधवाओं का रोना सुनाई दिया, न सांपों का भय हुआ, न रोग का भय हुआ ॥ ६ ॥ लोक दस्युओं से शून्य हुआ, कोई अनर्थ में नहीं पड़ता था, और न वृद्ध बालों के मरण संस्कार करते थे ॥ ७ ॥ सभी प्रसन्न थे, सभी धर्मपरायण थे, राम को लक्ष्य रखकर आपस के सब वैर विरोध मिट गये ॥ ८ ॥ वृक्ष पक्की जड़ोंवाले सदा फूले फले थे, मेघ समय पर बरसता, पवन सुखदायी चलता ॥ ९ ॥ सब अपने २ कर्मों से सन्तुष्ट हुए अपने २ कर्मों में लगे रहते, राम के शासन करते हुए सब प्रजाएं धर्मपरायण थीं झूठी न थीं ॥ १० ॥

सर्ग ८४ (ब० १२८) रामायण महात्म्य

मूल—धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां विजयावहम् । आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥१॥ यः शृणोति सदा लोके नरः पापात्प्रमुच्यते । पुत्रकामश्च पुत्रान्वै धनकामो धनानि च ॥ २ ॥ लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् । महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥३॥ राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च । भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः ॥ ४ ॥ श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति । रामस्य विजयं चेमं सर्वमाक्लिष्टकर्मणः

॥५॥ शृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् । श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ॥ ६ ॥ विजयेत महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान्भवेत् । स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान्सूयुरनुत्तमान् ॥ ७ ॥ पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम् । सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ८ ॥ प्रणम्य शिरसा नित्यं श्रोतव्यं क्षत्रियैर्द्विजात् । ऐश्वर्यं पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः ॥ ९ ॥ एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः । प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ १० ॥ कुटुम्बवृद्धिं धनधान्यवृद्धिं स्त्रियश्च मुख्याः सुखमुत्तमं च । श्रुत्वा शुभं काव्यमिदं महार्थं प्राप्नोति सर्वां भुवि चार्थसिद्धिम् ॥११॥ आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च । श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भिराख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः ॥ १२ ॥

टीका—धर्म यश और आयु के बढ़ाने वाला और राजाओं को विजय दिलाने वाला यह ऋषिप्रणीत आदि काव्य पहले बाल्मीकि ने किया ॥ १ ॥ जो पुरुष इस लोक में सदा इसे सुनता है, वह पाप से छूट जाता है, रामाभिषेक को सुनकर पुत्रकामी पुत्र को और धनकामी धन को पाता है, राजा पृथिवी को जीतता है, और शत्रुओं को दबाता है ॥२,३॥ जैसे राम से उसकी माता लक्ष्मण से सुमित्रा और भरत से कैकेयी वैसे सब स्त्रियें जीवित पुत्रोंवाली होती हैं ॥ ४ ॥ पवित्र कर्मोंवाले राम के इस सारे विजय रूप रामायण को सुनकर दीर्घायु को प्राप्त होता है॥ ५ ॥ जो क्रोध को त्यागकर श्रद्धावान् हुआ वाल्मीकि से किये इस काव्य को सुनता है, वह सब कठिनाइयों को तर जाता है,॥ ६ ॥ राजा पृथिवी को जीतता है प्रवासी कल्याणवान् होता है, रजस्वला स्त्रियें सुनकर अत्युत्तम पुत्रों को जन्म देती हैं ॥ ७ ॥

इस पुरातन इतिहास का आदर करता हुआ और पढ़ता हुआ सारे पापों से छूट जाता है और दीर्घआयु को पाता है ॥ ८ ॥ क्षत्रियों को सदा सिर झुकाकर ब्राह्मण से सुनना चाहिए ऐश्वर्य और पुत्र लाभ होगा इस में संशय नहीं ॥ ९ ॥ इसप्रकार यह आख्यान पहले हुआ है, तुम्हारा भला हो, सब विश्वस्त होकर कहो विष्णु का बल बढ़े ॥ १० ॥ गम्भीर अर्थवाले इस शुभ काव्य को सुन कर कुटुम्ब की वृद्धि धन धान्य की वृद्धि मुख्य स्त्रियें और उत्तम सुख और सम्पूर्ण अर्थ सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ आयु आरोग्य और यश के देनेवाला, भ्रातृभाव के बढ़ानेवाला बुद्धि-कारी और यशकारी यह शुभ आख्यान ऋद्धि चाहनेवाले सत् पुरुषों को नियम से सुनना चाहिये ॥ १२ ॥

युद्ध काण्ड समाप्त हुआ ।

श्रीवाल्मीकि कृत रामायण समाप्त हुआ *

---

* बालकाण्ड पृष्ठ २३ की टिप्पणी में स्पष्ट प्रमाणों से हम दिखला चुके हैं, कि वाल्मीकि मुनि ने युद्ध काण्ड तक ही रामायण रचा है, उत्तर काण्ड प्रक्षिप्त है । यहां भी युद्ध-काण्ड की समाप्ति में राम का राज्य काल और रामायण का महात्म्य वर्णन कर देने से यहां ही रामायण की समाप्ति प्रतीत होती है । सो उत्तर काण्ड निःसंदेह प्रक्षिप्त है, तथापि उत्तर काण्ड की कथा हमारे पाठकों को अज्ञात न रहे, इसलिए आगे केवल भाषा में उत्तर काण्ड की कथा लिखते हैं ।

उत्तर काण्ड।

सर्ग १-मुनियों के दर्शन और वेदवती की कथा।

जब रामचन्द्रजी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर और उसी अवसर में रावण को मारकर फिर अयोध्या में आकर राजसिंहासन पर आरूढ हुए, तब उनको बधाई देने के लिये पूर्व दिशा से कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथि का पुत्र कण्व, और दक्षिण दिशा से, आत्रेय, नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, अत्रि, सुमुख और विमुख, और पश्चिमदिशा से नृषङ्ग, कवषी, धौम्य, कौशेक, तथा उत्तरदिशा से वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज, यह ऋषि अपने शिष्यों समेत आए। तथा दूर निकट से सभी राजे और राजकुमार आए। रामचन्द्रजी के पूछने पर अगस्त्यमुनि ने बतलाया, कि रावण ने पहले तप से बल पाया, फिर कुबेर को जीतकर उससे पुष्पक विमान छीना, और फिर पुष्पक विमान पर चढ़कर दिग्विजय किया। बड़े २ राजों को और इन्द्र को भी जीता। इसी विजययात्रामें उसने हिमालय के एक वन में तप करती हुई एक दिव्यमूर्ति कन्या देखी। नाम उसका वेदवती था। उसे देखकर रावण मोहित होगया। अपनी रानी बनाने के लिए उसे रावण ने बहुतेरा ललचाया, फुसलाया, धमकाया, डराया। जब किसी तरह भी उसने न माना, तब रावण ने उसे बालों से पकड़ लिया। बालों को हाथ लगतेही वेदवती का क्रोध भड़क उठा, उसने अपने हाथ के प्रबल झटके के साथ रावण से छुए बालों को उखाड़कर फैंक दिया, और झट जलती हुई अग्नि में कूदकर अपने सुवर्णमय जीवन को कुन्दन कर दिखलाया। उस जीवन को छोड़ते समय स्वभावतः उसके मुख से यह सरस्वती प्रकट हुई॥

यस्मात् तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ।
तस्मात् तव वधार्थं हि समुत्पत्स्याम्यहं पुनः ॥

जिससे तुझ पापात्मा ने वन में मेरी धर्षणा की है, इस से तेरे वध के लिये मैं फिर उत्पन्न हूंगी ॥ वही वेदवती हे राजन् महात्मा जनक के कुल में उत्पन्न हुई यह सीता है ।

सर्ग २—सहस्रबाहु से रावण का पराजय

रामचन्द्रजी ने अगस्त्य से फिर पूछा, हे भगवन् । क्या उस समय कोई राजा ऐसा नहीं था, जो रावण का दर्प तोड़ता ! भगवान् अगस्त्य ने उत्तर दिया । हां, दो राजे थे, जिन्होंने रावण को नीचा दिखलाया । एक माहिष्मती नगरी का राजा कृतवीर्य का पुत्र सहस्रबाहु अर्जुन । अर्जुन नर्मदानदी में जलक्रीड़ा का आनन्द मना रहा था, कि रावण पुष्पक पर चढ़ कर वहीं पहुंचा, और अर्जुन को युद्ध के लिये आह्वान किया । दोनों शूरवीरों का बड़ी देर तक घोर युद्ध हुआ, अन्ततः रावण अर्जुन से घुमाकर मारी गदाकी चोट से ऐसा व्याकुल हुआ, कि पीठ न दिखलाता हुआ भी पिछले पाओं कुछ पीछे हट गया, और नीचे बैठ गया । अर्जुन ने झट रावण को बांध लिया । प्रहस्त ने रावण को छुड़ाने का बहुत यत्न किया, पर वह छुड़ा न सका । अर्जुन रावण को बांधकर माहिष्मती में लेगया । यह सुनकर रावण का दादा पुलस्त्य माहिष्मती में अर्जुन के पास गया । इस वृद्ध अतिथि को आदर सत्कार करके अर्जुन ने कहा, भगवन् ! क्या कार्य है, आज्ञा दीजिये । वह बोला

नरेन्द्राम्बुजपत्राक्ष पूर्णचन्द्रनिभानन ।
अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः ॥
पुत्रस्य यशः पीतं नाम विश्रावितं त्वया ।

मद्वाक्याद् याच्यमानोऽद्य मुञ्च वत्स दशाननम् ॥

हे नरेन्द्र हे कमलपत्र तुल्य नेत्रोंवाले हे चन्द्रतुल्य मुखवाले तेरा बल अतुल है, जिस तूने रावण को जीता है। मेरे पोते का यश तूने पी लिया है, और अपना नाम जगत् में प्रसिद्ध किया है अब मेरे वाक्य से याचना किया हुआ तू हे वत्स रावण को छोड़दे

अतिथि की याचना सुन कर अर्जुन कुछ नहीं बोल सका किन्तु रावण को छोड़ दिया ॥

सर्ग ३-बाली से रावण का पराजय

दूसरा बाली है, जिसने रावण को जीता। बालि के बल की चर्चा सुनकर रावण किष्किन्धा में पहुंचा, बाली उस समय सन्ध्या उपास रहा था। पुष्पक से उतरकर रावण जो बाली की ओर बढ़ा, तो बाली ने भी उसे देख लिया, और उसके अभिप्राय को जान लिया। पर उसे कुछ घबराहट नहीं हुई। उसने रावण को ऐसी बेपरवाही से देखा, जैसे शेर शशक को वा गरुड़ सर्प को देखता है। वह अचल बैठा रहा। जब रावण पास आया, तो उसे बगल में दबाकर सन्ध्योपासन करता रहा। सन्ध्या उपास कर उसे छोड़ दिया, और हंसते हुए पूछा कि आप कहां से आए हैं। रावण बाली के बल पर ऐसा मोहित हुआ, कि उसने अपना नाम बतलाकर कहा, कि युद्ध के अभिप्राय से आपके पास आया था ॥

सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यामिच्छामि हरिपुंगव ।
त्वया सह चिरं सख्यं सुस्निग्धं पावकाग्रतः ॥

हे वानर श्रेष्ठ मैंने तेरा बल देख लिया है, अब मैं तेरे साथ अग्नि के सन्मुख सदा की स्नेह भरी मित्रता चाहता हूं ॥

तब अग्नि प्रज्वलित करके वह दोनों एक दूसरे के भाई बने, हाथ मिलाए और गले लगे। तिस पीछे रावण किष्किन्धा में एक महीना रह कर फिर लङ्का को चला गया ।

सर्ग ४–जनक युधाजित् प्रतर्दन, और दूसरे राजाओं तथा सुग्रीव विभीषण की विदाई

इसी प्रकार कई दिनों तक ऋषिमुनि आनन्दोत्सव करके रामचन्द्रजी को आशीर्वाद देकर चले गए। तब रामचन्द्रजी ने कुछ रत्न आगे रखकर मिथिलाधिपति जनक से हाथ जोड़कर विनाते की कि आप के उग्र तेज से रावण मारा गया है। इक्ष्वाकुओं का और जनकों का अतुल प्रेम और सम्बन्ध है। आप के इस आगमनका बहुत अनुगृहीत हूं। अब आप अपनी प्रजा को जाकर आनन्दित करें। भरत आप को छोड़ने जाएगा। जनक ने तथास्तु कहा, और वह रत्न वापिस देकर कहा, कि यह मैं अपनी कन्याओं को देता हूं। यह कह कर जनक भरत के साथ चला गया।

फिर रामचन्द्रजी ने केकय देश के राजा अपने मामा (भरत के सगे मामा) युधाजित् के आगे रत्न रखकर अभिवादन कर और प्रदक्षिणा करके लक्ष्मण को साथ देकर विदा किया। युधाजित ने वह रत्न तो राम को ही देदिये, और प्रदक्षिणा करके लक्ष्मण के साथ प्रस्थित हुआ॥

तब राम ने अपने मित्र काशिपति प्रतर्दन को विदा करते हुए कहा, मैं आपका कृतज्ञ हूं, कि आपने भरत के साथ मेरी सहायता के लिये जो उद्योग किया, उससे आपने मेरे साथ प्रीति और सौहार्द दिखलाया है॥

इसके पीछे और तीन सौ अधीन राजों को राम ने आदर सत्कार के साथ विदा किया॥

जब भरत और लक्ष्मण बहुत सी भेंट पूजा लेकर वापिस आगये, तो राम ने सुग्रीव और विभीषण और दूसरे वानर सेनापतियों को बहुत बड़े रत्न दिए, और हनुमान् और अंगद को अपने निज के भूषणों से भूषित किया और बिदा किया॥

सर्ग ५-सीता की गर्भ वासना

इष्ट मित्रों को विदाकर राम प्रजा की सुख वृद्धि में लगे। प्रतिदिन धर्म कार्यों को करके राज्यकार्यों में लग जाते। इसीतरह जाड़े के दिन बीते, वसन्त प्रवृत्त हुआ। तब एक दिन राम धर्म कार्य करके अन्तःपुर में गये। इधर सीता भी देवकार्य करके अपनी सभी सासों की एक सी पूजा करके अन्तःपुर में आई। उसे देख राम को अतुल हर्ष हुआ, क्योंकि सीता के अब सन्तति होनेवाली थी। राम बड़े प्रेम से सीता से बोले :-

अपत्यलाभो वैदेहि त्वय्ययं समुपस्थितः।
किमिच्छसि वरारोहे कामः किं क्रियतां तव।

हे वैदेहि! यह सन्तति का लाभ तुझमें प्राप्त हुआ है हे वरारोहे तू क्या चाहती है, कौनसी तेरी कामना पूरी की जाए॥

पति के इस प्रीति वचनको सुनकर सीता मुस्कराकर बोली।

तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव।
गंगातीरोपविष्टाना मृषीणा मुग्रतेजसाम्॥

हे राघव गङ्गातीर पर रहनेवाले उग्र तेजवाले ऋषियों के पुण्य तपोवनो को देखना चाहती हूं।

राम ने तथास्तु कहकर कहा, कि कल ही तू अवश्य जा सकेगी॥

सर्ग६-राक्षस के घर रही सीता को फिर घर में लेआने की पुरमें चर्चा

अब राम अपने निज के मन्दिर में आए, वहां इष्ट मित्रों से उपहास कथाओं के प्रसंग में राम ने पूछा, कि पुर के लोगों में मेरे वा भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के और सीता और मेरी माताओं के विषय में क्या बात चीत होती है। तब उन में से भद्र हाथ जोड़कर बोला, हे राजन्! पुरवासी प्रायः रावण को

जीतने की कथायें करते हैं। फिर राम ने कहा, भद्र पुरवासी जो कुछ शुभ वा अशुभ कहते हैं, वह सभी कहो। भद्र हाथ जोड़कर फिर बोला, हे राजन्! सुनिये जो कुछ पुरवासी शुभ अशुभ कहते हैं, राम ने बड़ा आश्चर्य काम किया है, जो समुद्र में पुल बांधा है, यह काम न पहले दैत्यों से होसका है, न देवताओं से होसका है। और दूसरा वानर और ऋक्षों को बस में किया है, और रावण को उस की सेना समेत मारा है। इन कामों की बड़ाई करते हैं। पर साथही यह भी सुनाई देता है, कि राक्षस के घर में गई सीता को रामने फिर स्वीकार करलिया है, यह अनुचित हुआ है। अतः—

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यथा हि कुरुते राजा प्रजा तमनुवर्तते॥

हमें भी अपनी स्त्रियों के विषय में सब कुछ सहारना होगा, क्योंकि राजा जैसा करते हैं, प्रजाएं उसके पीछे चलती हैं।

सर्ग ७—लक्ष्मण को सीता के त्याग की आज्ञा।

यह सुनते ही राम को एक चोट सी लगी, गोष्ठी को विसर्जन किया, और स्वयम् शोक और विचार में डूब गया। देर तक गहरे विचार में पड़ा रहकर अपने मनमें एक निश्चय करके उसी समय भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न को बुलवाया। उन्होंने आकर देखा, कि सन्ध्या कालीन सूर्य की तरह राम का मुख तेज से हीन है। और नेत्रों से आंसू छमाछम गिर रहे हैं। वह प्रणाम करके सामने खड़े होगये। रामने आंसू पोंछकर उनको आसनों पर बिठलाया॥

जब वह बैठ गये, तो राम सूखते हुए मुख से बोले। भाइयो सब ध्यान देकरसुनो, सीता के विषय में पुरवासियों में यह चर्चा चल रही है, कि वह राक्षस के घर में रही है। यह लोकनिन्दा

मेरे मर्मों को चीरती है। मैं इक्ष्वाकु महात्माओं के कुल में उत्पन्न हुआ हूं, और सीता भी जनक महात्माओं के सत्कुल में उत्पन्न हुई है। हे लक्ष्मण तू जानता है, कि जिसतरह सीता रावण ने हरी, और जैसे रावण को विध्वंस किया। उस समय मेरे मन में आया, कि लंका में रही सीता को कैसे घर लेचलूं। तब सीता जलती अग्नि में प्रविष्ट हुई। और तेरे सामने हे लक्ष्मण सीता को अग्नि ने शुद्ध कर दिखलाया। मेरा अन्तरात्मा भी सीता को शुद्ध बतलाता है। पर अब यह अपवाद असह्य है। मैंने यशस्वी इक्ष्वाकुवंश में अपकीर्ति उत्पन्न करदी है। इस जैसा मुझे कभी कोई दुःख नहीं हुआ है। सो हे लक्ष्मण ! कल प्रभात के समय तू सीता को रथ पर चढ़ाकर गंगा से पार वाल्मीकि के आश्रम के निकट त्यागकर चला आ। हे भ्राताओ मेरी इस मति को कोई मत रोको, यदि मेरे शासन में स्थित हो, तो मेरे इस शासन का मान करो। आजही सीता ने मुझे कहा है, कि गंगा तीर पर मैं आश्रमों को देखना चाहती हूं। सो उसे आश्रमों के देखने के लिये वहां छोड़ आ। यह कहते हुए राम के नेत्र आंसुओं में डुबडुबाए, और वह ठण्डा सांस भर कर उठ खड़े हुए॥

सर्ग ८—लक्ष्मण का सीता को त्याग के लिये लेजाना और सीता का भोलापन

रात बीती, प्रभात हुई। लक्ष्मण सुमन्त्र से रथ जुड़वा कर सीता के निकट गया और कहा। हे देवि ! राजाज्ञा से आज आपके लिये यह रथ आया है, आप गंगा तीर पर चलकर ऋषियों के आश्रमों को देखेंगी॥

एवं मुक्ता तु वैदेही लक्ष्मणेन महात्मना।
प्रहर्ष मतुलं लेभे गमनं चाप्यरोचयत्॥

वासांसिच महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ।
गृहीत्वा तानि वैदेहि गमनायोपचक्रमे ॥
इमानि मुनिपत्नीनां दास्याम्याभरणानि च ।
वस्त्राणि च महार्हाणि धनानि विविधानि च ॥

महात्मा लक्ष्मण से ऐसे कही हुई सीता अतुल हर्ष को प्राप्त भई, और जाना पसन्द करती भई। बहुमूल्य वस्त्र और भान्ति भान्ति के रत्न लेकर सीता जाने को तय्यार हुई कि यह भूषण और यह बहुमूल्य वस्त्र और यह विविध धन मैं मुनिपत्नियों को दूंगी ॥

अयोध्या से चलकर रात को वह गोमती के तीर पर एक आश्रम में रहे। दूसरे दिन सवेरे चलकर दोपहर को गंगा पर पहुंचे। अभी तक लक्ष्मण अपने आप को रोके हुए था, पर अब इस गंगा से पार सीता को त्यागना है, यह मन में आने से बहुत रोया। सीता लक्ष्मण को आतुर देखकर भोले भाव में कहने लगी ॥

जाह्नवीतीरमासाद्य चिराभिलषितं मम ।
हर्षकाले किमर्थं मां विषादयसि लक्ष्मण ॥
नित्यं त्वं राम पार्श्वेषु वर्तसे पुरुषर्षभ ।
कच्चिद्विना कृतस्तेन द्विरात्रं शोकमागतः ॥
ममापि दयितो रामो जीवितादपि लक्ष्मण ।
नैवाहमेवं शोचामि मैवं त्वं बालिशो भव ॥
तारयस्व च मां गंगां दर्शयस्व च तापसान् ।
ततो मुनिभ्यो वासांसि दास्याम्याभरणानि च ।
ततः कृत्वा महर्षीणां यथार्ह मभिवादनम् ।

तत्र चैकां निशामुष्य यास्यामस्तां पुरीं पुनः ॥
ममापि पद्मपत्राक्षं सिंहोरस्कं कृशोदरम् ।
त्वरते हि मनो द्रष्टुं रामं रमयतां वरम् ॥

हे लक्ष्मण गंगा तीर पर जिसकी मुझे चिर से अभिलाषा थी पहुंचकर हर्ष के समय में किस लिये मुझे उदास करता है। हे नरश्रेष्ठ सदा तू राम के पास रहता है क्या उससे अलग होकर दो ही दिन में इतने शोक को प्राप्त हुआ है। हे लक्ष्मण मुझे भी राम जीवन से भी प्यारा है, पर मैं शोक में नहीं हूं, तू भी बालक न बन। मुझे गंगा से पार उतार और मुनियों के दर्शन करा, तब मैं मुनियों को वस्त्र और भूषण दूंगी। वहां महर्षियों को यथायोग्य अभिवादन करके और एक रात रहकर फिर पुरी को जाएंगे। मेरा मन भी उस पद्मपत्र तुल्य नेत्रों वाले शेरकी छाती वाले कृश पेटवाले आनन्द देने वालों में श्रेष्ठ राम को देखने की जल्दी कर रहा है ॥

सर्ग ९—त्याग के स्थान पर लक्ष्मण का विलाप और सीता के वचन

अब वह नौका से गंगा पार उतरे। वाल्मीकि के आश्रम से कुछ दूर लक्ष्मण हाथ जोड़कर सीता से कहने लगा:—

हृद्गतं महच्छल्यं यस्मादार्येण धीमता।
अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य वचनीकृतः ॥
श्रेयोहि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वायत्परो भवेत्।
न चास्मिन्नीदृशेकार्येनियोज्यो लोकनन्दिते ॥
प्रसीद च न मे पापं कर्तुमर्हासि शोभने।
इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात सलक्ष्मणः ॥

मेरे हृदय में यह भारी शल्य है, कि बुद्धिमान् आर्य ने इस कार्य में मुझे लोक का निन्दनीय बना दिया है। मेरा आज मरना अच्छा है, वा मृत्यु से भी परे जो कुछ हो, किन्तु इस निन्दित कार्य में मुझे नियुक्त नहीं करना था। प्रसन्न हो हे शोभने! मेरा दोष न जान, यह कहकर हाथ जोड़े हुए लक्ष्मण भूमि पर गिरपड़ा॥

इसप्रकार लक्ष्मण को रोता हुआ, और अपनी मृत्यु चाहता हुआ देखकर सीता बड़ी उदास होकर बोली॥

किमिदं नावगच्छामि ब्रूहि तत्त्वेन लक्ष्मण।
पश्यामि त्वां न च स्वस्थमपि क्षेमं महीपतेः॥
शापितोऽसि नरेन्द्रेण यत् त्वं सन्तापमागतः।
तद्ब्रूयाः सन्निधौ मह्यमहमाज्ञापयामि ते॥

यह क्या, मैं नहीं जानती हे लक्ष्मण मुझे ठीक २ कहो। मैं तुझे स्वस्थ नहीं देखती हूं, क्या राजा को तो कुशल है। तुझे राजा की शपथ है, तुझे जिससे सन्ताप होरहा है, वह बात मेरे सामने कहो, मैं तुझे आज्ञा देती हूं॥

सीता से आज्ञा दिया हुआ लक्ष्मण सिर नीचे कर रुकते हुए कंठ से यह वाक्य बोलाः—

श्रुत्वा परिषदो मध्ये ह्यपवादं सुदारुणम्।
पुरे जनपदे चैव त्वत्कृते जनकात्मजे॥
रामः सन्तप्तहृदयो मां निवेद्य गृहं गतः।
न तानि वचनीयानि मया देवि तवाग्रतः॥
यानि राज्ञा हृदि न्यस्तान्यमर्षात् पृष्ठतः कृतः।
सा त्वं नृपतिना त्यक्ता निर्दोषा मम सन्निधौ॥

परापवाद भीतेन ग्राह्यं देवि न तेऽन्यथा ।
आश्रमान्तेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ॥
राज्ञः शासनमादाय तथैव किल दौर्हृदम् ।
तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम् ।
पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे ॥
राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुंगवः ।
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः ॥
पादच्छाया मुपागम्य सुखमस्य महात्मनः ।
उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे ॥
पतिव्रतात्वमास्थाय रामं कृत्वा सदा हृदि ।
श्रेयस्ते परमं देवि तथा कृत्वा भविष्यति ॥

हे जनकसुते देश में और पुर में तेरे लिए फैले अपवाद को सभा के मध्य में सुन कर। राम सन्तप्त हृदय हुआ मुझे बतलाकर घर गया। हे देवि ! वह बातें मैं तेरे सामने नहीं कह सक्ता हूं। जो राजा ने हृदय में रखी हैं, मैं वह नहीं सह सक्ता, इस लिये वह अपवाद नहीं कहता हूं। सो निर्दोषा तू मेरे सामने लोकापवाद के डर से राजा से त्यागी गई है। हे देवि ! इसे अन्यथा न समझना। आश्रम के निकट मैंने तुझे छोड़ना है। राजा की आज्ञा से और वैसेही तेरी भी गर्भाभिलाषा है। सो यह गंगा के किनारे ब्रह्मर्षियों का तपोवन है। पवित्र और रमणीय है, हे शुभे ! विषाद मत कर। यह महायशस्वी मुनिवर वाल्मीकि मेरे पिता राजा दशरथका परम सखा है। इस महात्माकी पादच्छाया के आश्रय उपवास परायण हुई, हे जनकात्मजे ! पतिव्रताभाव

को पकड़कर राम को सदा हृदय में सुख से बसा । ऐसा करने से हे देवि ! तेरा परम कल्याण होगा ॥

सर्ग १०—सीता का विलाप और संदेश

लक्ष्मण के दारुण वचन को सुनकर सीता मूर्छा खाकर गिर पड़ी । कुछ देर बेसुरत रहकर सुरत में आ लक्ष्मण से बोली :—

मामकेयं तनूर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण ।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥
किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः ।
याहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती ॥
पुराऽहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी ।
अनुरुध्याऽपि सौमित्रे दुःखे च परिवर्तिनी ॥
सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता ।
आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा ॥
किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो ।
कस्मिन् वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ॥
नखल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले ।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥
यथाज्ञं कुरु सौमित्रे त्यज मां दुःखभागिनीम् ।
निदेशे स्थीयतां राज्ञः शृणु चेदं वचो मम ॥

हे लक्ष्मण मेरा यह शरीर निःसन्देह धाता ने दुःख के लिये रचा है, जिसकी आज यह दुःख की मूर्त्ति दिखलाई देती है । मैंने पूर्व क्या पाप किया है, वा किसको स्त्रियों से वियुक्त किया

है, जो मैं शुद्ध आचारवाली पतिव्रता पति से त्यागी गई हूं। पहले मैं हे लक्ष्मण रोकी जाकर भी दुःख सहती हुई भी राम की पादच्छाया होकर आश्रम में वास करती भई। सो मैं हे सौम्य! कैसे अब इष्टजन से अलग हुई, आश्रम में बसूंगी और किस को मैं दुःखिया अपना दुःख कहूंगी। और क्या मैं मुनियों में कहूंगी हे प्रभु! कि मैंने क्या असत्कर्म किया है। वा किस निमित्त मुझे राम महात्मा ने त्यागा है। हे लक्ष्मण अभी मैं गंगा के प्रवाह में अपना जीवन क्या न त्याग देती, किन्तु मेरे स्वामी का राजवंश शून्य होजाएगा। तू आज्ञानुसार कर, हे लक्ष्मण! मुझे दुःखभागिनी को त्याग, राजा की आज्ञा में स्थित हो, और मेरा यह वचन सुन॥

श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलि प्रग्रहेण च।
शिरसा वन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम्॥
वक्तव्यश्चापि नृपतिर्धर्मेषु सुसमाहितः।
जानासि च यथा सीता शुद्धा तत्त्वेन राघव॥
भक्त्या च परयायुक्ता हिता च तव नित्यशः।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः॥
मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमागतिः।
वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः॥
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात् कीर्तिरनुत्तमा॥
यत्तु पौरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ॥

यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः ।
इति मद्वचनाद्रामो वक्तव्यो मम संग्रहः ।

मेरी सारी सासों को एक जैसे हाथ जोड़कर और सिर से उनके चरण छूकर कुशल कहो और राजा को कुशल कहो। और सारे धर्मों में सावधान राजा को यह कहना। हे राघव तू ठीक २ जानता है, कि सीता शुद्ध है, परम भक्ति से युक्त है, और सदा तेरे हित में है। जो तेरा अपवाद उठा है, वह मुझे दूर करना चाहिये, क्योंकि तू मेरी परमगति है। और धर्म से सावधान राजा को यह कहना कि जैसे भाइयों में बर्तो, वैसे ही सदा पुर के लोगों में वर्तना। हे राजन् पुर के लोगों में धर्म के बर्ताव से जो पुण्य मिलता है, वही परम धर्म है, उसी से राजा का उत्तम यश है। हे नरश्रेष्ठ मैं अपने शरीर का शोक नहीं करती हूं, हे रघुनन्दन जैसे पुर के लोगों में तेरा अपवाद न हो, वैसे रहो। पति स्त्री का देवता है, पति बन्धु है, पति गुरु है, इसलिये मुझे विशेष करके प्राणों से भी बढ़कर भर्ता का प्रिय करना चाहिये। यह मेरे वचन से राम को मेरा सन्देश कहना ॥

सर्ग ११-सीता का विलाप और सीता पर वाल्मीकि की दया।

लक्ष्मण रोता हुआ, सीता की प्रदक्षिणा कर और प्रणाम करके वापिस नौका से पार उतर आया और :—

मुहुर्मुहुः परावृत्य दृष्ट्वा सीता मनाथवत् ।
चेष्टन्तीं परतीरस्थां लक्ष्मणः प्रययावथ ॥
दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः ।

निरीक्षमाणां तु द्विग्नां सीतां शोकः समाविशत् ॥

सा दुःख भारावनता यशस्विनी यशोधरानाथ मपश्यती सती । रुरोद सा बर्हिणनादिते वने महास्वनं दुःखपरायणा सती ॥

दूसरे किनारे पर अनाथ की तरह लेटती हुई सीता को बार २ गर्दन फेरकर देखता हुआ लक्ष्मण चला गया । दूर २ जाते हुए रथ को और लक्ष्मण को बार २ देखकर उद्विग्न हुई सीता को शोक ने आन घेरा । दुःख के बोझ से दबी हुई यश धारने वाली यशस्विनी अपना कोई नाथ न देखती हुई दुःख से भरी हुई वह पतिव्रता मोरों से गूंजते हुए उस बन में धाड़ें मार २ कर रुदन करती भई ॥

सीता को रोती देखकर मुनियों के बालक वाल्मीकि के पास गये और कहा:—

नद्यास्तु तीरे भगवन् वरस्त्री कापि दुःखिता ।
दृष्टाऽस्माभिः प्ररुदिता दृढं शोकपरायणा ।
अनर्हा दुःखशोकाना मेका दीना अनाथवत् ।

हे भगवन् नदी के किनारे पर एक उत्तम स्त्री हमने देखी है, जो दुःख और शोक के योग्य नहीं है, वह अकेली दीन हुई अनाथ की तरह दुःख और शोक से भरी हुई अत्यन्त रुदन कर रही है ॥

वाल्मीकि करुणा करके जो उठकर आए, तो उन्हों ने सीता को देखकर अपने तेज से उसके चित्त को आल्हादित करते हुए मधुर बाणी से कहा:—

स्नुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महिषी प्रिया।
जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते।
आयान्ती चासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना।
कारणं चैव सर्वं मे हृदयेनोपलक्षितम्।
अपापां वेद्मि सीते त्वां तपोलब्धेन चक्षुषा।
विस्रब्धा भव वैदेहि साम्प्रतं मयि वर्तसे।

तू दशरथ की स्नुषा राम की प्यारी पटरानी राजा जनक की पुत्री है, हे पतिव्रते तुझे स्वागत हो। मैंने धर्मसमाधि से तेरे आने को जान लिया है, और कारण भी सारा मुझे हृदय से मालूम होगया है। हे सीते तप से पाई दिव्यदृष्टि से मैं तुझे निष्पाप जानता हूं, विश्वस्त हो हे वैदेहि अब तू मेरे पास है॥

यह कहकर मुनि ने उसे अर्घ्य दिया, और फिर अपने साथ मुनिपत्नियों के पास लेगया, और मुनिपत्नियों से कहाः—

सीतेयं समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः।
स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती।
अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा।
इमां भवत्यः पश्यन्तु स्नेहेन परमेण हि।
गौरवान्मम वाक्याच्च पूज्या वोऽस्तु विशेषतः।

यह सीता आई है, जो बुद्धिमान् राम की पत्नी दशरथ की स्नुषा और राजा जनक की पुत्री है। यह निर्दोष पति से त्यागी हुई, मुझ से सदा पालने योग्य है। इसको आप सब परम स्नेह से देखें, गौरव से और मेरे वचन से यह विशेषतः आपसे पूज्य हो।

सर्ग १२–लवणासुर से तंग आए मुनियों का राम की शरण आना।

निरपराध सीता को त्यागकर राम को जो दुःख हुआ, वह वर्णन से बाहर है, चारदिन तक वह अपने मन्दिर से बाहर नहीं निकले। चौथे दिन जब दोपहर को लक्ष्मण वापिस आया, और उसने बतलाया, कि सीता को वाल्मीकि ने अपने आश्रम में लेलिया है, तो रामचन्द्र अन्दर शोक से भरे रहकर भी अपना कर्तव्य जान राजकार्यों में पूर्ववत् प्रवृत्त हुए। इसीतरह शीत बीत गया और बसन्त ऋतु आया। एक दिन रामचन्द्रजी सवेरे दैवकार्य करके जब राज-कार्य में प्रवृत्त हुए, तो यमुना तीर वासी मुनिजन भृगुगोत्री च्यवन को आगे करके दरबार में पहुंचे। उन्होंने फल मूल राम को भेंट दिये। राम ने बड़े आदर से स्वीकार करके उनको बिठलाया और कहा॥

किमागमनकार्यं वः किं करोमि समाहितः।
आज्ञाप्योऽहं महर्षीणां सर्वं कामकरः सुखम्॥

आपके आनेका क्या प्रयोजन है, मैं सावधान होकर क्या करूं, मैं महर्षियों की आज्ञा पा सुख से सारी इच्छाओं के लिये प्रयत्न करनेवाला हूं॥

ऋषि बोले, हे महाराज लवण राक्षसने मधुवनवासी ऋषियों को बहुत तंग कर रखा है। हम बहुत से राजाओं के पास रक्षा के लिये गये हैं, पर उसके साथ युद्ध को कोई तय्यार नहीं हुआ। यह सुनकर कि आपने रावण को मारा है, आपको रक्षक जान आपके पास आए हैं॥

ऋषियों को उसके मारने का वचन देकर रामचन्द्रजी पास स्थित भरत और शत्रुघ्न से बोले, यह काम तुममें से किसके हिस्से में आए। यह आज्ञा सुनते ही भरत आसन से उठ खड़ा हुआ, परउसी

समय शत्रुघ्न ने प्रणाम करके राम से यह बिनती की कि आर्य (भरत) ने आपसे शून्य राज्य का तपस्वी बनकर पालनकिया है, और बहुत क्लेश उठाए हैं। अब यह अनुग्रह इस दास पर कीजिये। शत्रुघ्न के भ्रातृ-प्रेम और उत्साह का आदर करके राम ने उसका जाना स्वीकार किया। और साथ ही मधुरा (मधुनगर) का राजा बनाकर अयोध्या में ही उस को राजतिलक देदिया। एक अपना बाण देकर और चार सहस्र घुड़ सवार और दो सहस्र हाथी सवार देकर विदा किया॥

सर्ग १३-शत्रुघ्न का वाल्मीकी के आश्रम में रात्रिवास और कुशलव की उत्पत्ति

शत्रुघ्न दो रातें मार्ग में रहकर तीसरी रात वाल्मीकि के आश्रम में जाकर रहा। जिस रात को शत्रुघ्न वाल्मीकी के आश्रम में रहा, उसी रात सीता के दो पुत्र उत्पन्न हुए। आधीरात के समय यह शुभ समाचार वाल्मीकि को मिला, और यह कर्णामृत शत्रुघ्न ने भी सुना। वाल्मीकि ने एक कुशा की मुट्ठी मध्य में से काट कर वृद्धा स्त्रियोंको दी, और कहा, कि इस के अग्रभाग से बड़े लड़के का मार्जन करो और मूल से छोटे का। अग्र को कुश और मूल को लव कहते हैं। इसीसे उनका नाम भी कुश और लव हुआ।

सर्ग १४-शत्रुघ्न का लवण को जीतना और मधुरा की रौनक

वहां से चलकर शत्रुघ्न सात रातें मार्ग में रहा, आठवीं रात मधुरा के निकट यमुना तीर पर रहा। वहां शत्रुघ्न ने लवण का समय-विभाग च्यवन से पूछा, तो मालूम हुआ कि वह सवेरे कुछ साथी साथ लेकर आखेटको चला जाताहै। यही अच्छा अवसर जान सवेरे जब वह वनमें शिकार को गया हुआ था, तो शत्रुघ्न ने मुधरा को जा घेरा। जब लवण आया, तो शत्रुघ्न ने उसे द्वन्द्व युद्ध का आह्वान

दिया। दोनों में बड़ा घोर युद्ध हुआ। देखने वाले सब देख २ कर अचम्भित होते थे, अन्ततः शत्रुघ्न ने वह बाण जो राम ने उसे दिया था, उस अमोघ बाण से लवण को मारकर नीचे गिरा दिया

मधुरा जो अर्द्धचन्द्राकार से यमुना तीर पर बसी थी, उस की रौनक को अब शत्रुघ्न ने बहुत बढ़ाया। प्रजा बहुत प्रसन्न थी। व्यवहार बढ़े हुए थे॥

सर्ग १५-शत्रुघ्न का राम को मिलना

इसप्रकार मधुरा को पालन करते हुए शत्रुघ्न को बारह वर्ष बीत गये। तब अपने मन्त्रियों और कुछ सेना को साथ लेकर रामचन्द्रजी के दर्शन के लिये अयोध्या आए। मार्ग में वाल्मीकी के आश्रम में उन्होंने वाल्मीकिकृत रामायण सुना। जिसमें सारा राम का चरित्र प्रत्यक्षवत् वर्णित था। दूसरे दिन अयोध्या में आ शत्रुघ्न ने रामचन्द्रजी के और दूसरे भाइयों के दर्शन किये। शत्रुघ्न ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, कि महाराज मुझे बारह वर्ष आपसे वियुक्त हुए होगये हैं। मैं देर तक आप से अलग नहीं रह सक्ता। रामचन्द्रजीने उसे कहा, हे वीर उदास मत हो, यह क्षत्रियों का काम नहीं, क्षत्रिय परदेश में दुःखी नहीं होते, धर्म से प्रजा का पालन क्षत्रिय का धर्म है। सो यहां सात दिन रहकर वहां जाकर अपनी प्रजा का पालन करो, और समय समय पर आकर मिलते रहो। तब सात दिन के पीछे रामचन्द्रजी ने शत्रुघ्न को फिर अपने राज्य में भेज दिया॥

सर्ग १६-रामचन्द्रजी का अश्वमेध यज्ञ करना

अब रामचन्द्रजी ने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। यज्ञ का स्थान गोमती के किनारे नैमिषवन निश्चित हुआ। सब

गये। भरत और शत्रुघ्न राजों के सत्कार में,सुग्रीव अपने साथियों सहित ब्राह्मणों के सत्कार में और विभीषण ऋषियों और तपस्वियों के सत्कार में नियुक्त किया गया। राजों के लिये बहुमूल्य सजे हुए डेरों के घर बने। पुण्य ऋषिवाड़ों में और ब्राह्मणों के घरों में वेद की ध्वनि होने लगी और यज्ञ का धूप सुगन्धि फैलाने लगा। लक्ष्मण के अधिकार में अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा गया, सब अपने २ कार्य में दत्तचित्त होगये, सुवर्ण मयी सीता यजमानपत्नी के स्थान स्थित हुई:—

न निःसृतं भवत्योष्ठाद्वचनं यावदर्थिनाम्।
तावद् वानररक्षोभिर्दत्तमेवाभ्यदृश्यत॥
ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिरजीविनः।
नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलंकृतम्॥
यः कृत्यवान् सुवर्णेन सुवर्णं लभते स्म सः।
वित्तार्थी लभते वित्तं रत्नार्थी रत्नमेव च॥
सर्वत्र वानरास्तस्थुः सर्वत्रैव च राक्षसाः।
वासोधनान्नकामेभ्यः पूर्णहस्ताददुर्भृशम्॥
ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः।
संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते॥

अर्थियों के होंटों से जब तक वचन नहीं निकलता है, तभी तक वह वस्तु वानरों और राक्षसों से दी हुई ही देखी जाती है। जो वहां चिरंजीवी महात्मा मुनि थे, उनको दान समूह से शोभायमान ऐसा कोई यज्ञ पहले का स्मरण नहीं आता था। जो सोने से अर्थी होता, वह सोना पाता, धनार्थी धन पाता, और रत्नार्थी

रत्न ही पाता। सर्वत्र वानर स्थित थे, सर्वत्र राक्षस स्थित थे। वह वस्त्र, धन और अन्न चाहने वालों को भरे हाथों से बहुत देते थे। ऐसा उस राजसिंह का सारे गुणों से युक्त यज्ञ बरस भर से ऊपर हुआ, कुछ त्रुटि नहीं आई॥

सर्ग १७—वाल्मीकि का अश्वमेध में आगमन और कुशलव को रामायण गाने की आज्ञा

इस यज्ञ में वाल्मीकि मुनि भी अपने शिष्यों समेत आए। और सुन्दर एकान्त स्थान में अपना वास स्थिर किया। वाल्मीकि मुनि अपने दो चुने हुए शिष्यों कुश और लव से बोले। बेटा जाओ, सम्पूर्ण रामायण काव्य को आनन्द से गाते फिरो। पवित्र ऋषिवाड़ों में ब्राह्मणों के घरों में गलियों में राजमार्गों में और राजाओं के भवनों में गाओ। विशेषतः राम के भुवन के द्वार पर जाकर, कि जहां ऋत्विज् कर्म कर रहे हैं गाओ॥

इमानि च फलान्यत्र स्वादूनि विविधानि च।
जातानि पर्वताग्रेषु आस्वाद्यास्वाद्यगायताम्॥
न यास्यथः श्रमं वत्सौ भक्षयित्वा फलान्यथ।
मूलानि च सुमृष्टानि न रागात् परिहास्यथः।
यदि शब्दापयेद्रामः श्रवणाय महीपतिः।
ऋषीणामुपविष्टानां यथायोगं प्रवर्तताम्।
दिवसे विंशतिः सर्गा गेयाः सुमधुरया गिरा।
प्रमाणैर्बहुभिस्तत्र यथोद्दिष्टं मया पुरा।
लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोपि धनवाञ्छया।
किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा।

यदि पृच्छेत् स काकुत्स्थः युवां कस्येति दारकौ ।
वाल्मीकेरथ शिष्यौ द्वौ ब्रूतमेवं नराधिपम् ।
इमास्तन्त्रीः सुमधुरा स्थानं वाऽपूर्वदर्शनम् ।
मूर्छयित्वा सुमधुरं गायतां विगतज्वरौ ।
आदि प्रभृति गेयं स्यान्नचावज्ञाय पार्थिवम् ।
पिता हि सर्व भूतानां राजा भवति धर्मतः ।
तद्युवा हृष्टमनसौ श्वः प्रभाते समाहितौ ।
गायतं मधुरं गेयं तन्त्रीलयसमन्वितम् ।

यह भान्ति २ के फल जो बड़े स्वादु हैं, पर्वतों की चोटियों पर उत्पन्न हुए हैं, इनको खा खाकर गाओ । हे बेटा ! यह फल और यह कन्द खाकर न तुम थकोगे, न तुम्हारे कण्ठ की मधुरता में भेद आएगा । यदि महीपति राम ऋषियों के बैठे हुए सुनने के लिये तुम्हें बुलाए, तो यथायोग्य गाओ । एक दिन में बीस सर्ग बहुत से प्रमाणों के साथ जैसा कि मैंने तुम्हें बतलाया है, बड़ी मीठी वाणी से गाओ । धन की इच्छा से थोड़ा भी लोभ नहीं करना आश्रम में रहनेवालों को धन से क्या, जो सदा फल मूल खाने वाले हैं । यदि राम तुमसे पूछे, कि तुम किसके लड़के हो, तो तुम राजा को यह उत्तर दो कि हम दोनों वाल्मीकि के शिष्य हैं । यह बड़ी मीठी ध्वनिवाली (बीणा की) तारें हैं,यह अपूर्व स्वरों के प्रकट होने का स्थान है, इनसे मूर्छना को प्रकट करते हुए बड़ा मधुर गाओ । आरम्भ से लेकर गाना, और राजा की अवज्ञा नहीं करना (दूसरी जगह की तरह राजा के सामने हंसी आदिक नहीं करना) क्योंकि राजा धर्म से सब भूतों का पिता होता है ।

सो तुम दोनों कल प्रभात के समय एकाग्र और प्रसन्न मन हुए तार और लय से युक्त मधुर गाना गाओ ॥

सर्ग १८–कुशलव का राम के सम्मुख रामायण गाना और राम से दिये पारितोषिक का परित्याग करना ॥

सो दूसरे दिन प्रभात के समय कुश और लव स्नानकर अग्निहोत्र करके रामायण को गाते हुए फिरने लगे। तार और लय से युक्त इस अपूर्व गीत को दोनों बालकों से सुनकर राम को बड़ा विस्मय हुआ। राम ने उन दोनों को बुला लिया, और कर्म के अवसर में छन्द स्वर तार राग के जाननेवालों के सामने उन का गाना सुनने लगेः–

ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् ।
न च तृप्तिं ययुः सर्वे श्रोतारो गेयसम्पदा ।
हृष्टा मुनिगणाः सर्वे पार्थिवाश्च महौजसः ।
पिबन्त इव चक्षुर्भिः पश्यन्ति स्म मुहुर्मुहुः ।
ऊचुः परस्परं चेदं सर्व एव समाहिताः ।
उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद् बिम्बमिवोद्धृतौ ।
जटिलौ यदि न स्यातां वल्कलधरौ यदि ।
विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च ।

तब मनुष्यरागियों से बढ़ा चढ़ा हुआ, मधुर गाना प्रवृत्त हुआ। गेय वस्तु की महिमा से श्रोताजन तृप्ति को नहीं प्राप्त होते हैं। सब मुनिगण और सभी महापराक्रमी राजे प्रसन्न हुए आखों से मानों उनको बार २ पीते हुए बार २ देखते थे। सभी सावधान होकर यह कहते थे, दोनों राम के एक सदृश हैं, मानों बिम्ब से दूसरे

बिम्ब लिए गए है। यदि जटा और बकले पहने हुए न हों, तो इन गानेवालों में और राम में हम कोई विशेष नहीं देखते हैं॥

जब वह वीस सर्ग गाचुके, तो उन्होंने गाना बन्द किया। राम का इशारा पाकर लक्ष्मण ने उनके आगे मुहरों के ढेर किये:—

दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीयातां कुशीलवौ।
ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ।
वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने।

दिए हुए सुवर्ण को ग्रहण न करके महात्मा कुश और लव विस्मित होकर बोले, इससे हमें क्या। हम तो वनवासी जङ्गली हैं फल मूल से प्रेम रखते हैं, इस सुन्दर रङ्ग के सोने से हम वन में क्या करेंगे॥

उनके इस वचन को सुनकर सभी श्रोते और राम अतीव विस्मित हुए। राम ने पूछा, तुम किसके हो, और यह काव्य किस ने रचा है। उन्होंने ने उत्तर दिया, हम वाल्मीकिमुनि के शिष्य हैं, यह काव्य उन्हीं की कृति है। महाराज यदि सारा सुनने का विचार है, तो कर्म के अवसर पर प्रतिदिन सुनो। राम ने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया, तब वह मुनि शिष्य चले गये। और राम अपने कर्मों में प्रवृत्त हुए॥

सर्ग १९—सीता को साथ लेकर वाल्मीकि का राम के पास आना, और सीता के धर्मभाव का विश्वास दिलाना॥

उस गीत में राम ने कुश और लव को सीता के पुत्र जानकर और यज्ञ द्रष्टा ऋषि मुनि और राजाओं का अभिप्राय जानकर वाल्मीकि मुनि के पास दूत भेजे। कि सीता यदि शुद्ध

आचारवाली है, तो महामुनि की अनुमति में यहां आकर सब के सम्मुख अपनी शुद्धि प्रकट करे। वाल्मीकि ने उत्तर दिया। जैसा राम कहते हैं, वैसा ही सीता करेगी, क्योंकि पति स्त्री का देवता है। दूतों के वापिस सन्देश लाने पर रामने सब को विसर्जन करते हुए कहा, कि आप सब कल सीता की शपथ को सुनें॥

दूसरे दिन सवेरे राम सब ऋषि मुनि और राजे यज्ञ स्थान में आए। तब वाल्मीकि मुनि प्रविष्ट हुए, उन के पीछे २ सीता आई। तब उस जनसमुदाय के मध्य में प्रविष्ट होकर वाल्मीकि मुनि उच्चध्वनि से बोले हे रामः—

इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी।
अपवादात् परित्यक्ता ममाश्रमसमीपतः॥
इमौ तु जानकीपुत्रा वुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमिते॥
प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौतु तव पुत्रकौ॥
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम्।
तस्याहं फल मश्नामि अपापा मैथिली यदि॥
इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता।
लोकापवाद भीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति॥

हे दशरथसुत! यह धर्मचारिणी अच्छे व्रतोंवाली सीता है। जोकि अपवाद से डरकर तूने मेरे आश्रम के समीप त्यागी है। और यह दोनों जोड़े उत्पन्न हुए जानकी के पुत्र हैं, यह तेरे ही दोनों दुर्धर्ष पुत्र हैं, तुझे सत्य कहता हूं। हे राम मैं प्रचेता का दसवां

पुत्र हूं, मुझे अपनी इतनी आयु में एक भी झूठ बोला हुआ स्मरण नहीं। मैं कहता हूं, यह तेरे पुत्र हैं। यदि सीता निष्पापा है, तो मैं जो मन वाणी और कर्म से पाप से सदा बचा हूं, उस का फल भोगूं। यह भी शुद्ध अचारवाली निष्पापा पति देवतावाली सीता लोक निन्दा से डरे हुए तुझ को विश्वास देगी ॥

सर्ग २०—सीता का पृथिवी में प्रवेश

वाल्मीकि के ऐसा कहने पर राम बोले, हे ब्रह्मन् ! मुझे आप के निष्काम वाक्यों से ही प्रत्यय है, और सीता पहले प्रत्यय दे चुकी है, पर लोकापवाद बलवान् है, इस से मैंने शुद्ध जान कर भी इस का त्याग किया, वह आप क्षमा करने योग्य हैं। तब मुनिकी आज्ञा से सीता काषाय वस्त्र पहने हुए, हाथ जोड़े हुए, नीचे मुख किए हुए और नीची दृष्टि किए हुए, विश्वास देने के लिए तय्यार हुई। पर सीता क्या अब राज्य भोगना चाहती है, इस लिए विश्वास देती है। नहीं नहीं, जिस पतिव्रता ने अपने जीवनपण से अपने धर्मकी रक्षा की थी वह अपने ऊपर लगे मिथ्या कलङ्क से अत्यन्त अपमानित हुई अपने उज्ज्वल सतीत्व को साथ लेकर इस दुनिया से ही बिदाई चाहती है। सो वह पतिव्रता अपने भक्तों की लाज रखनेवाले भगवान् के आगे सिर झुकाकर यों बोलीः—

यथाऽहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातु मर्हति।
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।
यथैतत्सत्य मुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च।

तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ।

यदि मैं राम से भिन्न किसी को मन से भी चिन्तन नहीं करती हूं, तो मुझे पृथ्वी देवी विवर (अपने अन्दर प्रवेश के लिये रन्ध्र=छिद्र) देने की कृपा करे। मन वाणी और कर्म से यदि मैं राम को ही पूजती हूं तो पृथ्वी देवी मुझे विवर देने की कृपा करे। यदि यह मैं सत्य कहती हूं कि राम से भिन्न दूसरे को मैं नहीं जानती हूं, तो पृथ्वी देवी मुझे विवर देने की कृपा करेः—

इस तरह तीनबार जब उस सती, पर दुःखिया, सीता के मुख से यही बचन निकला, तो देखनेवालों ने आश्चर्य युक्त होकर देखा, कि पृथ्वी फट गई, और एक सिंहासन बाहर निकल आया, सीता उस पर बैठ गई, आकाश से पुष्प वृष्टि हुई। सीता पृथ्वी में इस तरह समा गई, मानों वहां थी ही नहीं। यह अद्भुत देखकर सभी संमोहित होगए। और राम एक छड़ी का सहारा लिए खड़े हुए दीन मन हुए नीचे सिर किये अतीव दुःखित हुए छमाछम रोरहे हैं। वह देरतक रोकर क्रोध और शोक से भरे हुए यह बचनबोले।

अभूतपूर्वं शोकं मे मनः स्प्रष्टुमिवेच्छति ।
पश्यतो मे यथा नष्टा सीता श्री रिव रूपिणी ।
देवि निर्यात्यतां सीता विवरं वा प्रयच्छ मे ।
पाताले नाकपृष्ठे वा वसेयं सहितस्तया ॥

मेरे मन को अब पहले कभी न अनुभव किया हुआ शोक छूना चाहता है, जब कि मेरे देखते हुए सीता जो मानों रूपवती लक्ष्मी थी नष्ट होगई। हे पृथिवी देवि! मेरी अमानत सीता मुझे दे, वा मुझे विवर दे, चाहे पाताल में वा स्वर्ग में मैं उसके साथ बसूं।

तब फिर आकाशवाणी हुई :—

राम राम न सन्तापं कर्तुमर्हसि सुव्रत ।
स्वर्गे ते संगमो भूयो भविष्यति न संशयः ॥

हे राम ! हे राम हे अच्छे व्रतोंवाले ! तुझे सन्ताप नहीं करना चाहिये, स्वर्ग में फिर तेरा समागम होगा, संशय नहीं ॥

यह सुन राम कुश और लव को लेकर पर्णशाला में आए, सारी रात सीता के शोक में उन को बीती ॥

सर्ग २१–राम का राज्य शासन और माताओं की मृत्यु

तिस पीछे यज्ञ को समाप्त करके रामने यज्ञ में आए ऋषि मुनि और राजाओं को सत्कार पूर्वक विदा किया, और स्वयं भाईयों और कुश लव समेत अयोध्या में प्रविष्ट हुआ । सीता के बिना राम को जगत शून्य प्रतीत होता था, शोक से दबा हुआ कहीं शान्ति नहीं पाता था । तथापि अपने अधिकार में पूरा सावधान था । अतएव :—

नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा ।
नानर्थो विद्यते कश्चिद् रामे राज्यं प्रशासति ॥
काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला दिशः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं पुरं जनपदास्तथा ॥

समय पर मेघ बरसता, सदा सुभिक्ष रहता, दिशाएं निर्मल रहतीं, पुर और देश हृष्ट पुष्ट जनों से भरे थे, अकाल में कोई न मरता, न प्राणियों को रोग होता, न कोई और उपद्रव होता । जब कि राम राज्य शासन करते थे ॥ फिर कुछ समय पीछे राम की माताएं कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी भी स्वर्ग को सिधारीं

सर्ग २२-राजा युधाजित का राम को संदेश

कुछ समय पीछे केकयदेश के राजा भरत के मामा युधाजित ने अपने पुरोहित अङ्गिरस के पुत्र गार्ग्य को रामचन्द्र जी के पास भेजा। रामचन्द्र जी ने भरतके सहित एक कोस आगे जाकर उसका सत्कार किया। गार्ग्य ने युधाजित से भेजे बहुत से घोड़े, कम्बल और अद्भुत वस्त्र राम को भेंट किये। गार्ग्य को आदर सत्कारपूर्वक रामचन्द्रजी ने मामाजी का कुशल पूछकर पूछा, कि मामा जी ने क्या आज्ञा दी है। गार्ग्य बोले, युधाजित ने यह सन्देश दिया है, कि मेरे राज्य के साथ मिलता हुआ सिन्धुनद के दोनों ओर गन्धर्वों का देश है, जिनका राजा शैलूष है। देश बड़ा सुन्दर फल मूल से सजा हुआ है। यह लोग बहुत ऊंचे आए हुए हैं। और यहां किसी दूसरे की पहुंच नहीं, हे महाबाहो! आप इसको बस में करें॥

सर्ग २३-भरत की गन्धर्व देश पर चढ़ाई और तक्षशिला और पुष्कलावत की बुनियाद

रामने स्वीकार किया, और भरत के दोनों पुत्र **तक्ष** और **पुष्कल** को तिलक दे कर भरत को कहा, कि हे भरत सेना लेकर और इन दोनों कुमारों को साथ लेकर युधाजित के पास जाओ, युधाजित के साथ मिलकर गन्धर्वदेश को जीत कर वहां का राज्य इन दोनों कुमारों को बांट देकर फिर मेरे पास आओ॥

भरत आज्ञापाकर चले। पन्द्रह दिन मार्ग में रहकरवह कैकेयदेश में पहुंचे। फिर वहां से युधाजित और भरत दोनों सेना सहित गन्धर्व देश पर चढ़े। गन्धर्वों ने बड़ी वीरता से इस सेना को स्वीकार किया सात दिन महाभयंकर युद्ध हुआ, लहू की नदियां बह निकलीं, पर दोनों पलड़ों मे से कोई नीचे नहीं झुका। आठवें दिन भरत

की सेना ने संवर्त अस्त्र चलाना आरम्भ कर दिया, जिसका प्रति संहार गन्धर्व नहीं जानते थे, अतएव वह बहुत जल्दी पराजित होगए । उनको जीतकर भरत ने उनके देश में दो पुर (किले) डाले। एक तक्ष के नाम पर **तक्षशिला**, दूसरा पुष्कल के नाम पर गान्धार देश में पुष्कलावत। भरत पांच वर्ष वहां ठहरा, इतने में उस देश पर पूरा शासन जम गया, और दोनों पुर भी बहुत बड़ी रौनक पकड़ गये। इन दोनों राजधानियों में दोनों कुमारों को स्थापन कर और राज्य बांट देकर भरत अयोध्या में वापिस आया ॥

सर्ग २४—लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चन्द्रकेतु को राजतिलक और अंगदीयपुर और चन्द्रकान्तपुर की बुनियाद

अब रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को कहा, कि यह धर्मप्रिय तेरे दोनों पुत्र **अंगद** और **चन्द्रकेतु** हैं, इनको अब राजतिलक देना है, कोई देश ध्यान में लाओ, जो बड़ा रमणीय और उपद्रवों से शून्य हो, और जहां न किसी राजा को पीड़ा हो, न आश्रमों का विनाश हो, जिससे हम किसी के अपराधी भी न हों। तब भरत ने कहा, महाराज! पश्चिमोत्तर में **कारुपथदेश** रमणीय और नीरोग है । भरत की बात को रामचन्द्रजी ने पसन्द किया । दोनों कुमारों को तिलक देकर लक्ष्मण के साथ अंगद को और भरत के साथ चन्द्रकेतु को भेज दिया । कारुपथ का पश्चिमी भाग अङ्गद और लक्ष्मण ने जीता, और उत्तरीय भाग चन्द्रकेतु और भरत ने। अङ्गद के नाम पर अङ्गदीयपुर, और उत्तर में चन्द्रकेतु के नाम पर चन्द्रकान्तपुर बसाया गया। बरस भर वहां रहकर भरत और लक्ष्मण अयोध्या में वापिस आए ॥

अब एक दिन एक तपस्वी राजद्वार पर आया कि मैं अपरिमित शक्तिवाले महाऋषि का दूत कार्यवश राम के दर्शन को आया हूं, सुनकर जल्दी लक्ष्मण ने अन्दर जाकर राम से निवेदन किया। राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण तपस्वी को अपने साथ अन्दर ले आया। तपस्वी का चेहरा तेज से भख रहा था, और आखों से सूर्य की तरह किरणें निकल रही थीं। राम ने उसे सौवर्ण आसन पर बिठलाया, कुशल पूछा, और कहा कि आप किस कार्य से आए हैं, कहिये। तपस्वी ने कहा, कि एकान्त में कहूंगा, जहां तीसरा कोई न हो, और यदि कोई हमारे बातचीत करते हुए आए, वा हमें देखे, तो वह तुझसे त्याग दिया जाए। राम ने यही बात लक्ष्मण को कहकर द्वार पर खड़ा होने की आज्ञा दी, और द्वारपाल को द्वार से विसर्जन कर दिया॥

अब राम ने कहा, हे तपस्वी निःशंक होकर कहो, वह बात मेरे हृदय में भी है। तपस्वी बोला, आप जिस कार्य के लिये आए थे, वह कर चुके हैं। अब आपका यहां कर्तव्य शेष नहीं है। रामने उत्तर दिया, बहुत अच्छा, मैं जहां से आया हूं वहां जाउंगा॥

सर्ग २६–दुर्वासा का प्रवेश और लक्ष्मण का त्याग

उनके ऐसी बातचीत करते हुए दुर्वासा ऋषि राम के दर्शन के लिये द्वार पर आया। उसने द्वार पर स्थित लक्ष्मण को कहा, कि जल्दी राम को मेरा आना बतलाओ। लक्ष्मण हाथ जोड़कर बोला, भगवन् ! थोड़ी देर प्रतीक्षा कीजिये। क्योंकि राम इस समय कार्य व्यग्र हैं। दुर्वासा को क्रोध आगया, उसने कहा, कि यदि तू अभी मेरा आना रामको नहीं बतलाता है, तो मैं तुझे तेरी सन्तान इस पुर और इस सारे देश को शाप दूंगा। लक्ष्मण ने

सोचा, कि अकेले का मरना अच्छा है, सबको दुःख न पहुंचे यह सोच उसने राम को जा निवेदन किया। राम तपस्वी को विसर्जन कर बाहर आए, और हाथ जोड़ कर दुर्वासा को कहा, भगवन्! क्या आज्ञा है। मुनि ने कहा, बहुत देर तपस्या करके आज मैंने व्रत धारण करना है, मुझे खाने को दे, जो कुछ तय्यार है। राम ने उसे भोजन खिलाया, और वह खाकर आश्रम को चला गया॥

पर उस प्रतिज्ञा को स्मरण कर राम अत्यन्त शोक में जापड़े। तब लक्ष्मण बोला, हे महाबाहो! आप सन्ताप न करें, काल की गति ही ऐसी थी :—

यदि प्रीतिर्महाराज यद्यनुग्राह्यता मयि।
जहि मां निर्विशङ्कस्त्वं धर्मं वर्धय राघव॥

यदि मेरे ऊपर प्रीति है, यदि मेरे ऊपर अनुग्रह है, तो हे राघव मुझे निःशंक त्यागिये और धर्म को बढ़ाइये॥

राम ने उसी सोच में मन्त्रियों को बुलवाया और सारा वृत्तान्त सुनाया। यह सुन कर सब चुप रहे, किन्तु पुरोहित वसिष्ठ बोले :—

त्यजैनं बलवान् कालो मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः।
प्रतिज्ञायां हि नष्टायां धर्मो हि विलयं व्रजेत्॥

काल बलवान् है, अब इस को त्यागो, प्रतिज्ञा को मत वृथा करो, प्रतिज्ञा के नष्ट होने पर धर्म का लय होजायगा॥

पुरोहित की आज्ञा पाकर राम लक्ष्मण से बोले :—

विसर्जये त्वां सौमित्रे मा भूद् धर्मविपर्ययः

विसर्जन करता हूं. तुझे हे लक्ष्मण, ताकि धर्म का लोप न हो

राम के कहते ही लक्ष्मण उठ खड़ा हुआ और वह घर न जाकर सीधा सरयू के किनारे पर चला गया। वहां आचमन कर सारे इन्द्रियों को रोककर अन्तिम समाधि लगाकर देह को छोड़दिया

सर्ग २७–राम का शोक कुश और लव को राजातिलक और कुशावती और श्रावस्ती की बुनियाद

लक्ष्मण को त्यागकर राम दुःख और शोक से भर गया उसने पुरोहित और मन्त्री और पुर के लोगों को बुला कर कहा, कि मैं भरत को तिलक देकर बन को जाऊंगा। भरत यह सुन कर मूर्छित होगया, और होश में आकर यह बोला :—

सत्येनाहं शपे राजन् स्वर्गभोगेन चैव हि।
न कामये यथा राज्यं त्वां विना रघुनन्दन ॥

हे राजन! मैं सत्य की और स्वर्ग के भोग की शपथ करता हूं कि हे रघुनन्दन मैं तेरे बिना राज्य नहीं चाहता हूं ॥

सो आप कुश और लव को राज्य दें, तब राम ने उस समय कुश को कोशल देश और लव को उत्तर कोशल में भेज दिया। कुश ने बिन्ध्याचल के किनारे कुशावती नगरी बसाई और लव ने श्रावस्ती। अयोध्यावासी युवकजन कुश और लव के साथ चले गये और वृद्ध नरनारी सब रामके साथ जाने को तय्यारहुए।

सर्ग २८–शत्रुघ्न का राम के पास आना

अब रामने शत्रुघ्न के पास दूत भेजे, जिन्हों ने यह सन्देश जा दिया, कि राम ने इस तरह पर लक्ष्मण का त्याग किया है, और कुश और लव को अभिषिक्त करके अब अयोध्या सहित बन जाते हैं। यह सुन शत्रुघ्न ने काञ्चन पुरोहित को और पुरवा-

सियों को बुलाकर वृत्तान्त सुनाया । और अपने दोनों पुत्रों में से सुबाहु को मथुरा में, और शत्रुघाती को वैदिश में अभिषिक्त करके आप अयोध्या में चला आया। राम को प्रणामकर बोला, हे महाराज! दोनों कुमारों को तिलक देकर मैं अभी आपके साथ जाने को निश्चय करके आया हूं। मेरा यह दृढ़ निश्चय है ॥

सर्ग २९-पुरवासियों सहित राम का महाप्रस्थान और परमगति

अब दूसरे दिन प्रभात के समय राम ने महाप्रस्थान किया, आगे २ अग्निहोत्र, ब्राह्मण और वाजपेय यज्ञों के छत्र। पीछे २ राम भरत शत्रुघ्न अपने अन्तःपुरों समेत । उनके पीछे सब पौर जन स्त्री पुरुष ॥

न तत्र कश्चिद्दीनो वा व्रीडितो वापि दुःखितः ।
हृष्टं समुदितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम् ॥
द्रष्टुकामोऽथ निर्यान्तं रामं जानपदो जनः ।
यः प्राप्तः सोपि दृष्ट्वैव स्वर्गायानुगतो जनः ॥

कोई उनमें दीन लज्जित वा दुःखिया नहीं था, किन्तु सभी प्रसन्न समुदित थे, यह बड़ा अद्भुत हुआ। राम को जाता हुआ देखने के लिये जो देश वासी पुरुष बाहर निकला, वह भी देख कर स्वर्ग के लिये साथ ही होलिया ॥

डेढ़ योजन जाकर वह सरयू नदी पर पहुंचे। और उस नदी में समाधिस्थ हो परमधाम को प्राप्त हुए ॥

उत्तर काण्ड समाप्त हुआ

ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ



शरतचन्द्र शर्म्मा
मैनेजर
कार्य्यालय आर्ष ग्रन्थावली लाहौर ।

सूचीपत्र

संस्कृत के अनमोल रत्न

अर्थात् वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, धर्मशास्त्रों और इतिहास ग्रन्थों के शुद्ध, सरल और प्रामाणिक भाषा अनुवाद।

ये भाषानुवाद पं० राजाराम जी प्रोफैसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर के किये ऐसे बढ़िया हैं, कि इन पर गवर्नमैन्ट और यूनीवर्सिटी से पं० जी को बहुत से इनाम मिले हैं। योग्य २ विद्वानों और समाचारपत्रों ने भी इनकी बहुत बड़ी प्रशंसा की है। इन प्राचीन माननीय ग्रन्थों को पढ़ो और जन्म सफल करो॥

(१) श्री वाल्मीकि रामायण—भाषा टीका समेत। वाल्मीकि कृत मूल श्लोकों के साथ २ श्लोकवार भाषा टीका है। टीका बड़ी सरल है। इस पर ७००) इनाम मिला है। भाषा टीका समेत इतने बड़े ग्रन्थ का मूल्य केवल ६।)

(२) महाभारत—इस की भी टीका रामायण के तुल्य ही है। दो भागों में छपा है। प्रथम भाग ६॥) द्वितीयभाग ६।) दोनों भाग १२)

(३) भगवद्गीता—पद पद का अर्थ, अन्वयार्थ और व्याख्यान समेत। भाषा बड़ी सुपाठ्य और सुबोध। इस पर ३००) इनाम मिला है मूल्य २।), गीता हमें क्या सिखलाती है मूल्य ।-)

(४) गीता गुटका—सरल भाषा टीका समेत ॥)

(५) ११ उपनिषदें—भाषा भाष्य सहित—

१—ईश उपनिषद् ≡)
२—केन उपनिषद् ≡)
३—कठ उपनिषद् ।≡)
४—प्रश्न उपनिषद् ।-)
५, ६—मुण्डक और माण्डूक्य दोनों इकट्ठी ।=)
७—तैत्तिरीय उपनिषद् ॥)
८—ऐतरेय उपनिषद् ≡)
९—छान्दोग्य उपनिषद् २।)
१०—बृहदारण्यक उपनिषद् २।)
११—श्वेताश्वतर उपनिषद् ।-)
उपनिषदों की शिक्षा २।)
उपनिषदों की भूमिका ।-)

(६) मनुस्मृति—मनुस्मृति पर टीकाएं तो बहुत हुई हैं, पर यह

टीका अपने ढंग में सब से बढ़ गई है। क्योंकि एक तो संस्कृत की सारी पुरानी टीकाओं के भिन्न २ अर्थ इस में दे दिये हैं। दूसरा इसका हर एक विषय दूसरी स्मृतियों में जहां २ आया है, सारे पते दे दिये हैं। तिस पर भी मूल्य केवल ३।) है।

(७) **निरुक्त**—इस पर भी २००) इनाम मिला है ४॥)

८—योगदर्शन	१॥)	१७—आर्य पञ्चमहायज्ञपद्धति	।–)
९—वेदान्त दर्शन	४)	१८—स्वाध्याय यज्ञ	१)
१०—वैशेषिक दर्शन	१॥)	१९—वेदोपदेश	१)
११—सांख्य शास्त्र के तीन प्राचीन ग्रन्थ	॥।)	२०—वैदिक स्तुति प्रार्थना	≡)
१२—नवदर्शन संग्रह	१।)	२१—पारस्कर गृह्यसूत्र	१॥।)
१३—आर्य-दर्शन	१॥)	२२—बाल व्याकरण, इस पर २००) इनाम मिला है	॥)
१४—न्याय प्रवेशिका	॥=)	२३—सफल जीवन	॥)
१५—आर्य-जीवन	१॥)	२४—प्रार्थना पुस्तक	–)॥
१६—दिव्य जीवन	१)		

२५—वात्स्यायन भाष्य सहित न्याय दर्शन भाष्य ४)

२६—नल दमयन्ती—नल और दमयन्ती के अद्वितीय प्रेम, विवाह विपद् तथा दमयन्ती के धैर्य कष्ट और पातिव्रत्य का वर्णन।)

वेद मनु और गीता के उपदेश	–)॥	सामवेद के क्षुद्र सूत्र	॥)
वेद और महाभारतके उपदेश	–)॥	वैदिक आदर्श	)॥
वेद और रामायण के उपदेश	–)॥	पञ्जावी संस्कृत शब्दशास्त्र	।=)
अथर्ववेद का निघण्टु	॥।=)		

शंकराचार्य का जीवन चरित्र और उनके शास्त्रार्थ तथा कुमारिलभट्ट का जीवन चरित्र ॥।) औशनस धनुर्वेद।) उपदेश सप्तक ॥–) शास्त्र रहस्य प्रथमभाग ॥) शास्त्र रहस्य दूसरा भाग ॥।) शताब्दी शतक ≡) चितसुखी १॥) ऊपर लिखी सब पुस्तकें सुनहरी जिल्दों में भी मिल सकती है। कीमत प्रत्येक जिल्द ॥)

नोट—कार्यालय की इन अपनी पुस्तकों के सिवाय और भी सब प्रकार पुस्तकें रियाअत से भेजी जाती हैं।